तुम्हारे 'पार्कर' की देन तुम्हीं को
सप्रेम

आभार

आभार मानता हूॅ . प्रेम-जीवन की उन मधु-तिक्त स्मृतियों का, प्रणय की उन तप्त चिंगारियों का, अनुराग की उन पंकिल भावनाओं का जो ज्योति-पुञ्ज थाती बन कर मेरे मन-मन्दिर में क्षण-प्रतिक्षण—गति, प्रेरणा और सुख-दुःख की आविर्भूत व्यंजना प्रदान कर रही हैं।

आभार मानता हूॅ ' उस सत्-साधना का, उस पूजन-अर्चन का—जिसकी स्निग्धता की स्वर्गिक चेतना में मैं जीवित हूॅ, गतिशील हूॅ।

आभार मानता हूॅ : उस व्यक्तित्व का जिसकी यष्टि से समष्टि में प्रवहमान हूॅ।

आभार मानता हूँ : उन महान् उपन्यासकार, लेखक और कवि, आदरणीय श्री पं० भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी का, जिन्होंने मुझ में उपन्यास लेखन की गुरुता का प्रवेश कराया।

आभार मानता हूँ उन परम स्नेही श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का जनके सहयोग ने मेरी कृति को पुस्तक का यह रूप दिया।

कानपुर
विजयादशमी, '५४

—यादवचन्द्र जैन

: १ :

उस वर्ष पहाड आने वालो ने पहाडी कगारो, चट्टानो और कोलतार की पतली घुमावदार सडको पर देखा 'रोमन कट' का, तनावदार हाथ-पैर और गर्दन वाला, विशालकाय व्यक्ति जिसकी आकृति मे दुर्बलता, किन्तु उन्नत ललाट पर तेज और थी स्थायी गम्भीरता।

सुबह-शाम घूमने जाने वालो मे 'वह' चर्चा का विषय था। टहलते समय 'उसके' निकट से निकलने वाले व्यक्ति 'उसे' देखते और चुपचाप पास से निकल जाते। किन्तु 'उसमे' कुछ ऐसा आकर्षण था कि दूर निकल जाने पर वे 'उसके' सम्बन्ध मे कुछ न कुछ वार्तालाप अवश्य करते। जिसकी समझ मे जो आता उस व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध मे धारणा बनाता।

बहुत समय तक कोई 'उसका' न नाम जान सका था न स्थान। परन्तु निरन्तर सब लोग 'उसे' देख रहे थे। इस प्रकार नियमित घूमने जाने वालो की एक सस्था होती है और प्रातः-साय इस प्रकार टहलने की धुन मे वे आपस मे विचार-विनिमय करते हैं, वाद-विवाद करते है, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत, सेक्स-सम्बन्धी, राजनैतिक, धार्मिक, सास्कृतिक और न मालूम विश्व के किन-किन गम्भीर और अपने पास के किन-किन हलके विषयो पर बाते करते है, कहा नही जा सकता। जब जो चर्चा छिड जाए या जब जिस व्यक्ति-विशेष पर कृपा हो जाए, बस उसकी धज्जियाँ उडते देर नही लगती। कभी-कभी इस प्रकार के विमर्श से रोष आने पर लोग दो-दो चोच भी हो लेते है, पर अन्त मे विश्व-शान्ति ही उन्हे भी सान्त्वना दे देती है।

'वह' कौन है ? किस समाज अथवा जाति का है ? ऐसा व्यक्तित्व व भव्य काया लेकर भी 'वह' यहाँ कैसे आया है ? यो शून्य मे ही अपने नेत्रो को विजडित किये रहने का क्या अर्थ है ? कोई गम्भीर चिन्ता, खेद अथवा जीवन की कोई विलक्षण गति ही इसका कारण होगी ? अनेक प्रकार से सोच कर लोग चुप हो जाते।

"विचित्र व्यक्ति है। आज आपने देखा, सडक के किनारे वाली पत्थर की ऊँची कगार पर घटो से खडा खड्ड की ओर ही देख रहा था। थोडा भी पैर इधर-उधर पड जाए अथवा शरीर का बोझ छूट जाए तो पता न लगे साहब, हड्डियो तक का पता। नोकीली चट्टानो से छिदा धड, सैकडो फ़ीट नीचे दिखाई दे। देखकर डर-सा लगता है। पर 'उससे' कौन कह सकता है ? अपरिचित जो ठहरा।" एक सज्जन अपने साथी से कह रहे थे।

"यो आकाश मे चित्र खीचने वाला व्यक्ति निश्चित ही अपने से दूर जा चुका है।" किन्ही सज्जन ने स्वानुभूतियो से साम्य स्थापित करते हुए अपना मत व्यक्त कर डाला।

प्रमोद व जयन्त भी इसी प्रकार नित्य घूमने वालो मे थे। मुक्त वायु-सेवन करने मे उन्हे भी बडा आनन्द मिलता था, साथ ही स्वास्थ्य-लाभ भी। किन्तु वे उस विशेष संस्था से पृथक् ही अपना आनन्द लेते थे। उनकी अपनी इतनी बाते थी कि उन पर ही विचार-मग्न रहने के पश्चात् उन्हें अपने वातावरण की चिन्ता न रहती। किसी प्रकार इन दोनो मित्रो की दृष्टि भी उस विशेष व्यक्ति पर पडी, जो निरन्तर सामूहिक अथवा व्यक्तिगत रूप से आकर्षण का कारण बना हुआ था। पहले दिन इन्होने 'उसे' देखा, किन्तु अपने मे ही मग्न वे आगे बढ़ गए।

पहाडो पर कुछ अधिक सडके, बडे-बडे मकान, बाज़ार और नगरो की-सी चहल-पहल तो होती नही। विशेषकर उन पहाडी स्थानो मे, जो समुद्र-तह से पाच या छः हजार फ़ीट की ऊँचाई पर केवल स्वास्थ्य-लाभ

अथवा एकान्त-सेवन के लिये बने है। हाँ, वहाँ का शान्त वातावरण ही वहाँ का स्वर्ग है। ऊँचे-नीचे पहाडो, लम्बे, घने वृक्षो, टेढी-मेढी पग-डंडियो, कोलतार की घुमावदार सडको को छूकर बहता शीतल-समीर वहाँ का अथवा वहाँ जाने वालो का एकमात्र सन्तोष है।

मोटर व बसो के लिये चली गई ऊँची-नीची कोलतार की पक्की सडके, दूर-दूर छिटके पहाडो पर, पृथक्-पृथक् छोटे-बडे बॅगले, एक या दो छोटे बाजार, जिनमे एक लाइन मे चली गई गिनती की दूकाने, दूकाने भी ऐसी जिनमे एक ही जगह सब कुछ, एक कोने मे चाय की केतली चढी है, पास ही लकडी के तख्ते पर रक्खे चीनी के चार-छः प्याले, गन्दे और हरेक का कोई न कोई कोना कही से टूटा हुआ, एक स्थान पर आटा, दाल, चावल, आलू, कुछ हरी या सूखी सब्जी, लकडी के खुले सन्दूको मे रक्खी हुई, थोडी स्टेशनरी, कई तरह के साबुन, ब्रुस, प्रतिदिन व्यवहार मे आने वाले कुछ ट्वायलेट्स, अधिक काम मे आने वाली प्रचलित कुछ पेटेन्ट औषधियाँ, सिगरेटो के कुछ बन्द-खुले पैकेट, एक कोने मे रक्खी पहाडी टेढी-मेढी छडियाँ, कही-कही उसी कोने मे एक पान की दूकान, मसाले, मेवे, कुछ कपडे के थान भी—सभी दूकाने एक प्रकार से 'भ्राताजी दी हट्टी' या 'जनरल-स्टोर्स'।

मौसम या आब-हवा के विचार से काम मे आने वाली कुछ विशेष वस्तुएँ भी वही-कही रक्खी मिलेगी, जैसे बरसाती कोट, छाते, घुटनो तक आने वाले बाटा कम्पनी के 'गम-बूट' इत्यादि।

पहाडो पर सभी मकान, दूकाने और कॉटेज या बॅगले लकडी और टीन के बने हुए रहते है, जिन पर पानी की बूँदे पडकर एक धमाका-सा करती है, जो बाहर से बडे सुन्दर, किन्तु अन्दर बडे गन्दे-चूहेदान जैसे, और कुछ बाहर-अन्दर समान रूप मे सन्तोषजनक, किन्तु जिनमे रहकर हर समय भाग निकलने की इच्छा रखते हुए भी व्यक्ति इसलिये नही भाग पाता कि वहाँ की ऊँचे-ऊँचे कोकोनट और युक्लिप्टिस के पेडो के बीच से लहरा कर आने वाली ठडी हवा उसका जीवन है।

डाक्टरो और डाक्टरी दूकानो की गिनती भी वहाँ कम नही। डाक्टरो की एक-दो ऐसी बडी दूकाने होगी, जैसी बडे नगरो मे भी नही मिलेगी। शीशे के बडे-बडे शो-केस व आल्मारियाँ; पचास वर्ष पहले की बनी नक्कासीदार बढिया लकडी की, पालिश की हुई झकाझक, उनमे चुनी-सजी सीधे जर्मनी, इगलैंड और अमेरिका से आई हुई सेलोलाइड मे बन्द दवाएँ, जो अधिकतर टी० बी० के रोगियो के लिये भारत भेजी गई है, रक्खी मिलेगी।

बहुतो ने देखा हैं, चमकदार पत्थर के अन्दर बन्द पानी, जो हिलाने-डुलाने से पारे की तरह हिलता-डुलता है। आश्चर्य होता है उसे देखकर। किन्तु प्रकृति—इसी तरह फैले पहाडो मे बन्द प्रकृति की दृश्यावली; वह मिलेगी पहाडो पर, वह मिलेगी चट्टानो पर सर पटकने पर और वहा मिलेगा लहरो की भाँति मचलता हिमवात, ऐसा ऑक्सीजन जो दबे फेफडे फुला देता है। वहाँ ध्यान आता है, कैसे छेनी-हथौडो से काट-काटकर और बारूद से उडा-उडाकर पत्थरो को चूर-चूर करके बनाई गई है—सडके, मकान, बॅगले, कॉटेज और अपने मे पी जाने वाला भव्य सैनेटोरियम? कैसे दौडे है तार, टेलीफोन? कब और कैसे पहुॅचाई गई है जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री? और वह प्रकृति, हरे-भरे खेत, पत्थरो पर उगी सब्जी, मीठे सेब और स्ट्रावेरी के लम्बे-फैले बगीचे, लहलहाते और बोझिल सब घिरे है चारो ओर पहाडो से जैसे बन्द सन्दूक मे भरा खजाना।

उन सख्त पत्थरो पर छाई कवि की ओस की बूँदे, श्वेत धवल हिमाच्छादन, पक्षियो का कलरव गान, हहरते झरने, कडवती धूप मे भी ठडी चट्टाने, मूक प्रकृति का नर्तन, अट्टहास—उन नोकीली चट्टानो के बीच मिलेगा—साथ ही बिजली की कडक और चट्टानो को चीरने वाली चमक। पर्वतमालाओ के बीच मेघमालाओ से तो वहाँ ऐसा परिचय हो जाएगा, जैसा मैदानो मे ग्रीष्म-ऋतु मे बरफ़ के ठडे पानी से।

तब भावना के उस पार, चट्टानो के भी उस पार—और चट्टाने,

विस्तृत पहाड, और देश, और ऊँची चोटियाँ, कडी धूप, कडी सर्दी, बरफ ही बरफ। तब कल्पना के उस पार, चट्टानो के ऊपर लहलहाते खेत, बोझ से लदी भूमि तक छूने वाली—सेब के वृक्षो की डाले, स्ट्राबेरी के गुच्छे, युक्लिप्टिस के खुशबूदार पेड, कोकोनट की नमी, अखरोट की बगीची, मीठे-तीखे झरने और मन की लहरो की भाँति उमडते बादल।

और इसी प्रकृति की देन पहाडो की हरी तरकारी, मोटी-मोटी हरी मिर्चे और फल, दूकानो पर 'सजे-बजे बादल' की तरह दिखेगे। दूकानो पर कही बडे बडे झाबो मे या खुले देवदार के सन्दूको मे कुछ भद्दे जगली किस्म के, भद्दी सूरत के और कुछ अच्छे सेब, जैसे गोल्डेन ऐपल और फिरनी, आडू, लाल-पीले आलूचे, नाशपाती—भरे मिलेगे।

जगह-जगह पहाडी मजदूर जो डोटियाल कहलाते है, बीडी पीते, कोयले, लकडी और फलो के पिटारो से लदे ऊपर पहाडो पर चढते-उतरते, या उन पिटारो को कही कोने मे रखकर लाइन की लाइन या एक-दो आपस मे गपशप लगाते मिलेगे। कुछ डोटियाल दूर से बस या कार का हार्न सुनकर यात्रियो के सामान की तलाश मे दौडते होगे। इनके बाल बढे हुए, चीथडे लपेटे, रस्सियो मे बँधे, अपने हाथ के बने कपडे या टाट के जूते पैरो मे चढाए, इस पर भी खोलने पर पैर लहू-लुहान, बडे निर्धन, बडे परिश्रमी, परन्तु हृष्ट-पुष्ट, सीधे पहाडो पर भारी से भारी बोझ पीठ और माथे पर बाँधकर चूहे की तरह चढते चले जाते है ये।

यह सब-कुछ मिलकर इन पहाडी स्थानो की एक निराली छटा है।

चपटी नाक वाले गोरे रग के स्त्री-पुरुष और बच्चे बाजारो और दूकानो मे दिखाई देगे। बडे गहरे रग की धोतियाँ पहने हुए पहाडी स्त्रियाँ इधर-उधर आती-जाती मिलेगी। ये बडे घूँघट निकाले होगी। इनके हाथ मे होगा कभी धोए हुए कपडो का गीला बडल, कभी पहाडी नाले के किनारे बने मन्दिर को जाते हुए पूजा की थाली, जिसमे होगे दो-चार जगली लाल-पीले फूल और गीले आटे का बना एक दीपक—छः

माशे घी और रुई की पतली बत्ती से भरा हुआ।

पहाडो मे रहने-वाले, मोटे ऊनी या सूती कोट, पाजामें, बडे गहरे रग के, पहने हुए इधर-उधर घूमते-फिरते अथवा दूकानो पर बैठे मिलेंगे। ये कभी अपनी पहाडी भाषा मे बडबडाते रहेगे अथवा कभी टूटी-फूटी हिन्दी बोलेंगे जो इन्होने परदेसियो के सम्पर्क से सीखी है। उनके माथे पर अधिकतर लाल-पीला चन्दन चढा होगा जिसे वे लोग अधिक सर्दी के कारण बिना स्नान किये नित्य घर से चलने से पहले लगा लेते है। किन्तु कुछ कडाके की सर्दी मे भी पहाडी नाले मे नित्य स्नान करते है।

पहाडी चट्टानो से घिरे रहने वाले ये स्त्री-पुरुष व बालक अधिकतर सुन्दर, स्वस्थ व प्रसन्न मिलेंगे। बच्चे सदैव उछलते-कूदते और किल-कारियाँ मारते रहेंगे। उनके अपने कुछ खेल होते है जिन्हे वे बडे मगन होकर और विचित्र प्रकार से खेलते है और वे विचित्र-सी बोलियो और सकेतो द्वारा आपस मे वार्तालाप करते है।

इन्हा सब मे कभी कोई ऐसी सूरत भी दीखती है कि बस देखते ही रहिये, जब तक जी चाहे। पर वह जी चाहे रुकने क्यो लगी? एक बिजली-सी कौंधेगी, कभी वह मकानो मे घुस जाएगी और कभी पहाडो पर कत-राती चली जाएगी।

यही है उन चट्टानी प्रदेशो के बीच सौन्दर्य की अनुपम झाँकी और प्राकृतिक अठखेलियाँ जो देखने को मिलती है।

इन पहाडो पर बाहर से जाने वाले या तो रोगी दिखाई देंगे या उनके साथ उन्ही के स्वजन जो उनकी दवा और व्यवस्था के लिये उनके साथ जाते है। इन्ही मे कुछ रोगी ऐसे होते है जो घडियाँ गिन रहे है। कुछ ऐसे है जिनके जाने मे देर है, परन्तु अवस्था ऐसी है कि घसिट रहे है, न चल सकते है न फिर सकते है, न चैन से पडे ही रह सकते है। हाँ, कुछ ऐसे भी होते है जो बहुत समय से आए हुए है या प्रतिवर्ष अनेक वर्षों से आ रहे है और कुछ स्वस्थ हो चुके हैं; तथा अब केवल

नका आना उनके जीवन का एक आवश्यक कार्यक्रम बन गया है। वे घूमते-फिरते है, हँसते-बोलते है और स्वय वहाँ की चहल-पहल का एक अंग बन चुके है।

कुछ पूरी तरह नए है—बीमारी मे भी और वहाँ आने मे भी। अधिकाश, ये ही सुबह-शाम अपने स्थानो से निकल कर चमकदार तारकोल की सडक पर दूर तक टहल आने के विचार मे नीचे से ऊपर तक लबादे से लदे, हरेक के हाथ मे किसी न किसी प्रकार का पहाडी डंडा या सहारे की छडी जिसे टेककर वे चल सके—टहलते दिखाई देगे। साथ मे उनके कोई न कोई होगा—पत्नी, मा, भाई, पिता, कोई मित्र या एक नौकर ही।

न मालूम कहाँ-कहाँ से, दूर, बडी दूर से, अधिकतर नगरो से, परन्तु कभी गाँव-कसबो के लोग भी इनमे रहते है। ये होगे बहुत पैसे वाले भी किन्तु मध्यवर्गीय गृहस्थ ही इनमे अधिक होते है।

नवयुवतियाँ, लहलहाती हुई कोमलांगियाँ, किन्तु पीले चेहरे लिये हुए कमसिन लडकियाँ, कृशकाय, ऐसी स्त्रियाँ जो समय से चालीस वर्ष पूर्व बूढी हो गई है, ऐसी विवाहिता सुन्दरियाँ जो वर्ष पूरा होने के पूर्व ही अपनी ठठरी लिये, मरणासन्न; युवक, बडे मनोहर पर अपनी कच्ची अवस्था मे, खेलते-खाते, कालेज-स्कूलो मे पढते-पढते ही अथवा जीवन-प्रागण मे पग बढाने के पूर्व ही कुछ सैनेटोरियम मे पडे और कुछ ए० पी० लेने के लिये सप्ताह मे तीन बार या कभी नित्य अपनी दशा और डाक्टर के आदेशानुकूल सैनेटोरियम से चार मील दूर से कभी पैदल और कभी स्ट्रेचर पर लद कर आते-जाते दिखाई देगे। और, और इन सबके पीछे होता है एक भयकर अतीत और डरावना, बडा विषम भविष्य, बडा दु:खद। इन सबके हृदय भरे-भरे, मन थके-थके, मस्तिष्क मे ऐसी-ऐसी कहानियाँ, ऐसे-ऐसे इतिहास, रोमाचित कर देने वाली, सिहरन उत्पन्न करने वाली कल्पनातीत, परन्तु सत्य घटनाएँ; ऐसी सच्ची बाते जिनको सुनकर व सोचकर अनायास कहना पडेगा—

कैसा समाज है ? कैसे निर्दयी, निर्मोही व नीच है, कितने निर्लज्ज जीवि हैं इस पृथ्वीतल पर ! इनका विध्वस, इनके समाज का विध्वंस, इनके महलो, मकानो और, और पैसे का विध्वस, ऐसे पापियो का नाश, सब-कुछ भी—इन सलोनी मूर्तियो को अब नही बचा सकता । इनके अन्धकार ने दूसरो का हनन किया है, दूसरो को तरसाया, सताया और मारा है । पर, पर इससे क्या ? यह क्रम है, यही जीवन का शाश्वत सत्य । क्या ये करेगे और क्या हम-आप ?'

और अब, अब वे जा रहे है देखते-देखते, धीरे-धीरे पर तडप-तडप कर, सबको, समाज को, उसके पैसे को, अपनो को और दूसरो को, यही-यही छोडकर । अब ग्लानि, क्षोभ और पश्चात्ताप का भी समय शेष नही है, नही है ।

और, और फिर जाने भी दिया जाए । नित्य जाते है और वह दृष्टि-कोण—ये समाज के कलक है, मा-बाप के कलक है, पुत्र के वैरी, पुत्री के अभिशाप, पत्नी के पाप, पैसे के शत्रु, रास्ते के रोडे । और सबसे अधिक ये इश्क, प्रेम के पचडे मे पडे थे । ससार को, समाज को, अपनो को इनकी आवश्यकता नही है । फिर प्रेम मे उदासीनता और विस्मृति से कम महत्व त्याग और बलिदान का भी नही है ।

●

: २ :

उस दिन प्रमोद और जयन्त खुले आकाश को देखकर ढाल की ओर न जाकर ऊपर सैनेटोरियम की ओर निकल गए। उधर ही पहले-पहल उन्हे 'उस' विशेष व्यक्ति के दर्शन हुए थे।

औरो की भाति उन्हे भी 'वह' व्यक्ति आकर्षक लगा। 'उसमे' कुछ ऐसी नवीनता, गम्भीरता व विचित्रता दिखी कि वे भी उससे उलझ गए। देखने मे 'वह' बहुत सुन्दर—एक राजकुमार-सा था। महाकवि निराला की भाँति लम्बा ऊँचा-सा, लम्बे हाथ-पैर और चौडे पुटठे लिये 'वह' इधर से उधर टहलता। गोरा और सुन्दर तन होते हुए भी उसका चेहरा मुरझाया हुआ था। आवश्यकता से अधिक 'उसका' चौडा माथा, मुलायम बाल उलझे हुए जैसे उनमे न कभी तेल पडा हो न कघा हुआ हो। लीक्न शेव, ऐमा लगा जैसे नित्य शेविग करता हो। उस छः हजार फीट की ऊँचाई पर पर्वतमालाओ के बीच तग तारकोल की सडक पर काश्मीरी ऊनी लबादा लपेटे किनारे-किनारे पत्थर की ऊँची-नीची कगारो के निकट न मालूम किस ओर दूर तक दृष्टि फेकता 'वह' दिखाई दिया। सडक पर चलने वाले, बसे व मोटरे भी निकट से निकल जाती परन्तु 'वह' निश्चिन्त, एकाग्र और अपने मे ही लीन बना रहता।

प्रमोद और जयन्त 'उसके' प्रति एक जिज्ञासा लिये 'उसके' निकट से होकर दूर तक आगे बढ गए। थोडी देर दोनो मौन थे। मौन को जयन्त ने भग किया और पीछे की ओर मुडकर देखते हुए वह बोला—"भाई

साहब ! देखा आपने ? विचित्र व्यक्ति है। न मालूम कौन है ? बड़ा विचारक, दार्शनिक, बैरिस्टर या जज सा लगता है; अथवा जीवन से निराश और असफल।''

प्रमोद ने उसी ओर देखते हुए कहा—''किन्तु पहाड़ो के पार दूर 'यह' खोजता क्या है ?''

''झूठी शान्ति'', जयन्त ने सामने की ओर देखते हुए कहा।

और आगे न बढकर वे दोनो लौट पडे। लौटने पर भी उन्होंने 'उसे' उसी भॉति स्थित-प्रज्ञ व अचेत पाया। 'उसके' निकट से दोनो निकल गए। कुछ धूप हो आई थी अतः पग बढाकर प्रमोद व जयन्त घर की ओर चल दिये।

मार्ग मे जयन्त बोला—''कल से ढाल की ओर न जाकर यदि हम इधर ही आऍ तो अच्छा हो।''

इसके पश्चात् निरन्तर प्रमोद व जयन्त सैनेटोरियम वाली सडक पर टहलने जाने लगे। 'वह' नित्य नए प्रकार से दिखाई देता। एक ही स्थान पर 'वह' कभी नही मिला। किसी दिन यहा तो किसी दिन दो मील आगे। थक कर लथ-पथ होने पर भी प्रमोद व जयन्त आगे बढते चले जाते और 'उसे' देखकर ही लौटते। किसी दिन 'वह' ऊॅची चट्टान पर बैठा मिला, किसी दिन ऊॅचे चढकर खड्ड की ओर झॉकते हुए और किसी दिन पहाड़ो की उस सर्दी मे भी रूमाल से अनेक बार माथे का पसीना पोछते व हथेलियो को मलते हुए। एक वेदना 'उसकी' आकृति मे स्पष्ट परिलक्षित होती थी।

प्रमोद व जयन्त की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढती गई। उन्हे एक ही धुन लग गई—उस विशेष व्यक्ति के सम्बन्ध मे जानने की इच्छा। अपने सारे कार्यक्रम स्थगित करके वे सैनेटोरियम की ओर भागते।

शरीर कृश व मुखाकृति निस्तेज होने पर भी 'वह' अपनी बहुमूल्य वेशभूषा मे बडा सुघड दिखाई देता। ऐसा प्रतीत होता था जैसे 'उसे' काश्मीरी वस्तुओ से विशेष रुचि हो। भॉति-भॉति के काश्मीरी ऊनी

वस्त्र 'वह' नित्य बदलता। कभी ऊनी लबादा, कभी कढावदार पैरो तक लटकता बहुमूल्य ऊनी चोगा, कभी भेड की खाल का सफेद रोएँदार विचित्र-सा वस्त्र 'वह' पहने रहता। एक दिन सफेद ऊनी कुरते पर वह काली ऊनी सदरी पहने था, परन्तु उस पर भी काश्मीरी ऊनी शाल ओढे हुए।

'उसके' साथ कभी कोई नही दिखा। सदैव वह अकेला ही उल्लू खल-सा इधर-उधर फडफडाते मिलता।

उस दिन कुछ गज की दूरी पर पहली बार उसका एक आदमी दिखाई दिया। साधारण नौकर की अपेक्षा वह अच्छे कपडे पहने हुए था। उसके हाथ मे बरसाती कोट व हैट था। उस दिन कुछ पानी गिर चुका था, अतः उस नौकर का वहाँ होना सार्थक प्रतीत हो रहा था।

प्रमोद और जयन्त जब वहा पहुँचे तो उन्होने पहली बार देखा कि अपनी दो अंगुलियो के सकेत से उसने दूर खडे उस नौकर को बुलाया। कुछ अधिक दूर न होते हुए भी नौकर क्षण भर मे दौडकर 'उसके' निकट आ गया। ऐसा लगा नौकर उसके निकट आते-आते सहम-सा गया है।

नौकर से वह कुछ कह न सका और इतनी ही देर मे वह तडपने लगा। 'उसे' गिरते देख नौकर ने सहारा दिया। तुरन्त ही वह निकट की एक चट्टान पर बैठ गया। तभी सकेत से 'उसने' नौकर को लौट जाने का आदेश दिया। नौकर लौट तो गया, किन्तु अपने पूर्व स्थान पर जाकर चिन्तित मुद्रा मे वह अपने स्वामी को ही देखता रहा।

प्रमोद व जयन्त कुछ दूर खडे यह सब दृश्य देखते रहे। नौकर के लौट जाने पर वे भी आगे बढने लगे। वहाँ रुकना उन्हे अप्रासगिक लग रहा था, परन्तु वहाँ से जाने की भी उनकी इच्छा नही थी। दोनो एक-एक पग बढते जाते और घूम-घूम कर देखते जाते। 'वह' एक हाथ से चट्टान का सहारा लिये और दूसरे हाथ को माथे पर टिकाए थर-थर काप रहा था।

आपस मे बिना कुछ बोले प्रमोद व जयन्त आगे बढ गए । आज 'उसकी' दशा देखकर दोनो का मन बडा खिन्न हो गया था। बड़ा भारी-भारी मन लिये वे घर लौट आए। प्रमोद का निवास पहले पडता था। घर के सामने आकर भी प्रमोद मौन रहा। जयन्त भी कुछ न बोला। नियमानुसार आज जयन्त को चाय का निमन्त्रण भी प्रमोद न दे सका। न रमी ही खेलने का आह्वान उसने दोहराया, वैसे जाते समय लौटने पर रमी खेलने की बात तय हो चुकी थी।

तब विदा होते समय जयन्त बोला—"सम्भव है कल मै घूमने न जा सकूं।"

प्रमोद ने इस बात का भी कोई उत्तर न दिया और जयन्त नमस्कार करके अपने बगले की ओर चल दिया। प्रमोद धीरे-धीरे मकान की सीढियाँ चढा और कमरे मे पडे पलग पर धम से आकर पड गया। वह देर तक चुपचाप आँखे बन्द किये उसी प्रकार पडा रहा।

●

: ३ :

प्रमोद बीमार होकर पहाड आया था। लखनऊ मे डाक्टरो ने 'टी०बी०' की प्रारम्भिक अवस्था घोषित करके उसे पहाड जाने का आदेश दे दिया था। इतना अवश्य था कि उसकी दशा चिंताजनक न थी।

स्वस्थ और सुन्दर प्रमोद अनजाने ही इस रोग का दामन थाम बैठा। कालेज मे 'लॉ' का अन्तिम वर्ष समाप्त करके परीक्षा के तुरन्त पश्चात् वह पहाड चला आया। पहाड आकर भी उसने इस भयावह रोग के एक-दो विशेषज्ञो से जॉच करवाई और उनके परामर्श से चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। डाक्टर साह ने निर्देश किया कि उसे सैनेटोरियम मे रहने की आवश्यकता नही है। अतः उन्ही के लिखित प्रमाण-पत्र पर उसे बाजार मे ही एक मकान मिल गया।

घोर 'टी० बी०' के रोगी या तो सैनेटोरियम मे स्थान पाते है या दूर पहाडो मे अधिक ऊचाई पर बने बगले या कॉटेजो मे। ये स्थान एक प्रकार से 'टी० बी०' एरिया ही घोषित किए जा चुके है। बाजारो मे केवल वायु-परिवर्तनार्थ आए रोगियो को ही स्थान मिलना संभव हो पाता है। यह बचाव वहॉ के निवासियो के लिये परमावश्यक होने के साथ-साथ उन व्यक्तियो के लिये भी हितकर होता है, जो विशेष-रूप से उस रोग के रोगी नही होते।

प्रमोद भी इन्ही मे था। पहाड के तापक्रम जलवायु और सुव्यवस्थित चिकित्सा ने उसे बहुत लाभ पहुँचाया और एक दो मास मे ही

वह स्वस्थ होने लगा। उसका वजन भी बढा और वह कुछ दूर घूमने-फिरने भी लगा।

पहाड पर रहकर एकान्त मे वह बहुत कुछ सोचता, ऊबता पर तब भी प्रसन्न रहने की चेष्टा करता। दिन मे दो-चार बार दवा, हलका-फुलका भोजन, तीव्र ज्वर मे चुपचाप पलक बन्द किये पडे रहना, ज्वर कम होने पर उसी चमकती सडक पर कुछ घूम आना, यही क्रम प्रारम्भ मे हफ्तो क्या महीनो चला। तदनन्तर धीरे-धीरे ठीक होने पर वह भी लबादे-सा लदा, एक बेत टिकटिकाता कुछ दूर कभी ऊपर की ओर और कभी ढाल की ओर टहलने लगा। इतने पर भी शरीर से वह बडा दुबला-पतला था। शारीरिक और मानसिक वेदना उसमे कुछ भी हो, स्वभाव से वह बडा हँसोड और मधुरभाषी था और ऊपर से सदैव प्रसन्न रहता था।

वार्तालाप मे वह जयन्त से कभी उसके प्रश्न के उत्तर मे कहता, "जयन्त, मैं तुम्हारे इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ कि मै सदैव इतना प्रसन्न किस प्रकार रहता हूँ? इस कठिन रोग मे भी मै और रोगियो की भाँति गुमसुम नही रहता। नीरस नही रहता। केवल इसलिये कि मै जीवन चाहता हूँ। ससार के बीच मे अपने आप को परखना चाहता हूँ। मै अपनी आँखो सब कुछ, बहुत कुछ देखना चाहता हूँ। मै अपने अन्त की अभिलाषा कर बैठा था, अब से कुछ काल पूर्व परन्तु अब मै अत के छोर से दूर रहना चाहता हूँ, बहुत दूर। मै सब के बीच रहकर भी देखना चाहता हूँ कि अपनी मूक-साधना सम्पन्न कर सकता हूँ अथवा नही। मै देखना चाहता हूँ कि मेरे इस नीरव-गु जन मे कब किस दिशा से प्रतिध्वनि आती है। आती भी है या नही। देखूँ प्रतिध्वनि न पाकर मै कदाचित् विच-लित तो नही होता? और मैं रहना भी चाहता हूँ मूक, निश्चल, आत्म-विह्वल, सर्वथा आत्म-विभोर। मुझे ज्ञात है समय मेरा साथ नही देगा। वह किसी का साथ नही देता। मेरा वातावरण मेरा साथ न देगा। संभव है मेरी अपनी पुकार ही मेरा साथ न दे परन्तु मेरा यह आत्म-

विश्वास तो अडिग है जयन्त कि मेरी यह मूक-अर्चना—मेरा आराध्य—एक न एक दिन, कभी किसी भी अवस्था मे मिले आज या युग-युग पश्चात्—स्वीकार करेगा, अवश्य स्वीकार करेगा—वही मेरे जीवन की यथार्थता होगी।"

जयन्त वह सब कुछ मौन, मन्त्र-मुग्ध-सा सुनता और निरुत्तर बैठा रहता। उस मौन वातावरण को पुनः प्रमोद ही भग करते हुए कहता, "उफ़, जयन्त आवेश मे मै भूल जाता हू कि इस प्रकार के प्रसग से तुम भी मर्माहत होते हो। परन्तु.. ..." बात बदलने के विचार से प्रमोद उसे बहकाता, "देखो दलसिह चाय ले आया है।"

जयन्त तब भी मौन रहता।

इस प्रकार अपने से सम्बन्धित विभिन्न बार्ता उनमे आपस मे समय-समय पर हो जाती। एक अवसर पर जयन्त ने कहा, "भाई साहब, यह सब कुछ नही। इस सब कोरी सिद्धान्तवादिता को, भावुकता की इस उडान को मै कोई महत्व नही देता। अभी कुछ ही मास पूर्व मेरे मन मे भी एक ऐसी ही अमिट साध थी। अपने आप को मिटा डालने मे मैं दिन-रात मग्न रहता, चेष्टाएँ करता, और आप जानिये उसी सबने मुझे यहाँ ला पटका। परन्तु वह सब अब शून्य की ओर जा रहा है। मेरा मन बदल रहा है। इस विक्षिप्तावस्था के पूर्व की अवस्था मे मै पुनः आ रहा हूँ। पहाड आकर भी मैने अपने आपको सँभालने की भरसक चेष्टा की है। निरन्तर अध्ययन करके मै ऐसे साहित्य को देख रहा हूँ जिसमे व्यर्थ की सिद्धान्तवादिता और थोथी दार्शनिकता की बखिया उधेडी गई है। Eat, drink and be merry, खाओ, पियो और टिन्चन रहो। इन शिलाखण्डो के बीच मुझे अब यही भाने लगा है। आपकी बात काटने की मुझ मे सामर्थ्य नही। यह आपकी अपनी परिस्थिति है, परन्तु आगे मैं तारे ही गिनता रहूँ यह संभव नही। और फिर इन पहाडो पर तो तारे गिनने को नही मिलते। मुझे यहाँ आए लगभग तीन माह हुए हैं। न तो मुझे ही बाहर लान पर आकर ठिठुरते हुए आकाश देखने

का साहस हुआ है न तारो ने ही नम बादल चीरकर दर्शन देने की अधिक कृपा की है।"

"ठीक है, तुम जीवन की यथार्थता को इससे भी सुखद रूप मे देखो जयन्त, मुझे प्रसन्नता होगी। परन्तु हर बात मजाक नही, इतना ध्यान रक्खा करो", प्रमोद ने गंभीर होकर कहा।

इसी प्रकार समय कट जाता। वाद-विवाद के पश्चात् चाय-पान और आकाश स्वच्छ होने पर दो-चार फर्लांग टहलना। मार्ग मे चट्टानो के बीच चलते-चलते उनके विचार कभी आपस मे टकरा जाते और तब कभी गंभीर और कभी हलके होकर वे घर लौटते।

जयन्त प्रमोद का पहाड का साथी था, जो वहीं उसके निकट आया था। वह बनारस के एक सम्पन्न परिवार का इकलौता लडका था। गोरे रंग मे बडी भोली मुखाकृति लिए घु घराले बालो से मढे सर को बहस मे तरह-तरह से हिलाता वह अपने को बडा विद्वान् समझता था। बडे मीठे स्वभाव के साथ जीवन के कुछ कठोर अनुभव लपेटे वह ससार को समेटने की चिन्ता मे दिन-दिन भर पढता, बहस करता, और अपने भावी कार्यक्रम की लडियाँ पिरोता। वह सदैव 'टिप-टाप' रहता था। ठाट-बाट से रहने का उसका स्वभाव था। सयोग से प्रमोद का वह मित्र बन गया। और 'जब मिल बैठे दो दीवाने' तो वे ही खफ्त की बाते।

पाँच फर्लांग दूर से वह कभी सूट और कभी उस पर ओवरकोट चढाए, पतली छडी टेकता प्रमोद के घर नित्य ही आता था। तब नित्य नवीन कार्यक्रम, चाय, घुमाइयाँ, बाजार, ढाल, सैनेटोरियम की सडक, कभी पुराना झरना, कभी किसी पहाडी की वीरान चोटी और सब ओर घूमना ही घूमना।

घूमने का समय उनका मौसम की घडी के साथ-साथ चलता। सुबह से लेकर शाम तक जब भी बादल साफ होते तो जयन्त अपने बगले से चलकर प्रमोद के यहाँ आता। कभी प्रातःकाल नौ बजे, कभी दोपहर

को तीन बजे और कभी शाम को पाँच बजे। तभी चाय, बिस्कुट, पकोडी चलती और सैरें होती।

एक नियमित कार्यक्रम-सा बन गया था वह सब। इससे उनमे स्फूर्ति रहती जिसका प्रभाव उनके मानसिक और शारीरिक दोनो तत्वो पर पडा और दोनो का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर ठीक होता चला गया। दोनो के घर वाले इन युगल मित्रो को देखकर बडे प्रसन्न थे, यह सोचकर कि उनकी इस मैत्री का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बडा अच्छा पड रहा है।

टहलते समय उन्हे नित्य नए साथी मिलते। धीरे-धीरे वे उनके साथ घुलमिल जाते। दोनो का जिज्ञासु मन शनैः शनैः परिचितो की नवीन बाते जानता और तब उन बातो को लेकर प्रमोद व जयन्त आपस मे झख मारा करते।

कभी उन रुपहली-सुनहली तितलियो की कहानियाँ भी सामने आती। एक ठेस-सी लगती वह सब कुछ सुनकर। किसी को देखकर वे सोचते, 'रूप की छलकती मदिरा अब इन आँखो और ओठो मे सूख चुकी है।'

रोग से जर्जर किसी स्त्री अथवा युवा लडकी को देखते तो दोनो सिहर जाते। वे देखते, सुन्दर आकृति मे भी मुस्कराहट कोसो दूर, इतनी दूर जितना वे अपना घर छोड कर आई है, अपना इतिहास और अतीत छोडकर आई है। अनुमान से, प्रमोद व जयन्त दोनो ही प्रत्येक मे प्रेम-विह्वलता देखते और समवेदना मे स्वय भी कुछ काल तक खिन्नमन अपनी अनुभूतियाँ समेटते और फैलाते। कभी कई-कई दिन तक दोनो का मन उचाट रहता। उनकी चहल-पहल समाप्त हो जाती। तब ऐसा प्रतीत होता वे फिर बीमार है। घर वाले पुनः चिन्तातुर हो कर दवादारू के लिए छटपटाते। प्रमोद पर ऐसे प्रसग का प्रभाव और भी गहरा पडता।

एक दिन इसी प्रकार का एक प्रसग आने के पश्चात् प्रमोद तीन दिन तक ज्वर मे पडा रहा। उस दिन अपने लिए एक टूथपेस्ट लेने के विचार से प्रमोद एक दूकान पर चला गया। दूकानदार ने,

परिचय होने के कारण प्रमोद को बिठा लिया। उसी समय एक साथ दो युवतियो ने दुकान मे प्रवेश किया। दोनो ही अतीव सुन्दरी थी। आकृति से दोनो बहने जान पडती थी और अवस्था दोनो की एक सी। लगभग बाईस या चौबीस वर्ष होगी। एक की माग भरी हुई थी और वह कुछ रुग्ण दिखाई दे रही थी। वह बहुत शान्त थी। साथ की दूसरी युवती बडी चंचल और जल्दी-जल्दी दूकान पर चक्कर काट कर कभी यह चीज देखती तो कभी वह। इतने मे दोनो ही को निकट देख दूकानदार ने प्रश्न किया—"कहिये, अब क्या हाल है?"

शान्त मुद्रा मे पहली स्त्री ने उत्तर दिया—"मै केवल दवा खाना जानती हूँ, मेरा हाल मेरी बहन जानती है।"

नाक उठाकर उसमे कई धारियाँ डालते हुए दूसरी युवती बोली—"हालत डावाँडोल है? आप ही बताइए क्या किया जाए? तबियत सभलने मे नही आती।"

एक भेदभरी दृष्टि डालते हुए दूकानदार ने कहा—"आप ही सभालिये।"

तभी दवा का एक पैकेट लेकर और अठारह रुपये दूकानदार के हाथ मे रख कर दोनो चली गई। उनके चले जाने पर दूकानकार ने प्रमोद को अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा—"देखिये प्रमोद बाबू, दोनो बहने है, सगी बहने। और दोनो एक ही व्यक्ति की पत्नियाँ है। छोटी कॉलेज मे पढती थी तभी अपने जीजा जी की प्रणय लीला मे फँस कर शादी कर ली। अब बडी बहन इसी क्षोभ मे किनारे आ लगी है। अरे दोनो ही रहे न, मना कौन करता है। पर साहब ये थिरकती तितलियाँ जो न कर डाले थोडा है।

प्रमोद ने अनायास प्रश्न किया—"दोष जीजा का है या इस लडकी का?"

दूकानदार ने हँसकर उत्तर दिया—"मैने कभी पूछा नही।" तब हाथ हिलाकर वह पुनः कहने लगा—"वाह प्रमोद बाबू, आप भी

कितने भोले है ! अरे दोष किसका है ? दोष है पतली कमर का, उभरे यौवन का और दोधारी आँखों के साथ पीठ पर पडी चोटियों का।"

प्रमोद को प्रसग कुछ रुचिकर न लगा और वह उठकर चला आया। इसके पश्चात् वह तीन दिन ज्वर मे पडा रहा।

इसी प्रकार कभी प्रसन्न और कभी खिन्न प्रमोद पहाड पर बना रहा।

: ४ :

उस रात्रि को आकाश बहुत स्वच्छ था। मकान के सामने वाले मैदान मे पहाडी बालक देर तक हल्ला-गुल्ला मचाते और खेलते रहे। प्रमोद खिन्न-मन बाहर बरामदे मे बैठा देर तक न मालूम क्या-क्या सोचता रहा। अपने मे डूबे-डूबे न उसने भोजन किया न माँ अथवा दलसिह से ही कुछ बात-चीत की। ऐसे मे माँ का भी यह नियम था कि प्रमोद को इस प्रकार एकचित्त देखकर वे उससे कुछ कहती-सुनती न थीं। न अनुरोध न विरोध, न किसी बात पर उलझन। यहाँ तक कि वे ऐसे समय मे जान-बूझ कर प्रमोद से भोजन तक के लिये न पूछती थीं।

प्रमोद अपने अतिरिक्त उस समय दो बहनो मे उलझा था। छोटी की उच्छृ्खलता, बडी का असहनीय मानसिक उद्वेलन, अधिकारो का अनाचार के माध्यम से हनन, अदृश्य जीजा का मासल खिलवाड, लोलुपता, वासना की उच्च तरगे, ऐसे अनुराग की थोथी पृष्ठभूमि और जीवन के कठिन मोड और अपनी परिस्थिति की विषमता, दुर्निवार प्रतीक्षा, वेदना।

वैसे अधिक कोहरे शीत और जलवृष्टि के समय शाम से ही सन्नाटा छा जाता है। पहाडो के लोग घरो मे दुबक कर बैठ जाते है। परन्तु मौसम सुहावना होने के कारण उस दिन विशेष चहल-पहल थी। अपने मे डूबने-उतराने के क्षणो मे सामने मैदान मे खेलते बालको के

कोलाहल ने प्रमोद का ध्यान आकृष्ट किया और अपने को हलका करने के ध्यान से प्रमोद सामने देख कर मन बहलाने लगा। दूर से बच्चो के खेल देखकर वह आनन्दित हो रहा था।

तब फिर उसे ध्यान आया। दो बहने। दोनो का अनुपम सौन्दर्य। यौवन और सौन्दर्य की चढती दोपहरी मे विषमता की शाम किस प्रकार ठिठक कर रह गई और वासना के गहन बादलो ने रुपहली धूप को, जिसमे जीवन खुलकर अँगडाई लेने को था, आछन्न कर डाला। वह सब कुछ रूप का मोह नही वासना का विष है, विष। प्रेम और वासना, दो : एक असम्भव। तभी सामने मैदान मे एक लडके ने तेज सीटी बजाई और प्रमोद का ध्यान भग हो गया।

धीरे-धीरे मैदान मे बालको के खेल समाप्त हो गए। वे उछलते-कूदते थक कर सोने चले गए। प्रमोद भी सोचते-सोचते थक कर लेट रहा।

पहाडी मौसम की विचित्रता से प्रमोद परेशान था। उसके मनचाहे कार्यक्रम स्थगित हो जाते। मन और मस्तिष्क को थका लेने के बाद हाथ पैरो को थका लेने को जी चाहता और वह ढाल तक टहल आने को मचल उठता किन्तु उमडते बादल उसका मार्ग रोक देते। मौसम क्या, एक खिलवाड दिखता? अभी सब ओर धूप। लोग अपने-अपने स्थानो को छोड कर निकल आए, कुछ टहलने वाले, कुछ बाजार से आवश्यक सामग्री क्रय करने, कुछ औषधि अथवा डाक्टर की खोज मे, बिना छाते, बिना बरसाती। और तड-तड पानी। वह भी इतनी तीव्र गति व मात्रा मे कि बचाव के स्थान तक पहुँचना भी दूभर और फिर धूप। फिर बादल और कडकती बिजली। तब वायुमण्डल इतना शीतल, इतना नम कि बहुत समय तक मन गिरा-गिरा। न कही जाने की इच्छा न कही कोई निश्चित कार्यक्रम। कभी ऐसी कठिनाई और बढ जाएगी जब निरन्तर एक-डेढ सप्ताह सूर्यदेव के दर्शन दुर्लभ हो जाएँगे। घहर-घहर करता

जल जिस समय चारो ओर गर्जन करेगा, चट्टानो, लकडी और टीन के मकानो पर जब वह घोर शोर करेगा, कतराती बिजली जब किनारे से निकल कर अन्तरिक्ष मे विलीन हो जाएगी तो यही प्रतीत होगा कि अब जलप्लावन हुआ और अब सहार। किन्तु तनिक देर मे ही सब शान्त। फिर पहाडी बालक, डोटियाल, मरीज और घूमने वाले छितरे दिखाई पडेगे।

ऐसी बरसात मे अरुणोदय के उपरान्त सारे दिन अशुमाली अपना वैभव प्रसारित करके सन्ध्याकाल अस्ताचल की ओर अग्रसर हो, ऐसा शुभ दिन जब कभी होता तो सर्वत्र मागलिक चिह्न प्रकट होते। तब वातावरण बडा सुखद प्रतीत होता और दिनभर आनन्द रहता।

एक दिन पूर्व जयन्त प्रमोद से विदा होते समय कहता गया था कि वह अगले दिन न आ पाएगा। उस समय तन्मयता मे प्रमोद ने कुछ ध्यान नही दिया परन्तु आज उसे बडा अखर रहा था। जयन्त के कथन की पूर्ति पहाडी मौसम की विचित्रता ने कर दी। दूसरे दिन प्रातःकाल से ही पानी की जो झडी लगी तो निरन्तर तीन दिन तक बरसात बनी रही। उठना-बैठना कठिन हो गया। सन्दूको की तरह अपने मकानो मे बन्द सब ऊब रहे थे। न कोई कही आ सकता था न जा सकता था। न प्रमोद हिला-डुला न जयन्त ही अगले के बाहर जा सका।

तीसरे दिन मध्याह्न मे दो-तीन बजे के लगभग जब पानी कुछ थमा तो जयन्त का नौकर शम्भू प्रमोद के पास आया और उसने जयन्त की एक स्लिप व लिफाफा प्रमोद को दिया। शम्भू के वहाँ आने के तुरन्त पश्चात् पुनः जल भयकरता से बरसने लगा। प्रमोद ने जयन्त की स्लिप पढी। लिखा था,

भाई साहब,

नमस्कार। बरसाती, कन्टोप और गमबूट पहन कर भी वहाँ आने का साहस मुझमे नही है। न आप ही हिल रहे होगे, मै जानता हूँ। वस्तुतः जी तो इतना ऊब रहा है कि आप तक इस पानी मे ही बहा

चला आऊँ किन्तु माधवी ने तो पलग से बॉध दिया है। जो हो। किन्तु हॉ, पोस्टमैन बेचारा तो काम करता ही है। वह बनारस का एक पत्र बरामदे मे इस पानी मे डाल ही गया जिसे आपके पास भेज रहा हूँ। अब कहिये, आपके एकनिष्ठ धर्म को इस बरसात मे ओढ़ूँ या बिछाऊँ। लीजिये पढिये क्या लिखा है ? क्या जल्दी मिलूँ ? पर हू-हू-हू, ही-ही। यह पानी तो नहीं आने देता। अच्छा नमस्कार।

जयन्त

प्रमोद जयन्त का पत्र पढकर मुस्करा दिया। उसने देखा सामने शम्भू पानी को देख कर मन ही मन झाँक रहा है। वह सोचने लगा, शम्भू अपने मालिक की ही भाति हर ओर से चौकस है। माथे पर बनारसी बडी लाल-सी टिकली, कन्धे पर स्वच्छ बनारसी लाल गमछा, बालो के साथ चोटी भी काढ कर पीछे गॉठ बॉधकर लटकाई हुई। काले रग पर भी चेहरा चमक रहा है और बडी-बडी ऑखें अपने मालिक की ही तरह कुछ खोज मे है। एक हाथ को छज्जे के बाहर निकाल कर पानी की बूँदे हाथ मे लेता और दूसरे से अपने कन्धे पर पडे गमछे को सम्भालता हुआ शम्भू बोला—"का बताई बाबू, ई पानी और ससुर खिजाए है।"

तभी हाथ के लिफाफे को खोलते हुए प्रमोद ने उत्तर दिया—"हॉ शम्भू, उधर बैठ जाओ।"

सामने से दलसिह गीले कपडो को बिना सूखे ही समेटने लगा। शम्भू उससे उलझ गया। प्रमोद के कानो मे ध्वनि आ रही थी।

"ऐ पहाडी, क्या करता है ?"—शम्भू ने दलसिह का कन्धा पकड कर हिलाते हुए कहा।

"क्या पहाडी-पहाडी करता हई। नाम नहीं बोलने जानता।"—दलसिह को पहाडी कहने से चिढ थी।

"तुम्हारा औरत किधर है ?"—शम्भू ने पहाडी हिन्दी के मेल मे बोलते हुए कहा।

प्रमोद ने अपना सर ऊपर उठाकर देखा, इस प्रश्न के उत्तर मे

दलसिह मुस्करा रहा था। जैसे यह प्रश्न उसे प्रिय लगा हो। वह हँस कर बोला—"गाँव मे हई।" तब शम्भू के निकट आकर दलसिह फुसफुसाने लगा—"तुम्हारा शादी हुआ, तुम्हारा बीबी किधर हे ?"

"जेब मे।"—शम्भू कह गया। प्रमोद बनारस का पत्र पढने लगा। तब प्रमोद शम्भू के उस उत्तर मे उलझ गया। वह सोचने लगा ठीक ही तो है। शम्भू ऐसा फितरती नौकर, उसकी बीवियाँ तो उसकी जेब ही मे रहती होगी। सब ऐसे ही चलता है। यह भी दुनिया है। तब वह एकाग्र होकर पत्र पढने लगा। नीले रग के सुन्दर कागजो पर छः पृष्ठ लम्बा पत्र था। भीनी सुवास उसमे से आस-पास फैल रही थी। पत्र इस प्रकार था।

मेरे देव,

वन्दना। तुम्हारे पहाड जाने के बाद यह पाँचवाँ पत्र भेज रही हूँ। पर मुझे तनिक भी दु:ख नही कि मेरे पत्रो का उत्तर मुझे नही मिल रहा है। किन्तु मै क्या करूँ ? तुम बोलो मेरे पास पत्र लिखने के अतिरिक्त क्या उपाय है ? यही सतोप है जो मन से मान लेती हूँ।

....

कल ही मेरा इन्टर का परीक्षा-फल आया है। अपने देव की अन्तरग कामना से प्रथम श्रेणी मिली है। .

३० जून, ३० जून, ३० जून धू-धू करती हुई मुझे निगल जाने के लिए निकट आती जा रही है। आप एक तमाशा बनकर इतनी दूर जा बैठे है। क्या मै, इतनी कोमल, आपने सोचा है अकेले ही सघर्ष कर सकूँगी ? . ...

होने वाले.. . ..रोज पिता जी के पास आते है। मै तो जल उठती हूँ, परन्तु पिता जी के कारण विवश हूँ। पिता जी मुझे खींच कर उसके साथ सिनेमा ले जाते है, ...

कल मेरे रिजल्ट दिखाने की खुशी मे वह दौडता-दौडता आया। बधाई, बधाई, बधाई की चीख ने मेरे कान फाड दिये। मै चुपचाप बिना कुछ बोले

अपने पढने के कमरे मे जा बैठी । इस पर भी पिता जी, ओफ ! कितना तग करते है । कहने लगे—"बेटी मनमोहन आए है । जाओ इनके साथ कही घूम-फिर आओ ।"

क्या मुसीबत है ? बोलो क्या करती ? मुझे जाना पड़ा । वह मुझे साइड मे बिठा कर कार स्वय ड्राइव करके न मालूम कहाँ-कहाँ घुमा लाया । मै बोलती नही । फिर भी न मालूम उसे क्या मजा आता है । . . मै कई बार उसका हाथ झटक चुकी हूँ ।.. क्या यो ही मार्ग प्रदर्शन करोगे ? देखो लिखे दे रही हूँ, तुम्हारे ही शब्दो मे मेरी विचार व विरोध की शक्तिया कम होती जा रही है ।

विनाश देखते हुए भी तुम यो मौन हो ।.. . बोलो मेरा अपना अपराध क्या है ?

प्रिय तुम्हारा स्वास्थ्य . तुम स्वय सोचो मै कितनी विह्वल हो रही हूँ पहाड आने के लिये । पिता जी ने पहले हाँ कर दी थी, पर अब निरन्तर मना कर रहे है ।

. . . . ठीक है मै पत्र निरन्तर दूँगी और देखना जल्दी आती भी हूँ ।

मेरे.. पत्र पत्र पत्र । प्यार

कामिनी

प्रमोद पत्र पढ गया । अन्य पत्र भी उसने पढ़े थे । पूर्व-कथा और अब आगे की गति-विधि के अनुसार प्रमोद ने यह निष्कर्ष निकाला था कि परिस्थितियाँ कथा को समाप्त करना चाह रही है । तभी उसके समक्ष जयन्त की करुण-कहानी चलचित्र की भाँति नाच गई ।

जयन्त और कामिनी एक दूसरे के पडोसी । दोनो धनवान् । दोनो के बगले की बनारस मे चहारदीवारी एक । दोनो का रूप निखरा हुआ, यौवन इठलाता हुआ, बालपन के खिलवाड की प्रणय मे परिणति, छलकती आयु और दहकते मन लिये दोनो के सुख-स्वप्न' जीवन मे

बडी चहल-पहल, सलोनापन, आनन्द, घूमना-फिरना, कार, बोटिंग सिनेमा, एकान्त-सेवन, दुलार 'अनुराग' रंगरलियाँ।

दोनो परिवारो मे जातीय भिन्नता होते हुए भी आधुनिक दृष्टिकोण को लेकर विवाह-सम्बन्ध का निश्चित होना।

तभी किलकारियो पर तुषारपात। जयन्त के पिता को व्यापार मे अत्यधिक हानि। उनका शरीरान्त। क्रियाकर्म से निवृत्त होने तक जयन्त का एकान्तवास। स्वभावतः उस काल मे सारे कार्यक्रम स्थगित। कार और सैर बन्द। किन्तु दैवगति, वह सब कुछ शनैः शनैः सदैव के लिये बन्द हो गया। और तभी सबके बाद कामिनी के पिता का भाव परिवर्तन, कामिनी के विवाह की अन्यत्र चर्चा। पहली चोट—कामिनी के पिता द्वारा लगे उस पर कुछ नवीन बन्धन। कोमल कामिनी का जयन्त की इच्छा के विरुद्ध पिता के आदेश व बन्धनो मे जकडना। कामिनी की विवशता। सबने मिलकर जयन्त को अधकुचला बना दिया।

इसके साथ ही इस प्रसग को लेकर कामिनी के पिता से जयन्त की उडती हुई बातचीत ने परिस्थिति स्पष्ट कर दी। वे जयन्त को खोखला जान कर अपनी कामिनी किसी धनवान् को अर्पित करना चाहते थे। "शादी सम्बन्धो मे परिस्थितियाँ जैसी अनुमति दे"—कह कर कामिनी के पिता ने बात टाल दी। एक भीषण आघात। जयन्त के परिवार मे अन्य बातो के साथ-साथ इस प्रसग को लेकर भी अत्यधिक क्षोभ।

विरह, चिन्ता, ग्लानि, विद्रोह, उदासीनता, स्वास्थ्य का गिरना। परिवार की चिन्ता, अपनी व कामिनी की चिन्ता, कामिनी की विवशता होने पर भी मन की उद्विग्नता मे उस पर व्यर्थ का दोषारोपण, उसकी व्यथा, अशान्ति सबने मिलकर बुखार, खासी, रोग और कुछ काल मे ही जब आजकल डाक्टर आदेश देते है, 'तुरन्त 'एक्सरे', नाक, थूक, खून, पेशाब के 'टेस्ट' और एक पल मे निष्कर्ष-लग्स एफेक्टेड। रेगुलर ट्रीटमेन्ट कम्पलीट रेस्ट, हिल स्टेशन, यस।'

तब जयन्त पहाड चल दिया। अपनी मा, बहन माधवी और शम्भू

नौकर को लेकर । यहाँ तन्मयता के क्षीण काल ने और जयन्त के अपरिपक्व प्रणय ने, उसका मन फेरने की बात पा ली और विरह व विद्रोह धीमा पडने लगा । चीत्कार जाता रहा और कुछ नया खोजने को मन मचल उठा । तब भी, पैसे से इस प्रणय-कक्षा के पूर्व अन्य कामिनियों के कोमलाग स्पर्श व भोग का अवसर आता ही रहा था । शम्भू की सहायता व अपने पैतरो के द्वारा अब वे दिन पुनः कुलाचे भरना चाहते थे । पहाड पर या वहा से जाने की प्रतीक्षा थी । स्वास्थ्य—वह साधारण बात थी, अब ठीक है । पैसे से प्राप्त हवा ने मन व तन दोनो चगे कर दिये है ।

यह है जयन्त की लम्बी कहानी का सार । प्रमोद सोच रहा था वह कोई सम्मति क्यो दे ? किसी की व्यक्तिगत बात । यह सब पत्रादि की देखभाल भी व्यर्थ की-सी बात है । परन्तु जयन्त स्वय उसे विवश करता है । उसने अपनी कथा इसी भाँति स्वतः सुना डाली थी । उसे सहानुभूति है । परन्तु कभी भी जयन्त के विचारो या क्रियाओ से वह मेल नहीं खा सकता । उसका अपना दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है । वह एक की चिरन्तन उपासना और उसी मे अन्त्येष्टि का विशद स्वरूप देखकर, परख कर आत्मविभोर है । वह तरह-तरह के फूल सूघने से घृणा करता है । वह 'एक' चुनना चाहता है, मोहक सुवास वाला । कोई हो गुलाब, चम्पा, केतकी, चमेली, बेला, मरवा, या कमल, और अनेक रूप, रस तथा गन्ध वाले सुगम अथवा दुर्गम पुष्प पर 'एक' । वह 'एक' चुनने मे स्वान्तः सुख पाए । एक .....।

अपनी बात छोडकर वह पुनः सोचने लगा । कामिनी का दोष कहीं तनिक भी नहीं । कामिनी के पत्र यह ध्वनि देते है कि विवशता के सघर्ष मे वह स्वय पिस रही है । अन्त मे नारी का ही रूप जो है । एक निर्मल स्वरूप । पिता को तिलाजलि देने मे वह अशक्त है । कामिनी का मन निरन्तर इधर हिलोरे ले रहा है । किन्तु सम्भव है मनमोहन के प्रवेश के पश्चात् अतीत केवल अतीत ही रह जाए ।

जयन्त की भाँति कामिनी के हृदय मे असह्य वेदना क्यो नहीं उठी, यह बात जयन्त को रह-रह कर करोचती है। परन्तु अब उसकी टीस वह टीस नहीं। अब विद्रोह के लिये भी जयन्त सर्वथा अशक्त है। प्रणय के पश्चात् परिणय की एक निश्चित अवस्था आ जाने के उपरान्त कामिनी के पिता का व्यवहार और इस प्रकार वचन-भग करना सर्वथा अनुचित है, अन्याय क्या विश्वास का हनन, परन्तु अपने पिता के भाव-परिवर्तन मे कामिनी किधर से दोषी है? जयन्त के विद्रोह मे कामिनी साथ दे, यह एक सदिग्ध विषय है।

बीमार होकर जयन्त पहाड आ गया। पहाड आते समय जब सवारियो मे सामान लद रहा था, तब लान पर खडी कामिनी के अश्रु जयन्त को न रोक सके। इसमे कामिनी के अश्रुविगलित नेत्रो की निर्बलता है अथवा जयन्त का प्रकोप? परन्तु उपालम्भ अथवा दोषारोपण किस पर है? और अब तो जयन्त कामिनी से ही विद्रोह कर रहा है।

और यह पत्र। यह निश्चित इस बात का द्योतक है कि समाज, सस्कार और कौटुम्बिक सम्बन्धो की दुहाई, धन, मनमोहन का प्रवेश, कामिनी का सम्पर्क, नवीन स्वप्न, नव-सम्पर्क द्वारा स्थापित रसमय सिहरन, उत्तेजना, सब कुछ कामिनी को अनायास घसीट रहे है। इन सबकी प्रतिक्रिया, नए सम्पर्क की लालसा, मन की उच्छृखलता—ये सब जयन्त को स्थानभ्रष्ट कर रहे है, और इस सबका अन्त है 'इति'।

तब दोनो का इस प्रकार अधकार मे रहना अनुचित है। जयन्त को चाहिये, वह कामिनी को लिख दे कि प्रतीक्षा व्यर्थ है। वैसे भी जयन्त परिस्थितियो से विद्रोह कर चुका है। 'खाओ, पियो और टिचन रहो' का सिद्धान्त जयन्त को बल दे रहा है। इस पर भी निर्णय तो उसे ही करना है। वह व्यर्थ अपना सर क्यो खपाए?

उसने शम्भू को पुकारा। पानी थम चुका था। उसने एक कागज मे लिख दिया कि वह वहो आकर तीन दिन का अवकाश भग करे।

रात्रि मे पुन. मूसलधार वर्षा हुई। परन्तु प्रात. होते-होते आकाश स्वच्छ था। पानी गिर जाने के पश्चात् कडाके की ठंड पड रही थी। पानी रुकने के बाद भी सडक और पहाडो पर लोगो का चलना-फिरना बन्द था। इक्का-दुक्का पहाडी डोटियाल, कोयले या लकडी के गठ्ठर लाते दिख रहे थे। चारो ओर सन्नाटा था। देर तक पानी बरसने के बाद मकानो की छतो व टीनो से बूँदो के टप-टप गिरने की आवाज आ जाती थी। इधर-उधर की पहाडियो से धार बाँधकर पानी बह रहा था व पास के नाले मे चारो ओर से आकर भर रहा था। नाला भर कर पानी को बाहर उडेलता जा रहा था। पगडंडियाँ व कच्ची जमीन पानी से नम हो चुकी थी।

दस बज चुके थे। प्रमोद मकान के बरामदे मे खडा होकर इधर-उधर दृष्टि दौडा रहा था। धूप अब तक नही निकली थी। हाँ, अब लोगो का चलना व बाहर निकलना प्रारम्भ हो गया था। वर्षा के दिनो मे निरन्तर कई दिन से आस-पास के ग्रामीण स्थानो से सब्जी, फल व सामान नही आया था। बाजार मे होने वाला फलो का नीलाम भी बन्द था। आज खच्चरो व घोडो पर फलो के झाबे व पेटियाँ लदी, सामने से आती दिखाई दी। पहाडी स्त्रियाँ छोटे-छोटे झाबो मे फल व तरकारी ला रही थी। उनके साथ की छोटी-छोटी लडकियाँ भी छोटी डलियो मे कुछ न कुछ भरे, चली आ रही थी।

वैसे उस घोर वर्षा मे भी बरसाती, छाते या अन्य प्रकार से पानी का बचाव करते अथवा भीगते रोगियो के नौकर या उनके अविभावक दवा व व्यवस्था कर ही रहे थे।

ऐसे मे जाने वाले को भी कौन रोक सकता है ? फिर जिसकी पुकार आ गई हो। पानी, तूफान, बवडर मित्रता, शत्रुता, कही कुछ रुकावट नही। कल मूसलधार वृष्टि के समय चट्टानो से टकराकर आवाज गूँज गई, 'राम नाम सत्य है'। आवाज दूर से आकर प्रमोद के सामने से चीरती हुई निकल गई। कोई चल दिया। अदृश्य का अलक्ष्य हाथ

आवरण की ओट मे अविराम गति से चला करता है । उस महायात्रा मे, भीगते पानी मे, श्मशान तक साथ जाने वालो मे सब मिलाकर छः या सात आदमी थे। सात आदमी, छाते लगाए, अर्थी को भिगोते, लिये चले गए। प्रमोद की माँ भी बरामदे मे खडी उस भीषण दृश्य को देख रही थी। पास ही खडा प्रमोद कह उठा—"माँ, आज घी, चन्दन या लकडी तो क्या जलेगी ? हाँ, मिट्टी के तेल से अवश्य काम पूरा कर आएँगे ये साथ जाने वाले।"

माँ सिहर उठी । वे वैसे ही उस शव-यात्रा को देखकर काँप उठी थी। डपट कर बोली—"चुप। तुझे क्या पडी है ?" और उन्होने संतोष की एक लम्बी साँस ली। जैसे उनके सामने से कोई बला दूर हो गई हो।

आज बाजार व आदमियों की चहल-पहल मे प्रमोद कल की शव-यात्रा का ध्यान कर बैठा। वह सोचने लगा, कैसे पता लगाए। पर स्वय ही अपने को समाधान करता हुआ वह पुनः सोच गया, निश्चित मिट्टी का तेल जल उठा होगा, कल उस पानी मे। तब श्मशान का दृश्य उसके नेत्रो मे खिच आया। ढाल पर जाते हुए कुछ दूर पर ही तो है, नीचे मे, घिरा हुआ। वहाँ भी कुछ नही है केवल चट्टाने। उन्ही पर रख कर राख कर देते है मृत शरीर को। खडे होने तक का ठिकाना नही है। किन्तु ठिकाने वाले को तो ठिकाना मिल ही गया। तब वह काँप उठा। इस माटी का इतना मोह ! और अन्त मिट्टी का तेल, जलवृष्टि के स्नान के पश्चात्। प्रमोद अशान्त हो उठा। वह अपने हृदय से एक क्षण मे उस बात को निकाल डालना चाहता था। पर तब वह और उसी मे घिर गया। मरने वाला कौन था ? उसकी बीमारी ? अब उसके कौन बचा है ? वह सर थाम कर बरामदे मे पडी कुर्सी पर बैठ गया। तभी सामने से वे दो बहने उधर घूमती हुई निकल आई। प्रमोद का मन उनमे केन्द्रित हो गया। दोनो एक-सी। बडी सुन्दर। एक को एक चुनौती। पर एक क्षीण, अपनी लीला समाप्त करने की चिन्ता मे और दूसरी अपनी लीला की रंगीनियो मे पदार्पण करती हुई। वे आगे बढ

गई । उन्हे देखकर प्रमोद शव की बात भूल गया । स्त्री एक ऐसा ही आकर्षण है । तभी सामने से जयन्त छडी हिलाते हुए आता दिखाई दिया ।

इस समय तक चारो ओर चहल-पहल हो गई थी । ऐसा लग रहा था जैसे कोई नया मेला लगा हो । पहाडी कसबे के सब कार्य पूर्ण गति पर थे ।

जयन्त भी आज ऐसा दिख रहा था जैसे कई महीनो बाद मिला हो । प्रमोद उसे देखकर मुस्करा दिया । जयन्त हाथ जोडकर, बरामदे मे पडी दूसरी कुर्सी पर बैठ गया । प्रमोद की माॅ ने भी जयन्त को बडी उत्सुकता से देखा । वह सब का बडा आत्मीय बन जाता था । यह उसमे प्राकृतिक देन थी । माॅ ने कहा—"क्या पानी से इतना डरते हो ?"

'हाॅ माॅ, देखा न कल इसी पानी मे सुनाई पड गया "राम नाम सत्य है"—जयन्त ने हॅसते हुए उत्तर दिया । प्रमोद कल की बात पुनः मन मे दोहरा गया । माॅ भी अन्दर चाय का पानी चढाने चली गई ।

दलसिह को सामने देखकर जयन्त कहने लगा—"क्यो दलसिह ! पानी मे भीगा तो नही ?"

दलसिह ने हाथ जोडकर कहा—"जैराम बाबू, जैराम । बहुत ठडी लागा है । आभी चा लायगा ।" और वह हॅस दिया । प्रमोद व जयन्त भी हॅस दिये ।

प्रमोद बाहर की ओर देखते हुए बोला—"बडा पानी गिरा ।"

"कोई खत्म थोडे ही हो गया है और गिरेगा"—जयन्त बोला । दोनो हॅस दिये । जयन्त ने पुनः प्रमोद के मुख पर ऑखे गडाते हुए कहा—"देखा भाई साहब, मनमोहन का मोहन मन्त्र और कामिनी जी ने पहाड आने की बात भी लिखी है । कितनी भली बात है, पर पिताजी मना भी कर रहे है । कहा किसने था कि आप आइए और पिताजी से मना कराइये ।"

प्रमोद ने जयन्त का कामिनी के प्रति व्यग्य सुना पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया .. दोनों चुप बैठे रहे। तब प्रमोद बोला—"तुमने क्या सोचा है ? पत्र का उत्तर दिया या नहीं ?"

"पत्र का उत्तर। छि. ! मै पत्र का उत्तर कभी नहीं दूँगा।"

कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् प्रमोद ने कहा—"जयन्त, तुम विवश हो और असफल भी हो चुके हो। इतनी तेजी किस बात की है ? आज तुम्हारे अन्तरग मे विरह की लपटे उतनी उष्णता से प्रज्वलित नहीं है जितनी बनारस छोडने वाले दिन थी। पहाडी ठंड और पानी ने उस सामने की ऊँची चोटी की भाँति तुम्हे भी ठडा कर दिया है। क्या तुम यह सोचना और कहना चाहते हो कि कामिनी और मनमोहन के मिलन के उपरान्त तुम किसी भी भाँति जीवित नहीं रह सकते अथवा शेष जीवन यो ही व्यतीत कर दोगे एकान्त मे, एकाग्र और एकनिष्ठ होकर। यदि मै कह दूँ, दोनों मे से एक बात भी सभव नहीं। तुम स्वस्थ हो रहे हो। यहाँ से जाकर कालान्तर मे अपना एक साथी ढूँढना और सुखमय जीवन व्यतीत करना। हाँ, यदि मेरी राय जानना चाहते हो तो सुनो। कामिनी को लिख दो कि वह तुम्हारी ओर से उदासीन हो जाए। अब तुम्हारा यह प्रसग अधिक नहीं चलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। जीवन मे झझट जितने कम हो उतना ही अच्छा रहता है, जयन्त।"

"भाई साहब, मै माफी चाहूँगा। सरसता मे मै पला हूँ। जीवन की रगीनियाँ मुझसे कॉलेज के अध्ययन काल मे अछूती न बच पाई। मुझे आपका परमहस-पद कदापि न चाहिये। वह मेरे क्या बहुतो के बस की बात नहीं। हाँ, जीवन मे एक का होना ही पडेगा, मै मानता हूँ। परन्तु कामिनी का प्रश्न अब मेरे लिये नहीं है। और कामिनी के क्या कम मित्र थे ? मै तो अन्त मे आया हूँ। पर यह मै मानता हूँ कि मेरे परिचय के बाद उसकी अपनी कलाबाजिया पूरी तरह समाप्त हो गई। और उसने मेरा अत्यधिक मान भी किया। अब मै क्या करूँ मेरा मन ही उचट गया है।

"ठीक है .Eat, drink and be merry. ऐसे लोग आनन्दित है। भौतिक आनन्द उन्हे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हो जाता है। उनको भोग और लिप्सा से कभी सतोष भी नही होता। उनका कोई ओर-छोर भी नही है। परन्तु समाज मे जो कुछ प्रचलित मान्यताएँ है, जो सस्कार बन चुके है, उनको हम चाह कर भी समाप्त नही कर पाते। हमारी क्रान्तिकारी विचार-धाराएँ भी उनसे टक्कर खाकर धराशायी हो जाती है। वे विरले है जो सात्विकता का आवरण पहन इस प्रकार के बन्धन से मुक्त होकर दृढव्रती की भाति अग्रसर होना चाहते है। परन्तु जब उनकी टक्कर भी उन आस्थागत परम्पराओ से होती है तो वे भी अस्तव्यस्त हो जाते है। तब उन्हे अपनी आहुति देकर वातावरण का शमन करना पडता है। अतः इन परम्परागत सामाजिक विडम्बनाओ के समक्ष हम अब तक नतमस्तक ही होते आए है। यन्त्र-चालित की भाति मानव इनके पीछे हका चला जाता है और कभी सर उठाता है तो कुचल दिया जाता है। तब कोमल स्त्री की क्या बात ! वह विद्रोह करने मे सर्वथा अशक्त है। लाछना उसे सहन नहीं। विद्रोह करके वह केवल विनाशोन्मुख ही होती है अथवा प्रतारणा मे उसका जीवन भार स्वरूप हो जाता है। भले ही अहमन्यता के वश वह दुःशील बन जाए। कामिनी ने उभरते यौवन की छॉह मे भले ही पलक मूॅदे हो परन्तु आप चाहे कि वह अपने इस अपरिपक्व प्रणय और अस्थिर भविष्य की धूमिल सॉझ मे अपने पिता को तिलाजलि दे दे, तो यह मस्तिष्क का उद्वेलन मात्र है, सत्यता नही। कामिनी का दोष क्या है ? मेरी यह समझ मे नही आता।"

कुछ रुककर प्रमोद पुन. बोला, 'अतः इन परिस्थितियो मे तुम्हारा विवेक से उठा पग ही हितकर होगा। उतावलेपन मे ऐसा न हो कि सदा के लिये चित्त की शान्ति खो बैठो या व्यर्थ मे किसी अन्य का जीवन कंटकाकीर्ण बना डालो। मुझ मे और तुम मे अन्तर है। तुम मे और दूसरो मे अन्तर है। जितना अन्तर मेरी तुम्हारी आकृति मे है, उससे अधिक,

कही अधिक, अन्तर मेरे-तुम्हारे विचारो, भावनाओ और, और भूत, भविष्य व वर्तमान मे है। अन्तर्मन मे पूर्ण साम्य स्थापित होने पर परिस्थितियाँ कुछ भिन्न होती है। और उस साम्य-स्थापना मे समय और अहर्निश त्याग की आवश्यकता होती है।"

"सभव है आप की बात ठीक हो, और ठीक ही है। परन्तु मेरे मामले मे ऐसी बात नही है। अपरिपक्वता का तो कदापि प्रश्न ही नही उठता। जहाँ तक हम पहुँचे है यदि उतने के बाद भी अपरिपक्वता रह जाती है तो ठीक ही है। आपका जीवन-दर्शन व आपकी मान्यताएँ एक की बात है, प्रत्येक की नही।" जयन्त ने कुछ आवेश मे आकर कहा।

"अरे भई, मै तो स्वय कहता हूँ, एक की बात, एक होने की बात। जहाँ तक आप पहुँचे है ठीक है, वही बात ले लीजिये और सोचिये क्या पति-पत्नी वहाँ तक और उससे भी आगे नही पहुँचते। परन्तु क्या उनके मन मे अनुराग का पूर्ण परिपाक प्रत्येक अवस्था मे हो जाता है? मैने तो तुम्हारी कथा-मात्र सुनी है, वह भी तुम्हारे द्वारा। कामिनी को कहते हो और स्वय क्या मनोरजनार्थ तुम्हारा मन कम डोला होगा? अभी स्वय वह बात कह रहे थे। मिस्टर जयन्त, मै फिर कहता हूँ, एकात्मकता के अभाव को दोषारोपण से पूरा करना चाहो, यह संभव है तुम से चल जाए। परन्तु मेरे विचार मे यह उपहास के अतिरिक्त और कुछ न होगा।" प्रमोद ने अपनी बात की पुष्टि मे कहा।

जयन्त कुछ गंभीर होकर बोला, "तो आप जानिये। मै लिखे देता हूँ। सेठ शीतल प्रसाद, मेरे पास अब भी, माँ के बताए हुए, एकान्त तिजौरी मे दो लाख के नोट गड्डी बने रक्खे है जो तुम्हारे ऐसे व्यक्ति से कामिनी को प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है। जिन्हे माँ अपने पुत्र के स्वास्थ्य-लाभ करने की प्रसन्नता मे एक साथ लुटा देने को उतावली है। बोलो क्या कहते हो?"

"लिखो, लिखो, अवश्य लिखो। तुम्हे कामिनी चाहिये। सेठ शीतल प्रसाद नही।"

"परन्तु भाई साहब एक बार मन खट्टा हो चुका है। न मालूम क्यो ? सभव है मेरा ही दोष हो। चाहता हूँ कामिनी को ही लिख दूँ। मेरी बीमारी अच्छी होने वाली नही। अतः मेरे लिये मन की अशान्ति उचित नही। और चाहता हूँ जब कभी भी शादी करूँ, बनारस मे ही, सेठ शीतल प्रसाद के देखते-देखते उन दो लाख की होली कर दूँ और दिखा दूँ पैसा ही दुनिया मे सब कुछ नही है। पैसा दुनिया मे कुछ नही है। केवल मन का धन।"

"यह झूठ क्यो ? सेठ शीतल प्रसाद से तुम किसी भी प्रकार बदला लो। परन्तु मै पुनः कहता हूँ निर्दोष कामिनी का ध्यान रखना।"

"मै प्रयत्न करूँगा भाई साहब, यदि समय या परिस्थितियाँ और न बदल गई।"

: ५ :

आज घूमते हुए प्रमोद व जयन्त बहुत आगे निकल आए थे। दो-ढाई मील निकल आने पर भी 'उसे' न पाकर हताश वे लौटने लगे। लौटते समय मार्ग मे सामने से हार्न देती हुई एक कार आती दिखाई दी। कार मन्द गति से चल रही थी और जब वह उनके निकट आई तो उन्होने देखा कि उसको वही विलक्षण व्यक्ति चला रहा है। कार मे पीछे की सीट पर उस दिन वाला नौकर बैठा था। कार सर्र से आगे निकल गई।

प्रमोद व जयन्त ने एक दूसरे को देखा और जयन्त बोला, "कार सहित आए है श्रीमान्‌जी पहाड पर किन्तु है कौन ? यह अब भी अज्ञात है।"

प्रमोद ने कहा, "जानने की चेष्टा ही कब की गई है। अन्यथा ऐसी भी क्या बात है। क्या कुछ मालूम नही हो सकता ? परन्तु आज वह था बडा प्रसन्न।"

"कुछ गुनगुनाता भी जा रहा था" जयन्त ने स्वर मिला दिया। "कार भी बहुत बढिया है।"

कार दूर जा चुकी थी। टेढे-मेढे, ऊपर-नीचे, उन चट्टानो के बीच जाती बडी भली लग रही थी। थक कर प्रमोद व जयन्त घर की ओर लौट पडे। आगे आने पर एक सज्जन जो घूमते समय बहुधा मिला करते थे दिखाई दिये। प्रमोद को रोककर वे बोले, "वे सज्जन आज

कार चला कर ले गए है, इधर मै तो कई वर्षों से पहाड आ रहा हूँ। यह सगम है। पर ऐसा विचित्र व्यक्ति मैने यहाँ कभी नही देखा।"

प्रमोद ने कोई उत्तर नहीं दिया और सर हिला कर आगे बढ गया। दोनो शीघ्रता से घर की ओर बढ़ रहे थे। कुछ-कुछ बादल घिर आए थे।

सैनेटोरियम के निकट पहुँचते-पहुँचते उन्होने देखा कि कार लौट आई है और धीरे से सैनेटोरियम के भव्य द्वार से हो कर अन्दर चली गई है। तब प्रथम बार ही इन्होने जाना कि वह सैनेटोरियम मे रह रहा है।

घर पहुँचने पर पानी की बूँदे आ गई। प्रमोद ने जयन्त से चाय पीकर जाने का आग्रह किया। दोनो बरामदे मे पडी कुर्सियो पर बैठ गए। बैठते ही जयन्त बोला, "कहिये तो भाई साहब, शम्भू को सैनेटोरियम भेजूँ। सब पता लगा लाएगा।"

प्रमोद ने हँसते हुए व्यग्य किया, "तो क्या शम्भू से इसी प्रकार के काम लेते रहते हो? अस्तु, इतनी जल्दी की क्या बात है? मालूम ही हो जाएगा।"

जयन्त प्रमोद के प्रथम वाक्य को सुनकर मुस्कराया और कहने लगा, "आपकी एक्सरे वाली पैनी दृष्टि अन्तरग मे प्रवेश कर जाती है भाई साहब। सचमुच जीवन की रगीनियो मे शम्भू ही मेरा एक विश्वास-पात्र व उपयोगी नौकर सिद्ध हुआ है।"

दोनो हँसने लगे, दलसिह चाय ले आया था।

चाय की चुसकी लेते हुए जयन्त बोला, "आपका इस व्यक्ति के विपय मे क्या विचार है?"

प्लेट से मेवा उठाकर टूगते हुए प्रमोद ने उत्तर दिया, "कब क्या कहा जा सकता है? मै सोचता हूँ उसके सम्बन्ध मे सरलता से पता लगाना भी कठिन है। बाह्य रूप उसका जितना आकर्षक है, अन्तरग और इतिहास उसका उतना ही गहन होगा। बाह्य गम्भीरता अन्तरग

मे बहुत कुछ अन्तर्निहित रखने की क्षमता व अक्षुण्ण शक्ति रखती है। अन्त तक उसके सम्बन्ध मे हम कुछ जान सकेंगे, मुझे इसमे शंका है। और सिद्धान्त रूप मे मेरा अपना यह मत है कि गहराई तक किसी के सबध मे पता लगाना या किसी का मर्म जानना कुछ बहुत अच्छी बात नही है। वस्तुतः अपनी गहराई का दूसरो को पता देना उससे भी हलकी बात है। जो कुछ अपने से ज्ञात हो सके अच्छा है। पीछे पडकर जानना मै ठीक नही समझता। वैसे मेरा मन स्वय ही इसके विपरीत उसके प्रति आकर्षित है और न मालूम क्यो मै भी उसके सम्बन्ध मे जानना चाहता हूँ।"

जयन्त ने अपनी सहमति व्यक्त की और चाय पीकर चला गया।

घूमने-फिरने का कार्यक्रम तो नित्य ही रहता। आज प्रमोद व जयन्त ढाल की ओर टहलने निकल गए।

नित्य-प्रति घूमने वालो की आकृतियाँ पहचानी-सी हो जाती है। परिचय मे नमस्कार, प्रणाम भी हो ही जाता है। कुछ अधिक निकट आ जाने पर कुशल-क्षेम अथवा स्फुट वार्ता भी हो जाना स्वाभाविक ही है किन्तु नमस्कार भी कभी उपद्रव का कारण हो सकता है इसका अनुभव प्रमोद को जीवन मे आज पहली बार हुआ।

किसी को 'नमस्ते', किसी को 'गुडमार्निंग' और किसी को, 'प्रणाम' करते प्रमोद व जयन्त आगे बढ रहे थे। बीच-बीच मे कुछ स्फुट वार्ता भी चल रही थी। प्रमोद ने जयन्त से प्रश्न किया, "बनारस कुछ किसी को लिखा ?"

"अभी तो नही ! जल्दी ही क्या है।"

इतने ही मे कुछ दूरी पर एक वृद्ध महाशय आते दिखाई दिये। सुन्दर वेशभूषा में वे बडे सज्जन व गम्भीर व्यक्ति प्रतीत हो रहे थे। अवस्था भी उनकी सज्जनता व गम्भीरता की थी। सत्तर वर्ष से ऊपर ही उनकी अवस्था होगी। वे बडा अच्छा-सा सूट पहने थे और उस पर

काला ओवरकोट था तथा हरे रग का 'नाइट कैप' वे सर पर धारण किये हुए थे। सुनहरे फ्रेम का चश्मा उनकी ऊँची नासिका पर थोडा नीचे हटकर सुशोभित था। साथ ही ओवरकोट के अन्दर कालर के निकट सुनहरी जेब-घडी की चैन झलक रही थी। हाथ मे हाथीदात की स्टिक लिये, ठिगने कद के, 'क्लीन-शेव', सफेद रूमाल को बार-बार ओवरकोट की जेब से निकालते और नाक की गन्दगी उसमे रखकर पुनः उसे जेब मे डाल लेते थे। धीरे-धीरे चार्ली चेपलीन की चाल चलते वे उनके सामने आ गये।

उनके कन्धे पर एक अति सुन्दर हाथ टिका हुआ था। उस हाथ की कनिष्ठिका उँगली का नाखून अधिक बढा हुआ था और गहरे रग की सुर्ख 'नैल-पालिश' से रगा हुआ था। यह हाथ उन वृद्ध महाशय के साथ चलने वाली एक परम सुन्दरी नवयौवना का था। बडी नशीली-रसीली उसकी आँखे थी, जिनकी काली पुतलियाँ क्षण-क्षण मे इधर-उधर घूम जाती थी। काश्मीरी सफेद सेब पर छिटकी लाली की भाँति उसके कपोल थे भरे-भरे चमकदार। ओठ, जैसे उसने मीठे लाल रग से रंग लिये हो, किन्तु रगे न होकर वे अपने वास्तविक मोहक रूप मे थे। कानो मे सितारे-सी जडी हीरे की छोटी-छोटी दो कीले वह पहने थी। उस सर्दी मे भी सफेद जार्जट की साडी मे लिपटी वह आगे बढ रही थी। साडी पर सफेद ऊनी चेस्टर वह पहने थी, जिसकी बाहो मे पुट्ठो पर दोनो ओर दो बडे-बडे फूल कढे थे। अन्दर के ब्लाउज से उठते उरोजो के बीच मे फाउन्टेनपेन का क्लिप चमक रहा था। वृद्ध महाशय के साथ वह धीरे-धीरे आगे बढ रही थी। एक-एक पग उसका थिरकन के साथ आगे को पडता था।

इस रूपसी की अवस्था अधिक से अधिक अठारह वर्ष की होगी और आकृति से वे दोनो ही पारसी दिख रहे थे।

ऐसा जान पडता था, जैसे शुभ्रता मे उसे विशेष प्रेम हो। साडी, चेस्टर और ब्लाउज सब कुछ सफेद था। कानो मे चमकदार हीरे की

कीले, वे भी सफेद थी और कालर पर टकी गुलाब की अधखिली कली भी सफेद थी। सफेद मोजो के रेशम पर कसी ऊँची ऐडी की सैडल भी उसकी कतई सफेद थी। शुभ्र-बदना, शुभ्र-वसना लावण्य-लतिका की भाँति पतली कटि पर ऊपर व नीचे का भार सँभाले वह अपनी व साथ के वृद्ध की अवस्था मे असाधारण असाम्य प्रदर्शित करती आगे बढ रही थी।

अनायास किन्तु पूर्णतः सरल भाव से प्रमोद व जयन्त के हाथ वृद्ध को नमस्कार करने के हेतु उठ गए। किन्तु इस अभिवादन ने जैसे वृद्ध महाशय को तिलमिला दिया हो। वे आवेश मे आ गए और भयकर रूप से तमतमा कर बिगड उठे। जैसे किसी ने उस क्षण उनका कुछ छीन लिया हो, कुछ अपहरण कर लिया हो, उन्हे अपमानित कर दिया हो। क्रोधावेश मे वे न जाने कैसे-कैसे एक साथ हिन्दी-अँग्रेजी मे कुछ न बोलकर भी कुछ बोल गये।

"You.. you.. तुम . you.. " और वे सहसा लडखडाने लगे।

साथ की लडकी एकाएक सहम गई, और उसके सहमे मुखडे का उस समय द्विगुणित सलोनापन। वह चीख उठी, "पापा, पापा, प्लीज।" और वृद्ध को शान्त करने के उद्देश्य से वह उसे थपथपाने लगी। वृद्ध तत्क्षण चुप होने पर भी प्रमोद व जयन्त की ओर घूर रहा था। तब वह सँभल कर जाने का उपक्रम करने लगा। लडकी ने हाथ का सहारा देकर बढाने के पूर्व पश्चात्ताप के स्वर मे कहा, "Please don't mind Papa is ill and upset. Thank you" और अपनी लम्बी गर्दन झुकाते हुए वह आगे बढ गई।

इतना सब कुछ एक साथ एक पल मे हो जाने के समय प्रमोद व जयन्त अवाक् खडे रह गए। वे यह न सोच सके कि वह सब हुआ क्या? निर्दोष होते हुए भी अपराधी की भाँति खडे दोनो सोच रहे थे, ऐसा क्या पाप उन्होने कर डाला कि बुड्ढा इतना बिगड उठा। उन्होने

कदापि कोई शैतानी नहीं की। प्रणाम के परिणाम को देखकर जयन्त ने कुछ हँसी के स्वर मे कहा, "भाई साहब, घडी कुछ ठीक नहीं है। स्थान भी कुछ गडबड है। चलिये, बढ चलिये। कहीं बुड्ढा फिर न लौट आए। अभी सामने ही जा रहा है।"

तब तक वृद्ध व साथ की लडकी उन दोनो से बीस-तीस पग आगे बढ चुके थे।

प्रमोद गम्भीर था। वह बिना कुछ बोले आगे बढ रहा था। जयन्त प्रमोद की गम्भीर मुद्रा देखकर चुपचाप साथ बढ गया। उस समय प्रमोद अपने मन के भाव स्वय भी व्यक्त करने मे असमर्थ था। दुर्लभ रूप देखकर वह मर्माहत हो गया या वृद्ध की अभद्रता के कारण। किन्तु वृद्ध के अकारण क्षुभित होने का पश्चात्ताप उसे अवश्य था।

हाँ, जयन्त कुछ मगन-सा आगे बढ रहा था। थोडी दूर जाकर दोनो लौट पडे। प्रमोद ने जयन्त के हाथ मे कुछ देखकर पूछा, "यह क्या है ?"

"उसका पर्स।" कहकर उसने ऊपर को पर्स उछाल कर पुन. हाथ मे ले लिया। और कहने लगा, "उस बुड्ढे को सँभालते समय लडकी से गिर गया था।"

"किन्तु तुम्हे यह उसी क्षण दे देना चाहिये था।"

"तो अब दे दिया जाएगा। इसमे बात ही क्या है ? अधिक से अधिक एक बार भेट और हो जाएगी। यही मै चाहता भी था। गजब है साहब, क्या खूबसूरती पाई है ? क्या ऐसी शक्ले भी इसी पृथ्वी पर है ?" जयन्त की आँखे जैसे चमक रही हो।

"अभी तुमने देखा ही क्या है जयन्त, इस पृथ्वी पर ? जो हो, पर्स तुम्हे उसी क्षण दे देना चाहिये था। जाओ अब दे आओ। किन्तु तुमने दिखलाई बडी सफाई।"

"अभी आपने देखा ही क्या है ? जरा देखिये। हाँ, पर्स मै तुरन्त पहुँचाऊँगा। आप निश्चिन्त रहे।"

"ठीक है। मै निश्चिन्त ही हूँ। किन्तु न मालूम इनमे क्या आवश्यक वस्तुएँ हो ?"

"अरे, भाई साहब, इस जरा-सी बस्ती मे वे जाते कहाँ है ? पर्स उन्हे मिल जाएगा।" यह कहकर वह उस पर्स को खोलकर देखने लगा। उसमे पहले ही मिला—पहाड की चोटी पर पेड के तने के सहारे खडी, उस लडकी का बहुत मोहक एक चित्र, सौ रुपये का एक हरा नोट, कुछ फुटकर नोट, एक छोटा कघा, एक सफेद रूमाल, जिसमे कोने मे अँग्रेजी मे N कढा हुआ, डाक्टर का एक परचा, जिसमे कुछ औषधियाँ लिखी हुई।

इसी क्षण प्रमोद ने टोकते हुए कहा, "बस यह डाक्टर का परचा ही इसमे सबसे आवश्यक वस्तु है। इस तरह किसी की वस्तु खोलनी नही चाहिये. .बिना पूछे।"

"भाई साहब, आप भी क्या बाते करते है। पूछता किससे ? और आजकल की सबसे आवश्यक चीज इसमे है ही नही। जो अधिकाश पर्सो और स्लोलाइड के रग-बिरगे 'हैंड बेग्स' मे मिलेगी, रबर की कोई चीज।"

"तुम बहुत बेहूदे हो जयन्त, मै देख रहा हूँ।"

"इसलिये कि न आपने ऐसे पर्स देखे है न ऐसी चीजे। खैर.. ।"

"जी हाँ। अब कम से कम आगे बढकर यह उसे लौटा आओ।"

"और अगर बुड्ढा जुट गया तब।" जयन्त ने हँसते हुए कहा और वह आगे बढ गया।

●

: ६ :

आज जयन्त की प्रतीक्षा करते-करते जब अधिक विलम्ब हो गया तो प्रमोद अकेला ही घूमने चल दिया।

अज्ञात की ओर अग्रसर प्राणी शून्य मे विलीन होने की उत्कट इच्छा रखने वाला प्राणी, निकटतम वातावरण की विषमताओं मे डूबा, निष्कपट, निराश प्राणी रोगीला, जर्जर, वेदना को आत्मसात किये मौन प्राणी तपस्वी की भाति आराध्य की मूक अर्चना करने वाला तेजस्वी प्राणी निस्पृह, अपने समक्ष अथवा दूरस्थ नेत्र अथवा अन्तर्मन से सब-कुछ प्रिय-अप्रिय वाञ्छनीय, अवाञ्छनीय, देखता सुनता और अनुभव करता, भागता है दूर, भागना चाहता है दूर चाहता है सदैव निर्जन, एकान्त। सूरज डूबे, सूरज उगे, किसी की कहीं वासना जगती है अग-अग फडक उठता है सब-कुछ और यह ससार डूबने-उतारने लगता है। तभी वह एकनिष्ठ, गहनतम, आत्मविभोर, थका, मन प्राण लिये डूबता-उतराता है। तभी सूरज डूबे, सूरज उगे—वह अनिद्रित, अलक्षित, अपितु केन्द्रित अपनी जीवन-पुस्तिका का नित एक नवीन पृष्ठ पलटता रहता है। यह क्रम कब का है? कब तक चलेगा? इससे वह अनभिज्ञ है और सर्वज्ञ की प्रवचना मे डूबा ससार भी।

प्रमोद की हृत्तन्त्री के तार और उसकी तन्त्री भी कितने विलक्षण है। तान और लय के कोमल क्षणों मे नित्य ही झनन झन करके उसकी वीणा के तार टूटते है किन्तु वह उन्हे जोडता नही, जोड पाता

भी नही है। उन्हे वह उगलियो म लपेट-लपेट कर अन्तर्मन की ऐसी गहन तिजोरी मे बन्द करता जाता है कि वह स्वय भी नही निकाल पाता। तभी, कभी सुदूर से गु जन पाकर उसकी स्वर-लहरी झकृत हो उठती है। तब, वह नृत्य कर उठता है। तब, केवल तभी, एक के पश्चात् दूसरे—वह अपने उन छिन्न-भिन्न तारो को समेटता है, अन्तरग मे ही, उस गहन तिजोरी के ही किसी भाग मे वह उन्हे प्रसारित करता है। उन तारो के दोनो छोर वह निकट लाता है, निकटतम, किन्तु अदृश्य की दूरी की ही भाति निकट लाकर भी दूर ही रखता है। उन्हे आपस मे छूने नही देता। उन्हे जोडता नही। उन्हे वह जोडने मे असमर्थ भी है। और तभी वह तडप उठता है, सिहर उठता है। उसकी वीणा के शेष तार और तीव्रतर होकर स्वरित होते है। और तब वह उस स्वर्गिक सगीत मे ऐसा लीन हो उठता है, इतना आत्म-विस्मृत कि पुनः उसकी वीणा के तार खील-खील हो उठते है तब उनसे निकलता है, ज्वालामुखी का-सा घोर कम्पन, चीत्कार, शोले-अगारे, बेबस आह !

प्रमोद की अन्तर्ज्वाला दिन-रात के अनेक पहरो मे जब फूटती है तो उसे कुछ अच्छा नही लगता। वह भागना चाहता है दूरी से दूर। दैनिक क्रम के अनुसार उसने जयन्त की प्रतीक्षा की। नित्य साथ जाने पर भी वह सदैव चाहता कि अकेले ही वह उन चट्टानो व प्रकृति का आनन्द ले। चुप-चाप नित्य किसी एकान्त उपत्यिका मे जाकर अपने आप ही मन को खोले और मूँदे। उसे ससर्ग कभी प्रिय नही लगता। किन्तु वह उसे भी किसी प्रकार निभाता। अनेक बार जब कभी वह यो दूर जाकर किसी एकान्त झरने के निकट अथवा पेडो के झुरमुट मे बैठकर लौटता तो मन मे भयकर टीस और तन की नस-नस मे पीडा ले आने पर भी अपने को सुखी पाता। आज जयन्त की अनुपस्थिति मे वह उस सुख की लालसा लिये घर से चल दिया।

बाजार पार करके एक मोड मिलता था जहाँ से दो मार्ग, पृथक् होते थे। एक ढाल की ओर बढता हुआ और एक ऊपर की ओर चढता

हुआ। जीवन मे भी ऐसे मोड आते है—जहाँ कुछ क्या, अधिक ढाल की ओर तेजी से लुढक जाते है। कुछ चढाई पर भी चढते है, ऊँचाई पर चढ जाना चाहते है। कुछ मोड पर ही सहारे की खाज मे अन्त तक रहकर विलीन हो जाते है। ढाल या ऊपर, प्रमोद आज इसी मे उलझ गया, ऊपर सोच कर वह ढाल की ओर न जाकर सैनेटोरियम की ओर बढ गया।

उस अपरिचित-परिचित का ध्यान भी उसे उस समय हो रहा था। प्रमोद सोच रहा था, काश 'उससे' आज एकान्त मे कुछ वार्तालाप हो जाए। जिज्ञासा होते हुए भी अपने गम्भीर स्वभाव के कारण वह असमजस मे था। 'वह' स्वय ही बात कर ले तो क्या हानि ?

वह जयन्त के सम्बन्ध मे सोचता चला जा रहा था। पर्स उसने लौटा तो अवश्य दिया होगा। चचल ठहरा। छेड-छाड के कारण कही कुछ और रग लाए। आज आया क्यो नही ? किसी भी सुन्दरी के विषय मे उसकी उच्छृखल भावनाएँ उसके पीछे भागने की अनुचित प्रेरणा, यह सब-कुछ कितना बुरा है। इससे विपरीत औरो से वह तन्मयता की कामना करता है। बडी जल्दी वह अपने हृदय की बात भी खोल देता है। इससे कभी मुझे ही उसके प्रति अनास्था होने लगती है। अपने आप ही उसने अपनी सारी कथा मुझसे कह डाली। मेरे पीछे पडा रहता है। "भाई साहब, यह बात। भाई, साहब वह बात। और आपके अस्वास्थ्य का कारण ? आप निश्चित ही कोई दर्द छिपाए है। बताते नही।" उसे क्या बताऊँ ? किस को क्या बताऊँ ? ऐसे अवसर पर मै दूसरी बात छेडकर विराम ही लगा देता हूँ।

'उस' विशेष व्यक्ति के सम्बन्ध मे एक जिज्ञासा उसे अवश्य थी। परन्तु जयन्त से पृथक् ही वह उसके सम्बन्ध मे जानना चाहता था। उसने आज सकल्प किया कि कम-से-कम नमस्कार-प्रणाम तो वह 'उससे' निश्चित ही करेगा। किन्तु, प्रणाम का परिणाम उसके सामने

था। वह मन ही मन हिचकिचा रहा था । उसी उधेड़-बुन मे वह दूर निकल आया। तभी सामने ऊँची चट्टान से सडक पर उतरता 'वह' दिखाई दिया।

प्रमोद की आकृति मे स्वय एक विचारक की रेखा थी। उसके मुख पर सदैव ही गम्भीरता बनी रहती। आज प्रथम बार 'उसकी' दृष्टि प्रमोद पर पडी। उसकी' दृष्टि मिलने से प्रमोद को भी प्रेरणा मिली और तत्क्षण प्रमोद ने उसको नमस्कार कर लिया। प्रमोद अत्यधिक प्रसन्न हुआ जब उसने अभिवादन का प्रत्युत्तर भी दिया। इतने पर भी मुखाकृति 'उसकी' गम्भीर ही बनी रही।

अब तक वह व्यक्ति प्रमोद के बिलकुल सामने आ चुका था। कमर तक ऊँचा चमडे का कोट और कार्टराई की पेन्ट पहने हन्टिग-स्टिक' हाथ मे लिये प्रमोद के निकट आकर 'वह' बोला, 'आप कौन है? यहा कहा रहते है? मैने इधर से आते-जाते आपको देखा है। ठीक-ठीक। यस, गुड, आई रिमेम्बर। आपको देखा है।"

दो मिनट तो 'वह' यो ही खडा रहा। बोलते समय ऐसा लगा जैसे 'वह' मस्तिष्क पर बहुत जोर देकर बोल रहा है। तभी दो मिनट बाद 'वह' यकायक अव्यवस्थित हो गया। 'उसके' चेहरे मे बल पडने लगे। कही किसी भाग मे पीडा का अनुभव कर 'वह' बेचैन हो गया।

प्रमोद स्वय सहम-सा गया। साहस करके प्रमोद ने कहा, ' मैने भी अनेक बार आपको देखा है। आप कुछ अस्वस्थ प्रतीत होते है। क्या आप सैनेटोरियम मे ठहरे हुए है?"

'इतना सुनकर 'वह' तिलमिला उठा। उगली से सामने की ओर सकेत करके वह लडखडाते हुए बोला, "जी हाँ, वह सामने सै .नेटोरियम।"

देखते-देखते 'वह' चट्टान पकड कर बैठ गया। 'वह' इतनी शीघ्रता से चट्टान पर गिरा कि यदि प्रमोद 'उसे' पकड न लेता तो 'वह' दोसौ,

चार सौ फीट नीचे जा गिरता। प्रमोद स्वय भी घबरा रहा था। वह सोचने लगा, सैनेटोरियम मे रहने के कारण इसके मानसिक तत्वो पर कितना आघात बना रहता है कि उसके नाम से 'वह' काप उठता है।

तभी तीर की भाँति सामने से उसका नौकर दौडता हुआ आया। वह इतनी शीघ्रता मे आया कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह इसी सब की आशका मे कही दूर बैठा सावधान रहता है। आते ही उसने अपने कन्धे पर लटकते थर्मस को खोला। उसमे से कोई तरल पदार्थ निकाल कर थर्मस के गिलास मे ही भर कर शीघ्रता से उसने दे दिया। मानो वह उस कार्य मे एक क्षण का विलम्ब भी नही करना चाहता था। एक ही घूँट मे सब पी जाने के एक-दो मिनट पश्चात् 'वह' कुछ व्यवस्थित हुआ। इतने मे ही कार आकर किनारे लग गई और सोफर व नौकर ने सहारा देकर उसे' कार मे बिठा दिया। प्रमोद सोच रहा था, कार, नौकर व सोफर सब व्यवस्थित ढग से स्वतः परिस्थिति को सभालने के लिये प्रतिपल किस प्रकार तत्पर रहते जान पडत है ?

'वह' कार मे बैठ चुका था। स्टार्ट का स्विच दबते ही 'उसने' सकेत से प्रमोद को कार पर बैठने का अग्रह किया। पीछे की सीट पर नौकर का सहारा लिये वह' बैठा था। आगे ड्राइवर के निकट प्रमोद जा बैठा। कार मे चुपचाप बैठे प्रमोद सोच रहा था, "किस मर्मान्तक पीडा, मानसिक वेदना अथवा कष्टकर रोग से 'वह' पीडित है कि 'उसकी' इतनी चिन्ताजनक स्थिति हो गई है ?" कार सैनेटोरियम मे जा रुकी। ड्राइवर उतर कर सैनेटोरियम की सीढियो पर चढ गया। तब तक सब कार मे ही बैठे रहे। प्रमोद भी अपने तारो को जोडता उन्ही मे उलझा बैठा रहा। दस मिनट के पश्चात् सोफर अपने साथ इनवैलिड चेयर और चार आदमियो को लेकर लौटा।

कुर्सी पर बिठा कर सीढियो की राह 'वह' ऊपर ले जाया गया। नौकर व सोफर पीछे-पीछे थे।

प्रमोद भी चुपचाप साथ हो लिया। वह सोच रहा था, कुछ-

काल पूर्व 'वह' कितना ठीक था। भली प्रकार बात कर रहा था। और अब चार आदमियो पर चढ कर चल रहा है। कारण अज्ञात था। कहानी अज्ञात थी। परिस्थिति अज्ञात थी।

सैनेटोरियम का चतुर्दिक विस्तार, छोटे, बडे, उससे बडे भवन, इनमे सैकडो कमरे, काटेज, डाक्टरो के चिकित्सा व निवास-स्थान, चिकित्सालय, चिकित्सालय मे आधुनिकतम चिकित्सा-सम्बन्धी उपादान डाक्टरो, नर्सों, कम्पाउडरो की चहल-पहल, इधर-उधर स्ट्रेचर पर, इनवैलिड चेयर पर अथवा पैदल आते-जाते रोगियो का दृश्य, प्रमोद एक दृष्टि मे ही सब कुछ देखने की चेष्टा करने लगा। वह उस क्षण जीवन मे प्रथम बार उस प्रतिष्ठित स्थान पर पहुँचा था। प्रमोद विलक्षणता को घेरे उस व्यक्ति की कुर्सी के साथ चलता चला जा रहा था। कुतूहल मे उसके नेत्र इधर-उधर घूम रहे थे।

होस्टल की भाँति एक लाइन मे बने पचासो कमरे जिनमे रोगी निवास कर रहे थे। इस प्रकार की अनेक लाइने पार करता प्रमोद कुर्सी के साथ इन सबसे एक पृथक् काटेज के सामने पहुँचा। नौकर ने आगे बढ कर कमरा खोला और कुर्सी अन्दर ले जाई गई।

कमरे मे ऊँचे से पलंग पर 'वह' लेटाया गया। पलग पर बडा सुसज्जित बिस्तर था, जिसमे चारो ओर पॉच-सात तकिये सजे, लगे थे। सिरहाने रेशमी खोल का एक ऊँचा-सा तकिया लगा था। धीरे से उसी पर सर टेक कर 'वह' लेट गया। प्रमोद के अतिरिक्त सब लोगो ने कमरा छोड दिया।

सामने 'वह' चुपचाप लेटा था। ऐसा प्रतीत हुआ, चाह कर भी बोलने की सामर्थ्य 'उसमे' नही है। प्रमोद ने एक दृष्टि कमरे के चारो ओर फेंकी। कमरा सुनसान था। दो आदमियो के होने पर भी वह निर्जन दिख रहा था। पलग के अतिरिक्त वहा कहीं भी कोई वस्तु न थी। एक व्यक्ति के, विशेष कर रोगी व्यक्ति के व्यवहार मे आने वाली कोई भी वस्तु वहा न थी। एक कुर्सी तक नही। यह एक विचित्र बात

थी। प्रमोद ने सोचा, जानबूझ कर इस स्थान को इतना एकाकी बनाया गया है। काटेज होने के कारण प्रमोद ने अनुमान लगाया, अन्य कमरो मे सामान होगा। तो क्या सामने पलग पर लेटे व्यक्ति के नौकरो के अतिरिक्त वहा 'उसका' अपना कोई नही? वहा उसे कोई नही दिखा। प्रमोद अपने से साम्य स्थापित करते हुए सोच गया। "क्या सब ओर मानव उसी की भॉति अव्यवस्थित, क्लान्त, प्रताडित अथवा रोगी है?"

प्रमोद वहा १०-१५ मिनट और खडा रहा। इस बीच पलग पर से दो ऑखे उसकी ओर कई बार घूम गई। कमरे में पूर्णतः प्रच्छन्न व मौन वातावरण था। कुर्सी या बैठने की और कोई व्यवस्था होती तो प्रमोद वहा बैठ जाता। सम्भव था सकेत द्वारा 'वही' बैठने को कहता। प्रमोद तत्क्षण यह भी सोच रहा था कि वह यो खडा रहे अथवा चला जाए। 'उसके' स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे उस समय प्रश्न करना असगत था। थोडी देर और रुक कर प्रमोद हाथ जोडकर कमरे के बाहर आ गया।

सैनेटोरियम लाघकर बाहर जाने के विचार से वह शीघ्रता मे बाहर की ओर चल दिया। कुछ पग आगे बढने के बाद कहीं एक कोने से एक साथ कई व्यक्तियो के रुदन की ध्वनि प्रमोद के कानो मे पडी। न मालूम क्यो प्रमोद काप उठा। प्रमोद पर उस स्थान के रुदन का भयकर प्रभाव पडा। सभव है, वहॉ वह रुदन नित्य अथवा किसी भी समय की चिर-परिचित ध्वनि हो। आस-पास के रोगी, डाक्टर, नर्स सभी सुनकर उदासीन हो रहते हो। पर प्रमोद को वह रुदन अनायास विचलित कर उठा। सैनेटोरियम मे प्रथम भ्रमण के प्रभाव से प्रमोद डरने लगा। वह और शीघ्रता से पग बढाकर बाहर जाने लगा।

प्रमोद ने कितनी बार इससे पूर्व सोचा था, सकल्प किया था, भावुकता मे उसके व्यथित मन ने पुकारा था कि शीघ्र ही वह विदा ले ले। वह अपने को असमर्थ पा रहा था इस जीवनरूपी महासमर मे युद्ध कर सकने मे। अनेक बार उसके मन ने चीख-चीखकर कहा था, सब

व्यर्थ है, प्रतीक्षा, आशा, यह वेदना सब निष्फल है। क्यो न किसी पल उस परिस्थिति से, मर्मान्तक पीडा की कठिन ज्वाला से वह मुक्ति पा ले। सभवतः अनिर्वचनीय मानसिक उद्वेलन ने उसे जर्जरित कर दिया था, निर्बल। साहस घबराहट, चिन्ता व डर बन गया था। उद्योग की परिणति उदासीनता मे हो गई थी। प्रतिक्षण रुदन के पश्चात् भी समक्ष-ध्वनित-रुदन ने उसे इतना क्यो भयभीत बना दिया? वह स्वय लज्जित हो रहा था। परन्तु, घबराहट कम न हुई। वह और तेजी से चलने लगा। किन्तु वह चल ही तो सकता था। कहाँ फॉद जाता? रुदन अब भी उसके कानो मे गूँज रहा था। जैसे मृत्यु का आह्वान। वह और डरने लगा। सैनेटोरियम की चहल-पहल के स्थान मे उसे शून्यता व गहनता दिखाई पडने लगी। सैनेटोरियम का मनोवैज्ञानिक डर क्या सचमुच डर ही है, जिसने उसे यो घेर लिया? साक्षात् मृत्यु से मनुष्य कितना डरता है? उसकी कठोर भावनाएँ व विचार कितनी शीघ्रता से छिन्न-भिन्न हो जाते है?

सैनेटोरियम के वायु-मण्डल मे विभीषिका का एक ही उदाहरण समक्ष देख प्रमोद कितनी बुरी तरह डर गया। दृढता, सकल्प, साधना सब विलीन होते प्रतीत हो रहे थे। सैनेटोरियम, प्रमोद को चट्टानों की ऊँचाई पर बना एक मौत का कुआँ-सा प्रतीत हो रहा था। वह घबरा-हट से भागकर सडक पर आना चाहता था। सैनेटोरियम मे इधर-उधर आते-जाते व्यक्ति उसे यमदूत की भाति दिखाई दे रहे थे। सामने अंधकार बटता दिखाई दे रहा था। उसे पसीना आ गया। वह पुनः कॉप उठा।

सैनेटोरियम का मुख्य द्वार अभी दूर था। प्रमोद बढता चला जा रहा था। वह सोचने लगा, अरे अभी सीढियाँ भी उतरना है। तभी सामने से दस-बारह आदमी अर्थी लेकर बाहर जाते दिखाई पडे। प्रमोद ने आँखें बन्द कर ली। प्रमोद सोच रहा था, क्या वह भूतो के डेरे मे आ गया है? वह बडी शक्ति लगाकर चीखना चाहता था किन्तु, उसने

अपने आपको रोक लिया। उसे लगा वह चलते-चलते गिर पडेगा। तब उसे ध्यान आया—काश, जयन्त उसके साथ होता। उसकी मनःस्थिति इतनी भयकर हो उठेगी, इसका उसे अनुमान ही कब था। वह वहाँ आता ही नहीं। वर्षा मे, उस दिन वाली शव-यात्रा पुनः उसके मस्तिष्क मे घूम गई। मृत्यु की क्रूरता पर उस दिन का व्यंग्य आज परिहास बन रहा था।

प्रमोद के सारे सिद्धान्त, सारी दार्शनिकता, जीवन का समस्त विद्रोह, जीवन की निःसारता का वह बौद्धिक सत्य, उसका निश्चय, अतीत की विषमता के फलस्वरूप भविष्य को देखने के पूर्व उससे मुक्ति के सुहाने स्वप्न—एक क्षण मे बालू की दीवार की भाति वहीं विलीन हो गए। जीवन, मृत्यु और मानव, मृत्यु मे नवजीवन का आश्रय न मालूम कहाँ अदृश्य हो गया।

शीघ्र ही वह सडक पर आ गया। हृदय, मस्तिष्क व अंग-अंग उसका काँप रहा था।

●

: ७ :

आज प्रमोद के चारो ओर सैनेटोरियम घुमेडे ले रहा था। अब तक वह स्वस्थ-चित्त हो गया था और डर भी हिरन हो चुका था। पुनः चिरन्तन चेतना पाकर, इस प्रकार के अपने डर पर पश्चात्ताप करता हुआ, सिद्धान्तो और दृढ मतो की सीढी पर जमकर, साहस बटोर कर मनःस्थिति को और सुधारने की चेष्टा करता हुआ, वह सोच रहा था।

सैनेटोरियम का एक ही रूप, एक ही पहलू ससार के समक्ष प्रकटरूप मे दृष्टिगोचर होता है। सैनेटोरियम रोग से मुक्ति पाने का एक विश्राम-स्थल है, कुछ काल तक मृत्यु को टाले रहने का मनुष्यकृत प्रवचनापूर्ण सफल प्रयास, अथवा जीवन की निःसारता सिद्ध करने का एक प्रामाणिक स्थल। किन्तु उसका एक और रूप भी है। उसके इस रूप को हम स्थूल दृष्टि से न देखते है न उसका मूल्याकन करते है। यथार्थ मे यही उसका वास्तविक रूप है।

धर्म, समाज, सभ्यता और सस्कृति के चतुष्कोण ने मनुष्य को, विशेषकर मध्यवर्गीय व्यक्ति को जिस प्रकार निर्बल व असहाय और रोगीला बनाया है, उसका निर्णयात्मक प्रभाव देखना हो तो वह इसी स्थल पर, इस सैनेटोरियम की धूमिल छाया मे ही मिलेगा। मान्यताओ और आस्थाओ से रगड खाकर व्यक्ति का क्या अस्तित्व रह जाता है यह देखने के लिये इससे अच्छा दूसरा स्थान नही।

और यहाँ मनुष्य को एक साथ दो पुरस्कार मिलते है—एक जीवन का और दूसरा मृत्यु का। मृत्यु के पुरस्कार यहाँ अधिक मिले यह दूसरा प्रसग है किन्तु यह निर्विवाद है कि यही वह स्थल है जहाँ जीवन मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का आंशिक अथवा पूर्ण प्रयास करता है।

और प्रमोद को मन-ही-मन इस विवेचन से सन्तोष हो रहा था। परन्तु वह खिन्न था यह सोचकर कि कल उसकी विवेक-शक्ति कहाँ विलीन हो गई थी? इस पर उसने सन्तोष करना चाहा यह सोचकर कि अनचाहे भी मनुष्य-प्रकृति दुर्बलता का आवरण ओढ लेती है।

मौसम अच्छा था। चारो ओर लोग काम-धन्धो मे व्यस्त थे। उपर्युक्त विचारो से प्रमोद अपना मन कुछ हलका करके इस समय स्वस्थ था। तभी उसे जयन्त का स्मरण हो आया।

तत्क्षण न मालूम कहाँ से, जयन्त आ खडा हुआ। प्रमोद उसको देखकर मुस्करा दिया और बोला, "Think the devil....."

"and he is there" जयन्त ने स्वर मिलाते हुए कहा।

प्रमोद व जयन्त दोनो ही हँस दिये। प्रमोद बोला, "जयन्त, सचमुच तुम्हारी बडी उमर है। मैं अभी-अभी तुम्हारी याद कर रहा था। और कल कहाँ रहे श्रीमन्?"

जयन्त मुस्कराता हुआ बोला, "सुनिये। आपने तो कह दिया कि आगे बढकर 'पर्स' दे आओ। मैने न मालूम कहाँ-कहाँ खोजा परन्तु कही पता नही लगा।

"आज प्रातःकाल मै नित्य की भाति चाय के पश्चात् बगले के बरामदे मे टहल रहा था। तभी मैने वह परिचित रूप अपने बँगले के सामने से जाते देखा। उसके साथ एक नौकर था। नौकर फल व सब्जी की डलिया लिये हुए था। उस समय यो पुकारना या टोकना मैने उचित नही समझा। बँगले से उधर जाते देख मैने अनुमान लगाया, अवश्य ही वह उधर ही कही रहती होगी। कपडे मेरे अस्त-व्यस्त थे। परन्तु यह सोचकर कि पहाड ही तो है—अपरिचित स्थान—मैं उतर कर पगडडी

से होता हुआ उसके पीछे हो लिया। मेरे बँगले से आधे फर्लांग की दूरी पर उसका बँगला है।"

प्रमोद ने मुस्करा कर बीच मे टोकते हुए कहा, "मालूम होता है इस काम मे भी पटु हो।"

"लीजिये आपका आदेश भी मानना था या नही।"

"तब हुआ क्या ? 'पर्स' अभी तक लौटाला या नही ?"

"सुनिये तो। बॅगला देखकर मै लौट आया। आकर ठाठ बनाए। कपडे बदले, सेट छिडका, बाल सॅवारे और सजधजकर उस ओर पदार्पण किया। अब हालत सुनिये। कितना डर लग रहा था। एक ओर तो अमिट आकर्षण, भेट का सुखद स्वप्न और दूसरी ओर बुड्ढा। मै सोच रहा था वह बॅगले पर अवश्य मिलेगा। और दूर से नमस्कार करने पर जब वह इतना बिगडा था तब मुझे अपने बँगले पर देखकर । मै उसके उग्र रूप का ध्यान करके बार-बार सहम जाता। मैने सोचा, क्या वह मुझे भूल गया होगा ? वह कदापि न भूला होगा। तब अपने बॅगले पर देख कर उसका डडा न उठे, यह कैसे सम्भव होगा ?"

प्रमोद बडा आनन्द ले रहा था, वह बोला, "तो फिर हुआ क्या ?"

"सुनते तो जाइये।" और वह कहने लगा, "डडा पडने के बाद चाहे भले ही समाधान भली प्रकार हो जाता कि मै कैसे आया था ? किस उपकार की भावना से वशीभूत होकर ? और मुझे क्या प्रसाद मिला ? भले ही खेद-प्रकाश की अति हो जाती पर आप सोचिये केवल हाथ जोडने मे वह काट खाने को आ गया। भाई साहब, सचमुच मै बडा डर रहा था। पर दूसरी ओर आकर्षण भी कम नही था। बस चल दिये। बॅगले की ओर। बडा साहस करके मैने बॅगले का लान पार किया और बरामदे मे जाकर कमरे का दरवाजा खटखटाया। एक मिनट बाद ही द्वार खुला और मैंने देखा, सामने चॉद निकल आया था।

"उस घटना का स्मरण कर निश्चित ही उसने मुझे पहचान

लिया। एक क्षण तो वह कुछ सहम-सी गई परन्तु सम्भल कर उसने अपना सर झुका कर अभिवादन किया। मै बिना कुछ कहे उसकी ओर देखता रहा। तब लजा कर किन्तु गम्भीर होकर उसने प्रश्न किया : 'हूम यू विश टु मीट ?'

"मैंने उत्तर दिया, 'टु यू ऑनली।'

"उसी क्षण उसने अपना पर्स पहचाना जिसे मैं हाथ मे लिये था। वह समझ गई और एक हलकी मुसकान ओठो पर लाकर बोली: 'ओह ! दैट्स इट-आई वाज रादर परटर्बड टु मिस माई पर्स। सो मेनी थैंक्स,' कुछ रुककर पुनः आग्रह के स्वर मे उसने कहा, 'प्लीज कम, कम इन।'

"अब तक हम दोनो दरवाजे के पास ही खडे वार्तालाप कर रहे थे। उसके कहने पर मै अन्दर गया। ड्राइग-रूम बडा सजीव था। दूरी से पहाड आकर भी इतने सामान से सुसज्जित ड्राइग-रूम मुझे बडा प्रिय लग रहा था। हम दोनो आमने-सामने सोफो पर बैठ गये। बैठते ही मैने पर्स आगे बढाते हुए कहा : 'यू ड्राप्ड इट व्हेयर वी फर्स्ट मेट।'

"नीचा सर किये ही उसने पर्स मेरे हाथ से लेकर वैसे ही बीच की गोल मेज पर रख दिया। रख कर वह बोली—'थैंक्स।'

इस पर मैने उससे कहा, 'प्लीज सी ह्वेदर इट्स कन्टेन्ट्स आर इन-टैक्ट।' इस समय वह अपने पैर से एक चप्पल अलग करके अपने अगूठे से नीचे पडे कालीन को करोद रही थी। एक बार अपना सर उठाकर उसने मेरी ओर देखा और पुनः विचारो मे डूब गई। मेरी इस बात का न उसने कोई उत्तर दिया न ही पर्स को खोलकर देखा।

"मै निरन्तर अपने डरते मन व डरती आँखो से कमरे के चारो ओर तथा दरवाजो की ओर देखता जाता था। प्रतिक्षण लग रहा था अब उस दरवाजे से बुढ्ढा निकला और अब उसने हाथीदात का डंडा धरा मेरे खोपड़े पर।'

सम्भवतः वह मेरे मनोभाव समझ गई और मुस्करा कर बोली—'डोन्ट बी ऐफ्रेड, पापा इज स्लीपिग इनसाइड।'

मै भी हँस दिया। हँसी मे उसने मेरा साथ दिया। मै हँस भी बहुत धीरे से रहा था, केवल इस डर से कि तेज हँसी की गरमाहट मे कही बुढऊ बाहर न दिखाई दे जाएँ।

"कनखियो से मैने उसे व उसने मुझे एक दो बार देखा। मै तो निरन्तर उसके रूप की सराहना मे उसकी ही ओर देखा किया किन्तु उसके नेत्र सामने आकर बीच-बीच मे नीचे कालीन में भी घूम जाते। इतने ही मे उसने पुकारा: 'आया, आया!'

"अन्दर से एक अधेड किन्तु अच्छी सूरत की औरत निकल कर आई और निकट आकर खडी हो गई।

'आया, आपके लिये चाय, क्रीम, कुछ पेस्टरी..।' आया सुनकर चुपचाप लौट गई।

"मैं अब तक सोच रहा था, वह हिन्दी बिलकुल जानती ही नही होगी। मैने कमरे के चारो ओर पुनः दृष्टि दौडाई। आधुनिक सामग्री से सजा हुआ वह भव्य कमरा क्या छोटा-मोटा हाल, बीच मे पडा कीमती सोफासैट, नक्काशीदार गोल बीच की मेज पर चीनी का बडा-सा सुन्दर फूलदान रक्खा था जिसमें रग-बिरंगे ताजे फूल चुने हुए लगे थे। कमरे के चारो कोनो मे ऊँची तिपाइयो में पीतल के चार गमलो में विलायती पेड लगे हुए थे। सामने एक दीवार पर थे उमर-खैयाम के दो मोहक व रगीन भाव-चित्र जो रहने वालो की रुचि व कला-प्रेम के द्योतक थे।

"तो चाय-वाय मिली या नही?" प्रमोद ने पूर्व की लडी जोडने के अभिप्राय से प्रश्न किया।

"आप तो . अरे साहब, मिलती क्यो नही? मिली। चाय पी। आनन्द लिया। पापा के सोटे का भी आनन्द लेता यदि मिलता तो।

"चाय पीते समय वह कहने लगी—'कल की घटना का कोई ख्याल

न कीजियेगा। पापा कुछ·यो ही नाराज हो उठते हैं। हा, वह आपके दूसरे साथी नही हैं आपके साथ ?'

"मैंने कहा, 'वे यहा से दूर रहते हैं, बाजार मे। और मै तो आपके बगले के निकट ही रहता हूॅ। बडी कठिनाई से आपको खोज पाया। पुनः प्रश्न करते हुए मैने पूछा, 'वैसे आपका स्थान कहा है ?'

'देहली। हम लोग देहली रहते है। पापा और मै। और ये है नौकर-चाकर। बस, आप क्या किसी बीमार को लेकर आए है ?'

"प्रश्न के उत्तर मे मै कुछ सोच रहा था, कुछ मुग्ध था। मै स्वयं अब रोगीला नही दिखता। अनायास मैने कह दिया, 'हा, बहन को और मा को लाया हूॅ।'

उसने पूछा—'अब ठीक है।'

"मैंने कहा—'हा।'

"मैं वही उसी भॉति बैठे रहना चाहता था। निरन्तर। मैं अनेक प्रश्न करके उसके सम्बन्ध मे एक साथ सब कुछ जान लेना चाहता था। मेरा मन चचल हो रहा था। किन्तु उसने उस सबका अवसर ही नही दिया। तब तक हमारे चाय के प्याले भी रिक्त थे। अब वह शीघ्र ही मुझ से विदा लेना चाहती थी। ऐसा मैने अनुभव किया। वह कुछ उठने का-सा उपक्रम करने लगी। था तो मै पूर्णतः अपरिचित ही। तब मैने स्वयं ही कहा, 'अब चलूगा। फिर मिलूगा।'

'स्योर' कहकर वह उठ खडी हुई।

"अब तक हम लोग आमने-सामने बैठे थे। खडे होने पर मेरी व उसकी दूरी एक हाथ ही होगी। और मेरा मन। इतनी देर शिष्ट व्यवहार व वार्ता के पश्चात् कालेज वाली उद्दण्डता का कुछ ध्यान करके मैं सिहर उठा पर चुपचाप हाथ जोडकर बाहर आ गया।

"दरवाजे तक उसने मेरा साथ दिया। किन्ही विचारो मे डूबी वह आगे-आगे चल रही थी और मै पीछे था। पीछे से सर से लेकर पैर

तक की उसकी शरीर की गठन व गोलाई देखकर मै हैरान था। द्वार पर आकर उसने मुझे देखा।

"मै लान व लान के बाद पगडडी पर हो गया।

"मै रास्ते भर सोचता रहा, उसका अनिन्द्य सौन्दर्य, स्वभाव की मृदुलता, उच्चशिक्षा, मेरा सत्कार, अपरिचित का मान, स्मित, झिझक और कनखियो के बीच मेरा स्वागत, मौन आमन्त्रण। भाई साहब, मैं न मालूम क्या-क्या अर्थ लगा रहा हूँ? और उसका सुसज्जित बगला, सबसे बढकर वे उमर-खैयाम के चित्र। परन्तु भाई साहब, पापा न मिले और न मिले। एक बडी उलझन के साथ यही सन्तोष लेकर लौटा हूँ। और बहन की बीमारी, मा के साथ, देखिये यह क्या वक्त आया हूँ। इसी उधेड-बुन मे मै कल आप तक न आ सका।"

प्रमोद निरन्तर मुस्कराता रहा। अन्त मे वह बोला, "ठीक है जयन्त, मैं तुम्हारे गुण की प्रसशा करता हूँ। मामला चला तो ठीक निभेगा। आगे का प्रसग भी जोडकर ही उठे वहा से। चलो सुन्दर है। कामिनी का अभाव भी था।"

"भाई साहब, यह व्यग्य है या सहज वार्ता।"

"जयन्त, कभी नही। मै व्यग्य करना जानता ही नही। कोई बात होती तो स्पष्ट कह देता। ऐसा विचार न करना।"

इसके पश्चात् संक्षेप मे उसने सैनेटोरियम जाने की बात कह सुनाई।

●

: ८ :

जयन्त आज जलपान के पश्चात् पुनः बरामदे मे आ बैठा। उसके बॅगले के निकट से जाने वाली पगडडी बरामदे की ऊँचाई से लगभग दस-पन्द्रह फीट नीचे थी। अतः वहाँ से जाने-आने वालो को भली प्रकार देखा जा सकता था। उसके बॅगले के आगे बहुत-से लोग रहते है। चार-चार छः-छः मील दूर पहाडो पर छोटे-छोटे ग्रामो मे बसे लोगो व सामान के जाने-आने का मार्ग भी उसी पगडडी से होकर था। दिन भर उसके बॅगले के सामने से लोगो का आना-जाना लगा रहता। शाक-भाजी के पिटारे लिए ग्रामीणो, खच्चरो, डाडियो आदि से उस पगडडी पर निरन्तर चहल-पहल बनी रहती। अत. बाहर आ बैठने पर जी नही ऊबता था। फिर अब तो उस पगडडी पर उसे किसी की प्रतीक्षा भी रहने लगी। वह सोच रहा है, वह इस पगडडी से होकर ही तो आती-जाती होगी, परन्तु वह कभी किसी को दिखी क्यो नही ?

जयन्त उस समय हिन्दी के एक-दो मासिक-पत्रो को देख रहा था। उनमे उसका मन नही लग रहा था। उसका मन कुछ उलझा हुआ था। पत्र हाथ मे लिये वह अन्तर्मन की लडियाँ पिरो रहा था। एक दिन पूर्व उस अपरिचिता से भेट होने के पश्चात् उसका मन न मालूम कैसी-कैसी उछाले ले रहा था। वृद्ध महाशय के प्रथम क्रोध की घटना से लेकर बॅगले मे भेट करने के पश्चात् लौटने तक का समस्त व्यापार उसके मस्तिष्क मे अपचे भोजन की भाँति ऊपर ही रक्खा था। उस रूपसी का

व्यवहार, रूप-लावण्य, उसके बँगले का रख-रखाव, उमर-खैयाम के दोनो चित्र, उसकी आया, चाय—सब कुछ आँखे मूँदे वह अपने समक्ष देख रहा था।

पर्स मे उसके सवा-सौ के लगभग रुपए थे। उसके साथ अन्य वस्तुएँ भी थीं। पर्स देते समय तथा उसके दोहराने पर भी उसे खोलकर न देखने की उसकी लुभावनी उदासीनता देखकर जयन्त के मन मे उसके विशेष गुणो की अमिट छाप पड रही थी। उसी सब मे ओत-प्रोत जयन्त सोच रहा था, क्या वह सब सम्भव है ? क्या प्रणय ?

कमरे मे कोच पर बैठे उसने कनखियो से कुछ देखा था। उन विभिन्न भाव-भगिमाओ को ध्यान मे लाकर जयन्त सुखद स्मृतियो मे डूब-उतरा रहा था, उसी समय उसे कामिनी का सहसा ध्यान आ गया। कामिनी व उस नव-परिचिता के सौन्दर्य की तुलना मे जयन्त ने उस नई पहचान को मुकुट पहना दिया।

इसी अर्द्ध-स्वप्नावस्था मे वह बनारस पहुँच गया। वहाँ उसे अपने व निकटवर्ती बँगले का, उसमे रहने वाले कामिनी के पिता सेठ शीतल-प्रसाद, अन्य जन व अन्त मे कामिनी की चहल-पहल का स्मरण हो आया। सेठ शीतलप्रसाद का मद, उसे प्रति-पल कोचता रहता था। कामिनी के पाँच पत्र पी जाने के पश्चात् उसने अन्तिम पत्र का उत्तर दिया था। उत्तर दिये अधिक समय भी हो चुका था। किन्तु उसने यह सोचकर पत्र कदापि नही दिया था कि उस पत्र को पाने के पश्चात् कामिनी गिडगिडाएगी अथवा ऐसी सान्त्वना देने की चेष्टा करेगी, जिससे जयन्त द्रवित होगा। उसने कोई नवीन बात ही कब लिखी थी ? घटनाओं के क्रमानुसार वह तो केवल उपसहार मात्र था।

कामिनी व मनमोहन के अत्यधिक नैकट्य का चित्र उसके सामने आ रहा था। उसके पिता द्वारा प्रत्येक प्रकार का प्रोत्साहन मिलने की बात भी वह भूला न था। अति शीघ्र विवाह की तिथि आएगी। कामिनी विस्मृति के आवरण मे सब ढक लेगी। सब पी लेगी। तब

उसका नया जीवन-क्रम चलेगा। तब यदि उसका भी नया जीवन-क्रम चले तो किसी की क्या हानि है? क्या बुरा है? काश वह चले। मानसिक उथल-पुथल मे वह सर थाम कर बैठ गया। तब आवेग मे वह कुर्सी छोडकर खडा हो गया।

तभी उसकी दृष्टि सामने की ओर पडी। थोडी ही दूर उसने देखा— इठलाती चाल मे वह सामने से आ रही है। उसका नौकर साथ है। क्या सचमुच उसी की प्रतीक्षा मे वह बरामदे मे आकर बैठा था? वह विचार कर ऐसे क्रम से अपने बरामदे से उत्तर कर पगडडी पर आया कि उसके उतरते ही ठीक उसी समय वह उसके सामने आई।

जयन्त ने उसका अभिवादन किया जिसका उत्तर उसने चिरसञ्चित मुस्कान से दिया। तब वह पूछ बैठी, "आप यही..."

उसका वाक्य पूरा होने के पूर्व जयन्त बोल उठा, "जी हाँ, मै यहा आपके आवागमन के मार्ग मै ही हूँ। आज आपको देखकर न मालूम क्यो मुझे बडी प्रसन्नता हो रही है। चलिये, ऊपर चलिये दो-चार मिनट।"

उसकी मुद्रा निरन्तर गम्भीर थी। वह एक क्षण रुकी और तब बिना बोले चुपचाप आगे बढकर जयन्त के बरामदे को जाने वाली पगडडी और छोटी पहाडी पर चढने लगी। जयन्त बडा प्रसन्न उसके साथ हो लिया। नौकर आदेश की प्रतीक्षा मे था। दूर से उसने अपने सुगोल किन्तु पतले हाथ को हिलाकर कहा, "जगसिह, वहीं रुको।"

तब बडी आत्मीयता और परिचय के स्वर मे उसने जयन्त को पुकारा, "आइये, आइये।" और अपनी पतली उगलियो के सकेत से उसे साथ चलने को कहा। जयन्त व वह बराबर-बराबर चढने लगे। ऊपर आकर बरामदे मे पडी कुर्सियो पर वे बैठ गये।

प्रातःकालीन सौन्दर्य की अनुपम छटा उसकी रूपराशि को अमित रस प्रदान कर रही थी। उसके केश, जो बडे लम्बे व घु घराले थे, खुले पीछे की ओर लटक रहे थे। काले मेघो के बीच छिपकर निकला चाद

उससे सुहावना नहीं हो सकता। वह गरारा पहने थी, और ऊपर से ओवर-कोट पहन कर उसने अपने उभरे अंगों को कसने या ढकने की निरर्थक चेष्टा की थी। क्रेपसोल की सफेद पट्टीदार चप्पल पहने उस समय वह अत्यधिक भली व भोली दिख रही थी। और...

वो आएँ हमारे घर, खुदा की कुदरत, कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते है।

नवागन्तुक का किस प्रकार सत्कार करे। पहले से कोई तैयारी नही थी। जयन्त एक क्षण मे सौ प्रकार से सौ बार सोच गया। कुर्सी पर से जैसे ही जयन्त ने उठना चाहा, उसने हाथ उठाकर रोकते हुए कहा, "आप उतावले न हो, मै समझ रही हूँ, आप क्यो उठना चाहते है। खातिर की कोई बात नही है। नो फारमेलटीज, सर! बैठिये। मुझे तुरन्त जाना है। पापा! और वह हँस दी। पुनः उसने वाक्य जोडते हुए कहा, "बडा डर गये है आप उनसे।" जयन्त भी हँस दिया।

एक क्षण रुककर वह पुनः बोली, "अच्छा तो आप की बात पूरी हो गई। मैने आपका घर भी देख लिया। अब चलूँ।" और वह अपलक जयन्त की ओर देखती रही। आज अपने घर देखकर जयन्त उस क्षण कुछ सकपकाया-सा दिख रहा था। इतने पर भी स्वाभाविक चचलता, वह कहाँ जाती? उसने अपने ओवरकोट की जेब से कुछ मेवा, काजू इत्यादि ही आगे बढा दिये, और बोला, "अच्छा कुछ तो।"

मेवा देते समय जयन्त के हाथ का स्पर्श उसकी कोमल गुलाबी गदेली से हुआ। आख बन्द करके उसने अपना हाथ खीचा लिया। जयन्त की यह क्रिया उसके चपल नेत्रो से न छिप सकी और वह भी अर्थ लगाने मे कुछ डूब गई।

जयन्त सोच रहा था। कितनी सुन्दर, कितनी विचित्र है यह लडकी। उसके मुख पर अनुरागमय भोलापन देखकर जयन्त विस्मृत हो रहा था। व्यवहार मे, प्रकट रूप मे वह बहुत एडवास दीख पड रही

थी। परन्तु शील व विनय उसमे अधिक गहन था। अपनी गर्दन कुछ झुकी, कुछ टेढी करके वह मेवे का एक-एक दाना टूँगने लगी।

तभी जयन्त बोला, "मै बडा सौभाग्यशाली हूँ। आप से अनायास परिचय हो गया। हा, कम-से-कम अपना सुन्दर-सा नाम तो बताने का कष्ट करेगी ही, आप।"

वह नीचे भूमि की ओर देख रही थी। जयन्त का वाक्य समाप्त होते ही उसकी कमान-सी भ्रुकुटियाँ कुछ ऊपर-नीचे हिलीं और तब वह बोल उठी, "सुन्दर, हाँ मेरा नाम है निवेदिता। पापा मुझे नीतू कहते है। अब आप सुन्दर या जो चाहे कह सकते है।"

जयन्त हँस पडा। "निवेदिता, ओह।" कहकर उसने उसका नाम दोहरा दिया।

"अब जाने दीजिये। फिर भेट होगी।" कहकर निवेदिता उठ खडी हुई।

"सुनिये, मेरी माताजी व बहन से तो मिल लीजिये।" जयन्त ने पास ही खडे होकर उसे रोकते हुए कहा।

"क्या करूँगी? मेरी उनसे तो कोई एक्वेन्टेन्स है नही। मिलना तो केवल आप ही से था।" और वह मुस्करा दी।

"जयन्त इस अपनत्व व आमन्त्रण से सम्बल पाकर चमक उठा और आवेश में उसने निवेदिता का हाथ पकडते हुए कहा, " थोडी देर और, रुकिए।"

"बस आज इतना ही।" कहकर हाथ जोडते हुए वह बरामदे के नीचे उतर गई। जयन्त नीचे तक साथ आया।

"तो आप मेरे यहाँ कब आ रहे है?" पगडडी के कंकडो की ओर दृष्टि दौडाते हुए निवेदिता ने कहा।

"ओह! जब आप बुलाएँ।" जयन्त ने निवेदिता के कपोलो के सौन्दर्य को निकट से हृदयगम करते हुए कहा।

"देखिये कल इसी समय" और वह झूमती, इठलाती आगे बढ़ गई।

नौकर भी जयन्त को नमस्ते करके आगे बढ गया। जैसे उसका भी जयन्त से परिचय हो ।

जयन्त देर तक वही खडा उस घुमावदार पगडडी को निहारता रहा। निवेदिता का रेशमी गरारा हवा मे लहराता उसे अभी भी दीख रहा था।

प्रमोद के यहॉ जयन्त नित्य न जाकर कभी सप्ताह मे एक-दो बार हो आता था। साथ घूमना तो बन्द ही हो गया था। प्रमोद सब कुछ समझता और जयन्त को देखकर वह सदैव मुस्करा देता।

अब जयन्त का समय अपने यहॉ नित नवीन योजनाओ या व्यवस्था मे बीतता अथवा कुछ दूर स्थित बगले के सजे हुए ड्राइग-रूम मे ।

"पापा प्लीज डू टेक मिक्श्चर, यू आर नाट वेल टुडे। आइम जस्ट कमिग। कहकर निवेदिता निकल जाती, दूर, बहुत दूर और उसके साथ होता जयन्त। पापा का घूमना बन्द कर दिया गया। पापा तोते की तरह सब पढकर बगले मे ही पडे रहते।

और नैकट्य, एकात्व, एकान्त।

कभी किसी पहाड की चोटी पर, कभी किसी चट्टानी कगार के किनारे, कभी किसी चट्टानी झरने के सामने घटो-घटो बैठकर कभी न समाप्त होने वाली बाते, निवेदिता और जयन्त किया करते।

परिवर्तन व नवीनता मनुष्य जीवन का स्वभाव है और अनुराग जीवन का शाश्वत सत्य। सुखानुभूतियो मे मनुष्य विस्मृत हो उठता है। दूसरी ओर शुष्क व्यवहारो की विडम्बना निकटतम व्यक्ति को भी दूर ढकेल देती है। तभी समय की शिला पर बैठ कर वह देखता है दिव्याकाश, स्वच्छ, धवल, निर्मल एक तारा। एक सुखद प्रभात और अतीत के प्रागण मे भावी का मनोमुग्धकारी नवल, लोल नर्तन। तब सजग हो उठता है उसका खोया हुआ प्यार। तभी वह पहले की अपेक्षा अधिक गम्भीर, सजग, सतर्क और अतिशीघ्र अभिलषित लक्ष्य को प्राप्त करने की दैविक इच्छा लिये दौड़ पडता है, निर्मम और कठोर

स्मृतियो को कुचले कर; उन पर पैर जमाता, विस्मृति की नीव पर गहरा प्लास्टर करता पहले से अधिक सुन्दर, कलात्मक व भव्य भवन निर्माण करता है। तब सफलता व लक्ष्य को वह किसी दूसरे के हाथ का खिलौना नही बनने देता। पूर्व के अनुभव उसे चेतना दिये रहते है।

विजयोल्लसित जयन्त नित्य नवीन कार्यक्रमो मे डूबता-उतराता अपने नवीन प्रणय के स्वर्गिक सौरभ का उपभोग करने मे व्यस्त हो गया। निवेदिता समय निकाल कर, पापा की व्यवस्था का आधा भार आया और जगसिह पर छोडकर जयन्त के कार्यक्रमो मे पूर्णतः भाग लेती। पापा को लेशमात्र भी ज्ञान न था। निवेदिता दिन मे दो-चार बार दवा, भोजन व चाय की पूछ-ताछ स्वय भी कर लेती। पापा इसी मे प्रसन्न निरन्तर एक ही स्थान पर पडे रहते। आया व जगसिह इतनी चतुराई मे सब काम निबटाते रहते कि पापा को कोई असुविधा भी न होने देते। नीतू के सम्बन्ध मे पूछने पर आया कह देती, "मिस साहब अपने कमरे मे है। पढ रही है, सो रही है, गुसल-खाने मे है, बाजार फल लेने गई है, आपकी दवा लाने गई है, इत्यादि। पापा मौन हो लेट रहते। जगसिंह व आया इतने सधे थे कि दोनो ने पापा को नव-बसन्त व बहार का पता तक न लगने दिया।

प्रमोद को एकान्त मे जो सुख मिलता था वह चहल-पहल मे नही। यो दिवस के अनेक पहरो मे वातावरण व व्यक्ति के अनुरूप भी वह अपना व्यवहार बनाए रखता। पडोस के श्रीवास्तव साहब, गंगा बाबू या सेठ छगन लाल जो रोग या रोग की व्यवस्था के कारण पहाड आए थे, यदाकदा प्रमोद के यहाँ आते, बातचीत करते और कभी मनोरजनार्थ ताश भी खेलते। प्रमोद इन सब मे पूरी तरह सहयोग देता, हँसता और खेलता। किसी को अपना आभास तक न देता। इसी प्रकार जयन्त के साथ रहने पर भी वह मुखरित रहता था। इधर जयन्त के अभाव मे उसे कुछ क्या तनिक भी असुविधा नही हो रही थी। उसने

उसके अभाव मे नया परिचय भी नही बढाया। हाँ, वह अकेला ही छडी घुमाता दूर तक टहल आता। उसे अब अपने खोएपन मे जो शान्ति मिलती वह जयन्त की चहल-पहल मे अनेक अशो मे कम हो जाती।

सैनेटोरियम से लौटने के पश्चात् से वह कुछ अस्वस्थ चल रहा था। मन मे अनेक प्रकार से ढाढस बनाए रखने पर भी शरीर कुछ गिरा-गिरा-सा रहा, उसे दो दिन से हलका ज्वर भी हो गया था। सैनेटोरियम के निवासी उस व्यक्ति का समाचार भी उसके बाद उसे न मिल पाया और न वह स्वयं ही जा सका। अतः उसके प्रति उत्कण्ठा भी बढ रही थी। इधर वह घूमने भी न जा सका और एक प्रकार से उसने खाट पकड ली। दिन भर अकेले पडे-पडे वह मन से और त्रस्त होता। उसकी स्मृतियाँ उसे अपने मे व्यस्त रखते हुए भी चैन न दे पाती।

माँ ने व्यथित होकर दलसिह के द्वारा जयन्त को कहलवाया कि प्रमोद बीमार हो गया है।

सूचना पा कर जयन्त दौडा हुआ आया और प्रमोद को ज्वर मे पाकर बडा दुःखी हुआ। उसके सिरहाने बैठकर देर तक वह उसे ढाढस बन्धाता रहा व अपने न आने की क्षमा याचना करता रहा।

प्रमोद बडा सहृदय व्यक्ति था। उसने जयन्त से कहा, "पागल हो गए हो। क्षमा-याचना की क्या बात है? मेरा ज्वर, इसकी चिन्ता न करो। यह तो आता-जाता रहता है। और बताओ क्या नवीन समाचार है। सब ठीक-ठाक तो है?"

जयन्त के मुख पर लज्जा-मिश्रित मुस्कान दौड गई। जयन्त का स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो गया था। वह बोला, "भाई साहब, मेरा सौभाग्य मुझे बधाई देना चाहता है।"

"मेरी सारी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ है। तुम्हारी अनुपस्थिति मे आए मेरे मन के इस विचार ने मुझे अनेक बार आनन्द दिया है। तुम्हारा जीवन सुखमय हो, तुम्हारा मन आनन्दित रहे, इससे बढ कर

और क्या हो सकता है। तुमने पीडा और रोग से क्या कम कष्ट उठाया है।" प्रमोद ने स्नेहार्द्र होकर कहा।

प्रमोद के प्रति जयन्त की बडी श्रद्धा थी। वह नत मस्तक प्रमोद का माथा दाबता रहा।

प्रमोद मैत्री की सुखानुभूतियो से भिज्ञ था। लखनऊ मे उसके अनेक आत्मीय मित्र थे। कीर्ति उनमे उसका निकटतम मित्र था। वे एक-दूसरे के दुःख-सुख मे एकात्म होकर कार्य करते थे। उस समय जयन्त मे उसने अपने परम मित्र कीर्ति की अनुभूति पाई और अपने ज्वर के कष्ट को भूल गया।

तभी प्रमोद ने जयन्त से कहा—"जयन्त भाई, मेरा एक काम करो। सैनेटोरियम मे अमुक स्थान पर 'उसका' काटेज है। उस दिन के पश्चात् मुझे 'उसकी' कोई सूचना नही मिली। यो ही अनुमान से सोच रहा हूँ, 'वह' बहुत बीमार हो गया जान पडता है। जाकर 'उसका' हाल तो लाओ। 'उसका' नौकर मिल जाएगा, उसी से तुम्हे ज्ञात हो जाएगा।

जयन्त वहाँ जाने का वचन देकर थोडी देर प्रमोद के पास रहकर चला गया।

●

: ६ :

प्रमोद को पहाड आए कई मास हो गए थे। उसका स्वास्थ्य कभी ठीक तो कभी खराब इसी क्रम से चल रहा था। कभी वह चैतन्य हो जाता तो कभी ऐसा शिथिल कि चलने-फिरने की सामर्थ्य उसमे न रह जाती। इधर यह झटका उसे और गहरा लग गया। इस ज्वर ने उसे और जर्जर बना दिया।

सर्वांग सुन्दर एवं सर्वथा सुखद अतीत की स्मृतियाँ भी बडी भयावह होती है। और फिर ऐसे अतीत का ध्यान, जिसने तडप के अतिरिक्त कही कुछ जाना ही नहीं। स्मृति के तारो को छेड कर जब मनुष्य तान के साथ सम देता है तो लय की झकृति मे वह विलीनता को चूमने का प्रयास करता है। उसकी स्मृतियाँ विभीषिका के वातावरण मे विस्मृति के स्वरो से ओत-प्रोत हो उठती है। मर्मान्तक अनुभूतियो का जिनमे मागलिक गान हो, सर पटक देने वाली जिनमे कला हो, सिहरन उत्पन्न करने वाला रोमाचकारी जिनमे नर्तन हो, अन्तरिक्ष के मार्ग को प्रशस्त करने वाला जिसमे दिशा-सकेत हो, मृत्यु के आलिगन के क्षणो का जिसमे निशा-निमन्त्रण हो ऐसी स्मृतियो की ज्वालामुखी पर बैठकर जब कोई वंशी की तान छेडे तो उसे आवश्यकता होती है 'मारफिया' की।

ज्वर के साथ असह्य मस्तक पीडा और हाथ-पैरो की पीडा के कारण डाक्टर, प्रमोद को कभी-कभी "मारफिया" लगा दिया करता था। तभी

गहरी नींद मे वह ससार से निकल भागता था, इससे पहले नहीं।

माँ ने घबरा कर प्रमोद के पिता को तार दे दिया। अनेक बार बीमारी के लौटने पर प्रमोद ने अपने पिता को सूचना नहीं भेजी। "व्यर्थ लोग इधर-उधर जानेंगे।" माँ से वह यही कह कर बात टाल देता। परन्तु इस बार माँ कुछ विचलित हो उठी और उसने पडोस के श्रीवास्तव साहब के द्वारा लखनऊ को तार से सूचना करा दी।

प्रमोद का ज्वर जब कुछ कम होता तो पलग पर पडे-पडे खिडकी की राह मकान के सामने वाले ऊँचे शिलाखण्ड को वह घटों एकटक देखता रहता। और ज्वर की तीव्रता मे आँखे मूदे वह कुछ सोचता रहता। तब माँ चुपचाप पास आकर उसका निस्तेज मुख निहारा करती, आँसू ढुलका देती और अलग जा खडी होती। वह सोचती उन पहाडों के बीच उसका अपना कोई नहीं। मनुष्य स्वभाव से अपने प्रिय जन के लिये भयावह दैविक आशकाओं का विचार कर बैठता है। माँ पागलों की तरह बाहर छज्जे पर आ कर तार की बाट जोहती और चुपचाप पक्की बीस रोटियाँ खाने वाले दलसिंह के लिये खाना भी बनाती। उसकी अपनी विकृति भी प्रमोद के रोग से कम कष्टप्रद न थी। ममता मे डूबी माँ किससे क्या कहे? उसकी पीडा को देखने वाला कोई न था।

प्रातःकाल प्रमोद का ज्वर कुछ कम होता, तब माँ प्रसन्न मन से उसका हाथ-मुँह धुलाती और उसकी इच्छानुसार दो-चार तोले दूध, कभी चाय, अथवा नहीं के बराबर दलिया खिला देती।

तीसरे दिन जयन्त आया। वह देर तक बैठा रहा। उसने बताया—वह सैनेटोरियम गया था। बाहर फाटक पर ही 'उसका' नौकर मिला। और पूछने पर उसने बताया, 'ठीक है। वह सामने डग बढाते चले जा रहे है।'

तब जयन्त कहने लगा, उसकी इच्छा हुई कि उसी नौकर से उसके सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त करे। किन्तु उस मामले मे नौकर ने शुष्कता दिखलाई।

"वह ठीक है," यह सुनकर प्रमोद को सतोष हुआ।

"माँ, जयन्त के लिये कुछ जलपान लाओ" कहते हुए प्रमोद कुछ बैठने का उपक्रम करने लगा। किन्तु वह इतना शिथिल था कि बैठ न सका। जयन्त ने पहले तो लेटे रहने का ही आग्रह किया किन्तु प्रमोद को अधिक इच्छा देखकर उसने तकिये के सहारे प्रमोद को बिठा दिया।

प्रमोद को बैठा देख माँ मन मे कुछ सन्तुष्ट हुई और बोली, "जल-पान तो मै ला रही हूँ पर इससे पूछ यह आजकल रहता कहाँ है? पहले छाया की तरह तेरे साथ रहता था। इधर इसे हो क्या गया है?"

"इसे अपनी छाया मिल गई है माँ", प्रमोद ने हँसते हुए कहा। जयन्त भी मुस्करा दिया।

जयन्त बोला, "भाई साहब, मै दो-तीन दिन के लिये बाहर जा रहा हूँ, लखनऊ। कोई काम हो तो बताइए, पता बता दीजिये, मै पिता जी से मिलता आऊँगा।"

इतने ही मे "प्रमोद, प्रमोद" का शब्द सुनाई पडा। माँ ने कहा, "तेरे पिता जी आ गये।"

दलसिह नीचे जाकर पिताजी का सामान ले आया। प्रमोद व जयन्त ने उन्हे प्रणाम किया। वे बडे चिन्तित दिख रहे थे। तुरन्त उन्होंने प्रमोद की तबियत का हाल पूछा। तार की बात सुनकर प्रमोद ने जाना कि उसको बिना बताए माँ ने तार दे दिया।

पिता जी को जयन्त का परिचय देते हुए प्रमोद ने कहा, "पिता जी, ये मेरे पहाड के साथी हैं मिस्टर जयन्त।"

कुछ देर बाद जयन्त सबको नमस्कार करके चला गया।

इधर पिता जी के आने के पश्चात् प्रमोद चार पाँच दिन मे ठीक हो गया। केवल निर्बलता शेष रह गई।

प्रमोद के पिता लखनऊ मे वकालत करते थे। कार्य की अधिकता व अर्थ की चिन्ता का विचार कर उन्होंने दो सप्ताह रह कर लौट जाने का कार्यक्रम बनाया। आज के इस सामाजिक ढाँचे मे आर्थिक समस्या

कितनी जटिल व कितनी दोष-पूर्ण है ? साल के तीन सौ साठ दिनो में परिवार का प्रत्येक समर्थ व्यक्ति, कही-कही तो स्त्रियाँ भी, जब साधन जुटाते है, आय का उचित प्रबन्ध करते है, तब आवश्यक व्यय की पूर्ति सम्भव हो पाती है । इसी आय-व्यय मे मनुष्य दिन-रात पिसता चला जाता है । मस्तिष्क की सीमाएँ केवल पैसे मे बँध गई है । मनुष्य का अकन केवल पैसे पर आधारित हो गया है ।

यदि वकील साहब प्रमोद को छोडकर लखनऊ न जाएँ तो अनायास आ जाने वाला प्रमोद की बीमारी और पहाड का लम्बा व्यय, उसकी पूर्ति किस प्रकार हो । यही ध्यान करके प्रतिपल प्रमोद के निकट रहने की इच्छा रखकर भी वकील साहब उसके निकट रहने मे असमर्थ थे । जाते समय माँ ने प्रमोद के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अधिक चिन्ता व्यक्त की । उत्तर मे वकील साहब बहुत हताश होकर कहने लगे—"प्रमोद की माँ, प्रमोद की प्रसन्नता, व्यवस्था व सुश्रूषा मे किसी प्रकार की कमी न होने देना । सम्भव है वह ठीक भी हो जाए । तुम समझती ही हो, मेरा लखनऊ मे रहना कितना अनिवार्य है । लखनऊ मे उठते-बैठते मुझे प्रमोद का ध्यान तडपाए रहता है । इस बार तो उसे देखकर मुझे बडी चिन्ता हो रही है । पत्रो मे निरन्तर तबियत ठीक होने के समाचार पढकर मुझे बडा सन्तोप मिलता था । यह यकायक हो क्या गया ?"

प्रमोद की माँ सिसक उठी । भावी आशका का ध्यान कर-करके वे रो पडी । केवल एक बात वे वकील साहब से कह पाई, "यहाँ प्रमोद दिन-रात सोचा ही तो करता है । साथ का कोई भी नही ।"

उन्होने कहा, "हो सका तो वहाँ से कीर्ति को भेज दूँगा ।"

प्रमोद वकील साहब का एकमात्र पुत्र था । वह लॉ कर चुका था । और अपनी सामर्थ्य से अधिक वे उसे बैरिस्ट्री पढने विदेश भेजना चाहते थे । वहाँ न भेजकर उन्हे उसे पहाड भेजना पडा । प्रमोद के लॉ के द्वितीय वर्ष मे आते ही उसका स्वास्थ्य एकाएक गिरने लगा । पहले तो

किसी ने ध्यान नही दिया। लॉ का परीक्षा-फल उसकी बीमारी मे आया और वह पहाड चल दिया।

प्रमोद समाज का एक रत्न था। कालेज मे व बाहर सार्वजनिक क्षेत्र मे भाग लेने के कारण वह अत्यधिक लोगो से परिचित था। वह सबका सहज स्नेही बन जाता। उसमे इतने गुण थे कि उसके व्यक्तित्व की छाप किसी पर बिना पडे न रह पाती। वह चितक की भाति बडे से बडे काम मे लगा रहता और उसे पूरा कर देना उसकी विशेपता थी। व्यर्थ के वितण्डावाद, टीका-टिप्पणी अथवा निर्मूल झझटो से वह कोसो दूर रहता।

सदैव शिष्ट हास्य मिश्रित वार्तालाप से अपने प्रियजनो व परिचितो को वह प्रसन्न रखता था। विशेप कार्यो, कार्यक्रमो और योजनाओ मे कभी सकारण उसकी अनुपस्थिति एक विशेष अभाव प्रकट करती।

गम्भीरता उसके स्वभाव का एक विशेप गुण था। किसी की टीका-टिप्पणी सुनकर वह मौन हो जाया करता। कालेज मे पढते हुए भी नगर के सभी श्रेणी के व्यक्तियो से उसका परिचय था। कई क्लबो से उसने सम्बन्ध स्थापित कर रक्खे थे। लखनऊ के जीमखाना क्लब का तो वह बडा ही प्रमुख सदस्य था। वहॉ उच्च श्रेणी के व्यक्तियो से सम्बन्ध बढाना उसकी अपनी रुचि थी। क्लबो मे घिरे रह कर भी उनकी रगीन दुनिया से वह दूर रहता। अनैतिकता उससे इतनी दूर रहती, जितनी पहाड की ऊँची से ऊँची चोटी से भी दूर आकाश।

वह जन्मजात बैरिस्टर था। तर्क व विचार-गाम्भीर्य एवं शीघ्र निर्णायक शक्ति उसमे विचित्र थी। पिता का असीम दुलार उसे प्राप्त था। उसके पिता वकील साहब प्रतिपल उसके बैरिस्टर होने के स्वप्न देखा करते।

परन्तु यकायक जब उसके इस जटिल रोग की चर्चा सामने आई तो परिचितो व सम्बन्धियो के वातावरण मे क्षोभ फैल गया। शरीर से पतला-दुबला होते हुए भी उसका स्वास्थ्य बडा अच्छा था। उसका स्वरूप तो सचमुच बडा लुभावना था। उसकी बीमारी एक रहस्य बन

गई। प्रत्येक व्यक्ति कह उठता, "प्रमोद को यह रोग लग कैसे गया ?"

संसार मे सभी प्रकार के जीव-जन्तु है। स्वभाव के भी विचित्र। कुछ ने कहा, "अरे भाई जमाना है। क्लबो की रगीनियो मे और क्या हो सकता था।" उडते कानो प्रमोद तक भी वह बात आई तो वह हँस दिया।

जिस दिन प्रमोद पहाड आ रहा था, उसके अभिन्न मित्र कीर्तिनाथ ने उसके पिता से कुछ एकान्त वार्ता की। प्रातःकाल वह वकील साहब के पास आया और ड्राइग-रूम मे बातचीत करने लगा। "बाबू जी, आप जानते है दिन-रात के १६ घटे मै प्रमोद के साथ बिताता हूँ। उसकी इस बीमारी से कितना क्लेश हो रहा है, क्या कहूँ ? परन्तु उसका स्वास्थ्य पहाड पर ठीक नही होगा। हो सके तो उसे बम्बई भेज दीजिये। मै उसके साथ जाऊँगा। सम्भव है वह वहाँ ठीक हो जाए। किन्तु मै यह भी जानता हूँ कि वह बम्बई जाएगा भी नही।"

"कीर्ति, डाक्टर उसे पहाड की राय देते है। उसे वहीं जाना चाहिये। तुम उसके साथ वहीं चले जाओ।"

"बाबू जी, अब मै क्या कहूँ ?"

इस वाक्य को सुनकर वकील साहब कुछ आन्दोलित हो उठे और वे हडबडा कर कहने लगे, "कहो, कहो, कीर्ति स्पष्ट कहो, क्या बात है ? अपने बेटे को बम्बई क्या दुनिया के किसी छोर मे रोग से मुक्ति पाने के लिए भेजना पडे तो मै भेजूँगा।"

कीर्ति की प्रमोद से इतनी गहन मैत्री थी कि प्रमोद के पिता जी के इस आवेश को देखकर वह स्वय द्रवित हो गया। उसका कठ भर आया। अपने को स्थिर करता हुआ वह बोला, "बाबू जी, प्रमोद के रोग के कारण का निवारण सम्भवतः हमारी आपकी शक्ति के बाहर है। और बिना रोग के कारण का निवारण किये उससे मुक्ति मिलना दुष्कर कार्य है।

वकील साहब कुछ-कुछ समझ रहे थे। वे कुछ क्रोध मे बोले, "यह

जो पहेली-सी तुम बना रहे हो उसमे बात चाहे कुछ भी हो, तुम चाहे कुछ भी कहने जा रहे हो, वह सब कुछ तुम्हे पहले कहना चाहिये था । यदि अब वह इतना कडुवा घूँट बन गई है तो तुमने बुरा किया है । अपने मित्र की भलाई के नाते तुम्हे यह बात इससे पूर्व ही कहनी चाहिये थी। इतनी गम्भीर स्थिति आने पर जिस रहस्य का उद्घाटन तुम करने जा रहे हो वह प्रमोद की महीनों की बीमारी मे भी तुम्हे कभी कह सकने मे कष्ट हो रहा होगा ? यह तो दूसरे रूप मे शत्रुता का कार्य कर गई । खैर जाने दो । बोलो, तुम कहना क्या चाहते हो ? समझूँ तो कि अब परिस्थिति के अनुसार क्या सम्भव है ? मै जीवन रहते प्रमोद की हर बात पूरी करने मे अपने को विचित्र पिता सिद्ध करूँगा ।"

कीर्ति व वकील साहब की इतनी वार्ता के मध्य मे ही यकायक प्रमोद ड्राइग-रूम मे आया । सामने कीर्ति को देखकर उसने एक भेद-पूर्ण दृष्टि डाली । कीर्ति मुस्करा दिया । वह वकील साहब से बोला, "बाबू जी, सुरेन्द्रनाथ के यहाँ से तो 'पिकअप' आई नही । मै तो तागे बुलवाकर सामान स्टेशन भेजता हूँ । यह कह कर वह वहीं कोच पर बैठ गया ।

वकील साहब ने पुकारा, "शीतल, फौरन तीन तागे लाओ । रास्ते मे ऊँघने न लगना । जल्दी आना । गाडी का टाइम हो गया है ।"

शीतल 'बहुत अच्छा' कह कर चला गया । वकील साहब ने प्रमोद की ओर मुडते हुए कहा, "बेटे, तीन तागे काफी होगे न.. ।"

प्रमोद, "जी हा" कह कर हाथ से कीर्ति को अपने निकट आने का संकेत करने लगा । पास आने पर प्रमोद ने हस कर कहा, "कहाँ रहे ?"

"तुम्हारे कमरे से होकर आया हूँ । शीतल ने बताया तुम फोन करने गये हो । मैं इधर चला आया ।"

"कीर्ति स्टेशन से लौटते समय मेरे साथ रहना ।" कह कर वकील साहब बाहर चले गये ।

"कीर्ति, यह सुरेन्द्र का काम हमेशा ऐसा ही रहता है । वक्त पर वह किसी का काम करना ही नही जानता । पिकअप की बात खुद ही कल

कह गया था । अब कहता है ड्राइवर कहीं गया है । आते ही भेजता हूँ । मै तो फटकार बता आया । जब कोई काम कर नहीं सकते तो उसकी चर्चा ही बेकार । बताइए किसने कहा था कि पिकअप भेज देना ।"

"आदत से मजबूर है ।" कीर्ति ने कहा ।

"पिता जी से बडी गहरी बाते हो रही थी ।"

"हॉ, तुम्हारे सम्बन्ध मे ।" कीर्ति ने सभल कर बैठते हुए कहा । "अरे जालिम मजनू बन कर जा रहा है और हम सब को मारे जा रहा है ।"

"कीर्ति बको मत । बाबूजी आ रहे है ।"

"बाबूजी से तो कहना ही है । अब तक रोके रक्खा । अब बाबूजी उल्टा इस बात पर बिगड रहे है कि अब तक क्यो नहीं बताया । अब क्या बताऊँ कि अब तक क्यों नही बताया । जब देखो, बको मत ।" कीर्ति भडभडाता हुआ कह गया ।

प्रमोद वहॉ से उठकर चल दिया ।

●

: १० :

चट्टानों के देश मे सारग[1] जब सारग[2] लिये लहराते हुए खिडकियो और दरवाजो की राह कमर मे प्रवेश करते है, तब कितना सुखद लगता है, कितना कौतूहलपूर्ण। बर्फीले बादलो के टुकडे, उमड-घुमड कर मकानो, बगलो और काटेजो मे घुसते चले जाते है। और वहाँ के वातावरण को, बिस्तर व कपडो को नम बना देते है। बादलो को देखकर लगता है कही से 'स्टेरलाइज्ड काटन' (रूई के गोले) उडे चले आ रहे हो, स्वच्छ स्वेत, टी० बी० के नासूरो पर चिपक जाने के लिये। अथवा मानव को अपनी ही भाति हलका-फुलका बना कर साथ ही उडा ले जाने के लिये—ये उस अदृश्य देश से उडे चले आ रहे हो। लगता है प्रणय के भीने स्वप्नो को और भीना और मधुरिम बनाने के लिये ये बादल चट्टानो को चीर कर रूपसी के मुँदे पलको, गोरे गालो और मीठे ओठो को चूमने चल दिये हो सुबह-सुबह।

छोटे-छोटे बच्चे बादलो को पकडने दौडते है। हाथ कुछ न आने पर भी नमी से उनके हाथ गीले हो जाते है। तब वे अपने नन्हे नन्हे हाथो की नन्ही-नन्ही उगलियाँ बाँध कर उछलते है। अगरेज बालको को पहाडो पर इन बादलो का बडा मोह, बडा आकर्षण रहता है। किल-कारियाँ मार कर वे अपने बंगलो को छोडकर बादलो को आता देख चढ

---

१ सारंग=बादल। २ सारंग=जल।

जाते है, निडर, खुले पहाडो पर ऊँचे और ऊँचे और बादल जब चारो ओर से उन्हे घेर लेते है तो वे बडे प्रसन्न होते है । जैसे हिमजल मे गोते लगा रहे हो ।

रात्रि मे सोते समय, कदाचित् कमरो के बाहरी भाग की खिडकियाँ या दरवाजे तनिक खुले रह जाएँ तब, तब इन बादलो का आक्रमण। मेघाच्छन्न कर देगे ये कमरो को। ये बरसेगे नहीं। हाँ, सुबह उठते-उठते प्रतीत होगा किसी ने पानी के हल्के छींटे रजाइयो, कम्बलो और खूटी पर टंगे कपडो पर दिये है । मेज पर रक्खे कागज और पुस्तके भी नम मालूम देगी।

कल सायंकाल से आधी रात तक पानी बरसा। रात्रि के अपराह्न मे आकाश स्वच्छ था। किन्तु सुबह होते-होते अपेक्षाकृत कोहरा अधिक फैल गया। दल के दल बादल घरो मे घुस रहे थे । लोग लिहाफो मे लिपटे चुपचाप अगडाइया लेते हुए धूप निकल आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। दैनिक कार्यक्रम भी देर मे प्रारम्भ हुए।

लगभग दस बजे धूप निकलने पर चहल-पहल प्रारम्भ हुई । दूध वाला दूध देर से लाया । मक्खन व डबलरोटी वाले भी देर से आए। चाय मे देर हो गई। टोस्ट अभी तक तैयार नहीं हुए। सर्वत्र इसी की धूम मच रही थी।

आज ही निवेदिता की आया को बीमार पडना था । आया का सारा काम निवेदिता को करना पडा । अलसाई निवेदिता ने पापा को नित्य-कृत्य से निवृत्ति पा लेने के पश्चात् चाय पिलाई। चाय के समय निवेदिता कहने लगी, "पापा, मच कोल्ड। वी शुडन्ट गो आउट फार ए वाक, टुडे । यस ।" तत्पश्चात् पापा ने दो तीन पैक चढाए और पलग पर लुढक रहे।

निवेदिता ऊन लेकर कुछ बुनती हुई ड्राइंग रूम के सोफे पर आ बैठी। उसका ध्यान बुनने मे नहीं लग रहा था। वह बुनते-बुनते फंदे भूल जाती। तब जितना बुनती उतना उधेड डालती और पुनः बुनने

लगती । तभी उसे कुछ शीत का अनुभव हुआ और वह सोफे से उठकर अपने कमरे मे शाल लेने चली गई ।

उसका कमरा बहुत सजा हुआ था । शीशे की कई आल्मारियाँ, उसमे इधर-उधर कोनो मे रक्खी थीं । एक ओर ऊँचा-सा निवाड का पलंग था जिसमे बहुत ऊँचा गद्दा बिछा था । उस पर सफेद चादनी बिछी हुई व आस-पास कई तकिये रक्खे थे । कोने मे तीन शीशों वाली एक बडी ड्रेसिग टेबिल रक्खी थी । जिसके आगे दो छोटे-छोटे स्टूल बेत के बुने हुए रक्खे थे । पलग के ठीक सामने तन्मयता और सगीत की देवी मीरा का एक सुन्दर रेखा-चित्र था । मीरा की छटा मे निवेदिता की तन्मयता व सगीत प्रेम परिलक्षित हो रहा था । और दीवारो मे इधर-उधर कही कुछ नही था.. ।

ड्रेसिग टेबिल की कई ऊचाई-नीचाइयो मे ही एक ओर उसका पर्स रक्खा था । पर्स उसने उठाया, उलटा-पुलटा और पुनः यथास्थान रख दिया । शीशे की बडी आल्मारी के ड्राअर से उसने अपना शाल निकाला और बाहर ड्राइग-रूम मे उसी प्रकार ऊन लेकर पुनः बैठ गई ।

उसका मन पर्स और जयन्त की कहानी मे उलझ गया । उसके सामने चित्र खिच गया । पहले दिन ढलवा तारकोल की सडक पर पापा का जयन्त व उसके साथी पर यकायक बिगड जाना, उस क्षण पहली दृष्टि मे साथी के प्रति तो उसके मन मे श्रद्धा व सतोष के भाव आए थे परन्तु जयन्त को देखकर एक घुमेड उसके मन मे उत्पन्न हुई थी । उसको देखकर न मालूम क्यो लज्जा और साहचर्य के भाव उसके हृदय मे उठने लगे । साथी से निश्चिन्तता व जयन्त को देख कर एक घबराहट उसके मन मे उठी थी । शिकारी को देख हिरनी की भाति अतिशीघ्र पापा को लेकर वह वहाँ से भागना चाहती थी । वह पापा पर मन ही मन बिगड उठी थी । व्यर्थ छेडछाड मे इतनी देर और लग गई । तत्क्षण भी वह सोच गई थी व अब भी वह वही बात सोच रही थी कि क्यों अनायास एक अपरिचित के प्रति उसके मन मे ऐसे भाव आए थे ? क्या भावी

अपना संकेत पहले से ही कर देती है ? या क्या बात थी ? वह सोच रही थी, वह कैसी शक्ति थी जिसने उस पर अपना प्रभाव डाला था ? जयन्त के व्यक्तित्व व हाव-भाव पर उसे प्रथम बार ही ऐसा आकर्षण क्यों उत्पन्न हुआ था ? यही सब सोच कर वह कोच पर पलक मूँदे चुपचाप आधी लेटी रही। ऊन बुनते समय की उसकी उगलियो की थिरकन शात हो गई। ऊन का गोला लुडक कर पास रक्खी गोल मेज के एक पाए को चूम रहा था।

जयन्त का पर्स देने आना। निवेदिता सोच रही थी, दूसरो को खीचने की उसके नेत्रो मे एक विचित्र सम्मोहन शक्ति है। कितनी निडर उसकी आँखे कुछ खोजती हुई द्वार पर ही उसके अन्तरतम भाग मे प्रवेश करती चली जा रही थी। तभी एक अपरिचित के सामने, जैसा उसने अब तक के जीवन मे कभी नहीं किया, यन्त्रचालित की भाति वह व्यवहार करती चली गई।

और अब वह प्रत्येक क्षण पापा की अनुपस्थिति चाहती है। यह उसके मन का कैसा परिवर्तन है ? पापा ने उसे किस दुलार से पाला है। वह प्रत्येक क्षण चाहती है पापा सोते ही रहे, और पैक पिये और डूबे रहे। और वह अतिथि की छाया मे भूली-भूली, सत्कार के क्षणो मे डूबी-डूबी पुनः-पुनः लज्जा व शील के बन्धनो को ढीला करती, प्रतिक्षण जयन्त को कोच पर बैठे ही देखा करे। परन्तु निवेदिता सोच रही थी, उस जैसी साइलेट लडकी को क्या हो रहा है ? यह कैसा ससर्ग है जो उसकी प्रकृति ही परिवर्तित किये जा रहा है। यह उच्छृखलता उसे कैसे आती जा रही है ?

उसका जयन्त के बगले मे जाना, 'तो आप मेरे यहाँ आ रहे है। पर क्यो ? और देखिये कल के ही समय। कल के समय इसलिये कि पापा अपने अलग कमरे मे नित्य गहरी नींद मे डूबे रहते है। यह चोरी है। यह अनियमित है। पर पुनः आँखे खोल कर उनको चमकाते हुए उसने ध्यान किया, यह सहज है, यह प्राकृतिक है, यह सत्य है, यह प्रेम

है। और उसका इसी प्रकार का रूप सर्वत्र है। जहाँ तक उसने सुना व समझा है। तो यह ठीक है। जयन्त उसका अपना बनकर ही रहेगा।

और पापा, आज तक नही जानते कि इन चट्टानो मे मेरा मन लहरे लेने लगा है। एक अजनबी मेरे निकट आता जा रहा है। वह निकट आ गया है। पर मै पापा से यह सब क्यो छिपा रही हूँ ? कब तक छिपाऊँगी ? भोले पापा, मुझ पर कितना विश्वास करते है मुझी मे डूबे।

और ये पहाडी चट्टाने, एकान्त शिखर—इन पर घटो बैठ कर बाते करती हूँ। वह मेरे सम्बन्ध मे सब कुछ, बहुत कुछ जानने को अधीर हो उठा है। उसके अनुराग व व्यक्तित्व की गहन छाप मुझ पर पडती चली जा रही है। उसका रंग गहरा होता चला जा रहा है। मै उसमे जकडती चली जा रही हूँ।

वह निरन्तर जयन्त मे डूबती चली जा रही थी। वह सोचने लगी, जयन्त एक दिन कह रहा था, 'निवेदिता, तुम्हे मै अपनी कहानी सुनाऊँ।' फिर बोला, 'नही, नही, पहले तुम्हारी सुनूँगा तब अपनी कहूँगा।' क्या उसका इतना अधिकार मुझ पर हो गया है कि वह मुझ से अनुनय-विनय करे, आग्रह से मुझे आप्लावित कर दे। आग्रह .. आग्रह। अधिकार। हाँ अधिकार बढता जा रहा है। वह निडर होकर मेरे रूप का पान करे, आँखो ही आँखो मे मेरी सारी दृष्टि पीता रहे, यह सब क्या है ? किसका अधिकार है ? किसकी मजाल है ? परन्तु सचमुच उसने अधिकार पाने का बीडा जो उठा लिया है। और मै उसमे सहयोग जो कर रही हूँ। मुझे, मुझे भी जो...ओफ, एक मीठा सुख मिल रहा है। न मालूम कहाँ का कब का, अपरिचित, सोया प्यार जो जग पडा है।

नौकर ने आकर सूचना दी, "मिस साहब, बाहर पानी बरस रहा है।"

निवेदिता ने डपट कर कहा, "जाओ तुम, इस समय यहाँ क्यो आए ?" किन्तु वह चौकी और सजग होकर कोच पर ठीक से बैठ गई। वह इतनी निमग्न थी कि कुछ काल पूर्व कमरे से लाया हुआ शाल ओढने के पश्चात् भूमि पर गिर पडा था और ऊन के तार उसी मे लिपट कर उलझ गये थे। बाहर पानी बरस रहा है यह सुन कर उसमे एक सिहरन-सी उत्पन्न हुई और शीत का आभास भी। अतः उसने शाल को पूरी तरह से ओढ लिया।

थोडी देर बाद वह उठी और फैले ऊन को उसने गोले पर लपेटा। ऊन, सलाइयाँ और बुना हुआ ब्लाउज उठा कर उसने मेज पर रख दिया। ऊन का गोला लुढक कर मेज से नीचे गिरा और कमरे मे दूर तक फैल गया। निवेदिता के कई बाल आँखो के निकट आकर गालो को तग कर रहे थे। अपनी पतली दो उँगलियो से उसने उन्हे संभाला और ऊन को पुनः गोले पर चढा इस बार गोले को सलाइयो मे खोस कर मेज पर रख दिया। परन्तु ऊन की तरह बिखरे मनुष्य को सलाइयाँ खोस कर नही रक्खा जा सकता। वह उसी प्रकार निरन्तर लुढकता ही रहेगा, सिमटता ही रहेगा।

तब वह पापा के कमरे मे गई। देखा, पापा गहरी नींद मे सो रहे हैं। उन्हे क्या पता कि पानी बरस रहा है। वे जिस पानी मे डूबे थे वह बरसता नही बन्द रहता है। पापा के कम्बल को उसने और ठीक से उढा दिया और अपने कमरे मे आकर पलग पर लेट गई।

लेटते ही करवट लेकर उसने अपना कोमल गात मुलायम तकिये मे छिपा लिया। तब वह पुनः चित होकर सामने दीवार पर टगे मीरा के चित्र को देखने लगी। तन्मयता की प्रेरक मूर्ति को देखकर वह स्वय भी तन्मय हो गई। तकिये के नीचे सेक्सपीयर का 'रोमियो जूलियट' चौथाई पढा हुआ उलटा रक्खा था। निवेदिता आगे के पृष्ठ पढने की चेष्टा करने लगी।

पहले ही पृष्ठ पर उसे जयन्त का चित्र अंकित मिला। उसके सामने नाच गया सफेद गुलाब के फूल को जयन्त द्वारा उसके बालो मे लगाने का मधुर दृश्य। वह सोचने लगी—कैसे जयन्त ने उसके बालो के गुच्छे मे पीछे की ओर फूल लगाते समय एक हाथ उसके कन्धे पर रख दिया। वह चुप खडी रही। फूल को लगा लेने के बाद कन्धे पर टिके हाथ को उठाने के पूर्व उसने कन्धे को धीरे से दबा दिया। उसने न फूल पर न कन्धे के दबाने पर ही कोई आपत्ति की। उसने स्वय भी तो उस क्षण अपने पलक मूद लिये थे, हर्षातिरेक के कारण।

वह क्या चाह रही है? वह उससे क्या चाह रहा है? क्यो वह अपरिचित की ओर यो बढ रही है? वह स्वयं क्या लेकर इधर आ रहा है? वह रिलायबल आदमी है या नहीं? क्या पता? या यो ही रूप के पीछे दौडने वाला 'लाइट-हार्टेड' जैसे और सब, या बहुत से। दिल्ली मे फ्रेन्ड्स के समूह मे नित्य ही उसने ऐसे मीठे अनुराग की कहानियाँ सुनी है। उसकी-सी लडकियाँ कैसे फस जाती है। तब चाह कर भी नही निकल पाती। और अनजाने किसी ओर ढुलक जाने का परिणाम! केनी अब तक रो रही है। छाया के हाथ से तो स्वय उसने 'प्वाइजन' की शीशी छीनी थी। किन्तु अमिता ने मैरिज भी की। उस दिन दिल्ली से चलने के पहले नई कार लेकर वह उसके बंगले आई थी, कितनी खुश। एक बेबी भी तो है उसके नन्हा-सा।

यह सब आकर्षण उसके लिये नवीन वस्तु है। सबसे बडी बात वह कुछ समझ नहीं पा रही है। क्या होने जा रहा है? उसके सामने न 'स्वीकार' है न 'न' है। वह क्या करे? स्टाप। अब नही हो सकता। वह उसे मीठा लगने लगा है। तब उसने अपने कान हाथो से बन्द कर लिये। यह सोच कर कहीं उसे भी 'प्वाइजन..', तो उसके भी नन्हा...उसने फिर तकिये मे मुह ढाँप लिया। बार-बार वह अपने मासल शरीर को पलंग पर भींच लेती।

तभी निवेदिता सो गई।

निवेदिता के मिलन व्यावहार, मौन-सम्मति के विश्वास, अनुपम रूप-लावण्य प्राप्ति की चिर संचित साध, रुग्ण शय्या के शुष्क पतझड के के पश्चात् नव-नव संदेश लिये बसन्तागमन, कामिनी की वीणा की झंकार से झंकृत वायुमण्डल को वेध कर आने वाले नवानुभूति के प्रेरक गान, प्रमोद के तापस जीवन के अन्तरग से निकल कर आने वाली सुखमय अतीत की जागरूक झाँकी के दिव्य दर्शन, माँ व सरस भगिनी के स्नेहार्द्र पहाडी कन्दराओ को छोडकर जाने के पश्चात् स्वदेश मे उसके विवाह मे सहस्रो दीपमालाओ के प्रज्वलित होने के सुखद स्वप्न, बनारस के बिस्मिल्ला की मधु रस भरी शहनाई की मृदुल स्वर-लहरी की गूँज, सब कुछ ध्यान कर जयन्त नाच उठा।

माँ से वह बोला, "मुझे रुपये दो, तीन हजार। मै शाम को लखनऊ जाऊँगा। वहाँ से मुझे बहुत-सा सामान लाना है। अभी रहना है न पहाड पर कई महीने।"

और फिर माँ तो लाई थी उसके पिता के सचित धन की दिव्य राशि, केवल अपने पुत्र को किसी भी भाँति, किसी भी मूल्य पर, रोग-मुक्त कराने के लिए।

माँ ने देखा, उसका जयन्त चमक उठा है। क्या, चाहे कामिनी हो, चाहे उसकी अनजानी कोई अन्य, निवेदिता ही। वह गद्गद है केवल जयन्त की प्रसन्नता देखकर। कल ही डाक्टर श्रीखडे कह गये थे, "माताजी अब तो पेट भर मिठाई खिलाओ, तुम्हारा लडका ठीक हो गया है। क्वाइट आल राइट।"

उत्तर देते हुए माँ ने कहा, 'बगला भर दूगी डाक्टर साहब, मिठाई के थालो से।"

और उसी लय मे जयन्त ने भी तान छेड दी, "माँ तीन हजार।"

आर्द्र माँ ने रुपए लाकर दे दिये। वे बोली, "देख मेरे लिये सफेद रंग का दुशाला..."

"भइया मेरे लिये चेस्टर का हलका गुलाबी कपड़ा", माधवी ने बीच मे फॉद कर कहा ।

जयन्त के लखनऊ से लौटकर आने के समय उसके सामान के साथ थे अनेक छोटे-बडे डब्बे, कुछ कागज के कुछ मे ऊपर मखमल चढी हुई । छोटे-बडे, और बडे बीसो डब्बे । उन्ही मे था मा का सफेद दुशाला और माधवी के ओवरकोट का कपडा ।

"क्यो रे यह क्या ले आया सब, पहाड-सा सामान ।" मा ने हँसते हुए कहा, "सब रुपये ठडे कर आया मालूम देता है ।"

"मा ठड ज्यादा है । तुम सो जाओ ।" जयन्त ने मा का हाथ पकड कर पलंग पर लेटने के लिये कहा ।

"मा, मेरा चस्टर ।" माधवी दूर से ही चिल्लाई ।

दोपहर के खाने के बाद निवेदिता पुनः सो गई । दिन छिपते-छिपते जब वह उठी तो उसे अपने कमरे का टेबिल लैम्प जला मिला । अग-डाइया लेती बदन को उछालती वह कुनमुन करके उठी । अन्तिम बार जब जोर से अंगडाई लेकर उसने अपने दोनो हाथ पीछे से घुमाते हुए लाकर आगे को फैके तो उसकी उभरी छातिया हिल गई । तब वह सोचने लगी । जब नारी सोचने लगती है, एकान्त मे प्रकृति की देन,उसके अग-प्रत्यग व विभिन्न और विचित्र अवयव, उसे स्वय वह सब कुछ एक भार लगता है, एक आलस्य । किन्तु पुरुष से ओझल होकर । पुरुष के सामने वह सब कुछ तो स्वर्गिक आनन्द की झॉकी है, निधि । और वे अवयव, वे ही तो उसे तंग करते है । पीडा, सिहरन, गुदगुदी, आलस्य, हास के क्षणो मे...वह अपने ही से सोचती है । विचित्र प्रकृति है ।

बाई ओर सिरहाने दृष्टि जाते ही उसने देखा एक कागज रक्खा है । बाहर पानी बरसना बन्द था । उसने उसे पढा ।

"निवे, मै आ गया हूँ । मै आया भी था । तुम बडी गहरी नींद मे थी । कल ४ बजे प्रिमरोज के निकट । यस । थैंक्स । जे ।

निवेदिता पश्चात्ताप करने लगी। वह क्यों सोई। किन्तु जगा लेना चाहिये था। कागज को उसने पुनः पढ़ा। अपने मीठे ओठों के निकट तक वह उसे ले गई। यों ही, चूमा नहीं। अस्त-व्यस्त पड़े रोमयोजूलियट को उसने सभाला। उसी मे उस कागज को रख कर वह उठने लगी। तब उसने ध्यान किया, कागज किताब मे रखना ठीक नहीं। वह भूल जाए और कभी किसी की दृष्टि ..तब उसने सोचा समाज से इतना छिपाव? यह सब क्या है? अपनों से ऐसी बात छिपाना। यह अविश्वास है। तब उसने सन्तोष किया। व्यक्तिगत बात उसी तक ही सीमित रहनी चाहिये। और उसने किताब मे से कागज निकाल कर अपने ब्लाउज के ऊपर के खुले भाग मे रख लिया।

: ११ :

पापा आज नही माने। अनेक दिनों से वे कमरे मे पडे ऊब रहे थे। निवेदिता की आज एक भी न चली। पापा मच कोल्ड, पापा वी आर टू लेट, पापा यू आर टू वीक, पापा देयर इज रेनिंग, पापा, आइम जस्ट कमिग बैक इत्यादि विभिन्न वाक्य आज व्यर्थ सिद्ध हुए। न मालूम क्यो आज वे बाहर जाने को कटिबद्ध हो रहे थे।

'नीतू बाजार तक चल कर, तुम्हारे लिए केक, बिस्किट लेकर लौट आऊँगा। किन्तु चलूगा—चलूगा जरूर, स्योर।''पापा ने ड्राइग रूम मे पडी बीच की मेज पर उगली पटकते हुए कहा।

''अच्छा, चलिये न। कौन मना कर रहा है। आई डोन्ट माइड।'' नीतू ने अन्दर से कुछ अनमनी होकर उत्तर दिया। पापा और नीतू बाहर चल दिये।

पापा आगे-आगे और नीतू उनके कधे पर हाथ रक्खे उसी प्रकार साथ। नीतू जयन्त के बगले के सामने से होकर निकल आई। निवेदिता का उस बगले के प्रति मोह, उसमे रहने वाले के प्रति मन की अधीरता। सम्भव है जयन्त बगले पर ही हो। सोच कर नीतू उत्कठित हो गई। पापा के पीछे होने के कारण उसने बगले को घूम-घूम कर अनेक बार देखा। परन्तु बगले की दीवारे मौन खडी उसकी ओर दूर से निहार कर रह गई। कुछ कह न सकी।

रूमाल को मुँह मे दबाए, कभी उसके कोनो को दातो से खीचती, कभी हाथ से झटक कर रूमाल बाहर कर लेती, पैरो को ढीला कर के जमीन पर फेकती हुई वह आगे बढ रही थी।

प्रिमरोज, ४ बजे। उसने हाथ की घडी को देखा। ३.४७, वह तिल-मिला उठी। और जैसे ही उसने सामने की ओर अपनी दृष्टि स्थिर की, उसने देखा जयन्त, सामने से आता हुआ। जयन्त धीरे से पास से निकल गया।

पापा एक क्षण मे उसे पहचान गये और उसे घूर कर देखते हुए वे आगे बढ गए। तभी निवेदिता को यह संतोष हुआ कि कम से कम जयन्त को कारण तो ज्ञात हो ही गया।

खेद के साथ जयन्त ने कई बार घूम-घूम कर निवेदिता को देखा। निवेदिता चाह कर भी उसे घूम कर न देख सकी। उसका हाथ पापा के कधे पर था। स्वभावतः घूमने पर वह हाथ हिलता या खिचता और बहमी पापा ने अभी-अभी अपने हिसाब से शैतान को पास ही देखा है।

जयन्त समझ गया कि आज चार बजे का कार्यक्रम नष्ट हो गया। बहुत खिन्न मन से वह बंगले के बरामदे पर पडी कुर्सी पर बैठा रहा। वहाँ पहले तो उसे ध्यान आया—बुड्ढे का नकुल का-सा मुँह और बकुल की-सी गर्दन, और छोटी आँखो मे घूमती उसकी वक्र-दृष्टि। कितना घूर कर देख रहा था आज भी वह, इतने दिनो बाद भी। जैसे वह हर युवक को देखकर चबा जाएगा।

और सफेद सिल्कन साडी पर लाल रेशम का कसा हुआ ब्लाउज, ऊपर हाथ का बुना बादामी रग का शाल वह ओढ़े हुए थी जयन्त को देखकर लज्जामिश्रित हास्य उसके दौड गया था। पापा के कारण उसका उत्तर भी वह न दे पाया। परन्तु नेत्रो ने स्वागत प्रकट ही कर दिया था। शेर के निकट हिरनी जिस प्रकार हक्की-बक्की भूल जाती है उसी प्रकार उस समय वह मृगनयनी केवल छटपटा कर रह गई। निवे-दिता का चित्र अपने मे हृदयंगम करते हुए जयन्त ने एक अनुपम सुखा-

नुभूति का अनुभव कर खिन्नता को कुछ कम किया । तब उसे आगे के कार्य-क्रम की चिन्ता हुई ।

वह उठा और कमरे मे जाकर एक स्लिप लिख लाया । शीघ्र ही पापा की अनुपस्थिति मे वह स्लिप निवेदिता के नौकर जगसिह को देने गया ।

'देखो, मिस साहब को आते ही दे देना.. ।'

'अच्छी बात' कह कर जगसिह मुस्करा दिया । जयन्त ने जेब से एक रुपया निकाल कर जगसिह को दिया ।

'एट नाइन इन दि मार्निग ।' निवेदिता ने लौटकर स्लिप पढी । जीवन मे प्रथम बार आज निवेदिता को उत्कठा, प्रतीक्षा, एव मिलन की लालसा का सुमधुर अनुभव हो रहा था । कल सुबह नौ बजे तक का समय व्यतीत करना उसे पहाड-सा दिख रहा था ।

इतने ही मे पापा ने आवाज दी, "नीतू !" निवेदिता पापा के कमरे मे गई ।

"समबडी केम हियर इन अवर एब्सेन्स ।"

"हू सेज ।" निवेदिता तडप उठी ।

"स्वीपर ।"

"लेट मी इन्क्वायर, जगसिह ।" और वह कमरे के बाहर हो गई । जगसिह कमरे के बाहर ड्राइग-रूम मे फुसफुसाहट सुन रहा था । निवेदिता ने बाहर आकर तेज आवाज मे पापा को सुना कर पूछा, "जगसिह, हमारे पीछे यहा कोई आया था ?"

निवेदिता के सरक्षण मे पला जगसिह बडी बुद्धिमानी से परिस्थिति की गम्भीरता को तत्क्षण समझ कर बोला, "नही, मिस साहब, कोई नही आया । एक बाबू कोई का पता पूछने आया था । तब आगे बढ गिया । यहाॅ कोई नही आया ।"

पापा के बहम ने चुप की सास ली ।

कमरे मे जाकर जगसिह ने नीतू क. जयन्त की स्लिप दी। नीतू बडी प्रसन्न थी। जगसिह पर उसे बडा प्यार आ रहा था। जगसिह भो हँस रहा था। नीतू ने कहा, "जगसिह, शाबाश, तुम्हे खीर बहुत पसन्द है। कल तुम्हे मै खीर खिलाऊँगी।"

जगसिह हँस दिया।

आज का अरुणोदय एक नया सन्देश लाने को था। सो कर उठते ही निवेदिता मन मे बडी प्रसन्न थी। झटपट प्रातःकालीन समस्त कार्यो को उसने उठते-उठते निबटा दिया। वह ८ बजे ही तैयार थी। जबकि पहाडो पर १० बजे दिन निकलता है।

पापा अभी सो रहे थे। न मालूम उन्हे कितनी नींद आती। दिन-रात सोते। राजसी सुखो मे जीवन व्यतीत किया था, उन्होने। काम भी क्या था? दिन-रात मे कई बार सुनहली गिलासो मे तरलता को चूमना और निद्रा-निमग्न रहना। जब कभी उठे तो सब पर फटकार। निवेदिता पर वे अतीव कृपालु, अत्यधिक प्रसन्न। उसकी एक डॉट मे वे बडबडाते हुए भी चुप हो जाते। जैसे किसी ने ब्रेक लगा दिया हो। परन्तु इधर कुछ समय से, जब से उसने यौवन की अँगडाइयॉ ली है, उसके प्रति वे अत्यधिक सन्दिग्ध, सतर्क व डूबे-डूबे से रहते थे। निवेदिता भी अपने बालपन की कहानी छिपाए पापा को सदैव प्रसन्न रखती। उसे भी पढने-लिखने अथवा सगीत सीखने के अतिरिक्त कभी कोई काम नही रहा। हॉ, इधर उसके काम बढ गये थे। किसी की प्रतीक्षा, किसी की स्मृति, किसी के नित नये कार्य-क्रमो मे सहयोग देना, यही बहुत से काम।

प्रिमरोज निवेदिता के बगले से, कुछ दूरी पर, एक छोटी पहाडी पर बना युक्लिप्टस और अखरोट के वृक्षों का एक सुहावना बगीचा है। इसको किसी अगरेज ने बनवाया था। किनारे-किनारे उसके चहार-दीवारी बनी है जो चारो ओर से घूम कर पगडडी के सामने बने लोहे के गेट के खम्भो से आ मिलती है। एक खम्भे पर सगमरमर का छोटा-सा टुकडा लगा है जिस पर अगरेजी मे लिखा है,'प्रिमरोज'। बस, अन्दर

इसके कही कुछ नही है। लोहे का भव्य द्वार सदैव खुला पडा रहता है। ऐसे, जैसे उसका कोई रखवाला ही न हो। और सचमुच लोगो का कहना था, 'वह अगरेज मर गया या कही चला गया है। इधर वर्षों से वह पहाड नही आया है।' घूमने जाने वालो ने उस ओर उसी को सीमा मान लिया है। मुख्य पगडडी पर आकर पहाडी पर बने प्रिमरोज को देख कर लोग कह देते, 'प्रिमरोज आ गया, अब लौट चले।'

मुख्य पगडंडी से कटकर एक पगडडी प्रिमरोज तक गई है। उससे लगभग ३० फीट ऊँचाई पर प्रिमरोज बना है। दूर से एकान्त बगीचा बडा मनहर दीखता है।

८-४० का समय हो चुका था। निवेदिता जाने को तत्पर थी। उधर जयन्त को प्रिमरोज जाने के लिये निवेदिता का बगला पार करना पडता था। वह बडी ठसक मे मिलन की आस लिये सामने १० मिनट पूर्व जा चुका था।

निवेदिता जाने को उद्यत हुई। उसने दबे-दबे कमरे के बाहर पग बढाए। इसी क्षण पापा की हल्की खासी व जगने की ध्वनि आई। निवेदिता ठिठक गई। उसके पग थम गए। परन्तु आज वह दृढ थी। एक क्षण उसने सोचा, ड्राइग-रूम से होकर निकल जाए। जगसिह अपने आप जो ठीक समझेगा कह देगा। वह सब-कुछ समझ चुका है व चन्ट भी है। इतने मे ही उसने सुना, 'नीतू, नीतू।' वह बढ न सकी। कठिन मानसिक उद्वेलन के बीच वह पापा के कमरे मे गई।

"गुड मार्निंग, पापा।"

"ओ, गुड मार्निंग, नीतू।" एक दृष्टि उन्होने नीचे से ऊपर नीतू पर डाली और अपनी आँखे बन्दकर ली। पुनः पापा कहने लगे, 'नीतू, आर यू गोइग, व्हेयर, व्हाई ?"

'यस, पापा, टु ब्रिग सम फ्रेस एपल्स एज द वेन्डर टोल्ड मी टु कम इन दि मार्निंग, अर्लीयर, टु गेट, फ्रेस वन्स। यू मस्ट बी रिमेम्बरिंग।"

"यस, यस, वट कम सून।"

ओह ! निवेदिता दौड कर बाहर आई। उसने अपने दोनों हाथ अपने वक्षस्थल से चिपका लिये, और कह उठी—'आह !' जैसे जान मे जान आई हो । अब एक क्षण भी बिना रुके वह कमरे के बाहर हो गई।

तभी अकेले—

'पिया मिलन को जाना, पायल को बाध कर
घु घरू झनकार कर

दबे दबे . . . .

आज उसकी हर बात मे विशेषता थी । उसने पीले रेशमी अडर-वीयर के ऊपर सफेद मर्सराइज्ड वायल की मुर्शिदाबादी साडी पहनी थी। उसकी किनार पर पतला सुनहली काम था । इसी तरह बाडिस का रग भी पीला था जिसके ऊपर वायल का ब्लाउज कसा हुआ था । ब्लाउज की बाहो के किनारे पर साडी से मिलता-जुलता सुनहरी काम था। इसके ऊपर हल्के सिलेटी रग का हाथ का कढा शाल उसने ओट रक्खा था। चट्टानो के बीच से आती हुई थिरकती हवा की तेजी मे और शीत की अधिकता मे उसकी वह शुभ्र-वसन्ती-वेशभूषा हिलोरे ले रही थी। अपनी वेणी को विशेष चतुराई और आकर्षण के साथ उसने बाधा था। उसमे अनेक गोल निकिल के छोटे-छोटे छल्ले उसने लगा रक्खे थे। मोटे क्रेप-सोल पर लाल प्लास्टिक के फीतो की पट्टीदार चप्पल उठाती, मृगशावक की भाति अपनी सुनहली गर्दन इधर-उधर मोडती वह आगे बढ गई।

एक-एक पग उसका स्थिर पड रहा था । और हृदय मूक दिशा से आने वाले मुक्त सगीत की तान मे लीन था । उसकी कजरारी उभरती आँखे उस हिमवात के स्पर्श से सजल हो जाती थीं। तब वह सफेद रूमाल से अपने नेत्रो की कोरो को धीरे से सुखा लेती थी । सर्दी मे नासिका रूमाल के बार-बार स्पर्श से रक्तिम होगई थी। सामने से अरुण की बाल किरणे उसके चन्द्र-मण्डल पर पड रही थी। जिससे उसका गौर वर्ण स्वर्ण के सदृश चमक रहा था ।

अपने बगले के छोटे से लान मे लगे गुलाब से, आते समय वह एक अर्ध विकसित पुष्प को तोड लाई थी जिसे चलते-चलते अपनी वेणी मे लगाती जा रही थी।

मुख्य पगडडी से प्रिमरोज को कट कर जाने वाली पगडडी के छोर पर पैर रखने के पूर्व उसने एक दृष्टि ऊँची चट्टान पर बने प्रिमरोज पर डाली और देखा कि जयन्त ऊपर प्रतीक्षा मे खडा है। उसका मन नाच उठा। वह अपने मन की हलचल को अपने ब्लाउज मे कसे आगे बढने लगी।

तब पायल को बाधकर, घु घरू झनकार कर दबे दबे ..पिया मिलन को जाना ..

प्रिमरोज की पगडडी पर उसके पग पड रहे थे, झूम-झूम कर, हौले, हौले। तब हृदय-मथन के आवेश मे वह शीघ्र चलने लगी। प्रिमरोज का भव्य द्वार उसके सामने था। वह बाउन्डरी के अन्दर जा पहुँची।

तभी लाहे के फाटक पर लटकते तार से जयन्त ने, फाटक को अन्दर से बाँध दिया।

निवेदिता ने नीची गर्दन करके जयन्त का अभिवादन किया। जयन्त मुस्करा रहा था। निवेदिता वा जयन्त निकट से निकट, एक दूसरे के समक्ष खडे थे। दो पल कोई कुछ न बोला। सूर्य की स्वर्णरश्मियाँ जयन्त व निवेदिता दोनो के ऊपर पड रही थी। निवेदिता अपने पैर के नीचे के क्रेप से वहाँ की ककरीली भूमि कुरेद रही थी। उसके नमित नेत्र जयन्त की पेन्ट की नीचे की मुडन पर थे। जयन्त अपलक निवेदिता की रूप-राशि का पान कर रहा था। तभी एक क्षण मे, अनायास, जयन्त व निवेदिता गूढालिगन मे आबद्ध हो गए।

दूसरे क्षण जयन्त ने निवेदिता को अपने से अलग किया। दोनो हाथो से उसके बाहु पकड कर वह उसे देखता रहा और दोबारा फिर उसे अपनी जकडन मे कस लिया।

"अब, अब छोडिये।" निवेदिता ने अपने सर को जयन्त के वक्ष पर रक्खे-रक्खे कहा।

"आह।" शब्दोच्चारण के साथ जयन्त निवेदिता से अलग हो गया।

"लखनऊ से कल ही लौटे?" निवेदिता तुरन्त सम्भल कर बातचीत करने के मूड मे कहने लगी।

'हाँ, निवे", कहकर जयन्त आगे बढा और "यह लाया हूँ"—अटैची को उठा कर बोला, "लखनऊ से तुम्हारे लिए।"

"क्या, अटैची?" निवेदिता ने हँसते हुए कहा।

हँसी मे साथ देते हुए जयन्त ने कहा, "नहीं, इसके अन्दर का सामान।" और उसने एक-एक करके ५-७ डिब्बे खोल डाले। सबसे पहले उसने एक छोटी-सी डब्बी खोली और उसमे से निकाल कर चमकती हीरे की एक अगूठी उसकी मीठी, मुलायम और पतली उगली मे पहना दी। एक बडे डब्बे से उसने एक जडाऊ जूडा निकाला। उसे निकाल कर वह निवेदिता के पीछे की ओर मुडा। वेणी मे चमकती गुलाब की कली को धीरे से उसने निकाला, निवेदिता के कपोलो और ओठो पर फेरा तब अपने कोट के कालर मे लगा लिया। वेणी मे उसने जूडा पहना दिया। तब मोतियो की छोटी माला एक डब्बे से निकाली और उसके काले डोरे पर लटकते लाल फुदने की गाँठ को खोल कर निवेदिता के गले मे पहना दी। माला पहनाते समय अपने दोनो हाथ निवेदिता के गले मे डाल कर वह देर तक उसको निहारता रहा। निवेदिता मौन, नीची आखे किये, खडी रही। एक मिनट बाद वह धीरे से बोली, "किन्तु यह सब क्या हो रहा है?"

"मीठा अनुराग।" और निवेदिता की पतली कलाई से उसकी घडी उतार कर उसने अपनी लाई हुई डायमन्ड की 'लेडीज-रिस्टवाच' उसके स्थान पर पहना दी। निवेदिता की घडी को हाथ मे लेकर वह देर तक उसे देखता रहा। तब 'शेफर्स के पेन' व 'पेसिल' के सेट को निकाल कर उसने निवेदिता के उभरे उरोजो के बीच मे ब्लाउज पर लगाना

चाहा जिसे निवेदिता ने स्वय ले लिया और अपने हाथ से जयन्त के कोट की जेब मे लगा दिया। जयन्त न माना और कहने लगा, "अच्छा अपने हाथ से ही ब्लाउज मे लगा लो।" लज्जा से निवेदिता के मुख पर लाली दौड गई। पेन व पेंसिल उसने अपने ब्लाउज मे लगा ली।

इस प्रकार निवेदिता चुपचाप अपना शृंगार कराती रही और अन्त मे गम्भीर होकर बोली, "इस प्रारम्भ का भविष्य ?"

"निवे, मेरी निवे, तुम्हारे सहयोग से अमर मिलन।"

"तब आगे बढ़िये" कहकर अपने दोनो कोमल करो की पखुडियो को उसने जयन्त के गालो पर रख दिया और उसके ओठ चूम लिये।

"यही मेरी दृढता है।" कह कर अलग हो गई।

"ओह निवे।" कहकर जयन्त ने अपनी आँखे मीच ली। तत्पश्चात् वह बोला, "निवे, अटैची तुम्हे ले जानी होगी। इसमे एक साडी, एक ब्लाउज पीस, एक शाल और बहुत-सी किताबे है।"

"यह तुम किसी समय पहुँचाना, मुझे पापा के लिये अभी बाजार से सेब लेने जाना है। पापा से मै यही कहकर आई थी। अब मुझे जाना चाहिये। हा।" और निवेदिता ने मुस्कराते हुए जयन्त की ओर देखा। जयन्त भी मुग्ध-सा क्षणभर के लिये स्वर्गिक सुखानुभूति मे डूबा निवेदिता को रह-रह कर प्यार करने के लिये मचल-सा उठा किन्तु कुछ समय, कुछ आशका और कुछ विलम्ब के भय से निवेदिता को उसे रोकने का साहस न हुआ।

निवेदिता बोली, "आप यही ठहरिए जितनी देर कि मैं अपना बंगला पार कर जाऊँ।"

जयन्त ने आगे बढ़कर फाटक के तार को खोल दिया। निवेदिता लजाती, इठलाती और मदहोश प्रिमरोज की पगडंडी से नीचे उतरने लगी। कुछ दूर जाकर उसने घूम कर देखा। जयन्त निर्निमेष उसे देख

रहा था। निवेदिता ने अपने हाथ जोड दिये। जिसका जयन्त ने भी उसी प्रकार उत्तर दिया। 'तब वह शीघ्रता से बढ गई। इस क्षण, कुछ समय पूर्व सम्पन्न होने वाले अनुराग, आलाप और मधुर गठ-बन्धन मे डूबने-उतराने की अपेक्षा उसे बाजार से शीघ्रातिशीघ्र सेब लाकर पापा के समक्ष जाने की चिन्ता हो रही थी। आवश्यकता से अधिक विलम्ब हो चुका था।

जयन्त भी आज अपने पूर्ण सुख, सौन्दर्य व ऐश्वर्य को लेकर सुन्दर वेश मे निवेदिता से मिलने आया था। वह विजयोन्माद मे प्रिमरोज के बगीचे मे सुवास लूट कर अपने घर जाने को उद्यत हुआ।

निकटवर्ती युक्लिप्टस के ऊँचे वृक्ष, इस मिलन की साक्षी लिये सस्मित, स्थिर व मौन खडे थे। प्रिमरोज की चट्टान के चतुर्दिक विस्तृत दूरस्थ पर्वत-मालाएँ पूर्वजो की भाति इन युगल प्रेमियो को आशीर्वाद दे चुकी थीं।

बाजार से फल का लिफाफा लाकर निवेदिता ने जगसिह को देते हुए पूछा, ' पापा ?"

"कमरे मे है।" जगसिह ने तत्परता से उत्तर दिया।

निवेदिता चुपचाप ड्राइग-रूम से होकर अपने कमरे मे चली गई। आते ही पलक मूँद कर वह पलग पर लेट गई। प्रिमरोज व जयन्त उसकी नस-नस मे व्याप्त था। वह धीरे से उठी। सामने दीवार के सहारे लगा अपना भव्य 'वारड्रोब' उसने खोला। उसके बीच के ड्राअर उसने खीचे और आत्म-विभोर होकर जयन्त द्वारा दिये हुए प्रेमोपहार यथास्थान सजा-सजा कर रखने लगी। वारड्रोब को बन्द करके वह पुनः पलग पर आ लेटी।

आज वह किसी के बन्धन मे जकड चुकी थी। आज वह अपने जीवन का नवीन पृष्ठ खोल चुकी थी। आज वह जयन्त की थी। आज

से जयन्त उसका था। और...और आज से वह प्रेयसी है, उसका एक सरस प्रेमी भी है जिससे वह अभी-अभी अनुराग का आदान-प्रदान व भविष्य की गहन प्रतिज्ञाएँ लिये चली आ रही है।

तभी आया ने आकर कहा, "मिस साहब, पापा याद कर रहे है। चलिये, खाना तैयार है।"

"ओह ! पापा. ." कह कर वह उनके निकट चली गई।

●

: १२ :

प्रमोद स्वस्थ होने पर उस विशेष व्यक्ति से मिलने के लिये छड़ी टेकता-टेकता एक दिन सैनेटोरियम की राह चल दिया। आज उसके मन मे ढाढस था। डर का स्थान तर्क ने ले लिया था।

वह चाहता था 'उससे' किसी चट्टान, सड़क के किनारे की कगार अथवा अखरोट के उद्यान मे न मिल कर 'उसके' काटेज मे मिले। दो क्षण बाते करे। यह क्या ? 'उसका' व्यक्तित्व ही अब तक अज्ञात है ?

वह अब भी शिथिल था। अधिक चलने मे, अथवा चढ़ाई पर उसका दम फूलने लगता था। सैनेटोरियम पहुँच कर उसे ध्यान आया, 'वह' कैसे और कहाँ मिलेगा। 'उसके' काटेज तक चढकर जाना ही एक कष्ट था। फिर वहाँ तक जाकर भी यदि 'वह' न मिले तब। यह सोच कर कि कोई न कोई तो मिलेगा ही, प्रमोद सैनेटोरियम के फाटक पर बने लकडी के छोटे से प्रतीक्षालय मे बैठ गया।

यह प्रतीक्षालय अथवा विश्रामालय ऐसे ही चल-फिर कर आने वाले थके रोगियो के लिये बना है। इसके पश्चात् सैनेटोरियम की चढाई, पहाड काट कर बनाई गई तीस-चालीस सीढियाँ और उसके पश्चात् सैनेटोरियम का विस्तृत मैदान, वे ही पृथक्-पृथक् भवन, रुग्णालय व चिकित्सालय।

दस ही मिनट बाद 'उसकी' कार सामने से आती दीख पडी। वह स्वय ही कार चला रहा था। आज 'वह' कुछ विशेष प्रसन्न भी जान पडता

था। 'उसने' भी दूर से प्रमोद को प्रतीक्षालय मे बैठे देख लिया। कार यथास्थान लगा कर 'वह' प्रमोद के निकट आया। प्रमोद ने नमस्कार किया जिसका उत्तर आज 'उसने' पूर्ण स्वस्थ होकर दिया। 'उसने' प्रमोद से हाथ मिलाया और उसके हाथ को आगे बढाते हुए अपने साथ चलने का आग्रह किया।

प्रमोद 'उसके' साथ हो लिया। 'वह' प्रमोद को लेकर सैनेटोरियम की सीढियो पर चढ गया। दोनो एक-दूसरे का हाथ अपने हाथ मे लिये चढते जा रहे थे। दोनो रुग्ण, भावुक और विचित्र। उनके पीछे-पीछे नौकर व शोफर पूर्ण सतर्क होकर चल रहे थे। नौकर के हाथ मे डलिया और कन्धे मे थर्मस लटक रहा था।

सीढियाँ चढकर वही घास का विस्तृत मैदान। 'वह' प्रमोद को लिये काटेज की ओर बढ चला। सामने दिखे रोगी, इधर-उधर जाते-आते, किसी के हाथ मे दवा की शीशी, किसी के हाथ मे दवा का परचा, अधिकाश के हाथ मे मूत के रग के कागज का लिफाफा, जिसके अन्दर बन्द हड्डियो के नासूर और उनके गलने के स्पष्ट प्रमाणो की काली-काली और डरावनी भयावह तस्वीर, फेफडो का एक्सरे, बाया फेफडा, जिसके नीचे रहता है दिल, किन्तु फेफडा और दिल दोनो गले हुए, दाहिना फेफड़ा, जिसके नीचे रहता है पाक्वाशय, वहभी गला हुआ, नही किसी के दाहिने-बाये दोनो गले हुए, केवल दो मूठ का सौदा, एक ठठरी भर शेष।

प्रमोद 'उसके' साथ आगे बढता गया। उस दिन जिस कोने से उसने रुदन का स्वर सुना था, उधर आज भी प्रमोद ने कई बार घूम-घूम कर देखा।

एकाएक तीव्र स्वर मे प्रमोद, "अरे" कहकर रह गया। उसने देखा सामने एक अधेड व्यक्ति, सर व कानो मे गरम मफलर लपेटे, बहुत से गरम कपडे पहने, ऊपर से दुशाला ओढे, छड़ी लिये सामने से आते-आते छटपटा कर भूमि पर गिर गया। इसके पहले वह ठीक से चल

रहा था। एक पल मे उसे तीव्र खाँसी का ठुनका आया और उसी लपेट मे वह अपने को न संभाल सका। सम्भवतः निर्बलता के कारण चक्कर खाकर भूमि पर गिर गया। उसके हाथ की दवा की शीशी दूर जा गिरी और चूर-चूर हो गई। दवा की तरलता चट्टानी घास पर बह गई।

प्रमोद, 'वह', नौकर व शोफर चार आदमी साथ चल रहे थे। कोई आगे नही बढा। गिरते को या गिर जाने वाले को सचमुच कभी कोई नही उठाता। उस व्यक्ति की तो सब बाते निराली थी। 'वह' अडिग उसी भाँति अपने काटेज की ओर बढ़ता चला जा रहा था। 'उसने' देखकर भी कुछ नही देखा। पीछे चलने वाले नौकर अपने स्वामी के डर अथवा पूर्वादेश के कारण आगे नही बढ़े। इन तीनो की उस रोगी के प्रति इतनी उपेक्षा देख प्रमोद को मन ही मन बडी ग्लानि हो रही थी। उससे न रहा गया। वह 'उसका' हाथ छोडकर उस रोगी के पास जाने का उपक्रम करने लगा। किन्तु 'उसने' उसका हाथ सुस्थिर होकर कसके पकड लिया। जैसे दुःखी से 'उसे' कोई मोह नही। जैसे 'वह' ससार से पूर्णतः उदासीन हो और प्रत्येक को 'अपने' जैसा ही देखना चाहता हो।

कहीं 'वह' भी उस रोगी की भाँति तिलमिलाने न लगे, इस डर से प्रमोद ने बल-पूर्वक अपना हाथ नहीं छुडाया।

रोगी प्रमोद के सामने गिरा, उठा, सम्भल कर पुनः सम्भवतः दूसरी शीशी लगाने के विचार से जिधर से आया था उधर ही चल दिया, वैसे ही जैसे उसकी जीवन-रूपी शीशी भी टूट गई हो। अब वह दूसरी ही पाएगा। प्रमोद के समक्ष रोग की भयानकता का विभ्रम चित्र खिच गया। वह सोच रहा था, दिन मे न मालूम कितनी बार ऐसी अथवा इससे भी कारुणिक घटनाएँ इस सैनेटोरियम की बाउन्डरी मे होती रहती होगी। यहाँ रहने वाले भी इस सबसे परिचित हो गए है, आदि। तभी वह या उसका नौकर अविचल अपने मे ही लीन रहे। इस घटना से द्रवित किन्तु असहाय प्रमोद उसके काटेज मे आ गया। वह अब भी सोच रहा

था कि यदि वह रोका न जाता तो निश्चित उस रोगी की सहायता करता।

नौकर ने आगे बढ़कर कमरे का द्वार खोला। 'वह' और प्रमोद कमरे के अन्दर चले गए। आते ही 'वह' प्रमोद का हाथ छोड़कर पलग पर जा लेटा। नौकर ने तुरन्त आज एक कुर्सी बाहर से लाकर प्रमोद के लिये डाली जिस पर प्रमोद अपने मे उलझा बैठ गया। वह कुर्सी भी आकर्षक थी। उस प्रकार की सुन्दर फोल्डिग कुर्सी का वहाँ मिलना असम्भव था। गोदरेज की लोहे की निकिल दार फोल्डिग कुर्सी उसकी अपनी होगी। प्रमोद सोचने लगा 'वह' इस उदासी मे भी पहाड़ पर न मालूम क्या-क्या लाया है? प्रमोद नौकर के विवेक व स्फूर्ति के सम्बन्ध मे भी निरन्तर सोचता रहा। रोगी के गिरने का दृश्य अब भी प्रमोद के मन को घेरे हुए था।

विश्वाम अथवा अविश्वास की बात जाने दीजिये। उस परम प्रबल अदृश्य शक्ति के क्रिया-कलापो पर हम जिस भाति आश्रित है उसे कोई भी तर्क, किसी भी आधुनिक आविष्कार की शक्ति पर गर्व करने वाला मानव, सुख, ऐश्वर्य, समृद्धि की तन्द्रा मे निमग्न चेतन रूप जड मानव, शोक, ग्लानि, अतृप्ति, असफलता और मृत्यु से सकारण अथवा अकारण त्रस्त मानव; किन्ही अशो मे भी उसकी सृजनात्मक, निर्माणकारी अथवा विध्वसकारी तत्वो पर अविश्वास क्या एक क्षण के लिये भी तर्क, वितर्क के लिये समय नही पाता। उस शक्ति का क्या स्वरूप है? वह ईश्वर के रूप मे है तीर्थकर है, पैगम्बर है, ईशु है, प्रकृति है, अदृश्य है कुछ भी है। जीवधारी के देखने, सुनने, मनन अथवा अनुभव करने का जहाँ तक प्रश्न है वह सब ओर उसका खिलौना है। कौतुक का केवल मात्र कारण।

प्रमोद सोच रहा था। यह सैनेटोरियम, इसके अन्तर्गत आधुनिक आविष्कारो की झाँकी, नाना प्रकार के उपादान, आधुनिक चिकित्सा के विशेषज्ञ ये डाक्टर, यह सब मिलकर केवल मात्र एक सतोष है, एक अस्थिर विश्वास। आशा और विश्वास की धुरी पर स्थिर इस प्राणी

को साधन चाहिये अपनी शान्ति के लिये और वह अपनी विवेक, बुद्धि के अनुसार प्रवचना का ही दास है, प्रतिपल। जीवन काल मे, मृत्यु के पूर्व और उसके पश्चात् भी।

तब वह सोच रहा था, अब न मालूम किस कार्य की पूर्ति के हेतु यह खाँसी से गिरने वाला जर्जर रोगी अपने जीवन को घसीट रहा है। उसकी लालसा ने अभी समाप्ति नही चाही है। वह आया है इस सैनेटोरियम मे मृत्यु को भी प्रवचना मे दूर करने के हेतु। क्या इसकी अन्त्येष्टि मे इसके दुःखो का अन्त, मानसिक वेदनाओ से मुक्ति एव शारीरिक अस्तव्यस्तता की समाप्ति नही अन्तर्निहित है? किन्तु ससार की मिथ्या जकडन इसे अभी भी कसे है। अधूरी-शिक्षा के प्रभाव मे हम इसी सबको कह देते हैं वेदो की आध्यात्मिकता, थोथी आस्था, दार्शनिकता इत्यादि। परन्तु सत्य न यहाँ छिपता है, न पश्चिम मे अथवा न विश्व के किसी कोने मे। सब मानते है, जो नही मानते थे अब मानने लगे हैं। अभी तक कोई कला चल न्ही पाई है। आगे की राम जाने। पर बात भी अभी ही की है। सम्भव है विश्वास बदले।

प्रमोद यो ही डूबा कुर्सी पर बैठा रहा। तब पलग पर लेटे-लेटे 'उसने' कहा, "आप कुछ सोच रहे हैं। कम सोचा कीजिये। नुकसान होता है, मेरी तरह। तब 'उसने' प्रश्न किया, "आपका शुभ नाम?"

"प्रमोद"

"यहाँ कैसे आए?"

"मैं स्वय भी नही जानता।" प्रमोद ने प्रश्न की जटिलता का ध्यान करके गोल-मोल उत्तर दे दिया। उसने सोचा, न जाने प्रश्नकर्ता का आशय पहाड आने से है अथवा सैनेटोरियम तक उसके पास 'आने' से है। किन्तु इस उत्तर से प्रश्नकर्ता प्रभावित अवश्य हुए।

"कहा रहते हैं?"

"लखनऊ।"

"आपको मैं आज से अपना मित्र बनाना चाहता हूँ, यदि आप भी स्वीकार करे।"

"अवश्य। मैं स्वय न मालूम क्यो आप से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ ?"

"देखिये, यदि मेरी माने तो कम से कम बात करनी चाहिये। हाँ, तो मेरी मित्रता की एक शर्त है।"

"यदि मानने योग्य हुई तो उसे भी मानूँगा।"

"देखिये, यह भी अधिक बोलने का प्रभाव है। फिर भी वह आपके क्या सबके न मानने योग्य है। मेरे सम्बन्ध मे कुछ भी जानने का प्रयत्न न कीजियेगा।"

"परन्तु जितना आपने मेरे सम्बन्ध मे जाना है उतना आपको भी बताना ही पडेगा।"

एक क्षण मौन रहने के पश्चात् 'वह' मुस्कराया और बोला, "मेरा नाम किशोर मजूमदार है। रायबरेली से आया हूँ। क्यो ?"

इतना कहते ही 'वह' पलग पर छटपटाने लगा। न मालूम कितनी बार उसने पलग पर करवट ले ली। 'वह' कभी एक तकिया वक्षस्थल के निकट लाता, कसकर उसे दोनो हाथो से दबाता, कभी उसे एक ओर फेक देता। तब बड़े तकिये पर अपना सर पटक लेता।

प्रमोद ने सोचा, व्यर्थ यह प्रसग सामने आ गया। और उठकर वह उसके पलग के निकट जाकर उसे संभालने को आगे बढ़ा। तभी बाहर द्वार पर घटी बज गई।

नौकर दौडकर कमरे मे आया। देखकर बिना कुछ कहे उसने थर्मस खोला, उसमे से कुछ निकाला, दूसरे झोले से एक छोटी शीशी निकाली, शीशी की पाँच बूँदे दवा उसने गिलास मे डाली और हिला कर किशोर महोदय की ओर बढा दी। एक श्वास मे किशोर महोदय ने उसे पी लिया और पाँच मिनट बाद स्वस्थ हो गये। प्रमोद की ओर आकर्षित होकर 'वे' पुनः कहने लगे—"हाँ मै यहाँ आया हूँ शीघ्र मृत्यु को चूमने।

प्रमोद चुप रहा।

"देखिये मेरा अनुरोध है। आप मुझसे मिलते रहियेगा।"

"अवश्य, आप विश्राम करे।" कहकर प्रमोद उठ खडा हुआ।

सैनेटोरियम के विस्तृत हरे मैदान को पार कर वह बाहर आने लगा। मार्ग मे प्रमोद उस स्थान को पुनः देखने लगा जहाँ वह रोगी गिरा था। सामने से वह दवा लिये पुनः आ रहा था। सहानुभूति से प्रमोद का मन भर गया किन्तु वह चुपचाप बढा चला आया।

सामने से एक डाक्टर दो अन्य व्यक्तियो के साथ तेजी मे एक ओर को जा रहे थे। प्रमोद ने अनुमान लगाया, किसी की अवस्था गम्भीर है। कितना विषादपूर्ण है सैनेटोरियम का वातावरण, प्रमोद बढता ही गया।

सडक पर आने पर उसने बादलो की गडगडाहट सुनी और वह घर की ओर शीघ्र ही बढने लगा।

●

: १३ :

बाजार, बंगलो व सडक से बचाकर वही एक पहाडी टुकडा, लम्बा, चौडा, विस्तृत मैदान के रूप मे किनारे को था, जहाँ सुबह-शाम पहाडी बच्चे इकट्ठे होकर खेलते-कूदते। कभी बाहर से आने वाले यात्रियो का सामान इधर-उधर फैलाव मे रक्खा रहता। डाडिया व बाहर से आए रिक्शे भी वही रुकते थे। फल व तरकारी ढोने वाले खच्चरो का झुण्ड भी वही विश्राम करता। कभी बाहर के खेल-तमाशे वाले अपने डेरे-तम्बू लिये वही अपना डेरा डालते। पहाडी त्यौहार और छोटे-मोटे मेले भी वही होते थे।

यह मैदान प्रमोद के मकान के सामने पडता था और वह अपने बरामदे मे बैठा-बैठा मैदान मे होने वाले कार्यों व दृश्यो को देखा करता था।

आज उसी मैदान मे छोटा-सा शामियाना लगा था। पहाडी लडके और कुछ डोटियाल लाल-पीली झंडियाँ और पहाडी हरियाली इधर-उधर लगा रहे थे। शामियाने से थोडा आगे बढ़कर तीन बास लगाकर एक छोटा-सा दरवाजा भी बना था। जिस पर एक लकडी की तिपाई रखकर हरियाली बाँधी जा रही थी। मैदान मे चहल-पहल हो रही थी।

प्रमोद ने सुन रक्खा था उस कस्बे मे तीन छोटे-छोटे विद्यालय है, जहाँ बच्चे 'अ', 'आ' सीखते हैं। इन्ही स्कूलो के बच्चे अपने स्कूल के स्टूल व छोटी-छोटी तिपाइयाँ ला ला कर दौडते-भागते शामियाने में रख

रहे है। बडे लोग बडे स्टूल व तिपाइयॉ ला-लाकर रख रहे थे। दो आदमियो ने एक छोटा-सा तख्त शामियाने मे पीछे की ओर ठीक बीच मे लाकर रख दिया। वही के दो-तीन प्रमुख व्यक्ति जिनसे प्रमोद भी थोडा-बहुत परिचित हो गया था, वही खडे होकर कार्य की गतिविधि को देख रहे थे व अपने सुझाव देते जाते थे। प्रमोद दूर बरामदे से सब दृश्य देखता रहा। उसने अनुमान लगाया—आज मैदान मे कोई समारोह होने वाला है।

भोजनोपरान्त वह नीचे उतरा और निकट ही के एक पानवाले से पूछा, "यह कैसा इन्तजाम हो रहा है?"

एक हाथ से पान लगाते हुए बडे सन्तोष और प्रसन्नता की मुद्रा मे उसने उत्तर दिया, "बाबू जी, आज हमारे पहाड की एक बडी कमी पूरी हो रही है। यहॉ बडा स्कूल बनाने का आज एलान होगा। अरे बाबू जी, हमारे पहाड मे आपका ऐसा एक से एक बाबू लोक आता है। एक कोई बडा बाबू सन्टोरियम मे आया है। उई दिया है पच्चास हज्जार रुपीया, स्कूल बनाने के वास्ते। और बाबू, हम तो उसको देखा नई। कोई-कोई कहता है, राजा लोक आया है।"

प्रमोद ने सुना और एक क्षण मे उसे किशोर महोदय का स्मरण हो आया। उसने सोचा—होगा कोई। और वह आगे बढ गया।

बाजार मे चारो ओर चहल-पहल थी और वही चर्चा। बाजार मे भी पहाड के ढंग से दो-चार दूकानो मे हरियाली बॉधी जा रही थी। पहाडी घास इधर-उधर छितरी पडी थी। एक जगह महीन आवाज़ मे ग्रामोफोन अपनी तान अलाप रहा था। उसके निकट बीसो छोटे-बड़े लडके हल्ला मचा-मचा कर सुन रहे थे।

प्रमोद जब निकट से निकला तो एक स्थान पर दो व्यक्ति आपस मे वार्तालाप कर रहे थे, "कलट्टर साब का आने का बात हो रहा है। कल शाम को बडा शाहजी गिया था।"

प्रमोद उन्ही मे से एक से पूछने लगा, "क्यो साह जी, यह जलसा आपका किस समय होगा।"

"तीन बजे बाबू जी, आप देखियेगा। जुरूर। और जलूस भी निकलेगा यहाँ से।

प्रमोद ने समझा सारा कस्बा आज आनन्दित है। प्रमोद भी वातावरण का आनन्द लेता आगे बढ गया। ढाल की ओर ही वह चल पडा। बाजार समाप्त होने के बाद दाहिनी ओर मिलिट्री बैरक बने हुए हैं। यहाँ फ़ौजी लोग बराबर रहते है। कभी बाहर से आने वाली फ़ौजी टुकडियाँ भी इन बैरको मे पडाव डालती है। बाजार व बैरको के बीच एक मैदान बहुत दिन से योही खाली पडा था। आज उस मैदान मे भी चहल-पहल हो रही थी। तीन बासो का द्वार यहाँ भी बनाया जा रहा था। और उस पर हरियाली लपेटी जा रही थी। वहाँ भी लाल-पीली झडियाँ लगाई जा रही थीं। वहाँ भी कुछ लड़के उछल-कूद मचा रहे थे। प्रमोद ने अनुमान लगाया, सम्भवतः इसी मैदान मे स्कूल बनने जा रहा है।

थोडा आगे जाकर प्रमोद जल्द ही लौट पडा। उसे भी बाजार की सजावट व जलसे की तैयारी का आकर्षण हो रहा था। लौटने पर वह शामियाने के अन्दर गया और थोडी देर वही एक कोने मे खाली बैंच पर बैठ गया। शामियाने मे सजावट व प्रबन्ध लगभग समाप्त ही हो चुका था। समय भी निकट था।

बैठे-बैठे प्रमोद को जयन्त का ध्यान आ गया। वह लखनऊ गया है। उसके लखनऊ जाने का कारण? प्रमोद उस सुन्दर लड़की का नाम नही जानता। किन्तु उसने विचार किया, वह कल ही बाजार मे दिखाई दी थी, तब फिर वह लखनऊ किसी अन्य कारण से गया होगा। जयन्त का स्वास्थ्य ठीक हो गया है। वह कितना सुघर नवयुवक दीख पडता है। प्रमोद ने उसके प्रति मन ही मन अपनी शुभ-कामना व्यक्त कर दी।

प्रमोद जिसे भी प्यार करता है, जी भरकर करता है। उस प्यार मे उसे अमृत तुल्य सुखानुभूति प्राप्त होती है।

शामियाने मे धीरे-धीरे लोगो का आना प्रारम्भ हो गया था। भीड़-भाड मे प्रमोद को जयन्त भी दिख गया। सकेत द्वारा प्रमोद ने जयन्त को अपने निकट ही बुला लिया। जयन्त से प्रमोद ने प्रश्न किया, "कहो कहाँ रहे? लखनऊ मे इतने दिन लगा दिये।"

"नही भाई साहब, लखनऊ से आए तो कई दिन हो गये। इधर मै आपके पास आ ही नही पाया।"

इतने ही मे एक पर्वतीय बाबू साहब अपना ढीला-ढाला पाजामा व ऊँचा कोट पहने जयन्त के पैर को कुचलते हुए आगे बढकर एक कुर्सी पर जा बैठे। जयन्त का एक तो पैर कुचला दूसरे उसका नया 'शू' खरोच खा गया। जयन्त ने बिना कुछ कहे उन बाबू साहब के एक तमाचा जड़ दिया

देर क्या लगती थी। बात की बात मे दूसरा समारोह प्रारम्भ हो गया। जयन्त के निकट भीड एकत्र हो गई।

"इस साले ने मेरा पैर कुचल दिया। क्या अन्धा है?" जयन्त ने टेढी गर्दन करके तेज आँखो से उसकी ओर देखते हुए भीड़ के लोगो को अपनी सफाई दी।

"लेकिन आप ने मारा क्यो?" भीड के किसी आदमी ने कहा। पहले तो चाँटा खाकर वह व्यक्ति अपने स्थान पर बिना कुछ कहे भौचक-सा बैठा रहा। किन्तु जब भीड के लोगो ने उसका पक्ष लेना आरम्भ किया तो वह भी चोट खाए साँप की तरह फुफकारता हुआ चिघाडने लगा, "तू, तूने मुझे मारा क्यो?"

जयन्त ने अपने बनारसी ठाठ से बात प्रारम्भ की। "देख बे तू-तू के बच्चे। ठीक से बोल नही तो गर्दन अमेठ दूगा।"

जयन्त की जोरदारी देखकर भीड के एक व्यक्ति ने अपनी पहाडी भाषा मे कुछ कहा, जिसका आशय स्पष्ट था कि यह कैसे चलता है कि

पैर कुचल दिया। एक क्षण पुनः शान्ति हो गई। फिर एक व्यक्ति ने जरा गरम होकर कहा, "ऐ बाबू साहब, मारना-वारना ठीक नही है, वर्ना अभी "

प्रमोद ने खडे होकर सबको सान्त्वना देते हुए कहा, "जाने दीजिये, भीड-भाड मे यह सब कुछ चलता ही रहता है। उन्होंने उनका पैर कुचला, उन्होंने उनके तमाचा लगा दिया। मामला बराबर हो गया। अब उसमे बहस की क्या बात है?"

धीरे-धीरे लोग अपनी पहाडी भाषा मे कुछ बडबडाते तितर-बितर हो गए। वह जयन्त की ओर निरन्तर घूरता रहा। जयन्त प्रमोद से बातचीत मे लग गया। हँसते हुए प्रमोद बोला, "जयन्त, हो बडे तेज। तमाचा नही मारना चाहिये था। तुम हो सूट पहने, सभ्य जामे मे। लगता है पैसे वाले हो। कसूर चाहे उस व्यक्ति का ही था परन्तु सब लोग यही कहते है, बडे आए रईस, बडे आए पैसे वाले, छोटे को कुछ समझते ही नही, इत्यादि। प्रगति मे पैसे से इतना द्वेष है। व्यर्थ। जहाँ पैसे का प्रसग नही है वहाँ भी पूँजीवाद हाय, हाय। पूछिये क्यो? क्या बिना पैसे खाना मिल जाता है? और सचमुच जहाँ पैसा आदमी को दाबता है, वहाँ एक कला नही चलती। वह दाबता ही है। और ये जोर-जोर से नाश करने वाले ही उससे दबते है अधिक। पैसा जहाँ ऐसे गरजने वाले लीडरो को या उनके सिद्धान्त को क्रय करता है वहाँ से ये आते है उन्ही की कारो मे, कोच की गरमाहट और जेब की गरमी लेकर। लाल-पीले झंडे का प्रचार, सिद्धान्तो की चीख भी बिना नोटो के नही चलती। साधारण रात-दिन के कामो मे गालियाँ दे बैठेंगे ये लोग सभ्य समाज को भी। इसलिये कि वह ठीक से रहने का मूल्य जानता है।

"भाई साहब, पैर पिच गया और गुस्सा भी आ गया। उल्लू, साला अन्धे की तरह झपट रहा था। भीड़, इसका तो काम ही उलटी बात पकडना है।"

"अच्छा छोडो, क्या हाल-चाल है ? बडे ठाठ है।" प्रमोद ने जयन्त से हँसते हुए कहा।

जयन्त बहुत बढ़िया सूट पहने हुए था। कपडो से भीनी सुवास आ रही थी। गोरे बदन पर घु घराले काले बाल, सुवासित तेल पी कर इधर-उधर झूम रहे थे और बडे मोहक प्रतीत हो रहे थे। कोट व पेन्ट पर कही एक शिकन तक नही थी। सूट भी नया ही सिला लग रहा था। ऊपरी जेब मे 'पार्कर' चमक रहा था। और उसी के साथ मुडा हुआ केलिको का सफेद रूमाल। जूता एकदम नया, केवल अभी लगी खरोच को छोड कर शीशे से कम चमक उसमे नही थी। प्रमोद के हास्य पर वह मुस्करा दिया। और बोला, "भाई साहब सब आपकी ही कृपा है। सीधे वही से आ रहा हूँ।"

"तभी, तभी तो। क्या बुढ्ढे को भी सर कर लिया?" प्रमोद ने आनन्द लेते हुए कहा।

"बुढ्ढा और सर, इम्पासिबल, इम्पासिबल, अरे भाई साहब, वह तो धुत् पडा सोया करता है।"

"चलो आनन्द ही आनन्द है। इस बार पूरी तरह जम कर नाव को पार उतारना।" प्रमोद बात को जमाते हुए कहने लगा। जयन्त को भी आनन्द आ रहा था। हर प्रणयी को ऐसी बातो मे स्वय ही बड़ा रस मिलता है। इसी सर्राटे मे कभी फिर वे अपनी गूढ बात भी कह कर हानि उठा बैठते है।

तभी जयन्त बोला, "भाई साहब, पिता जी तो चले गये होगे, या है अभी।"

"जयन्त, जीवन रूपी रथ का पहिया एक पल भी आवश्यकता से अधिक किसी को एक स्थान पर नही रुकने देता और तब, जब व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियो से जहाँ दबा पडा हो। वे शीघ्र ही लखनऊ चले गए। तुम इधर आए ही नही। माता जी भी याद कर रही थी।

"अभी चलूँगा।" कहकर वह बढ़ती भीड की ओर अपनी दृष्टि

पसारने लगा। "धीरे-धीरे जलसे का समय आ गया। भीड भी बढ रही थी। जयन्त बोला, "सुना है सैनेटोरियम के किसी मरीज ने हाई स्कूल बनाने को पचास हजार रुपये दान दिये है। कही ये वे ही महाशय तो नही?"

"सम्भव है। मुझे भी कुछ ऐसा ही लग रहा है।" प्रमोद ने जयन्त की बात दोहराई।

तभी भीड मे सैनेटोरियम के डाक्टरो का भी एक दल दिखाई दिया। डाक्टर खाडेकर को देखकर जयन्त ने हाथ जोडे। डाक्टर साहब ने जयन्त के निकट आकर कहा, "हमारी चीज लखनऊ से ले आए।"

"जी हॉ, डाक्टर साहब।"

इतने ही मे बाजार की ओर से हल्ले-गुल्ले का स्वर सुनाई दिया। प्रमोद बोला, "जयन्त, जल्लूस भी आ रहा है।"

"जल्लूस।" जयन्त ने दोहराया।

"पहाडी जल्लूस।" दोनो हँस दिये।

डाक्टर खाडेकर से बात-चीत करते समय सम्मानरूप मे प्रमोद व जयन्त खडे हो गए। इतने मे ही जुलूस आ गया और भीड बढ गई। घूम कर प्रमोद व जयन्त ने जब अपने स्थानो पर बैठना चाहा तो उन्होंने देखा उनके स्थान मे कोई दो शाहजी आ डटे हैं और बडी लापरवाही से सामने खडी दो मूर्तियो को न देखकर सामने की भीड को देख रहे हैं। जयन्त आगे बढा। किन्तु प्रमोद उसे लेकर शामियाने के बाहर एक किनारे आकर खडा हो गया।

इतने ही मे एक बडी भीड आकर मैदान मे फ़ैल गई। इस भीड के पीछे-पीछे एक रिक्शा आ रहा था। प्रमोद व जयन्त ने देखा—सौम्य मुद्रा मे किशोर महोदय उस पर स्थित हैं। तब प्रमोद व जयन्त ने एक-दूसरे को देखा। जयन्त बोला, "वही हो सकता था। मेरा अनुमान ठीक निकला।"

शामियाने के नीचे वाले छोटे तखत पर दो कुर्सियॉ डाली गई थी।

मेज पर एक सफेद चादर बिछी थी और उस पर एक फूलदान रक्खा था। किशोर महोदय के तखत के निकट पहुँच जाने पर सब लोग बैठ गए। किशोर महोदय ने तखत से अलग एक कुर्सी पर नीचे स्थान ग्रहण किया। सब लोग शान्त होकर कार्य-क्रम देखने को तत्पर हुए। दो-चार कार्यकर्ता अवश्य इधर-उधर व्यवस्था करते घूम रहे थे। तखत के ऊपर की दोनो कुर्सियाँ अभी रिक्त थीं। तखत के निकट नीचे पडी कई कुर्सियो मे बैठे व्यक्तियो मे से एक वृद्ध सज्जन उठे और सबको हाथ जोडकर नमस्कार किया। तब पास ही बैठे एक व्यक्ति के हाथ से उन्होने दो मालाएँ अपने हाथ मे ले ली और बोले, "मै मुक्ति शाह से निवेदन करता हूँ वो सभापति बनै।" उपस्थित जनता ने तालियाँ बजा दी।

अन्य लोगो के मध्य बैठे मुक्ति शाह, गौर वर्ण, उच्च शरीरधारी बडा सा सफेद साफा और लम्बा कोट पहने आगे बढे और तखत पर पडी एक कुर्सी पर आ डटे। उनके मस्तक पर लाल चन्दन लगा हुआ था। उन्होने बाटा कम्पनी का कैनवैस का जूता पहन रक्खा था जो आज ही का लिया हुआ नया मालूम हो रहा था। चूडीदार पाजामा नीचे को खिसकता जाता था, जिसे वे बार-बार सभाल लेते थे। कुर्सी पर बैठ कर उन्होने उपस्थित जन-समूह को नमस्कार किया। वृद्ध महाशय ने जो सम्भवतः उस स्थान के मुखिया ही होगे, मुक्ति शाह को माला पहनाई। पुनः तालियाँ बज उठी। पहाडी लडके हो-हो करके चिल्ला उठे। जिससे सभास्थल हँसी से गूज गया।

इसके पश्चात् वृद्ध महोदय किशोर महाशय की ओर बढ़े। किशोर महोदय सभास्थल से दूर एक पहाडी चोटी की ओर निर्निमेष देख रहे थे। उनका नौकर व शोफर उनके पीछे खडे थे। वृद्ध महाशय ने किशोर महोदय के निकट आकर कहा, "पधारिये।"

किशोर महोदय वैसे ही शान्त बैठे रहे। उनका नौकर कुर्सी की ओर बैठा। जनसमूह कौतूहल से देखता रहा। नौकर ने पीले रंग के

रेशमी झोले के अन्दर से मढा हुआ एक बडा-सा चित्र निकाला और कुर्सी पर स्थापित कर दिया। प्रमोद व जयन्त भी दूर खडे बडी उत्सुकता से वह सब कार्य देख रहे थे। किशोर महोदय सारे कार्य-क्रम से दूर नीरव आकाश मे उडते पक्षियों की ओर आकर्षित थे। तभी नौकर ने माला वृद्ध महाशय से लेकर उस चित्र के ऊपर पहना दी।

तब किशोर महोदय उठे। नौकर ने झोले से एक गुलाब की माला निकाल कर उनके हाथ मे दी। माला किशोर महोदय ने उस चित्र पर पहनाई और अपने कोट की जेब से दो फूल निकाल कर चित्र के आगे रख दिये और वे पुनः कुर्सी पर आ बैठे।

दूर खडे प्रमोद को कार्य से अधिक कौतूहल कार्य-कर्ता पर हो रहा था। नौकर किस प्रकार मूक निर्देशों पर पूर्ण व्यवस्थानुसार समस्त कार्य सम्पन्न करता है। ठीक समय पर चित्र निकालना, कुर्सी पर रखना, वृद्ध महाशय से माला लेकर पहनाना, दूसरी माला चुप-चाप निकाल कर देना, सब कुछ वह मौन कर रहा है। यह पूर्वादेश का फल है अथवा नौकर की अपनी तीव्र बुद्धि। प्रमोद इस सब मे विशेषता देख रहा था।

चित्र भी विचित्र था। वह किसी सुन्दरी नारी, पुरुष, महापुरुष अथवा देवता का न था। वह था एक भाव पूर्ण रगीन रेखा-चित्र जिस का भाव प्रमोद इतनी दूर से समझ सकने मे असमर्थ था।

चित्रोद्घाटन के अनन्तर मुक्ति शाह का भाषण प्रारम्भ हुआ। वे उठे, थोडा खासे जैसे बडा भारी व्याख्यान देने की तैयारी मे हो और एक साथ बोलना प्रारम्भ कर दिया, "हम अपने गेस्ट का बारे मे कुछ जानते नही है। उनको हम स्वागत करते है। हम लोगों के बच्चो को ५० हजार रुपया देकर उन्होने अपना मान बढाया है। हम उनका बडा सुक्रिया मानते है।" और वे धम्म से कुर्सी पर बैठ गये।

लोगो को तब अत्यधिक आश्चर्य हुआ जब मुक्ति शाह के भीषण-भाषण के पश्चात् नौकर ने चमडे के बडे बैग से ५० हजार के नोटो की

एक-एक करके अनेक गड्डियाँ निकाल कर पहले चित्र के सामने, तब मुक्ति शाह के सामने मेज पर रख दी ।

इतने ही मे पीछे से एक हल्ला सुनाई दिया—'कलट्टर साहब, कलट्टर साहब आ गिया ।' और पुनः सन्नाटा छा गया । कई चपरासियो के साथ कलक्टर महोदय जो अंग्रेज़ थे शामियाने मे पधारे । उनके आते ही सब लोग खडे हो गये । किशोर महोदय उसी भाति निश्चल बैठे रहे । उस समय वे चित्र मे लीन थे ।

कलक्टर महोदय आकर मुक्ति शाह की कुर्सी पर जा विराजे । पहले तो सभापति मुक्ति शाह खडे रहे किन्तु उनके सम्मान मे किन्ही सज्जन ने अपनी कुर्सी रिक्त कर दी और स्वयं बीच ही मे ठूंठ ऐसे खडे रह गए । पीछे के लोगो के हल्ला मचाने पर वे बहादुरी से पीछे हट आये और हटते-हटते उन्हे शामियाने के बाहर खडे रहने का स्थान मिला । इस समय उनको कलक्टर साहब व मुक्ति शाह दोनो अखर रहे थे ।

तभी पहले से ही निर्धारित वहाँ के रेंजर साहब आगे बढे और उन्होने स्फुट अंग्रेजी भाषा मे कलक्टर साहब का स्वागत किया ।

वे अपनी गर्दन और सर हिला-हिला कर ऐसे बोले जैसे पार्लमेन्ट मे भाषण कर रहे हो । वे बोले, "आई, आन दिस अकेजन, आन दिस प्लेस, हार्टली वेलकम अवर कलक्टर साहब, मिस्टर टॉमस सर ।" तब उन्होने एक बार कलक्टर महोदय की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देख लिया और तब पुनः हाथ उठा-उठा कर बोलने लगे "एन्ड आई, विश टु वेलकम अवर आनरेबल डोनर सर. ।" और बिना बोले ही वे थोडी देर खडे रहे । यही समझना कठिन हो गया कि उनका भाषण समाप्त हो गया है या वे कुछ और बोलेंगे ।

मिस्टर टॉमस, "वैरी वैल, वैरी ग्लैड टु सी यू आल" कहकर उठ खडे हुए । वे किशोर महोदय को धन्यवाद देना चाहते थे किन्तु किशोर महोदय चित्रवत् बैठे ही रहे । मिस्टर टॉमस को सम्भवतः अपमान का भी भान हुआ । परन्तु पचास हजार की गड्डियाँ सामने मेज पर रक्खी थी ।

तब उनकी सज्जनता ने उन्हे कुर्सी छोडने पर विवश किया। वे किशोर महोदय के निकट स्वय आए। उनके निकट आते ही वे चकित होकर अनायास कह उठे। ओह, गुड गाड, यू मजूमदार हियर, हाऊ, हाऊ, यू डोनेटेड फिफटी थाउजैड्स।

किशोर महोदय वैसे ही गम्भीर, निश्चल और शान्त उठे तथा अपना हाथ उन्होने आगे बढाकर अगरेजी सभ्यता के अनुसार मि० टॉमस का स्वागत किया और पुनः कुर्सी पर बैठ गये। मि० टॉमस एक क्षण किशोर महोदय के बैठने पर खडे ही रहे किन्तु दूसरे क्षण वे अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ गये। इस सम्बन्ध मे वे कुछ सोचते उसके पूर्व ही किशोर महोदय के नौकर ने आगे बढकर उनके कान में कुछ कहा...उधर जनसमूह मे भी फुस-फुसाहट का स्वर-ध्वनित होने लगा।

नौकर की बात समाप्त होने पर मि० टॉमस ने कहा, "ओ, आई सी।" और तब समवेदना के भाव उनके मुख पर भासित हो गये।

तदनन्तर मि० टॉमस ने अपना अगरेजी का सक्षिप्त भाषण दिया। जिसमे उन्होने पचास हजार के दान की मुक्त-कंठ से सराहना की। और उसके सदुपयोग पर हर्ष प्रकट किया। उन्होने यह भी कहा कि वे किशोर मजूमदार महोदय को भली प्रकार जानते हैं व उन्हे वहाँ देख कर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। किन्तु नौकर की बात के बाद वे उनके सम्बन्ध मे कुछ भी व्यक्त करने मे असमर्थ है।

करतल ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

"मैदान मे पत्थर रखने सब लोग चले," चलते-चलते सभापति मुक्ति शाह ने अपने पद से घोषणा की।

मि० टॉमस जनता के मध्य से होकर बाहर ले जाए गये।

किशोर महोदय भी उठे। सब लोग उन्हे देख-देख कर मन ही मन सराहना करते रहे। पृथक्-पृथक् दलो मे बट कर लोग सभा व उसकी कार्यवाही के सम्बन्ध मे विभिन्न वार्ता करते रहे। पूरन शाह अपने साथ

के लोगो से बात करते जा रहे थे, ''देखा, पचास हजार मेज पर रख दिया। कैसा चुप रहता है। कुछ बोलता ही नही। अजीब बात है।''

एक बोला, ''इसने हामरा पहाड का भारी काम किया है।''

दूसरा बोला, ''कलट्टर का भी ऊश ने परवा नही किया। वो तो खडा ही रहा और वो ठाठ से बैठा रहा। कोई भारी आदमी है।''

कई लोगो ने एक साथ कहा, ''हटो हटो, मजूमदार साहब आ रहा है। सामने है।''

किशोर महोदय रिक्शे मे आए थे। पहाडी रिक्शे जैसे पूरी कार का आधा भाग—बडे सुखकर, बडे सुन्दर। उनकी बनावट-सजावट बडी आकर्षक, उनकी गद्दिया तो विशेष कर बडी सुख देने वाली। निकिल के बडे-बडे हैन्डल आगे-पीछे लगे हुए जिनमे अनेक घटिया, भोपू, पीतल के फूलदान लगे हुए। उनमे दो आदमी आगे घोडो की तरह जुतकर और दो पीछे ढकेलते या घसीटते रहते हैं। ये रिक्शे ऊची से ऊंची पहाडी या गहरे से गहरे ढालो पर उतरते-चढते चले जाते है। इसी प्रकाट के एक रिक्शे मे बैठ कर किशोर महोदय चले गए।

कुछ बच्चो व अन्य लोगो ने पीछे से चिल्ला दिया, ''किशोर बूाब की जय।''

मैदान मे मि० टामस कलक्टर, जब सगमरमर पर अंकित शब्द पढ़ रहे थे, तब उनसे दूर खडे मि० किशोर मजूमदार अपनी हथेली पर खिची रेखाओं को देखने मे लीन थे।

शिलान्यास का पत्थर मि० टॉमस द्वारा रख दिया गया। करतल-ध्वनि से वातावरण मुखरित हो उठा।

निकट ही मि० टामस की कार खडी थी। सडक के किनारे बहुत से लोग उसे घेरे थे। पुलिस वाले लोगों को दूर हटाते जाते थे। तभी मि० टॉमस अपनी कार मे आ बैठे। एक पुलिस-मैन के द्वारा मि० टामस ने दूर खडे मि० मजूमदार के नौकर को बुलाया। कार मे बैठे-बैठे उससे पाच-सात मिनट उन्होने कुछ बात की और उनकी कार चली गई।

किशोर महोदय की कार भी उस बासो के नव-निर्मित हरित द्वार के समीप आ लगी। किशोर महोदय उस पर बैठे और कार चल दी।

जनसमूह नाना प्रकार के वाद-विवाद करता अपने-अपने स्थानो को चला गया।

रात्रि मे बाजार मे दीपमालाओ से दिवस के समारोह का स्वागत किया गया।

प्रमोद व जयन्त भी सारे कार्यक्रम को समाप्त कर के घर लौटे। किशोर महोदय के सामने वे जानबूझ कर नही पडे। घर आकर जयन्त के साथ प्रमोद ने जलपान किया। इधर प्रमोद भी काफी स्वस्थ हो चुका था।

जयन्त के जाने के पश्चात् प्रमोद अपने बरामदे मे बैठा सामने के रिक्त मैदान को देर तक देखता रहा। थोडी देर पहले वहा कितनी चहल-पहल थी। वहा की चहल-पहल की समाप्ति उसे वैसी ही लग रही थी जैसे जश्न की दोपहरी के बाद की धूमिल साझ। जब व्यक्ति के समस्त क्रिया-कलाप समाप्त होकर वह थका-थका अपने अन्त को ढूढने लगता है।

तभी उसे सभा व किशोर महोदय के चित्र का ध्यान आ रहा था। वह सोच रहा था—मनुष्य एकनिष्ठ हो आत्म-समर्पण की साध्य-बेला मे अपने निकट वातावरण से पृथक् गहनता व विषमता से ओतप्रोत, कही किसी मे लीन डूबता-उतराता प्रतीको का सहारा लेता है। अतीत की स्मृति के रूप मे सचित वे प्रतीक उसकी वह थाती है जिसे वह आराध्य का साक्षात् रूप जानकर, मानकर उसकी अर्चना मे अपने अस्तित्व को भी कभी-कभी खो बैठता है।

कुर्सी पर सभास्थल मे स्थापित उस रेखाचित्र मे किशोर मजूमदार की इसी अमर भावना के प्रमोद ने दर्शन किये और अपनी अर्चना का साम्य भी उसी मे स्थापित कर लिया। उस समय चित्र मे लीन किशोर महोदय के समक्ष मि० टॉमस क्या उनके ईश्वर जार्जकिग भी आ जाते तो

वह उन्हे भी अपनी चिरन्तन मुद्रा मे लौटा देता या कहता—खडे रहो, मुझे सुस्थिर हो लेने दो।

और प्रमोद की पलकों मे भी एक चित्र नाच उठा। कुर्सी मे बैठा वह न इस जगत मे था न इससे दूर। इस समय प्रमोद की रक्तवाहिनी शिराओं मे रक्त का प्रसार तीव्रतर हो चला अथवा उसका रक्त हिम-गिरि मे हिम सदृश शीतलता त्याग चुका था।

●

: १४ :

जयन्त की माँ व उसकी बहन माधवी अनेक दिवसो से विचार करते-करते आज प्रमोद की माँ से मिलने आई थी। प्रमोद बाहर बरामदे मे ही बैठा पुस्तक पढ रहा था। उनको देखकर उसने प्रणाम किया और पुकारा, माँ, देखो जयन्त के यहाँ से माता जी व माधवी आई है।"

प्रमोद की माँ उस समय लखनऊ से आए कीर्ति के पत्र को पढ रही थी। जिसमे उसने अपने पहाड आने की बात लिखी थी और यह सोच कर प्रसन्न हो रही थी कि वह आज ही आ रहा है। प्रमोद की बात सुनकर वे प्रसन्न मन बाहर आई और उनको कमरे मे लिवा ले गई।

बैठने को आसन देते हुए प्रमोद की माँ ने उलाहने के स्वर मे कहा, "आज तो बहुत दिनो मे आई हो। इधर बाजार आना भी छोड दिया। उसी बहाने दो-चार घडी की मुलाकात हो जाती थी। और तुम जानो मेरा तो आना हो नही पाता। और कुछ व्यथित होकर वे पुनः कहने लगी, "यह ठीक ही नही रह पाता है। जयन्त ने बताया होगा। इधर तो प्रमोद बहुत बीमार हो गया था।"

सहानुभूति व्यक्त करते हुए जयन्त की माँ ने कहा, "अरे, जयन्त, वह तो कुछ बताता ही नही। हाँ, मेरा आना सचमुच इधर नही हुआ। उधर जयन्त लखनऊ चला गया था। अब प्रमोद का जी कैसा है?"

"अब इधर तो ठीक है। और बहन क्या ठीक है? बीच मे ठीक हो गया था। छटाक भर दूध पी लेता था फिर सूख गया। देख न लो,

बाहर बैठा है । जवान आदमी कैसे सूखा-सा लगता है । तुम्हारा जयन्त तो अच्छा है । इधर जाने कहाँ रहता है । प्रमोद के पास भी नही आता ।"

"जयन्त अब कुछ तो ठीक है । जब आगे भी ठीक रहे । और तुम जानो, कहे हैं आगे भी ठीक रहे तब समझो बीमारी गई । बनारस छोड कर यहाँ पडे है । अब तो जी ऊब रहा है । जल्दी घर जाना चाह रही हूँ ।" जयन्त की माँ ने सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा ।

"बडा अच्छा है । भगवान् करे जयन्त भला-चगा रहे । मेरे तो बडा जी लग गया है । मेरा प्रमोद भी ठीक हो जाएगा । अब आज देखो इसका दोस्त कीर्ति आ रहा है । लखनऊ से । अब तो बिटिया का ब्याह करो । कब करोगी माधवी का ब्याह ? मुझे भी बुलाना इसके ब्याह मे । और जयन्त का ब्याह भी तो करो ।"

माधवी जो अब तक मौन थी, बोली, "जयन्त भैया करने दे तब न ।" सब हँस दिये । इतने मे ही नीचे से जयन्त आया । अपना नाम सुनकर बोला, "मेरी क्या बुराई हो रही है ?"

"बुराई नही, तेरी बहन कहे है, जयन्त उसका ब्याह नही करने देता ।"

"मै मरी को कब मना कर रहा हूँ ।" जयन्त ने स्नेह की मुद्रा मे बिगड कर कहा ।

जयन्त की माँ बोली, 'बहन ठीक ही है, जयन्त ठीक हो जाए तभी ब्याह-शादी सब अच्छी लगे ।"

"देखो कह न रही थी, मै ताई जी ।" माधवी ने पुनः मुस्करा कर ठीक से बैठते हुए कहा । उसकी इस सरल बात पर सब फिर हँस दिये । बाहर बैठे प्रमोद व जयन्त से भी बिना हँसे न रहा गया ।

जयन्त माधवी व माँ को वहाँ देखकर कुछ अकुला रहा था । तुरन्त ही उसने माधवी को पुकार कर कहा, "माधवी, तुम लोग यहाँ बैठी सालो-सालो मे आती हो । मै घर जा रहा हूँ । मेरे कमरे की ताली दे

दो।" और ताली लेकर प्रमोद को नमस्कार करके वह जाने लगा।

"क्यो, बैठोगे नही ?" प्रमोद ने जयन्त से प्रश्न किया।

"भाई साहब, जरा जाना है।" कहकर वह नीचे उतर गया।

मार्ग मे जयन्त सोचता जा रहा था, कितनी मूर्खता हुई है, माँ यहाँ है। मै भी यही टहल रहा हूँ। और निवेदिता ने आने को कहा था। वह आकर कही लौट न गई हो। तब मन को सन्तोष देते हुए वह विचार करने लगा, नही अभी नही आई होगी। और अब मेरे पहुँचने के बाद वह आएगी तो कितना सुन्दर होगा, पूर्ण एकान्त। वह निवेदिता के प्यार की तस्वीरे खीचता-खीचता बगले पहुँचा। बगले के गेट से उसने एक पहाडी डोटियाल को निकलते देखा। उससे प्रश्न किया, "ऐ, किधर गया था ?"

अपने हाथो को फैलाकर वह बोला, "सामान लाया है। ऊपर मेम साहब आया है।"

"मेम साहब", सुनकर वह प्रसन्न हुआ। किन्तु सामान। कुछ सामान होगा। वह शीघ्रता मे ऊपर चढ गया। किन्तु देख कर वह अस्थिर हो गया, अवाक्। सामने चेस्टर पहने, काला चश्मा चढाए और हाथ मे पेपर लिये कामिनी।

"इसी प्रकार आना चाहती थी। जब तुम देखकर घबरा जाओ। कामिनी ने अपने हाथ के पेपर को अपने गालो पर फेरते हुए कहा।

जयन्त चुप। जैसे उसके काठ मार गया हो। उसने सोचा, वह कुछ उत्तर दे या मौन रहे। तत्क्षण उसने सोचा, घर आए मेहमान का कुछ सत्कार तो करना ही चाहिए। और फिर वह तो कामिनी है, एक स्मृति, बीता अनुराग। और उसके सामने घूम गया एक चित्र, कभी उसके बाहु-पाश मे जकडी खडी वही कामिनी। एक पल मे वह न जाने क्या-क्या सोच गया। कामिनी का यो आगमन, क्या पिता से विद्रोह, क्या यह निर्दोष, क्या दोषी, क्या वह स्वय दोषी, क्या गिड-

गिडाहट, तब, अब मै और निवेदिता। और यह सोचकर वह सिहर उठा, कही ऐसा न हो इसी क्षण निवेदिता भी, आजाए तो।

अपने को सभाल कर हँसते हुए उसने कहा, "ऐसी भी क्या बात है ? किन्तु सूचना तो दी होती।"

"क्यो, किस लिए, किस को ?"

जयन्त बरामदे मे सामने की ओर खडा था। उसने जैसे ही घूम कर पीछे की ओर देखा, सामने से निवेदिता चढी चली आ रही है।

उस समय की जयन्त की घबराहट। क्या अनर्थ, क्या होने को है ? वह एक बार काँप गया। जयन्त ने निवेदिता, फिर कामिनी, फिर निवेदिता को देखा। कामिनी ने जयन्त, फिर निवेदिता, फिर जयन्त को देखा। अब तक निवेदिता दोनो के मध्य मे थी।

निवेदिता ने आकर अपना सौन्दर्य छिटकाते हुए कामिनी को नमस्कार किया। कामिनी ने भी अपने रूप के निखार मे एक कटाक्ष फेकते हुए उसी प्रकार उत्तर दे दिया।

तभी निवेदिता ने प्रश्न किया, "ये ही आपकी सिस्टर हैं ? आज पहली बार मुझे मिलकर बडी प्रसन्नता हो रही है।"

कामिनी ने तडप कर वह वाक्य सुना किन्तु विवेक से उसे चुपचाप पी गई। जयन्त उस समय न चट्टान की शिखरो पर था न छः हजार फीट नीचे सागर की तडपती लहरो मे।

तब निकट ही सूटकेस, अटैची, थर्मस और होल्डाल देख कर निवेदिता ने पुनः प्रश्न किया, "क्या कही बाहर जा रही है ?"

कामिनी कालेज की छात्रा थी। निखरे यौवन के साथ चचलता बखेरते उसने सम्पर्क व ससर्ग का पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया था। फिर अपने साम्य को समक्ष देख कोई भी नारी क्षण भर मे पूर्ण भिज्ञ हो जाती है। कामिनी ने भी परिस्थिति का विवेकपूर्ण अवलोकन कर एक मुस्कान के साथ कहा, "इससे क्या ? आइये आइये, बैठिये तो।" तब जयन्त को सम्बोधन करते हुए वह बोली, "कमरा तो खोलिए, क्या खड़े ही

खडे यो भेंट होगी ? हम लोग बैठे तो कम से कम । जाना-आना तो लगा ही रहता है। और आपके शुभागमन पर यो स्वागत करना कहाँ की सभ्यता है ?"

जयन्त की घबडाहट कुछ दृढता मे परिणत हुई। वह कमरा खोलने को आगे बढा। कमरा खोलते-खोलते वह मन ही मन कामिनी से दया की भिक्षा माग रहा था, गिडगिडा रहा था। वह इस समय सुस्थिर होकर कृपापूर्वक निवेदिता के समक्ष व्यवहार करके उसे विदा करदे, यही कामना वह कामिनी से कर रहा था। आगे-आगे कामिनी, उसके पीछे निवेदिता, तत्पश्चात् जयन्त ने कमरे मे प्रवेश किया। कामिनी व निवेदिता कमरे मे पडी कुर्सियो पर जाकर बैठ गईं। कामिनी की दृष्टि प्रतिपल निवेदिता को नीचे से ऊपर तक देखने मे लगी हुई थी।

कामिनी व निवेदिता को कमरे मे छोड कर जयन्त बरामदे मे आया और उसने धीरे से शम्भू को पुकारा। शम्भू के आने पर वह बोला, "शम्भू, यह सामान धीरे से उधर की ओर से लेजा कर माधवी के कमरे मे रख दो।"

"कै आवा है, बाबू।" शम्भू ने सूटकेस उठाते हुए कहा।

"बनारस से कामिनी आई है।"

"ओ, कामिनी, आप केर..."

"चुप बे, धीरे बोल..।" जयन्त ने शम्भू को डपटते हुए कहा, "जा जल्दी चाय भेज। देख खुद न लाना। पहाडी के हाथ भेजना।" कह कर जयन्त कमरे मे चला गया। इस बीच कमरे का वातावरण निःशब्द रहा।

जयन्त भी निकट आकर बैठ गया। निवेदिता ने प्रश्न किया, "आपकी माताजी नही मिली ?"

"माता जी, हाँ माता जी, वे प्रमोद जी के यहाँ गई है।" जयन्त ने हकला कर उत्तर दिया। जयन्त व निवेदिता के अनुराग भरे नेत्रो की मूक वाणी स्पष्ट हो जाती थी। कामिनी केवल उसी को निरन्तर पढने के लिए

कभी जयन्त की ओर कभी निवेदिता की ओर देख लेती। वह सोच रही थी, कभी इसी साकेतिक भाषा मे उसने भी सामने बैठे-बैठे बाते की थी। तब वह सोच रही थी—मा, नही है। माधवी नही है। तभी इस निर्जन बगले मे पूर्व निश्चयानुसार मिलन-व्यापार की प्रतीक्षा मे पहले जयन्त तत्पश्चात् यह आई है। और मेरे समक्ष बहाना, माताजी कहॉ है? यही आपकी बहन हैं? और ठीक ही है। अगर उनसे परिचय होता तो यह उन्हे जानती। और मुझे माधवी समझने की धृष्टता भी यह कर रही है। किन्तु उसका शान्त रहना ही उपयुक्त है। तभी उसने प्रश्न किया, "आपका नाम तो जान लूॅ?"

"निवेदिता।"

"आज आपसे पहली भेट हो रही है। यहीं कहीं निकट ही रहती है क्या?" निवेदिता की ओर कटाक्ष करते हुए कामिनी ने पुनः प्रश्न किया।

"नहीं, कुछ दूरी पर।" निवेदिता ने सक्षिप्त उत्तर देकर बात समाप्त की।

तभी पहाड़ी नौकर ने चाय लाकर बीच की मेज पर रख दी। चाय के साथ शम्भू ने न मालूम कहॉ से चिवडा भी प्लेट्स मे रख कर भेजा था। कामिनी को चिवडा बहुत पसन्द है। सब लोगो को देखकर पहाडी नौकर को न मालूम क्या अभाव खटक गया। वह बोल पडा, 'बाबू, बीबी को बुला लाई।"

जयन्त ने डपट कर कहा, "चुप" जयन्त सोचने लगा, कम्बख्त ने अभी सब बिगाडा होता। कामिनी ने एक तीव्र दृष्टि जयन्त पर डाली।

नव-स्फूर्ति और चेतना लाने के लिए जीवन मे सघर्ष अनिवार्य है। परिवर्तन व नवीनता ही जीवन-सग्राम के प्रेरक वाद्य है। परिस्थितिया व घटनाएँ मनुष्य को आकाश से भूमि पर ला पटकती है और उन्ही के प्रभाव से उच्चतम शिखर पर भी वह जा विराजता है। घटनाचक्र नैकट्य से दूरी और दूरी से नैकट्य की ओर उन्मुख करता है। मित्र शत्रु व

शत्रु मित्र बनते है। अनजाने मे सुखानुभूति होती है और भावमयी प्रतिमाओं के दर्शन। अपरिचितो की आत्मीयता जीवन को अनुरागमय बना देती है। दूसरी ओर स्वप्न मे भी जिन व्यक्तियो, परिस्थितियो तथा अनुभवो का हम ध्यान भी नही करते वे रजित घटनाओं के रूप मे हमारे समक्ष आ उपस्थित होते है। अपनी जागरूक अवस्था मे स्वेच्छा से जिनका मोह हम सवरण नही कर सकते उन्हे हम अपने सजल नेत्रो से दूर होते देखकर या तो मिसमिसा कर रह जाते है या अपने को मिटा देने की अमिट साध जगा बैठते है।

आज कामिनी जयन्त से दूर हो चुकी थी। उसका स्थान निवेदिता के नूतन अनुराग ने ले लिया था। अब तक के विद्रोह ने जयन्त को निवेदिता मे सन्तोष व तृप्ति की भावी अनुभूति मिली और वह सिमट रहने को उद्यत हो गया। उसने अपना अतीत पूर्णतः भूल जाने का सकल्प कर लिया। तब उस सकल्प मे उसके जाने किसी की बलि चढती है तो चढा करे।

निवेदिता, कामिनी और जयन्त के चाय के प्यालो मे उस समय कौन-सा बवडर, किस सागर का तूफान, किस ज्वालामुखी का लावा, किस शिलाखड का अधः-पात, किस हिमगिरि का मान, धधकते सूर्य की रश्मियो से पानी-पानी हो रहा था? अथवा कहाँ बसन्ती बहार आने को थी, कहाँ भीनी फुहार मन को बेचैन किये थी? कौन एकान्त की खोज मे मिलन की थिरकती उ गलियो से खोजता अस्त-व्यस्त था? किसका मचलता प्रेम अँगडाइयाँ लेने को आतुर था? किसका कौमार्य सुहाग की चमकती लाली को चूमने को मचल उठा था? किसकी अमिट साध अनुरागमयी बनकर तृप्ति को अपनी दासी बनाकर जीवन की लोल लहरो मे डूबना-उतरना चाहती थी? कुछ भी ज्ञात होना उस समय सर्वथा असम्भव था।

निवेदिता प्रातःकाल प्रिमरोज की मिलन-स्मृति को लेकर जयन्त और चाय के प्याले मे लहरे ले रही थी। कामिनी सम्बन्धो की विचित्रता के

रहस्य को लेकर तह तक जाने के लिये चाय के प्याले मे समा जाना चाहती थी। जयन्त चाय के प्याले मे उठते धुएँ की ओट मे अपने लक्ष्य की सिद्धि मे चतुरता से पग बढाना चाहता था। वह अब तक के जीवन में डूबने-उतराने की क्रिया को तिलाजलि देकर प्रमोद के सिद्धान्तो मे एक का होकर रह जाए और किनारा पाकर फिसलने के डर से जम कर पग टेक कर दृढता को अपनाकर अग्रसर हो। यही उसकी अभिलाषा थी।

चाय पीते समय मौन वातावरण बना रहा। एक बार कामिनी ने इतना कहा, "श्रीमान जयन्त जी भी विचित्र हैं। मुझसे आपका कभी जिक्र तक नही किया।" और यह कहकर वह जयन्त के मुख पर अदलते-बदलते भावो को देखने लगी।

"आपसे मिलने के लिए तो इन्होने मुझ से कहा था परन्तु मैने ही मना कर दिया।" निवेदिता ने सीधी बात कह दी।

"हो सकता है।" और वह खिलखिला कर हँस दी। पुनः जयन्त को सम्बोधन करती हुई कामिनी कहने लगी, "क्यो जयन्त जी, ठीक है न ?" और वह फिर हँस दी।

जयन्त इन गूढ व्यग्यो को भली प्रकार समझ कर मन ही मन घबरा रहा था। वह जल्दी से तेज गर्म चाय ही चढा गया और किसी प्रकार चाय समाप्त करके निवेदिता को राजी-खुशी विदा करने के लिए आतुर हो उठा। वह सोच रहा था, किसी भी क्षण 'थन्डर-बोल्ट' का विनाशकारी करेंट कामिनी उसके शरीर मे छुआ सकती है।

तभी कामिनी ने निवेदिता से पुनः प्रश्न किया, "बहन जी, अब कब मिलियेगा ?"

निवेदिता स्वभावतः बहुत कम बोलती थी। दस बातो का एक सूक्ष्म उत्तर दे देना उसे भला लगता था। तब कामिनी के अस्त-व्यस्त वार्तालाप से और अन्त मे 'कब मिलियेगा' के शुष्क प्रश्न से उसे उस समय बडी अरुचि हो रही थी। उस समय जयन्त के आवश्यकता से अधिक मौन से भी निवेदिता खिन्न हो रही थी। उसने अनुराग-भरी एक दृष्टि

जयन्त पर डाली और, "अब चलूँगी।" कहकर उठ खडी हुई। 'अब कब मिलियेगा' के प्रसग को वह पी गई।

कामिनी चुप क्यो रहती ? उसने निवेदिता से कहा, "मेरा जाना सम्भवतः कल ही हो। आज की भेट के बाद निश्चित ही मै आप से मिले बिना नही जाऊँगी। आज तो मेरी "बस छूट ही गई।" तिरस्कार व वेदना भरे मन से वह कहते हुए उठ बैठी। वह आगे कहने लगी, "आज आप से मिलकर न मालूम क्यो मुझे बेहद खुशी हो रही है, बेहद।"

निवेदिता को कामिनी के व्यवहार और प्रत्येक बात से अरुचि हो रही थी। वह इस बात के उत्तर मे एक शुष्क हास्य ही मुख पर लाकर रह गई।

निवेदिता प्रारम्भ से अन्त तक के रहस्यवाद को तनिक भी न समझ पाई और वह बगले चल दी। हाँ, जयन्त को अवश्य उस छायावाद का यथेष्ट ज्ञान था। किन्तु सारे प्रसग मे उसने पूर्णतः मौन रहना ही श्रेयस्कर समझा। कामिनी ने तो प्रगतिवाद का सहारा लेकर सारे उफान को पीकर सब कुछ जान और समझ लिया।

कामिनी को कमरे मे छोडकर जयन्त निवेदिता को छोडने बरामदे तक आया। जाते हुए निवेदिता से उसने कहा, "कल बगले पर, दोपहर मे।" और बढकर उसने निवेदिता का कोमल हाथ चूम लिया। निवेदिता नीचे उतर गई। जयन्त निवेदिता के ओझल होने तक सामने ही देखता रहा। और जैसे ही वह घूमा, उसने देखा कामिनी बरामदे मे खडी थी। जयन्त ने अनुमान लगाया, कामिनी ने निश्चय ही उसके कार्यक्रम और चुम्बन की चटकार को सुन लिया है। जयन्त को इस समय कामिनी पर क्रोध आ रहा था। वह उससे बिना कुछ बोले कमरे मे चला गया।

निवेदिता ने जैसे ही गेट से निकल कर पगडडी पर पग रक्खा, उसी क्षण माधवी व जयन्त की माता जी अन्दर आई। निवेदिता को बाहर जाते उन्होने देखा और निवेदिता ने उन्हे अन्दर आते देखा। परन्तु

किसी ने कोई बात नही की। जयन्त की माँ व माधवी ने अवश्य सोचा कि वह लडकी कौन थी?

जयन्त की माँ ने ऊपर चढते-चढते माधवी से पूछा, "यह कौन थी री?"

"यही भैया की नई दोस्त है।" माधवी ने मुस्कराते हुए कहा।

"जाने किन-किन चुडैलो से नाता जोडता फिरता है?" कुछ रुककर, "माधवी, यह है तो सुन्दर।"

"हाँ माँ, बडी सुन्दर। मुझे तो वह जानती नही वर्ना मै उससे जरूर बोलती।"

इस छः हजार फीट ऊँचाई पर अकेले अनजाने, अनायास और आश्चर्य रूप मे कामिनी आ टपकेगी, इसका भान जयन्त को कदापि नही था। जयन्त कमरे मे आकर चुपचाप बैठ गया। कामिनी सामने की कुर्सी पर बैठी थी। इतने ही मे माधवी और माँ कमरे मे आई। कामिनी को देख माँ को जितना आश्चर्य हुआ उससे अधिक आश्चर्य हुआ माधवी को। माधवी आगे बढी और अपनी बनारस की पडोसिन कामिनी से जा लिपटी। माधवी भी कामिनी के निकट कुर्सी पर बैठ गई। माँ ने आगे आकर कामिनी को दुलराते हुए कहा, "क्यो री पगली, तू यहाँ कहाँ आ टपकी?"

"चाची जी, क्या बात है, सब यही कहते हैं? सब यही सोचते हैं? अब मै इतनी दूर हो गई क्या?" कामिनी ने खेद के शब्दो मे कहा।

"ना बेटी, मै हँसी मे कह रही थी। तुझ से ऐसी बात कहूँगी? तू पहले, माधवी बाद मे।" माँ ने कामिनी के सर पर हाथ फेरते हुए। कहा।

"माधवी पीछे क्या? कोई तो मुझे माधवी ही समझ कर यहाँ आया था।" कामिनी ने जयन्त की ओर कनखियो से देखते हुए कहा।

"कौन आया था रे जयन्त?" माँ ने जानबूझ कर जयन्त से पूछा।

"कामिनी को मालूम है।" जयन्त ने कुर्सी से उठकर पलग पर कमर सीधी करते हुए कहा।

माँ अन्दर चली गई। माधवी, कामिनी को भी अन्दर अपने कमरे मे ले गई। दोनो सखियाँ घुल-घुलकर देर तक बाते करती रही।

"तो तुम आ गई।" रात्रि के भोजन के पश्चात् जयन्त ने कामिनी से कहा। कामिनी कुर्सी पर बैठी थी। जयन्त पलग पर बैठा था और दीवार के सहारे तकिया टिकाए अपनी कमर उसी से लगाए था।

"नही अभी कसर है।" कामिनी अपने बालो की एक लट उँगली मे पिरोते-पीरोते कह गई।

"और तुम्हे बगला कैसे मिला?"

"पता लगाने के विचार से घर से चल देने पर बडे-बडे पते लग जाते है। क्यो, कुछ गलत कह रही हूँ?" कामिनी ने व्यग्य करते हुए कहा।

"यह तो ठीक है। किन्तु हर बात को पहेली न बनाकर सीधी बात की जाए तो ज्यादा ठीक होगा। और तुम्हारे पिता जी और मि० मनमोहन सब कुशल से तो है?" जयन्त ने प्रश्न किया।

इस उत्तर को सुनकर कामिनी मन मे कुछ लज्जा, कुछ रोष और कुछ तिरस्कार का अनुभव करते हुए तनिक आवेश मे बोली, "मै पहेली बनाने नही, पहेली सुलझाने ही तो आई थी। किन्तु,...खैर। हाँ, तो मै पास्ट, प्रेजेन्ट और फ्यूचर सबकी बात करने, इतनी दूर, पिताजी को नाराज करके, मनमोहन को 'गेट आउट' करके और तुम्हारा वह पत्र पाकर, वह पत्र, तभी यहाँ आई थी। हाँ, तुम्हे अब वह पत्र लिखना ही चाहिए था।"

"गेट आउट करके" जयन्त ने जोर से शब्द दोहराए।

"जी, परन्तु यहाँ किसी को 'गेट आउट' नही करूँगी, घबराओ मत।"

"क्या यहाँ किसी को 'गेट आउट' करने की बात है।"

"कदापि नही। कहो तो हँसना-बोलना बन्द कर दूँ।"

"और तब मनमोहन की तरह औरो का 'गेट आउट' करूँ, है न।" जयन्त ने संभल कर बैठते हुए कहा।

"औरो का 'गेट आउट' मेरे वश मे बहुत कुछ है। न मानिए तो करके दिखादूँ।" कुछ रुक कर, "किन्तु नही, मेरे वश मे नही है। किसी के वश मे नही है। मेरे वश मे कदापि नहीं है। मै जिसे प्यार करती हूँ, मुझे उसकी हर चीज प्यारी है। मुझे उसकी हर बात अच्छी लगती है। और विद्रोह मै किससे करूँ? तुमसे! मै तुम नहीं हूँ। तुम्हारा दोष नहीं, किसी पुरुष का कोई दोष नही होता। यह सच है। जयन्त, यह बिल्कुल सच। यह स्त्री, उसकी छाया, नीचे एडी से लेकर चोटी तक का घेरा, प्रकृति ने जो कुछ भी उसे दिया है केवल मात्र उसका आकर्षण, उसी का दोष है। और मन, मन का काम ही डोलना फिरना है। मन स्थिर रहे और रहता तो मुझे पहाड न आना पडता। तुम्हे पहाड न आना पडता। तुम आए मेरे पिता के मन की अस्थिरता के कारण, मैं आई तुम्हारी अस्थिरता के कारण और केवल दोषारोपणो की छत्रछाया मे तुम बच कर अभी भागोगे एक मिनट मे। किन्तु दोष किसी का नहीं है"

"नहीं, तुम विश्वास रक्खो, अब मै दोषारोपण नहीं करूँगा।"

"यह भी ठीक है। अब तुम्हे दोषारोपण की आवश्यकता भी क्या रही है! यदि तुममे छटपटाहट शेष होती तो अभी हजार दोषो से कमरा भर देते। अब तो तुम्हे सन्तोष मिला हुआ है। भरे पेट मे लोगों को दूसरो के भोजन की चिन्ता नहीं रहती है।"

"मेरा पेट अभी तक खाली है।"

"खाली ही सही, किन्तु इस बात से तो मन ने सन्तोष पा लिया है कि भोजन का साधन तुम्हारा इतना सरल है कि जब चाहो भोजन कर सकते हो। किन्तु जिसे उसके लिए छटपटाहट है। तुम...।"

"कामिनी सो जाओ। यहाँ आई हो, मौज से घूमो-फिरो। बहस और बातें भी कर लेना।"

"ठीक कहते हो, तुम सोओ, तुम्हे सोने की आवश्यकता है। तुम्हे नीद भी आ रही है। किन्तु मुझे, नीद और मौज! मनमोहन का नाम सुनते ही चौके होगे और सोचा होगा कामिनी की मौज, आ,-हा-हा, क्या बात है? हर वक्त मौज आ रही है आजकल बाबू साहब को।"

"तो तुम यो उलटा हँस-हँस कर मेरी खिल्ली उडाने आई हो, यहाँ?"

"हर्गिज नही। खिल्ली की क्या बात है? किन्तु हाँ, कहो तो खिल्ली भी उडा डालूँ। यहाँ आकर तो कारण, कारण तो स्पष्ट दिख रहा है। सामने।"

"कामिनी।"

"क्यो, चौक क्यो रहे हो? नर्वजस तो ठीक काम कर रही है?"

"हाँ, ठीक काम कर रही हैं। किन्तु मै किसी सम्बन्ध की कोई बात नही करना चाहता। तुम सो जाओ।"

"तुम चाहो तो सो जाओ, बात मत करो। किन्तु मै तो केवल बात करने आई हूँ। वैसे बात करने की कोई बात अब रह नही गई है। फिर भी उफान को दाबूँगी। दाबते-दाबते भी समय लगेगा। किन्तु घबराओ नही।"

"क्या तुम मुझे धमकियाँ देकर और अपमानित करके अपना कोई कार्य साधना चाहती हो।"

"हाँ, यह कि जिसे मैंने प्यार किया है, उसे जी भर कर प्यार किया है और अब परिणाम भी जी भर कर भोगने के लिये तुमसे मै कुछ चाहती हूँ। और तब, मैं आजीवन अपने मन मे तुम्हारी याद बनाए रख कर मौज करूँगी। सही माने में मौज, जिसका अर्थ तुम अब भी नहीं समझते। तुम्हारे ऐसे रस-लोलुप जीवन मे कभी नहीं समझ सकते।"

"कामिनी!"

"तुम तडपते क्यो हो ? बहुत चीखना जान गए हो तो चलो अभी, इसी क्षण मेरे साथ। उन्ही अपनी नवलप्रेयसी के पास। मेरे सामने उससे चलकर कहो, निवेदिता, मै अब तक इस लडकी के बनाव-शृंगार व रूप पर मोहित था। अब आज से इसको दूर करके तुम्हे अपना रहा हूँ। और इस पर भी वह स्थिर होकर कह दे मेरे सामने, कि इतने के बाद भी वह तुम्हारे अनुराग का दामन थामे रहेगी तो मै आजीवन मुँह से एक शब्द बिना कहे तुम्हारे सुखी जीवन की कामना करती हुई, विश्वास करो, तापस जीवन बिताढूँगी। जयन्त साहब, अभी नारी का उभरता वक्ष ही सामने रहा है तुम्हारे। उसके अन्दर धक्-धक् करते हृदय की थाह, यह सही है, जन्म-जन्म तक कोई नही पा सकता। तुम क्या पा सकते हो ? यदि उसके मन और शारीरिक अवयवो मे मोहिनी शक्ति है तो उसमे सन्तोष की असीम गगा भी किनारे से बहती है। उसी बनारस वाली गगा की बात कह रही हूँ जहाँ, मेरे-तुम्हारे बजरे पडा करते थे। और मै जानती हूँ तुम यह साहस कभी नही कर सकते। कोई नही कर सकता। तब मिथ्या अनुराग के घेरे मे क्यो भोली लडकियो को फाँसते फिरते हो ?"

"कामिनी, मै तुम से प्रार्थना करता हूँ, तुम मत बोलो।"

"इसलिये कि जो बात मैने अभी कही है उसका कोई उत्तर तुम्हारे पास नही है। तुम नही चल सकते मेरे साथ निवेदिता के यहाँ।"

"निवेदिता से तुम्हारा अभिप्राय क्या है। उसके सम्बन्ध मे क्या जानती हो और कह ही क्या सकती हो ?"

"जयन्त साहब, इन मामलो मे भी तुम नारी की क्षमता नही समझ सकते। अरे उसकी दृष्टि ही निर्माणकारी या सहारक है। उसकी दृष्टि से बच जाना ही तो मनुष्य की पूर्ण शक्ति है। और मुझ से आप कह रहे हैं, मेरा अभिप्राय क्या है ? मेरी पुतलियाँ भी उतनी ही घूमती है जितनी निवेदिता की। और उसी के सामने घूम चुकी है जिसके सामने उसकी घूम रही थी। तुम किस भाषा मे पढना जानते हो, यह मै जानती हूँ। उसी भाषा मे तुम दूसरे से भी पढोगे। एण्ड देट्स द कामन लिक।

श्रीमान् जी, क्या लडकी नाम के घेरे को बुद्धू समझ लिया है ? उन्ही के सकेतो पर नाचते हो और उन्ही से म्याऊँ । ईर्ष्या मूर्ख और अपढ करते है । मुझे निवेदिता से ईर्ष्या नही हो सकती बाबू साहब । सभल कर कदम न बढाया तो सहानुभूति और सहयोग जड तक उखाड फेकेंगे । हो किस हवा मे । यह कमरे मे बैठ कर कामिनी,कामिनी की चीख एक नही चलेगी ।”

“तो अब तुम मुझ से क्या चाहती हो ?” जयन्त ने नम्र क्या बिलकुल हलुवा बन कर, जिसे कहते है गिडगिडहट के स्वर मे कहा ।

“और कुछ नही, मै तुम से पूछती हूँ, इस असहयोग के मूल मे कभी गहराई तक सोचा है । सोचो कैसे ? तुम लोगो को पड गई है आदत । एक जगह, दूसरी जगह, चौथी जगह और क्या कहूँ ? क्या कहूँ ? जयन्त तुम्हारे ऐसे सबो की सूरत और चाल-व्यवहार ऐसे कुछ रहते है, ऐसे बनाए रहते हो कि पंछी फसता ही है । अरे साहब, हम लोगो का नाम पछी रख छोडा है पछी । तब आप लोग कौन हुए चिडीमार ।”

जयन्त अनायास हँस पडा ।

बात दूसरी ओर चली गई । हॉ, मै कह रही थी, मैने तुम्हारे भावो को कहॉ ठेस पहुँचाई हे । मै दावे से कह सकती हूँ, एक मिसाल नही दे सकते । हॉ, मेरे पिता जी की बात ले लो । सबन्ध तुम्हारा मुझ से था या मेरे पिता जी से ? है पुरुपार्थ, या कभी जगा कि किसी भी नीति, कौशल अथवा साहस से तुम मुझे अपनाते । मै उस साहस मे असहयोग कर जाती तो...तो तुम्हारा यह ‘टी बी.’ का स्वाग भी सही होता । योही खून लगा कर शहीद होना चाहते थे । पर बाबू साहब हो नही पाए । हॉ, इस बहाने यहॉ पहाडी न सही पहाड पर भोला पंछी फस गया । क्या करोगे उसका । है ब्याह करने की मन मे । मेरी तो छोडो, अब इस मामले मे हिम्मत रखना । धूर्तता न करना । रस चूस कर छोड दिया तो सचमुच धमकी देती हूँ, जिन्दगी मे कभी चैन से नही बैठने

दू गी । अब घेरा डाला है तो पार ही उतार देना । मुझ से मत घबराओ मै कल चली जाऊंगी.. ।"

"कामिनी, मै सच-मुच कुछ अशान्त हो चला हूॅ। तुम कल न जाओ । रुको ! मुझे सोचने दो । किन्तु नहीं, सोचने का समय निकल गया । कामिनी, तीर बाहर हो चुका है ।"

"मै कब मना कर रही हूॅ । तीर बाहर जा चुका है तो उसे पूरा काम करने दो । यही मै कह रही हू । अब उसे लौटाने की चेष्टा न करना और न अब कभी दूसरा तीर ही फेकना । बहुत शरारते कर चुके हो । अब आगे गिनती मत पढो । मत पढो, नहीं फिर कहती हूॅ सिर पड़ जाऊॅगी ।"

"अच्छा, अब मै सोती हूॅ । गालियॉ न देना । लेकिन जयन्त ! मैं, मेरे साथ जो खिलवाड किया है उसके लिये मै तुम्हे धन्यवाद देती हूॅ ।" और कामिनी के नेत्र सजल तो आए ।

जयन्त के सारे नशे हिरन हो चुके थे । जैसे कामिनी ने शेरनी की भाति उसे दबोच लिया हो । बोलने के लिये शब्द न मिल पाए उस समय रगीले जयन्त को ।

●

: १५ :

उस ही दिन शाम को कीर्ति आगया। अपने कालेज के साथी और जीवन के अभिन्न मित्र कीर्तिमोहन के पहाड़ आने पर जैसे उसका वजन देखते ही दस-बीस पौड बढ गया हो।

कीर्ति के साथ प्रमोद के पिताजी ने प्रमोद की रुचि की बहुत-सी चीजे भेजी थीं। प्रमोद को बगाली मिठाई, विशेषकर सफेद रसगुल्ला, बहुत पसन्द था। कीर्ति के हाथ उन्होने कलकत्ते के 'एयर टाइट' टीनो मे बन्द रसगुल्ले के कई डब्बे भिजवाए थे। प्रमोद रसगुल्ले खाते-खाते पिता के अथाह स्नेह से द्रवित हो गया और उसके नेत्र सजल हो गए। कीर्ति ने देखकर हँसी के स्वर मे कहा, "पहाड पर जल की बूँदे किसी भी समय दिखाई दे जाती है।"

प्रमोद भी बिना हँसे न रह सका।

एक-एक करके प्रमोद ने लखनऊ के सभी साथियो व परिचितो का कुशल समाचार कीर्ति से पूछा। अपने निकटतम मित्र रेणु मुकर्जी के देहावसान का दुःखद समाचार सुनकर प्रमोद को बडा कष्ट हुआ। चर्चा चलते-चलते प्रमोद ने कीर्ति से सुना कि पिताजी बम्बई गए थे।

प्रमोद ने प्रश्न किया, "कीर्ति, पिताजी बम्बई कब और कैसे गए थे? मुझे तो उसकी कोई सूचना नही मिल पाई।"

मित्र की भलाई की चिन्ता मे निरन्तर लीन कीर्ति के लिये यह असम्भव था कि वह उससे कोई बात छिपाए। उसका मत था, मित्र

के समक्ष सदैव अपना हृदय खुला रखना चाहिये। इसके प्रभाव से संदिग्ध अथवा हानिकर प्रसंगो मे भी बात खुली रहने पर कभी कोई अहित होने की आशका नही रहती।

कीर्ति ने उत्तर दिया, "प्रमोद, भाई क्षमा करना। मैने ही पिताजी से बम्बई जाने का आग्रह किया था। तुम्हारी इस कठिन बीमारी का प्रसग कितना दुःखद था, यह व्यक्त करने की आवश्यकता नही। उस दिन तुम्हारे पहाड आते समय मैने पिता जी से प्रतिमा के सम्बन्ध मे कहा था। सुनकर पहले तो वे मुझ पर ही बिगडे और कहने लगे— मुझ को यह बात इससे पूर्व ही बतानी चाहिए थी। उस दिन ड्राइग रूम मे उसी बात के बीच तुम आगए और बात आधी रह गई। तदनन्तर तुम्हे स्टेशन पहुँचाकर लौटते समय मैने तुम्हारे हृदय मे चुभे काटे की बात उनसे व्यक्त की थी।"

प्रमोद बीच ही मे टोकते हुए कुछ आवेश मे बोला, "परन्तु कीर्ति तुमने यह सब क्यो किया? इससे तुमने मेरा कौन-सा हित साधन किया है? क्या तुमने सोचा है पिताजी के वश की भी कोई बात इसमे है? इस समय इसको सुनकर मेरे मन को जो चोट लगी है उसकी कल्पना करने से पूर्व तुमने व्यर्थ की बात कर डाली। प्रत्येक रहस्य का अप्रकट रूप जितना महान् है उसका विदित रूप उतना ही छिछला। तुम . तुमने यह अच्छा नही किया। पिताजी मेरे सम्बन्ध मे क्या सोचते होगे? मैने स्वयं बीमारी मोल ली है और उन्हे, माँ को, तुम सबको कष्ट दिया है।" प्रमोद अधीर हो उठा।

निश्चिन्त होकर दृढता के स्वर मे बात काटते हुए कीर्ति बोला, "पहले मेरी पूरी बात सुन लो, तब कुछ कहना। और एक बात बताए देता हूँ। मुझ से सीधी-सीधी बात करना।"

"कीर्ति, यह हँसी की बात नही। तुमने मेरे मन की गम्भीरता का बिना ध्यान किये ही ऐसा किया है। किन्तु अब मै तुम से क्या कह सकता हूँ? तुम मेरे परम आत्मीय मित्र हो और तुम्ही प्रथम व अन्तिम

व्यक्ति भी जो मेरे मन की ग्रन्थि को जानते थे। मन के अतिरिक्त मेरी देह भी यह नही जानती कि मै शरीर के अन्दर के मन मे क्या छिपाए बैठा हूॅ ? दूसरे की तो बात ही क्या ? किन्तु अब मै विचार कर रहा हूॅ, अपने केवल एक मित्र से अपनी बात का सकेत करके भी मैने गलती की।" प्रमोद अनायास मौन हो गया।

"कहो कुछ भी, पर मेरी सुन लो। हॉ, तो मै यह दृढता से कह रहा हूॅ कि मैने सब कुछ सोच-समझ कर किया है। इससे सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी और इसका क्या मधुर फल निकलेगा, इसको मैने भली प्रकार सोच लिया है। उस भविष्य की कल्पना मेरे मन मे सुस्पष्ट है। इसमे मै पूर्णतः दृढ हूॅ और तुम्हारी कोई भी बात मै मानने को तत्पर नही हूॅ। भावुकता मे अथवा अतृप्ति के क्षणो मे मैने तुम्हारी ही भॉति अधीर होते मनोज को देखा था। खेद है, मनोज बेचारा उसी मे समा गया और अब हमारे बीच नही है। तुम को भी कितना मानता था मनोज, हॉ, तो मै मनोज की ही भाति तुम्हारी भी अवस्था नही होने दूॅगा। कदापि नही। मैं इसमे प्राण-पण से चेष्टा करूॅगा। तुमसे कुछ पुरस्कार पाने के लिये नहीं। केवल मित्र के कर्तव्य को निभाने के लिये।" कीर्ति ने आगे कहा, "हॉ तो बाबूजी बम्बई गए थे। शान्ता क्रुज के भव्य भवन मे वे जस्टिस मानसिह से मिले थे। बाबूजी के बार मे होने के कारण उनसे परिचय था। वहीं वार्तालाप मे उन्हे ज्ञात हुआ कि प्रतिमा दो माह पूर्व ही इग्लैड गई है। जस्टिस मानसिह ने प्रतिमा को जर्नलिज्म व शोशिलाजी की उच्च शिक्षा लेने उसे इंग्लैड भेजा है। बाबू जी, जस्टिस महोदय के स्वभाव व उनकी विशाल कोठी की बडी प्रशंसा कर रहे थे।"

प्रमोद ने कीर्ति की वार्ता सुनी। वह आज अनेक बार प्रतिमा का नाम सुन रहा था। उसके कान बार-बार प्रतिमा का नाम सुनने को आतुर थे। वह दूर नीलाकाश मे छिटके तारो को स्थिर होकर देख रहा था। आज वातावरण भी स्वच्छ था। धवल चादनी चट्टानो को चूमती हुई

प्रमोद के बरामदे मे भी झाक रही थी। प्रमोद की कुर्सी पर चादनी पड रही थी और कीर्ति को स्पष्ट दिख रहा था कि प्रमोद कही दूर से आने वाले मुक्त संगीत मे लीन है। कीर्ति, प्रमोद का बडा सरस व हँसोड मित्र था। चुप रहना उसे आता नही था। वह पुनः कहने लगा, "इस दीवानगी मे प्रोग्राम के अनुसार लहरो को चीर कर अगर इग्लैंड देखा होता तो बैरिस्टरी भी मिलती और बी.. ।"

इस शब्द के पूरा होने से पूर्व ही प्रमोद ने गम्भीर मुद्रा मे कहा, "कीर्ति, कितनी बकवास करते हो तुम दिन भर।"

"जितनी से तुम थक कर सो जाओ।"

"अच्छा, अब चुप करो और सो जाओ।"

सुबह की चाय भी शान्ति से नही बीती। कीर्ति आया था प्रमोद का मन लगाने और लड कर, झगड कर, वाद-विवाद से, तर्क से, व्यंग्य से, हसी से किसी प्रकार उसको आनन्दित और नीरोग करने। उसने पुनः छेडा, "कहिये श्रीमान्, कल तो रातभर नींद काहे को आई होगी? प्रतिमा के दर्शन नींद मे तो और अच्छे होते है। मुझे तो होते है। तुम्हे होते है कि नहीं, यह नही मालूम।" और वह मुस्करा दिया।

"कीर्ति, सुबह से ही बकवास शुरू कर दी। क्या बार-बार प्रतिमा का स्मरण दिला कर मेरी स्मृति को हरा कर रहे हो?"

"जिससे वह केवल स्मृति न रह कर साक्षात् प्रकट हो जाए। बार-बार भगवान का नाम क्यो लेते है? इसी लिए न कि वह जल्द दिखे।"

"बको मत।"

"मै बकता नही, सही कहता हूँ।"

"अच्छा नही चुपोगे?"

"मार लो, लो मार लो। मेरा मुँह तुम नही बन्द कर सकते।" कीर्ति ने अत्यधिक निकट सम्बन्धो की गूँज मे कहा। वह कहता ही चला गया, "मुझे तुम से हमदर्दी है, मेरे दोस्त। लेकिन मै क्या करूँ? बुरा लगेगा

लेकिन कहो तो कह डालूँ। मुझे तो यह सब निरी मूर्खता दिखाई देती है। तुम्हारी यह तपस्या। न मालूम कैसा है तुम्हारा यह तपस्वी प्रेम ? क्षमा करना, मैं तो निरा बुद्धू हूँ, तुम्हारे शब्दो मे। परन्तु यह भी क्या प्रेम है ? कभी एक नजर देखा था और बस जीवन की बलि चढा देने को जुटे पडे हैं। न दो बाते, न कोई किसी को जानता ही है, न कोई सूत, न कपास...।"

प्रमोद चाय के प्याले को हाथ मे लिये बैठा था। उसने उसको न मुँह से लगाया था, न मेज पर ही रखा था। चाय बिल्कुल ठडी हो गई थी, किन्तु अपने मे लीन वह कानो से कीर्ति की बातचीत और अन्तरंग मे कोई दूसरी पुकार सुन रहा था।

"अरे, ऐ दलसिह, केटली मे चाय का पानी और दे जाओ और लो यह मेरे प्याले की चाय। जूठी नही है, गरम करके तुम पी लेना।" प्रमोद कह कर कीर्ति की ओर देखता रहा। वह सोच रहा था, अपने ही मापदंड से ससार दूसरे को मापता है। इसमे कीर्ति का क्या दोष ? वह तो केवल स्नेहातिरेक मे बह रहा है। तभी कीर्ति बोला, "मै समझ रहा हूँ, बेहद क्रोध आ रहा होगा, किन्तु मै डरने वाला नहीं हूँ। लखनऊ मे मैने कुछ नही कहा। समय ही नही मिला मुझे। अपने फाइनल की तैयारी करनी थी। अब आया हूँ सब बातो से निश्चिन्त होकर। पूरी तरह मैदान जीतने। और अपने सलौने मित्र को जीवन-दान देने। मै कह चुका हूँ, प्राणपण से चेष्टा करूँगा। कुछ बुरा लग रहा हो तो उतना हिस्सा निकाल कर मेरी बात पर ध्यान देना।"

प्रमोद, कीर्ति की स्पष्टवादिता और आत्मीयता से चिर परिचित था। किन्तु किसी अज्ञात कष्ट से वह तत्क्षण विह्वल हो उठा था। फिर भी उसने कीर्ति से कहा, "कीर्ति, तुम मुझे भली प्रकार जानते हुए भी ऐसी बात करते हो। रोष की इसमे क्या बात है ? यह तो विवाद का विषय है। मै भी तुम से तर्क करूँगा। और बात तो तुमने प्रारम्भ कर ही दी

है। मैं अपनी बात भी कहूँगा। या न भी कह पाया तो तुम्हारे तर्कों मे जो ठीक होगा उसे मानूँगा।"

प्रमोद कीर्ति को लेकर अगले दिन सुबह ही ढाल की ओर घूमने गया। चट्टानो के बीच ढुलकती कोलतार की चमकती सडक पर चलते हुए प्रमोद व कीर्ति आगे बढ रहे थे और उनके मन, विचारो का सग्राम छेडने को उत्सुक थे। प्रमोद अपने किसी विषय पर तर्क-वितर्क नही करना चाहता था। वह जैसा जो कुछ था सतुष्ट था किन्तु कीर्ति करोच रहा था।

चलते-चलते प्रमोद व कीर्ति सडक के किनारे पत्थर की कगार पर बैठ कर मुक्त-वायु सेवन करने लगे। तभी कीर्ति ने छेड दिया, "अभी तक दूरी बम्बई थी किन्तु बढती ही जा रही है। अब पहुँची है सात समुन्दर पार। लेकिन..."

कीर्ति के अधूरे वाक्य को काटते हुए कहा, "दूरी मे कोई अन्तर नही है, कीर्ति। किन्तु मेरे निकट ही है वह दूरी।"

कीर्ति ने अपनी बात को गहराई तक पहुँचाते हुए कहा, "ठीक है, जो तुम कह रहे हो तुम्हारे हिसाब से ठीक ही है। 'लव इज गाड', प्रेम अमर है। प्रेम महान् है। प्रमोद! मै पूर्णतः उस अमरत्व का उपासक हूँ। परन्तु प्रेम, मानव-जीवन के सत्य के साथ-साथ अनेक रूपो मे हृदय की दुर्बलता है। मानसिक उद्वेलन, हृद्गत भावातिरेक मनुष्य को अवश बना कर उसको शिथिल बना देता है। और तब वह एकागी होकर क्षत-विक्षत हो जाता है। उसका सर्वांगीण प्रभुत्व, विश्वास और कर्तव्य ह्रासोन्मुख होता है। और यह सब दुर्बलता है, सब ह्रास। मानव, जन्म पाता है पूर्ण विकसित पुष्प की भाति चतुर्दिक अपनी सुरभित सुवास छिटका कर वातावरण को भी सरस और सुखद बनाने के लिए। कुम्हला कर गिरा हुआ पुष्प उसकी चेतना का प्रतीक कभी नही। वह तो क्रन्दन है, समाप्ति। प्रेम के प्रभाव मे पूर्ण विकसित पुष्प के पश्चात् तुम्हारी असमय की यह कुम्हलाहट दूसरे शब्दो मे मानव-जीवन के मूल-भूत-तत्वो व उससे

अपेक्षित कर्तव्यो का पतन है। मैं तुम्हे ठीक करलूँ तब डंके की चोट पुकार-पुकार कर कहूँगा कि जीवन को समझो, उसकी सार्थकता को समझो, सीखो, अपने को पूर्ण मानो तब कही टटोलो, तब भागो। तब तुम भागने का नाम न लोगे। तब तुम्हे पता चलेगा कि केवल किसी रूपसी मे डूब कर किया हुआ बलिदान, शून्य अन्तरिक्ष को देखकर भागने की जडता ही केवल जीवन का सत्य नही है। यो अपने को वातावरण से खीचने की क्रिया अपनो के प्रति अन्याय है। प्रेम के अमर-सिद्धान्त के उपासक के द्वारा किसी के प्रति अन्याय नहीं होना चाहिये।"

तभी निकट से चार-पाच पूर्ण यौवना कुमारियो का एक दल प्रमोद व कीर्ति के निकट से निकल कर आगे बढ गया। प्रमोद कगार के सामने नीचे खड्ड मे बोलते किसी जानवर की सीटी, सी-सी का शब्द सुन रहा था। कीर्ति ने देर तक सामने जाते हुए उस चंचल दल को देखा और पुनः कहने लगा, "माना तुम अपने प्रतीक मे लीन होकर अमरत्व पा जाओगे किन्तु तुम भी किसी के प्रतीक हो, प्रमोद हो, यह न भूलो। बाबूजी व माताजी की निःस्वार्थ उपासना को क्या तुम अपने हाथ से मीस देना चाहते हो ? काश, तुमने इस प्रकार अपने को होम करके ही पानी पिया तो अभी उस क्षण की बात तुमने नही सोची होगी जब किसी रूपसी के वियोग मे नहीं पुत्र-वियोग मे विह्वल बाबूजी व मा अपनी उस अवस्था से मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर सोच कर दिन-रात अपने तन-मन को भार-रूप मान तुम्हारी इस अमरता से अपनी लडी मिलाते रहेंगे। मै पूछता हूँ यह क्या विवेक है, क्या सिद्धान्त है ?"

"कीर्ति, प्रेम मनुष्य का नही प्राणी का एक ऐसा जन्मजात सत्य है कि वह किसी नियम, किसी बन्धन, किसी सिद्धान्त, किसी भावी आशंका, किसी दुःख, क्लेश, वैभव, आनन्द को सोच ही नही पाता। मेरे ऐसा मनुष्य अवश है, अपाहिज है, एकागी है, कर्त्तव्यच्युत है। तुम्हारी यह बात भी ठीक है कीर्ति कि प्रेम अनेक अंशो में क्या पूर्णतः

मन और मस्तिष्क की दुर्बलता है। यह सब ठीक है। मनुष्य जन्म कर बहुत कुछ कार्य, भले-बुरे, सब-कुछ करने के लिये अपेक्षित है, यह सब ठीक है। यह सब सत्य है। वैसा ही सत्य जैसा प्रकृति का स्वभाव, मनुष्य मे नही प्राणी मे, सहज अनुराग सहज प्रेम। अवश, अवश, अवश, ठीक है। मै अवश हूँ, मनुष्य अवश है। कोई चारा नही है। कोई तर्क नही है। वह केवल सत्य है। स्वभाव, प्रकृति।

कुछ रुक कर प्रमोद वैसे ही विचार-सागर मे डूबा कहता गया, "प्रश्न किसी रूपसी का नही है। सर्वथा रूपसी ही प्रतीक हो, यह तुम्हारा भ्रम है।"

"यह सारा तमाशा ही एक भ्रम है प्रमोद महाराज!" कीर्ति अपने दोनो हाथो से मुडे घुटनो को ऊपर उठाता हुआ कह गया।

"तुम मुझे कुछ कहने नही देना चाहते और मै इस समय कुछ कह भी न पाऊँगा। बस इतना कहूँगा कि मै पूर्णतः दोषी हूँ। वह एक ग्रन्थि थी, जानबूझ कर नहीं, अनजाने मे पड गई। मै उफना नही। मेरी गम्भीरता ने मुझे अपने ही मे सिमट कर रह जाने दिया। मै उस ग्रन्थि को न खोल सका, न निकाल सका, न व्यक्त कर सका, न करना चाहता था। बस यही है मेरा सबसे बडा दोष। मै चाहता था संसार न जाने, मेरी छाया तक मेरे मन को न जान सके। हाँ, वह जाने, वह अवश्य जाने किन्तु मेरे मर जाने के बाद। तब वह मेरी उपासना करे। और वह भी उसी मे विलीन हो जाए। कीर्ति, वह सुख अपार है। सारे विश्व का धन और स्वर्ग की सीढी का प्रलोभन क्या उसकी प्राप्ति, जो केवल कल्पना की एक तुष्टि है, वह सब कुछ भी उस अपरिमित अलौकिक सुखानुभूति के समक्ष कहीं कुछ नहीं है। इसमे किसी के प्रति अन्याय या किसी को कष्ट देने की बात नही है। कीर्ति, क्या जीवन सदैव के लिए मिला है? मृत्यु का भी क्या कोई कारण है? मेरा दोष, बुरा मत मानना कीर्ति, यह भी था कि किसी समय के भावावेश ने वह बात तुमसे प्रकट करदी। तभी इस तर्क-वितर्क का प्रसग भी समक्ष है। अन्यथा

कीर्ति तुम नही जान सकते, तुम नही समझ सकते, यह सब-कुछ तर्क की चीज नही। तर्क है कहा ? हम पानी पीते है, सास लेते है। आओ इस सब पर बहस कर ले। यदि हमारा शब्द-भंडार और वाक्-शक्ति तीव्र है तो वाद-विवाद तो कितना सरल है। मैं हार रहा हूँ, कीर्ति। तुमने जाना, तुमसे पिताजी ने और माताजी ने और फिर न मालूम किस-किस ने। यह मेरी हार है। मेरी छाया तक न जाने, न जानती, तब मै विजयी था। विजय मेरी थी। अब देखो, सामने एक दलदल है, उखाड-पछाड़, प्राप्ति-अप्राप्ति और इस मायावी ससार का नग्न रूप। अब मुझे हारना ही है।" और प्रमोद मौन हो गया। जैसे वह हाफने लगा हो।

"यह केवल भावावेश है। मेरे किसी भी प्रश्न का उत्तर नही है। इसके आगे क्या कहा जा सकता है ? यह तो एक 'विहम्' है, 'विहम्'। चलो यही सही। तुम उपासना को मानते हो। वासना को तो स्थान नहीं देते। नही देते न, बोलो।"

"कदापि नही, एक पल के लिये भी नहीं। और कीर्ति, यह सब व्यर्थ है। न कोई कुछ मान पाता है न कोई किसी को स्थान दे पाता है। फिर वही, यह सब वाद-विवाद ठीक है। तुम्हारे तर्क ठीक है। मै कब मना करता हूँ। मै औरो की तरह सर फोडने के लिये तो तैयार नही। मै तो अपने सत्य के समक्ष सब मान रहा हूँ।"

"तुम क्या मानोगे। मानेगे तो तुम्हारे फरिश्ते।" कीर्ति और सभल कर बैठते हुए कहता गया, "मै कहता हूँ. "

प्रमोद ने हँसते हुए कहा, "क्या सभल-संभल कर बैठ रहे हो। घर नही चलोगे ?"

"घर मे ऐसा शान्त वातावरण और यह मीठी हवा नही मिलेगी। हा, तो मै कहना चाहता हूँ। यह सब वासना है। स्वार्थ। चलो ठीक है। मै तुम्हारी पूजा करता हूँ। इस निर्मल प्रेम अथवा उपासना मे आराध्य की पुकार परम-पावन व उत्कृष्ट है। ठीक। किन्तु परम आध्यात्मिक सिद्धान्तो

की कसौटी पर यह निष्ठा, वासनामय है । अपनी प्रेयसी के प्रसग को लेकर निर्जन-एकान्त मे उठे मनोविकार, प्राप्ति की अमिट चाह, अप्राप्ति पर अपना आन्दोलन, अपने मन तक सीमित ही सही, यह सब कुछ वासना है। और विरह मे भी स्वान्तःसुखाय एक मोह है और स्मृति की वह अवस्था, जब मन प्रतीक मे लीन होता जाता है, दारुण कष्ट मे भी सर्वस्व न्योछावर करने की कष्टकर सुखानुभूति को न त्यागने की बरबस चाह, यह सब काम-वासना, काम-लिप्सा न सही लिप्सा है, निश्चित लिप्सा। और लिप्सा वासना। समागम को ही केवल वासना मानना अपने स्वार्थ की बात है। एकान्त-वास मे प्रेयसी के हावभाव, शृगार, रूपलावण्य, नितम्ब, उरोज, रसमय-कपोल, लोल-लोचन, कटीली आखे, मीठे ओठ, नखशिख, कटि क्या नही देखते रहते ? और कल्पना मे गूढालिगन और चुम्बन का सीत्कार क्या हम नही अनुभव करते ? तब, तब वासना नही है, वह तप है, त्याग है। यह सब स्वार्थ और भुलावा देने की बाते है । प्रतिपल की कल्पना मे मस्तिष्क विकृत करने की अपेक्षा तो समागम को प्राकृतिक सत्य मान लेना सर्वोत्तम है।"

प्रमोद मौन था। "जब डके पीट-पीट कर प्रेम रोग की जड मे मट्ठा देना तब अपने इस समागम-मत का प्रचार भी करना। चलो अब फिर सर मारना। धूप काफी फैल गई है। घर चलना है। घबराओ नही। मै तुम्हारी वासना के चिथडे उडाऊँगा।" कह कर प्रमोद उठ खडा हुआ।

मार्ग मे कीर्ति ने पूछा,"प्रमोद, कल शाम मेरे आने पर दो महिलाएं तुम्हारे यहा से गई थी। वे कौन थी ? एक तो माताजी, माताजी सुन रहा था और दूसरी नीली साडी । यार पहाड पर भी लोग खूब आते है।"

"कहो वासना बोली । तुम्हारे ऐसे फितूरी आदमी ही दिन-रात सीत्कार सुनते है। अनुभव करते है। हेरा-फेरी से नही मानते। खैर सुनो, मेरे एक मित्र है मि० जयन्त, घबराओ नही, तुम्हे उनसे मिलने पर मस्तिष्क का भोजन पर्याप्त मिलेगा और लेक्चर-बाजी भी उनसे करने मे

तुम्हे आनन्द मिलेगा । वे है रसीले तुम्हारे मतलब के । मुझ नीरस आदमी से तुम व्यर्थ मगज-पच्ची करते हो । हा, तो एक तो जयन्त की माता जी थी और दूसरी उसकी बहन माधवी।"

"अभी शादी नहीं हुई मालूम देता है।"

"क्यो ?"

"यही कि अच्छी सूरत भी क्या बुरी शै है।"

"कीर्ति, तुम कही ठोके न जाओ।"

"अब तक का इतिहास तो उज्ज्वल है। और मौखिक सलाप मे धरा भी क्या है ? महज इतनी-सी बात मे अपने हाथ कौन गदे करेगा।" कीर्ति व प्रमोद हँस दिये।

तभी कीर्ति ने उस वर्ष की मारिस-कालेज की संगीत-बैठक की चर्चा छेड दी। वह कहने लगा, "सुनो प्रमोद, एक मजेदार घटना। उस दिन वार्षिक-म्यूजिक-कान्फरेस मे अच्छी चहल-पहल थी । तुम्हारी भी बड़ी याद आती रही। हा, तो कार्यक्रम मे एक लड़की को, भला-सा नाम है उसका, हाँ, जयश्री। उसके सुमधुर मीरा के भजन पर लाइन की लाइन झूम गई। और तुम जानते हो रमेश, मिट्ठू, कपूर और शीतल भी साथ थे। मुझे बे-मतलब पानी पर चढा दिया और कपूर ने खुद जाकर मेरे नाम से स्वर्ण-पदक घोषित कर दिया । गाया तो उसने क्या बात थी ? वाह ! और भगवान ने गले के साथ उसको रग और चमकती नीली-नीली नसे और खटकती आखे भी दी है। मैंने हा कर दी।"

"ठीक । तुम्हारी यह कोई नई बात तो नहीं । कुछ रंग खिलता मालूम देता है।"

"अरे क्या पूछते हो ? मुझे तो कुछ मालूम नही था कि कुमारी जी सुप्रसिद्ध है। बस चखचख शुरू हो गई। आवाजे आने लगी। मेडिल, मेडिल, वन्समोर। अब मेरी हालत बुरी। मैं इन सब पर बिगड़ा। किन्तु तीर हाथ से जा चुका था। हाल भर मे चहल-पहल फैल गई। दस मिनट तक कार्यक्रम रुक गया। लडको के और कुछ अधेड मनचलो के तूफान और

वन्समोर मे जयश्री जी फिर सामने आइ। उनके दूसरे भजन के पश्चात् ही स्टेज पर न मालूम किधर से उनके घर वाले आ टपके। और 'लाउड-स्पीकर' पर चिघाडने लगे। "इस तरह भले घर की लडकियो को बुलाकर अपमान किया जाता है । यह बहुत बुरी बात है । और मै उन बाबू साहब की शकल देखना चाहता हूँ जिसके नाम से यह मेडिल घोषित किया गया है। उनकी पसन्दगी के बाद की चिल्लाहट को मै भली-भाति समझता हूँ। क्या तमाशा समझ रक्खा है। यह मेडिल वे अपने ही घर मे किसी को दे।"

हाल ही मे से किसी ने भरे सन्नाटे मे आवाज दे दी, "बाध दो।" और हाहाकार से हाल पुनः गु जरित हो गया । मैं तो किसी दरवाजे से धीरे से भागना चाहता था। उन महाशय ने तत्क्षण 'माइक' छोड दिया, और अपनी पुत्री को लेकर हाल के बाहर चले गए। इस घटना के चौथे दिन मालूम हुआ कुमारी जी किसी डाक्टर साहब के साथ कलकत्ते फरार हो गई। लेकिन मै व्यर्थ मे लपेट मे आ गया। अब कपूर और सिद्धू, पाजी कही के, कहते फिरते है कि कीर्ति तो उसे पहले से जानता था। मेडिल दिया था साहब, मेडिल। शहर भर मे चर्चा तो थी ही। यह भी बात आई कि मैने मेडिल दिया था। उस दिन पिता जी ही मुझसे पूछ बैठे, "तुमने किसी लडकी को कोई मेडिल दिया था । और वह लडकी कहाँ गायब हो गई।"

"क्या बताऊँ बाबू जी, उस दिन बुद्धू बन गया । सब लोगो ने मिल कर मेरा नाम वहा सुना दिया।"

"खैर, दुनिया बडी खराब है। सब समझ-सोच कर काम करना चाहिये।" कह कर उस समय पिता जी ने अपने मन का सन्तोष तो पा लिया किन्तु मुझे सचमुच उस मजाक का मजा आ गया।

"अरे, कहो बच तो गए वर्ना ." प्रमोद ने मुस्कराते हुए कहा।

"जी हा, अब आप भी, आप भी रग चढा रहे है।"

तभी मकान आ गया और प्रमोद तथा कीर्ति हँसते-हँसते सीढियाँ चढ गए।

आज मा ने महीनो बाद प्रमोद की हँसी सुनी थी । इसके लिये वह कीर्ति की सराहना कर रही थी और सोच रही थी—कीर्ति के रहते प्रमोद इसी प्रकार प्रसन्न बना रहेगा।

मध्याह्न मे भोजन करते-करते कीर्ति ने कहा, "मित्रवर, एक बात अभी तक नही बताई। वह भी सुन लो। बिगडना तो है ही। मैने भी कमर कस रक्खी है। जी भर कर बिगडना ! हा, तो तुम्हारे बाबूजी ने प्रतिमा के पास इग्लैड एक पत्र भेजा है। पता वे जस्टिस साहब से ले आए थे। वे कहते है, पुत्र की जीवन-रक्षा के लिए वे प्रत्येक सम्भव उपाय करेंगे। और उनका मत है कि इस प्रकार की बीमारियो का सम्बन्ध शारीरिक मशीन से इतना नही रहता जितना मन.स्थिति के बिगाड़ से रहता है। और मन के सन्तोष से इसका उपचार सम्भव क्या निश्चित है। वे इस प्रकार के प्रमाण भी अपने मत की पुष्टि मे देते है। मै स्वय यही बात कहता हूँ। परन्तु मेरी बात से वकील साहब की बात का अधिक महत्त्व है। इसलिए नही कि वे वकील है किन्तु इसलिए कि उन्होने बडे अनुभव किए हैं।"

"कीर्ति, तुम क्या मुझे पागल बना देने के लिए यहा आए हो। वैसे ही मै किसी विक्षिप्तालय न जाकर इस हिमालय मे आकर शीत से अपने मन को शीतल कर रहा हूँ। तुम अलग प्रतिक्षण कोई न कोई नवीन द्वन्द्व छेडकर मन को आन्दोलित कर डालते हो। मै सोच रहा हूँ, यह सब तुम्हारे ही परामर्श का प्रतिफल है। पत्र क्या कर लाएगा ?"

"खाना खाओ, खाना ! और धीरे-धीरे देखते जाओ क्या होने को है ? बस शीतल बने रहो ! समझे !"

भोजनोपरान्त कीर्ति तो खाट पर लेट कर खू ऊ खूं करने लगा और प्रमोद बरामदे मे आकर तन्मय हो गया। पिता जी यह सब क्या

करते चले जा रहे है ? अपरिचय से अवज्ञा होने का भय भी उसे हो रहा था। बाबू जी ने न मालूम किस रूप मे क्या लिखा हो ? उसका नेचर न मालूम कैसा हो ? वह पत्र को किस दृष्टिकोण से देखे ? यह सब कीर्ति की दुष्टता है। अब मै इससे क्या कहूँ ? दोप मेरा है। मुझे इस से कुछ नही कहना चाहिए था।

वह सोचता चला जा रहा था, प्रतिमा इग्लैंड चली गई, मुझ से दूर, हजारो मील दूर। और कीर्ति, कितनी व्यर्थ की बाते हैं, उसकी! मुझे उसके वेदान्त के से मतो पर सोचने का समय कब मिलेगा ? मै किस स्थिति मे पहुँच गया हूँ, वह अभी नही सोचता। न सोच सकता है। वह सोचने की नहीं, अनुभव की वस्तु है। और प्रतिमा, उसके सम्बन्ध मे सोच-विचार ही व्यर्थ है। न कोई बात पहले ही थी। वह तो एक क्षण था, जीवन का बहुमूल्य क्षण, जब मेरे मन पर उस दर्शन का एक दिव्य प्रभाव पडा और असीम मे विलीन होने का वह एक स्थायी प्रसग छोड गया। मेरी इस एकनिष्ठ अर्चना मे ही मुझे परम सुख है। प्रतिमा मे विलीनता यदि कीर्ति के अनुसार वासना है, तो हो। मुझे वह भी स्वीकार है। मै किसी भी विपय मे उलझना नही चाहता। मेरी अपनी स्थिति मे और वेदान्ती दार्शनिकता की बातो अथवा प्रचलित सिद्धान्तवादिता मे बडा अन्तर है। कीर्ति नही जानता। कोई नही जानता। वह अपनी वस्तु है। वह अनुभव की वस्तु है।

हॉ, यह बात वह कभी-कभी अवश्य सोचता है कि उसका प्रसग एक विचित्र-सा प्रसग है। प्रथम-दर्शन मात्र मे वह इतना अधीर हो गया। वह इस प्रकार समर्पित हो गया, यह हृदय की कौन-सी गति या कौन-सी क्रिया है ? किन्तु इसी मे उसे गर्व है। वह सोचता है, ऐसी भी एक कहानी लोग बाद मे याद करेगे। कितना सुखकर है। यह सोच कर कितना आनन्द मिलता है।

तब वह भावी चित्राकन करने लगा। प्रतिमा कुछ नही जानती, वह नही जानेगी। किन्तु यदि जीवन मे कभी उसके समक्ष ऐसा प्रसग

आ गया तब—तब वह रो उठेगी चीत्कार कर उठेगी। वह मुझे प्रतीक मानकर सूने मे अथवा मेरे चित्र के सम्मुख मेरी अर्चना करेगी। वह उसी मे लीन हो जाएगी, समाप्त। उसकी भी अपनी, मेरी ही भाति, एक अनोखी कहानी होगी। किन्तु, यह सब सोचना कितना भ्रम है। कितना मिथ्या। वह क्यो जानेगी ? वह जानकर भी क्यों अर्पित होगी ? उसका मेरा परिचय क्या ? उसका मेरा सम्बन्ध क्या ? प्रतिमा इग्लैंड से जर्नलिज्म और शोशियोलाजी की शिक्षा लेकर लौटेगी। उसके अपने मत होगे, उसके अपने मन होगे। वह अपने मन का साथी वही से चुन कर लाएगी। वह अपना सहयोगी यहाँ ही चुनेगी। मुझ से क्या ? कोई कहेगा भी कि कोई अपरिचित महाशय दीपमालाएँ सजो कर रख गए है और स्वय अन्तरिक्ष मे विलीन हो चुके हैं तो वह हँस कर कह देगी, "होगे कोई मूर्ख। मुझे क्या ? मै क्या जानूँ ?" वह इंग्लैंड की पोशाक और उसी जोम से सामने पडे मेरे चित्र पर भी सैंडल लगाकर स्वागत कर सकती है। और तभी मै चाहता था कोई न जाने। किन्तु कीर्ति, तुम बडे वैरी निकले। उसकी आँखे छलछला आई।

तब बाबू जी ने पत्र मे क्या लिखा होगा ? उसका भयंकर प्रतिरोध भी सम्भव है। किन्तु उसका मन भी वैसा ही कोमल, भावुक और सुन्दर हुआ, जैसा उसका तन, तो सम्भव है वह कुछ सोचे, कुछ सहानुभूति जगे। किन्तु वह मेरा अपमान होगा। मै वह सब कुछ नही चाहता था, नही चाहता था।

कीर्ति जग कर सामने आ गया और प्रमोद के मन की दशा मुख पर स्पष्ट पढ कर कहने लगा, "प्रमोद, यदि तुम मेरे सामने भी ऐसे ही बने रहे तो मैं कल ही लखनऊ चला जाऊँगा, समझे!"

प्रमोद व्यवस्थित होकर हस दिया। तब सामने मैदान की ओर देखते-देखते बोला, "कीर्ति, कल तुम्हे एक विचित्र व्यक्ति से मिलाऊँगा। जिसे देख कर तुम भी नत-मस्तक हो जाओगे।"

कीर्ति की बात-बात मे मसखरापन झलकता था, यह कहने लगा, "अरे भाई यह तो ऐसो का सगम समझो। तीर्थ-स्थान। यहाँ ऐसे महापुरुषो को ढू ढना थोडे ही पडेगा। अपने आप टहलते मिलेंगे। ये ही उनके स्थान है। पहाडो पर, गुफाओ मे, तराई के किनारे, बाल बढाये, सर मुडाए, मन बहलाए, वल्कल पहने, दंड-कमण्डल लिए, लीन, परमानन्द, परमसुखी।"

प्रमोद भी बिना हँसे न रह सका।

: १६ :

सबेरे ही कामिनी बरामदे मे पडी कुर्सी पर आ बैठी। कामिनी की गणना रूपवती नारी मे पूर्ण-रूपेण की जा सकती है। विकसित रूप की कोमल त्वचा के गोरेपन से सजा उसका सलोना मुख, जल्दी-जल्दी खुलने-मुँदने वाली कानो तक फैली चली गई बडी-बडी आखे, भौहो के बीच मे एक छोटा-सा काला तिल किन्तु बडा कटीला, वैसा ही जैसा चिबुक पर उससे चौगुना बडा, उससे गहरे काले रग का दूसरा तिल, ऊँची नाक पर सदैव चढा रहने वाला रगीन चश्मा वैसे ही खिलता जैसे जीवन की रगीनियो को वह मन की आँखो से भी वैसे ही रगीन देखने की सदैव इच्छुक हो, और प्रतिक्षण खिली-खिली ही बनी रहे। अपने काले केशो को वह दो चोटियो मे गूथती। उनमे वह सदैव बसन्ती-रिबन लगाया करती थी। आज भी वह उसी भाति अपने रात्रि के निद्रित-शृंगार मे अलसाई-सी प्रातःकाल कुर्सी पर बैठी थी। उसका मन भरा-भरा था। उसकी दृष्टि उसी पथरीली पगडडी पर लगी हुई थी जिधर से कल शाम उसके सामने से निवेदिता इठलाती चली गई थी। वह बरामदे मे उस स्थान से तनिक हटकर बैठी थी, जहा कल जयन्त ने उसके समक्ष निवेदिता का हाथ चूमा था। वह उस क्रिया के पश्चात् निश्चित होने वाले दोपहर के कार्य-क्रम के विपय मे सोचना चाह रही थी। किन्तु उसके मन मे इतना संघर्ष, इतना बवडर और इतनी उत्तेजना थी कि वह कोई भी बात पूरी तरह सोच ही नही पा रही थी।

अभी सब लोग सोए हुए थे। जयन्त भी सो रहा था। कामिनी ने स्लेटी रग का काश्मीरी शाल, जिसमे किनारे पर बहुत पतला काम हो रहा था, पूरी तरह कन्धे से नीचे ओढ रक्खा था। इस समय उसने अपनी सदव की खुली दो चोंटियो को मिला कर जूडा बाध लिया था। वह कुर्सी पर बैठे-बैठे जयन्त की मधुकर प्रवृत्ति के सम्बन्ध मे सोच रही थी। एक ओर उसका मन कह रहा था, यहाँ छीछालेदर करके ही वह जाए। इस प्रवृत्ति का निवारण होना ही चाहिए। चुप हो जाने से बढावा ही मिलता रहता है। एक चस्का जो लग जाता है। किन्तु, किन्तु वह सोच गई, अपनी बात। वह कब सीमित रही है। ऊपरी-क्रीडा का अनन्त सुख लेने की उसकी लालसा भी सदैव बनी रही है। तन से दूर रख कर मन के मेल मिलाने की चेष्टा का खिलवाड वह एक से अधिक बार कर चुकी है। किन्तु जयन्त के बाद, जयन्त का कुछ ऐसा जादू था कि वह उसी मे सिमट कर रह गई। इसके पूर्व वह दूसरो को नचाया करती थी। किन्तु जयन्त ने उसे नचा डाला। जयन्त मे वह झूम गई थी। वह सब कुछ भूल गई थी। किन्तु जयन्त ने उसके साथ जो अन्याय किया है उसको वह अनुराग की गहन बीथियो मे भूल-भुलैया की भाति भूल जाना चाहती थी। उसका विद्रोह जयन्त के सामने घुटने टेक देता है। उसने जयन्त को जी भर कर प्यार किया है, तभी उसके दोष पर भी वह तटस्थ रहना चाहती है। वह कुछ न कर सकेगी। चुपचाप वह अपने को मार्ग से पृथक् कर लेगी। वह आज शीघ्र से शीघ्र जाना चाहेगी। किन्तु वह जाए कहा ? पिता जी ने मना किया था। उन्होने नारी के आत्म-सम्मान का ध्यान दिला दिला कर उसे जाने से रोकना चाहा था। किन्तु मनमोहन को तिलाजलि दे देने के बाद से उन्होने सोच लिया था कि 'यह लडकी किसी की न मानेगी। कभी नहीं मानेगी।'

तभी जयन्त उठकर बरामदे मे आया। देखा, कामिनी सामने की ओर मुँह किए बैठी है और अपने दोनो हाथो से उसने अपना मुँह ढॉप रक्खा है। आहट पाकर आँखे मलते-मलते कामिनी ने घूम कर देखा,

जयन्त खड़ा था। सदैव की भाति उसके दोनो हाथ नमस्कार करने को उठ गए। जयन्त विचलित हो उठा। तत्क्षण उसे कुछ दिन पूर्व की कामिनी स्मरण हो आई। उसका मन कह उठा, उसने अन्याय किया है। वह धीरे से कामिनी के निकट आया और उसने उससे प्रश्न किया, "कामिनी, कब से बैठी हो ? चलो अन्दर चलो। यहाँ सर्दी अधिक है।"

कामिनी की भौहो मे गाठे पड गई। वह कुर्सी के हत्थे को हाथ से साफ करते हुए कह गई, "ओह, कामिनी का इतना ध्यान बना है जयन्त, तुम्हारे मन में। किन्तु, अब न वह कामिनी, कामिनी है न वह जयन्त, जयन्त। कामिनी के स्थान पर निवेदिता है और जयन्त के स्थान पर शून्य। जयन्त, जो कुछ मैने यहाँ आकर समझा है उसे तुम स्वय स्पष्ट लिख देते तो मुझे पश्चात्ताप न होता, न होता। खैर, आओ सामने कुर्सी खाली पडी है, बैठो।"

जयन्त कुर्सी घसीट कर कामिनी के निकट आ बैठा। ठडी हवा के झोके आ रहे थे अतः जयन्त तुरन्त अन्दर जाकर ओवर कोट पहन आया। कुर्सी पर बैठते-बैठते जयन्त बोला, "कामिनी, यो मेरा जीवन भी भार हो जाएगा। मैं दोषी हूँ, किन्तु अब मुझ से दोष हो चुका है। अब मेरे पास क्षति-पूर्ति के लिए कुछ है भी नही। अतः तुम सहर्ष अनुमति दो, तुमसे मै हाथ जोडकर अनुरोध करता हूँ कामिनी। और जयन्त ने हाथ जोड दिए। कामिनी स्थिर बैठी थी। कुछ देर बाद वह बोली, "छोडो इस बात को, कोई और बात करो।"

"हाँ, कामिनी बात अब छूट ही चुकी है। मेरी व्यथा को ही तुमने कब देखा है। क्या उस मानसिक-क्लेश का बिना प्रभाव पडे ही मैं इन चट्टानो मे व्यर्थ सर पटकने चला आया। तुमने ही इससे पूर्व यह कब जानने की चेष्टा की थी कि मेरी बीमारी की क्या पृष्ठभूमि है ? तुमने तो एक साधारण बात ध्यान मे रक्खी थी। मै किसी प्रकार बीमार हो गया हूँ। खिन्न हूँ। अतः पत्रो द्वारा सन्तोष देने की तुमने निरर्थक

चेष्टा की। बनारस से चलने के दो दिन पूर्व मा ने तुमसे कहा था, 'बेटी, तू चाहे तो जयन्त को ठीक कर सकती है। यह मै जानती हूँ।' वह उस समय केवल माँ की बात थी किन्तु सत्य थी। घर के वातावरण से उनकी यह धारणा बन ही गई थी कि जयन्त की बीमारी का कारण मन की खिन्नता है। और उस खिन्नता का कारण ? वह मा, तुम, तुम्हारे पिताजी सब जानते थे। किन्तु वह गहराई तुममे आज अपनी तडप के बाद आई है। तुमने अब तक सोचा भी न था कि मानसिक उद्वेलन और वेदना किस चिडिया का नाम है। अब, जब मैने अपनी कडी जोड ली है, जब मैने वेदना को कुचल कर अपना नवीन भवन निर्माण करने की नींव डाल दी है और स्थिति और उसकी गहराई से जब तुममे चेतना आई है, तब तुम्हारी भी भावुकता जग रही है। किन्तु अब मै विवश हूँ। तुम्हारे कथन की गम्भीरता को मै मानता हूँ। अब मै निवेदिता को ही अपने जीवन की बागडोर पूर्णतः सौप दूँगा।

कामिनी मौन थी। वह देर तक जयन्त की ओर देखती रही। वह अपने रुधे कण्ठ से बोली, "जयन्त, क्या आज निवेदिता से मिला दोगे ?"

"कामिनी, मेरे लिए उससे मत मिलो। कामिनी, मिलने का अनुरोध मत करो। अभी बडी कच्ची डोर है कामिनी, किन्तु बडी पवित्र। कही मै हाथ मलता न रह जाऊँ। कच्चा मन तनिक आशंका से अपनी गति फेर लेता है।"

कामिनी के मोती उमडते सागर से ढुलक-ढुलक कर कपोल और तत्पश्चात् दुशाले को भिगोने लगे। जयन्त भी विचलित हो गया। वह अपना मस्तक हाथ से पकड कर मौन बैठा रहा।

इतने ही मे शम्भू ने अन्दर से आकर कामिनी को देखते ही कहा, "अरे कामिनी बीबी, आई हो, अच्छा, अच्छा, कब ?"

कामिनी ने उसे देखते ही अपने नेत्रो को सुखाते हुए कहा, "ओ, शम्भू, तुम यही हो। मैं कल से आई हूँ और तुम दिखे तक नही।" कामिनी का गला भरा हुआ था।

"अच्छा, ई का बात। बोलो, चा लाई, ई कसस रोवत हो ?"

तभी जयन्त ने सुस्थिर होते हुए कहा, "शम्भू, चाय लाओ और माधवी को यहा भेज दो।"

जयन्त को आज इतने सबेरे देख कर प्रमोद कुछ चकित था। वह कुछ कहे, इसके पहले ही जयन्त कहने लगा, "भाई साहब, मै समझ रहा हूँ, आप मुझे इतने सबेरे देख कर आश्चर्य कर रहे होगे और आश्चर्य की बात भी है......"

जयन्त का वाक्य पूरा हो इसके पूर्व ही उत्सुकता व्यक्त करते हुए प्रमोद ने कहा, "बोलो, बोलो क्या बात है ?" जयन्त कीर्ति की ओर, जो सामने ही पलग पर कुलबुला रहा था, निरन्तर देख रहा था। इस पर प्रमोद बोला, "कीर्ति, यह देखो, ये आए हैं, जयन्त।" जयन्त को देख कर कीर्ति ने हॅसते हुए कहा, "गुड मार्निग मि० न्यू फेस।" जयन्त से बिना हँसे न रहा गया। प्रमोद ने भी जयन्त का साथ दिया। "और जयन्त, इतने ही से इनका परिचय मिल गया होगा। फिर भी ये है मेरे अनन्य मित्र श्री कीर्ति मोहन। अच्छा हॉ, तो बोलो क्या बात है ?"

"श्री श्री कामिनी देवी जी पधारी है।"

"अरे कब ?" प्रमोद ने कौतूहल व्यक्त करते हुए प्रश्न किया।

"कल आई है, शाम को। उसी समय जब माधवी व मा यहा थी।"

"हा, हा आई है। वह देखिये सुन्दर-सी है। हर समय रगीन चश्मे के अन्दर और पतली उगलियो मे दाहिने हाथ मे बराबर-बराबर तीन अंगूठियो के बाहर। साहब अगूठिया एक से एक "माडर्न" धजा की हैं। वैसे उनकी भी क्या कम माडर्न धजा है। वे तो मेरे साथ उतरी थी। एक ही बस से। अरे एक ही बस से, नही एक ही कम्पार्टमेन्ट से। अरे देखिये, हा, हा बनारस से आई है।" कीर्ति बडे आनन्द मे सब कहे जा रहा था। प्रमोद को हॅसी आ रही थी और जयन्त को हॅसी के साथ कौतूहल उत्पन्न हो रहा था। साथ ही कीर्ति के इस हँसोडपन और नए

परिचय मे इतना खुल कर बात करने की आदत पर वह मन ही मन प्रसन्न होता हुआ कहने लगा, "जी हा, बस वे ही पधारी है, भाई साहब । लेकिन कीर्ति बाबू भी खूब है। डिटेल्ड रिपोर्ट रखते है।"

'अजी साहब, अठारह घंटे का साथ है, अठारह घटे का। लेकिन साहब, बड़ी साफ तबियत पाई है । रास्ते भर बातचीत और स्वागत-सत्कार होता चला आया है दोनो ओर से । लेकिन कहिए, जयन्त साहब, आप को तो कोई आपत्ति नही हो रही है। कहिए तो बताना बन्द कर दूँ । लेकिन आप, वे तो कह रही थी उनके कोई "फ्रेण्ड" है, यहा बीमार। वैसे मैने 'उनके फ्रेण्ड बीमार है' इस पर आपत्ति की थी। लेकिन कुछ कहा नही था। उसके जवाब मे मैने भी कह दिया था, जी हा, मेरे भी एक फ्रेण्ड, क्या मरीज बीमार है, उन्हीं के पास जा रहा हूँ। तो वे आपके यहा है। तब तो भेंट हो ही जाएगी।"

'अच्छा कीर्ति, तुम अपना यह विनोद बन्द करो। हा, जयन्त, तो यह एकाएक आना कैसे हो गया ? सब ठीक तो है ? तुमने और कुछ नही तो मौखिक सन्तोष अवश्य ही दिया होगा ?"

और तब जयन्त ने कामिनी के आगमन के पश्चात् का विवरण, निवेदिता से साक्षात्कार इत्यादि का विस्तृत समाचार कह सुनाया। प्रमोद की मुद्रा गम्भीर थी। किन्तु कीर्ति से न रहा गया। वह पलग पर इधर-उधर झूम रहा था। हँसता हुआ बोला, "शाबास प्रेमियो, तुम्हारी तो सर्वत्र बढोत्तरी देख कर दिल लगाने को जी चाहता है ।"

प्रमोद, जयन्त व कीर्ति खिलखिला कर हँस दिये। जयन्त तो इतना हँसा कि रूमाल निकाल कर उसने अपनी आँखो के पानी को सुखाया। किन्तु प्रमोद तुरन्त गम्भीर मुद्रा बना कर बोला, 'कीर्ति, अब जरा चुप रहो, परिस्थिति गम्भीर है।"

कीर्ति से चुप न रहा गया। वह कहने लगा, "अरे भई, परिस्थिति तो अपने हाथ से गम्भीर बनाई जाती है । लेकिन खूब, जिओ दोस्त, जिओ। एक है एक के पीछे दड-कमडल सभाले बैठे है। कहते हैं, चला-

चली का मेला है। एक हैं, जिनके पीछे एक छोड़ दो-दो झूम रही हैं। और मेरा दोस्त, रस्सी तुडाकर इतने सवेरे भागा चला आ रहा है । भाई, बधाई।"

जयन्त इस कटुता को पी गया। प्रमोद को भी हर समय की वह हँसी भली नही लगी। किन्तु दूसरी ओर वह सोचने लगा, कीर्ति मुझको सकेत करके ही बहुत-सी बाते कहना चाहता है। वह कीर्ति से बिना बोले जयन्त को सम्बोधन करके कहने लगा, "और उन मनमोहन का क्या हुआ ?"

"मुझ से तो उस सम्बन्ध मे कोई बात नही हुई । किन्तु कामिनी, माधवी से ही कह रही थी कि मनमोहन को तो उसने उसकी किसी बेहूदगी पर तमाचा जड दिया और उसी दिन से मामला कट। जो भी हो, कल निवेदिता के समक्ष सचमुच उसने एक प्रकार से मेरी रक्षा ही की।" कह कर जयन्त चुप हो गया।

कुछ देर तक कमरे मे मौन वातावरण बना रहा । कीर्ति पलग से उठ आया था और बरामदे मे टहल रहा था किन्तु जयन्त की बातचीत मे रस लेकर मन ही मन मुस्कराता जाता था।

अन्त मे प्रमोद ने मौन भग किया और जयन्त को कठोर शब्दो मे ताड़ना देते हुए कहा, "जयन्त, यह सब कुछ बहुत बुरा है। मैने समझ लिया है। मेरा दृढ विश्वास है कि कामिनी बिलकुल निर्दोष है। उसके सरल-प्रेम का अनुचित प्रकार से हनन किया गया है। यह अन्याय है, अनाचार है। स्पष्टतः तुम सौदर्य के पीछे भागने वाले दोषी पुरुष हो। तुम्हारा यह अनुराग और प्रेम यह सब मिथ्याडम्बर है। यह बडा घातक है। व्यक्ति, वातावरण और समाज के लिये यह भयकर अनाचार है। तुम इसी प्रकार किसी दिन निवेदिता को भी छोड सकते हो। तुम निश्चित उसके साथ भी खेल कर रहे हो।"

"और भाई साहब, आपका मेरे प्रति यह अन्याय । क्या मै मृत्यु-मुख से नही लौटा हूँ ? क्या मैने अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण तडप-तड़प कर मर-मर कर नही काटे हैं ? तब उनको किसने देखा था ? तब

किसी का चाव और किसी का साहचर्य कहा विलीन हो गया था ? निवेदिता कितने दिन से इस बीच मे आई है ? आपको तो पता है। यह नही है कि आपको पता नहीं । तब उस हूर ने यह समझा ही नहीं कि मेरे इस प्रवास का कारण क्या हो सकता था ? और वे भोली ही रहीं। उसको स्पष्ट ज्ञात था । पिता का दामन थाम कर वह निश्चिन्त मेरे नाश का कारण बनी थी। वह मेरा दुर्भाग्य कहिए या सौभाग्य, वह 'ट्रेजडी' मैने ही चाही थी और मैने ही बचा ली। आपके मृदुल-व्यवहार और तत्पश्चात् निवेदिता के सुरभित साहचर्य ने ही मुझे जीवन दान दिया है। और ."

बीच मे रोकते हुए प्रमोद ने पुनः कहा, "यह सब व्यर्थ की बाते हैं । आज परिचय का स्थान मित्रता ने ले लिया है और मुझे खेद हो रहा है कि तुम मेरे मित्र हो । कामिनी को मर्यादानुकूल उचित सम्मान न मिलना बहुत बडा अन्याय है। अक्षम्य अपराध है। वह यहा नही है किन्तु उसकी ओर से मै कहता हूँ। इतने सब पर तुम्हारा ' डेयर डेविल" क्यो नही जागा । तुम्हारा तो एक प्रकार से वरण हो चुका था किन्तु नहीं, दोषारोपण करके बच निकलने मे भी एक कला है, एक कौशल है। तुम उसमे चतुर प्रतीत हो रहे हो । और कहते क्या हो ? तुमने अपने हाथो परिस्थिति जटिल बनाई है । दूसरी ओर जैसा मै समझ चुका हूँ, निवेदिता की सुकुमारिता, उसका निर्मल स्नेह, उसका पूर्ण यौवन तुम पर आश्रित हो चुका है । उस कच्ची कली को भी अब तनिक-सी ठेस से इतनी चोट पहुँच सकती है कि कामिनी से अधिक कारुणिक व असह्य परिस्थिति उसकी हो सकती है । तुमने सचमुच बडा अनर्थ किया है। अब परिस्थितिया व तुम्हारा विवेक ही स्थिति को और अधिक विषम होने से रोक सकता है।"

जयन्त निरुत्तर बैठा रहा। गम्भीरता पूर्वक वह अपने मन को टटोल रहा था। प्रमोद के कथन मे नैतिकता, व्यावहारिकता और सत्यता के पोषक तत्व तो उसे मिले थे किन्तु परिस्थितियो को सभालने का कोई

मार्ग उसके समक्ष नही था । परिस्थिति सभल भी क्या सकती थी ? कामिनी से सम्बन्ध-विच्छेद तो वह एक प्रकार से कर ही चुका था। हा, निवेदिता और अपने सम्बन्धो पर आच न आए और कामिनी-रूपी आई हुई उस समय की वह बला, किसी भाति टल जाए, यही बचाव वह ढूँढता फिर रहा था । वह धीरे से बोला, "मै आपका अभिवादन करता हूँ। आपकी बात ठीक ही सही। किन्तु मैने जान-बूझ कर किसी के साथ अन्याय नही किया है। आत्मतुष्टि के शिखर पर पहुँच कर मैने पूर्णता की कोई पदवी नही प्राप्त कर ली है। सम्भव है मै सदोष ही होऊ। किन्तु मैने कामिनी के साथ अन्याय किया है, यह मै कदापि नही मान सकता।"

"न मानना ही चाहिए। तुम क्या, कोई नही मानेगा ? परिस्थिति वही है, जब तुम मनमोहन के नाम से मिसमिसा उठते थे। मै कहता हूँ कामिनी का प्रेम और उसका सन्तोष अनुकरणीय है । वह बहुत ही विवेकशील रमणी है।"

जयन्त कुछ दृढ होकर प्रमोद की बात को काटते हुए कहने लगा, "मुझे अनायास निवेदिता मिली। आप वे परिस्थितिया भी जानते है। निवेदिता की ओर दौडने के पूर्व की मेरी दशा भी आपकी देखी हुई है। मेरी दशा उस समय उस घायल पक्षी की तरह थी जिसका अन्त तो निश्चित ही था किन्तु वह निर्जन मे एक बूद जल के लिये ही तडप रहा था। दैवात् उसे उस एक बूद जल ने जीवन-दान दिया। वह अपने को समेट कर, पर फडफडा कर, कुछ पग आगे बढा और काल की गति, वह उड सकने मे पूर्णतः समर्थ हो गया। अब मै यह कदापि नही मानता कि निशाना उसी की ओर नही लगाया गया था, वह बीच मे यो ही आ गया । और अब जब वह पक्षी जीवन-दान पाकर उड चला तो उससे यह कहना कि वह दूसरे देश कहा जा रहा है और वह अपना देश क्यो नही पहचान पाता ? उसके साथ बडा व्यग्य है।"

कीर्ति इस समय गम्भीरता की मुद्रा मे सामने बैठा सब कुछ सुन

रहा था । जयन्त पुनः कहने लगा, "भाई साहब, प्रश्न यहा केवल अनुराग का ही नही है। उसके बीच मे भी कुछ आ घुमा है। बनारस छोडने के पूर्व जो तिरस्कार, जो मानापमान, जो दम्भ मैने देखा और पाया है, वह मै जीवन मे कभी नही भुला सकता।"

"यही, केवल यही से तुम्हारा दोष आरम्भ होता है। प्रेम के इस ककटाकीर्ण मार्ग मे तुम मानापमान, दम्भ और तिरस्कार की बात ध्यान मे रख कर उस सत्य-सम्बन्ध को तिलाञ्जलि दे बैठे हो। वही तुम्हारे जीवन मे कलक बन कर दिन-रात तुम्हे करोदेगा।" प्रमोद ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

"कही कुछ नही भाई साहब, कामिनी को जीवन-साथी की कमी नही। अब मैने जीवन मे जो प्रभात और मधुरिम-बसन्त के दर्शन कर लिए है, उसके पश्चात अब कोई समझौता नही।"

"कदापि नही। और फिर तुम्हारा बसन्त तो नित्य। तुम्हे समझौते की क्या आवश्यकता ? अरे भाई, बसन्त कोई एक बार नही आता, वह तो साल की साल आता है। नित-नूतन-बसन्त। ठीक है जी, मौज करो। और बोलो क्या प्रोग्राम है ? कामिनी तो अभी रहेगी ही।"

"वह आज ही और अति शीघ्र जा रही है।"

"उसे जाना ही चाहिए। उसे ज्ञात होता तो वह आती ही नही। चलो निवेदिता से भेट हो गई।"

"भेट तो वह पुनः करना चाहती है। किन्तु . ।"

"किन्तु नही, ठीक ही है। वह बडा भारी खतरा है।"

प्रमोद व जयन्त चुप हो गए।

"इन इन्द्र-परियो ने तो जयन्त के साथ-साथ मेरी भी आतो को कुलबुला रक्खा है। चाय-वाय भी बातो मे गोल हो गई। भई जयन्त, हो शेरदिल। जब नाम के प्रभाव का यहा यह असर है तो तुम्हे तो सब कुछ निभाना पडता है।"

कीर्ति के इस मनोविनोद ने विषय की गम्भीरता को जिस बुरी तरह

से मारा था, उससे प्रमोद और जयन्त दोनों ही क्षुभित हो गए। किन्तु कीर्ति को उसकी क्या चिन्ता थी। वह तो अपने मे ही मस्त इस प्रेम-नाम के अपने मन मे माने कीडे या जादू को सब ओर से एक ही डंडे से हाकना चाहता था और उसी पर तुला हुआ था।

कीर्ति बात करता जाता था और बरामदे मे टहलता जाता था। इतने मे ही वह उच्च स्वर मे कह उठा, "मिस्टर जयन्त, आइए, बाहर आइए। आपकी कामिनी देवी व सम्भवत: आपकी बहन सामने से जा रही है।"

"बुलाओ, बुलाओ। मै कामिनी रूपी उस सात्विक देवी के दर्शन करना चाहता हूँ।" प्रमोद ने कहा। किन्तु तब तक कामिनी व माधवी आगे बढ चुकी थी। जयन्त भी, "कामिनी आज जाएगी" कह कर प्रमोद को नमस्कार करके व कीर्ति से हँसते हुए हाथ मिलाकर चला गया।

कामिनी और माधवी प्रमोद के मकान के सामने से निकल गई। माधवी ने हाथ के सकेत से बताया। यह सामने प्रमोद जी का मकान है। भैया के वे परिचित है। बडे गम्भीर और सात्विक व्यक्ति है। इसी बीमारी के चक्कर मे पहाड आए है।

कामिनी के मन मे सहज-श्रद्धा के भाव उत्पन्न हो गए और उसने चाहा कि वह उनसे अवश्य मिल ले। किन्तु अपरिचय के ध्यान मे वह आगे बढ गई।

बगले पर कामिनी ने कहा था, "माधवी, यहा बगले पर पडे-पडे हम लोग क्या कर रही है, चलो इस छोटी बस्ती को, यहा के आदमियो को और यहा की वस्तुओ को ही देख आएँ। बस स्टैड से यहा तक वे चीजे दिखी जरूर थी; किन्तु माधवी, बनारस से यहा तक तो जैसे मेरी आँखे बन्द हो। आँखे तो बगले पर आकर खुली है। और वे दोनो बाजार घूमने चल दी थी। बाजार पार करके कामिनी व माधवी बस-स्टैड की ओर चली गई। स्टैड पर माधवी को प्रतीक्षा के लिए रोक कर

कामिनी ३ बजे की बस के लिए अपना टिकट ले आई और अपने पर्स मे रखती हुई माधवी से बोली, "माधवी, चलो जैसे टिकट के साथ मुझे अपना नया-जीवन मिला हो। आज मै निर्बन्ध हूँ। पूर्णतः निर्बन्ध।"

"कामिनी, आज तुम कैसी बहकी-बहकी बाते कर रही हो। क्या भैया से कुछ झगडा कर लिया है ?"

"झगडा तो पुराना है, माधवी। किन्तु आज उसका निबटारा हो गया है।"

"तो मिठाई खिलाओ।"

कामिनी को जैसे सैकडो बिच्छुओ ने एक साथ डक मार दिया हो। वह निःशब्द बस-स्टैड से बाजार की ओर चढाई पर अपने पग थम-थम कर रख रही थी। कुछ रुक कर उसने माधवी को उत्तर दिया, "हाँ, माधवी, थोडे दिन बाद। हम-तुम साथ ही मिठाई खाएँगे।" दोनो बढती चली जा रही थी।

कामिनी और माधवी दोनो पड़ोस की लड़किया थी। बचपन से साथ खेली थी। उछल-कूद मचाई थी। दोनो ने साथ-साथ डॉट खाई थी। साथ पिटी भी थी। आपस मे लडी-भिडी भी थी। और फिर मेल भी किया था। और इसी तरह उम्र बढती गई। धीरे-धीरे दोनो ने साथ अंगडाई ली, आँखे बन्द करके और तब सामने देखा अपना-अपना इठलाता यौवन, उसका उभार, प्रकृति का परिवर्तन, अपना परिवर्तन। और तभी होने लगी घुल-घुल कर बाते। वैसी ही, यौवन से सम्बन्धित, यौन से सम्बन्धित। तब वे खोज-खोज कर बाते करती अपनी सहेलियो से, जो विवाह के पश्चात् पहली बार अभी-अभी लौट कर आई हैं। सिमटी आँखे और लजीले अनुभव लेकर। तब वे खो-सी जाती और भावी-जीवन की लडिया पिरोने लगती। एक दिन माधवी जयन्त की आल्मारी से ले गई दो पुस्तके, दाम्पत्य-सूत्र और विवाहित-आनन्द। तब तीन दिन तक कैसे घुल-घुल कर पढी गई थी वे पुस्तके। बगले की छत पर दोपहर को, सन्नाटे मे। तब

एक कौतूहल था। यौवन का उभार भर आया था। पर अभी बचपना था, अभी जवानी अल्हड़ थी, अनजानी थी, जिज्ञासा बलवान थी पर ज्ञान कुछ न था। अपनी सुनी बाते दूसरे को सुनाई जाती और तब रसभरी-सी फूल-फूल कर दोनो रस लेती।

तब माधवी दाम्पत्यसूत्र और विवाहित-आनन्द भर की हिन्दी ही पढ कर रह गई। कुछ बुद्धू की तरह थी वह। बस अपने व माँ के धन्धो मे लगे रहना और अपनी एकमात्र सहेली कामिनी की कम्पनी मे गार्डेन, गार्डेन रहना। ये दो शब्द भी उसने कामिनी से ही सीखे थे और मिलने पर कभी-कभी वह इनका खुल कर प्रयोग कर लेती थी।

और कामिनी हाई स्कूल, तब कालेज पहुँच गई। कालेज मे सह-शिक्षा के फलस्वरूप कुछ नया दृष्टिकोण ही सामने आया। ट्रू रोमैन्सेज, ट्रू रेमैनसियेन्सेज सदृश अगरेजी के एकान्तवासी साहित्य ने नारी के अवयवो की शक्ति का ठोस पता कामिनी को दे डाला। उसे ज्ञात हुआ और तब विश्वास भी कि दाम्पत्य-सूत्र अथवा विवाहित-आनन्द मे क्या रक्खा है। पढना हो तो 'हैवलाक ऐलिस' पढो या वैसा ही कुछ और। और यह जोम कि लड़के ही क्या पढना-सीखना जानते हैं ? वह बहुत कुछ पढ और बहुत कुछ सीख गई। माधवी इस सबसे वचित रह गई। हाँ, कामिनी से मिली खुर्चन से ही उसे सन्तोष हो जाया करता था।

जयन्त भी आयु की दौड मे कुछ आगे किन्तु साथ ही भाग रहा था। माधवी की सहेली; निकट पडोस; जयन्त कामिनी से दूर ही था। सहज आकर्षण के अतिरिक्त कही कुछ न दिखा। तब जयन्त और कामिनी ने कुछ आगे-पीछे पार्श्व से आने वाली यौवन की पुकार सुनी किन्तु दोनो ही दूर-दूर अपने-अपने मार्ग पर चल रहे थे। जयन्त कही और अपने ताने-बाने बुनने मे सलग्न था। उधर कामिनी भी कालेज के साथी दिनेश मे डूब-उतरा रही थी। रंग पलटते गए। दिनेश कही और उलझ पड़ा। कामिनी ने विरोध-प्रदर्शन मे सत्येन्द्र से नाता जोड़ कर इठलाना शुरू किया। जयन्त की रीता रीता ही निकली। तब उन्हे

मालती के साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी तरह उमडते बादल गरजे, बरसे कभी नही, और विलीन होते चले गए। तभी एक सन्ध्या कामिनी ने जयन्त की आँखो मे आखे डाल कर कहा, "आप तो न मालूम कहाँ कटे-कटे रहते है? चलिये आज आप के साथ सिनेमा देखने की इच्छा हो रही है।"

तभी, जयन्त ने भी एक तीखी मुस्कान फेक कर उत्तर दे दिया। "तुमसे भी ज्यादा, कभी न्योता दिया होता और मै न चलता तो यों कुलबुलाना भी ठीक था।"

और तब सिनेमा, नित्य सिनेमा, बहुत से सिनेमा, घुमाइया, हँसियाँ रास-रग और वही अनुराग की अनमोल घडिया, माधवी की सहेली कामिनी जयन्त की नमालूम क्या बन गई? माधवी मुस्करा कर मार्ग से हट गई और दूर-दूर मैया और कामिनी की अठखेलिया देख कर विभोर होती रही। माधवी दोनो की प्रसन्नता मे प्रसन्न और कभी दोनो की अनबन मे झगडे निबटाने के लिये सालीसिटर का काम करती।

इस अनुराग भरी मैत्री का दोनो परिवारो मे स्वागत किया गया और जो बात कामिनी व जयन्त सोचने मे कुछ देर करते उसे कामिनी के पिता और जयन्त की मा ने जल्दी सोच कर पूरा भी कर डाला। पारिवारिक आदान-प्रदान और गहन बन गए।

किन्तु जीवन मे एक रस बना रहे। जीवन मे प्रसन्नता ही प्रसन्नता बनी रहे, जीवन मे रोग, विपत्ति और आर्थिक समस्याएँ कभी न हो तो प्रलय हो जाए। मनुष्य मनुष्य न रहे। मानव की पशुता ही का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित हो जाए। अहं ब्रह्मास्मि। प्रत्येक आसन हिलते देर न लगे। कष्ट की घडियो मे ही, जीवन की सरसता के बीच, लोल-नर्तन की मदहोश झनकार के बीच, क्षणो की भाति सम पर झन से वह विषम थाप पड़ती है कि थिरकते पैर ठिठक कर रुक जाते है। तब आभास होता है, संभलो, रुको, इतना लीन न हो जाओ कि वातावरण की गति तुम्हारा साथ न दे सके।

दैविक आपदाओ ने जयन्त के जीवन मे भी खन्न से विघ्रम थाप दी और रगरेलिया, अल्हडपन और मदहोशी मे जीवन के कटु सत्य के पन्ने खुलना प्रारम्भ हो गए । जयन्त के पिता की मृत्यु ने निर्बन्धता को रोका । और इसी के तुरन्त पश्चात् कामिनी के पिता ने नीलाकाश के स्वच्छ वातावरण मे काले-काले घने कोहरे का-सा कार्य पूरा किया और तब पडोस के बगले ऐसे दिखने लगे जैसे महामारी के पश्चात् पक्षी तक अपने घोसले छोड जाने के बाद एक सुनसान फैला जाते है, दूर-दूर तक।

इसी वातावरण मे पडोस की दो लडकिया, कामिनी और माधवी, यौवन मे चूर, प्रेयसी एक और दूसरी बहन, तडप-तडप कर सजल नेत्रो से भरे-भरे मन से कामना करने लगी, अनेक प्रकार से पूजा, अर्चना. देवोपासना, जल्द नीरोग हो उनका अपना-अपना जयन्त । तभी पहाड की टैयारी मे एक वही रह गई और एक चली आई साथ पहाड । दूसरी का मन साथ गया वहा पहाड तक, किन्तु मन को दूसरे तन ने मोह लिया और मन दूसरे मन से जा मिला ।

आज इतने दिनो बाद दोनो सखिया मिली थी । और आज भी वही बात। जब तक कामिनी नही मिली थी माधवी जयन्त का पूरा-पूरा साथ दे रही थी। कामिनी के प्रति जयन्त के विद्रोह मे वह उससे दो हाथ आगे बोलती, "हा मा, क्या समझती है वह अपने को हूर की बच्ची, भैया ठीक हो ले। उसकी ऐसी मारी-मारी फिरेगी, डेढ दर्जन।"

अब कामिनी मिली। उसने सिसकिया खीची, तिरस्कार, प्रवंचना और द्रोह से बोझिल उसने अपने को व्यक्त किया । अन्याय ने उसको दबोच रक्खा है। जब बहुत-सी बाते कामिनी ने कही तो माधवी की सहज सहानुभूति कामिनी की ओर बढ चली, "मुझे क्या पता था कामिनी, तुमने कभी लिखा भी नही। भैया की यह बुरी बात है। और तुम, तुम तो मेरी सहेली थी। भैया बीच मे फाद पडे और मेरी सहेली से यो क्यो उलझ रहे हैं ? घबडाओ नही कामिनी, हम लोग जल्द ही बनारस चल

रहे हैं। तब वहीं मिल कर हम तुम भैया के मिजाज दुरुस्त करेंगे।"

बुद्धू और भोली माधवी अभी बहुत कुछ सीखने को थी।

बाजार मे माधवी और कामिनी इधर-उधर घूमती रहीं। और थोड़ी देर मे बगले लौट आईं। बगले लौटते समय मार्ग मे कामिनी ने कहा, "माधवी, तुम्हारे पीछे बगले मे बडे-बडे खूबसूरत आदमी आते-जाते है।"

"कामिनी, आदमी नहीं औरतें। जैसे तुम। तुम भी तो मेरे पीछे ही आई थी कल।" माधवी ने समझते हुए भी बात बनाते हुए कहा। कामिनी का आशय कल बंगले पर भैया की नई 'वो' आई थीं उससे है। यह माधवी तुरन्त ताड गई।

"हा, मै तो आई ही थी। कुछ और लोग भी आने लगे हैं। बगले पर।" कामिनी ने लम्बी सास खींचते हुए कहा।

"भैया के कोई जानने वाले होगे।"

"होगे नहीं, होगी।"

"कौन कामिनी।"

"नहीं, तुम्हारी नई कामिनी, निवेदिता।"

"निवेदिता कौन ?" माधवी ने पहली बार उस लडकी का नाम सुना, जिसके सम्बन्ध मे वह बहुत जानना-सुनना चाहती थी।

"तुम नहीं जानती, एक है तुम्हारे भैया की, पालतू।"

"और तुम।"

"रिजेक्टेड।"

जयन्त प्रमोद के मकान से लौटते समय कामिनी के लिए कुछ ताजे फल लेकर लौट रहा था। आगे-आगे माधवी और कामिनी जा रही थी। अतः वह इनके पीछे-पीछे चुपचाप वार्तालाप सुनता चला आ रहा था। उसके कानो मे दो बार, दस बार गूज गया, "रिजेक्टेड।"

और तभी आहट पाकर कामिनी ने घूम कर देखा, जयन्त पीछे-पीछे आ रहा था।

: १७ :

बंगले आकर कामिनी और जयन्त कमरे मे पडी कुर्सियो पर जा बैठे। माधवी यह कहती हुई अन्दर चली गई "भैया बडे खराब है। रास्ते भर कामिनी और मेरी बाते सुनते आए है।" किन्तु जयन्त व कामिनी दोनो ही आवश्यकता से अधिक गम्भीर थे। माधवी के इस सरल हास्य पर भी वे मौन ही बने रह गए। थोडी देर मे कामिनी भी उठकर अन्दर माधवी के पास चली गई।

जयन्त ने अपना कोट उतार डाला। किन्तु एक क्षण रुक कर पुनः उसने कोट उठा लिया। कोट की एक बाँह वह डाल चुका था और जैसे ही उसने अपना दूसरा हाथ दूसरी बाँह मे डाला कि माधवी ने आकर प्रश्न किया, "भैया, कल यहाँ कोई नई देवी जी आई थी और मुझे पूछ रही थी ?"

निरुत्तर जयन्त ने दोनो बाँहो को उठाकर कोट पहन लिया और कालर को ठीक करता हुआ बोला, "किसने कहा, कामिनी ने।" तत्क्षण कामिनी भी पुनः कुर्सी पर आकर बैठ गई किन्तु वह कुछ बोली नही। वैसे वह इतनी वार्ता कमरे मे आते-आते सुन चुकी थी। कामिनी अपने दोनो हाथो की पतली उगलियो को एक-दूसरे मे उलझाए कुर्सी पर बैठी रही। कभी अपनी दो उगलियो को भ्रू-भाग के मध्य मे मस्तक पर मल लेती। जयन्त अपने कोट के रूमाल को ऊपर की जेब मे संभालता रहा। माधवी कुछ देर उत्तर पाने की प्रतीक्षा मे रुकी तत्पश्चात् जयन्त की

गम्भीरता देख वह कुछ डरी-सी अन्दर चली गई।

कामिनी सोच रही थी। अभी तक सभी अन्धकार मे रक्खे गए हैं। जयन्त को पुन: कही बाहर जाने की तैयारी मे देख उसे ध्यान आया, सम्भवतः कार्यक्रमानुसार वह इसी समय निवेदिता के यहाँ जा रहा हो। तभी बहुत धीरे से उसने कहा, "मै थोडी देर मे चली जाऊँगी। चाहती हूँ, तुम मेरे निकट ही बैठे रहो। मै सब कुछ लिये जा रही, हूँ, मै सब कुछ छोडे जा रही हूँ। जयन्त, इतना विश्वास करना, पाया हुआ असम्मान, विरोध, विद्रोह, ताडना, अन्याय मै मन मे नही रक्खूंगी... कभी नहा। यदि स्वय रह सकी तो पडोस मे ही तुम्हे सुखी देख-देखकर फूली नही समाऊँगी।" और तब वह अधिक आवेश मे आकर अवरुद्ध कण्ठ से कहने लगी, "प्रणय मे मिलन ही अनिवार्य नही। तब विरह का नाम ही कोप मे क्यो आता ? तब कवि कहाँ बनता ? तब लेखक का नाम कौन लेता ? तब .कुछ रुक कर .तब विरह की भी क्या बात है ? विरह कैसा ? क्षोभ कैसा ? यह तो सुखकर प्रसंग होगा। तुम प्रसन्न होगे। क्या इसमे मेरी प्रसन्नता नही जगेगी ? अवश्य जगेगी। तुम्हे जो भी प्रिय है, मुझे भी प्रिय होगा ..। तब प्रिय-अप्रिय का प्रश्न भी क्या होता है ? तब उतना अधिकार ." और कमरा देर तक निस्तब्ध रहा। जयन्त वैसा खडे का खडा ही रह गया।

तभी जयन्त ने अपने रूमाल से आँखो को सुखा लिया।

कामिनी ने अपना सर ऊपर उठाकर देखा, जयन्त के आँसू ढुलक रहे है। कामिनी उठी और अपने छोटे से रूमाल मे उसने जयन्त के ढुलकते आँसू ले लिये और कहने लगी, "ढुलको, आँसुओ और ढुलको। कम से कम मेरा रूमाल त भिगो दो। आँसुओं से सिंचित इस रूमाल को मै अहर्निश अपने वक्ष प र लगाकर स्मृति को हरा-भरा रखूंगी, आँसुओ से ही कहूँगी, विदा के आँसुओ, तुम्हारा मूल्य जानते हो कितना है—एक जीवन।"

जयन्त वैसे ही खडा न रह सका और सिसकियाँ लेता हुआ पलग पर आ गिरा।

"व्यथित होने की आवश्यकता नही है, मेरे सुखद अतीत। तुम्हारा नही, यह मेरा अपना अभिशाप है। तुम्हारा नहीं, यह मेरा अपना सौभाग्य है। मैने सुना है। अतीत की पीडा ओह! क्या कह रही हूँ, हाँ, अतीत की स्मृतियो से बढकर आनन्द के दूसरे क्षण नहीं होते जीवन मे। अपनी इस कंचन-काया के मान मे अभी तक मीठी अगडाइयाँ ही ली है। अब.. सुने-सुनाए अनुभव भी तो करने दो।"

पुनः कमरे मे निस्तब्धता बिखर गई।

तत्क्षण जयन्त की माँ ने कमरे मे प्रवेश किया। जयन्त पलंग पर सिसकियाँ ले रहा था। कामिनी दूर पडी कुर्सी को घसीट कर पलग के निकट ला रही थी। उसके नेत्रो मे भी आँसू छलछला रहे थे।

"क्या है रे" कहकर माँ ने जयन्त का कन्धा पकड कर झकझोरा और अपने आँचल से उसके आँसू पोछते हुए वे कहने लगी, "मेरी बेटी, मैने बडे कष्ट उठाने के पश्चात् इसका हँसता चेहरा देख पाया है। अब तू इसे फिर न रुला। इसको अब मे रज मै नही देख सकती। तुम आपस मे न जाने लडते क्यो हो? रज की न जाने क्या बाते होने लगती हैं? अब तू यहाँ आई है, खुशी-खुशी रह।"

"माँ, मै आज जाऊँगी।"

"अरे हाँ, हाँ चली जाना। अभी क्या जाएगी? कल तो आई है। इतनी दूर से। आज ही चली जाएगी। अभी यही रह।"

तभी माधवी भी कमरे मे आ गई। "माँ भैया रो क्यो रहे हैं?" कहते हुए माधवी स्तब्ध मुद्रा मे माँ के निकट आकर खडी हो गई। "कामिनी लड पड़ी क्या?" कामिनी को सम्बोधित करते हुए माधवी ने पुनः कहा।

"हाँ" कहकर कामिनी उठी और माधवी को एक ओर ले जाकर धीरे से कान मे कहने लगी, "माधवी, मुझे जयन्त से बात करनी है। धीरे से माता जी को अन्दर ही लेती जाओ।"

जयन्त आज सचमुच व्यथित हो रहा था। वह अनुभव कर रहा था, कामिनी तिलमिला उठी है। वह यह तब भी नहीं सोच पा रहा था कि इस सारे प्रसग मे क्या न्याय है और क्या अन्याय ? अपने मन की बात न्याय है। वही ठीक है। परिस्थितियाँ भी यही चाह रही हैं। कामिनी का मोह अब समाप्त-सी बात है। निवेदिता, अब उससे अलग होने का प्रसग कभी नहीं उठता, एक क्षण को भी नहीं। और मन का मोह, निवेदिता के प्रति कामिनी की अपेक्षा अधिक मोह अब हो ही गया है। वह क्या करे ? और रूप की क्या बात है ? कामिनी अतिसुन्दरी है। निवेदिता भी अनिन्द्य सुन्दरी है। पर, पर रूप की कोई बात नहीं है। यह भ्रम है। मै रूप के पीछे नही दौड रहा हूँ। निवेदिता उसे अपना चुकी है। यह क्या कम बात है ? उसकी मिठास ''

कामिनी सामने कुर्सी पर बैठी थी। माँ व माधवी जा चुकी थीं। कामिनी, जयन्त को एकटक भूमि की ओर देखता देखकर कुछ कहने ही को थी कि इतने मे जगसिंह ने कमरे मे प्रवेश किया। उसने नमस्ते करके एक स्लिप जयन्त के आगे बढा दी।

"मीट मी जस्ट नाउ, अर्जेन्ट वर्क—निवे।"

जयन्त के मुँह से "अच्छा" सुनकर जगसिह चला गया। जयन्त उसी प्रकार स्लिप लिये बैठा रहा। कामिनी उठी और जयन्त के हाथ से स्लिप ले ली। जयन्त ने भी तनिक आपत्ति न की .।

स्लिप पढकर उसे मोडते हुए कामिनी ने जयन्त की ओर एक बार ललचाई दृष्टि से देखा। जैसे उसका अपना जयन्त छिन गया। छीन लिया गया। एक क्षण योही मौन रहने के पश्चात् वह बोली, "कहो तो चलूँ" कुछ रुक कर स्वतः वह कहने लगी, "नही, मै नहीं जाऊँगी।"

जयन्त व्यवस्थित होकर पलग पर से उठ खडा हुआ और कहने लगा, "कह नही सकता कामिनी, कोई आवश्यक कार्य ही होगा। मै अभी आता हूँ। हो सका तो निवेदिता को भी साथ लेता आऊँगा।"

"नही, मत लाना।" कहकर कामिनी ने अपना मुँह ढाँप लिया।

"जयन्त खाना।" माँ ने अन्दर से पुकार कर कहा "अभी आया।" कहकर वह चला गया।

जयन्त के जाने के पश्चात् कामिनी ने अपना बेडिंग सभालना प्रारम्भ किया। कामिनी आज जीवन के मोड पर खड़ी थी। बनारस से आते समय उसे कोई मोड़ न दिखा था। वह सोचकर आई थी, वह जयन्त से अपने अनजान मे हुए अपराधो की क्षमा माग लेगी। बडे-बडे उपालम्भ वह उससे भी करेगी। किन्तु वह मना लेगी, किसी भी प्रकार अपने जयन्त को। और जयन्त अब तक रोग-मुक्त हो गया होगा। वह दृढ विश्वास लेकर चली थी कि वह अपने साथ ही जयन्त को लेकर बनारस लौटेगी। यदि उसके आने मे देर होगी तो वह उसी के निकट रहेगी। उसको अपने मधुरिम अनुराग, सरस व्यवहार और उत्साहपूर्वक सेवा-सुश्रूषा के बल पर वह ठीक करेगी। वह नीरोग हो जाएगा। जयन्त ताडना भी देगा तो सहन करके, अडिग वह उसे अपने तई सुरक्षित बनारस लौटा लाएगी।

बनारस से चलते समय उसके पिता ने मना किया था। रोका था। वह नही मानी। "जयन्त को लाने जा रही हूँ, जिसके लिये मैने दृढ निश्चय किया है।" और वह सामान लदवा कर चल दी। स्टेशन पर भी पिता ने मना किया। "तुझे जाने की क्या आवश्यकता है? उसे आने दे। ठीक होने पर जयन्त बनारस ही आएगा। तब जो तू ठीक समझना करना। अब मैं कुछ न कहूँगा। किन्तु तू यो मत जा।"

कामिनी न मानी। उसका टिकट आ गया। तब हँसते हुए पिता ने कहा, "देख, संभल कर जाना-आना। कही पहाड़ो पर शेर न आकर तुझे खा जाए। वहाँ होते है। बडे-बडे शेर, चीते।"

"पिता जी आप मुझे डराइये नही। मैं सब से बच कर निकल आऊँगी।"

किन्तु आज सचमुच पहाड़ पर शेर उसे खा गया। वह अब पिता जी से क्या कहेगी? उसका आत्मविश्वास सिमटते बादलो की तरह पानी-

पानी हो गया है। किन्तु उसने वचन दिया है। जयन्त को वचन दिया है। किसी से एक शब्द न कहेगी। उसे कोई क्लेश नहीं, कोई उलझन नही। पिता जी, जयन्त, कामिनी, मनमोहन, निवेदिता। किसी का कोई दोष नही।

शम्भू ने आकर उसका विस्तर बंधवा दिया। वह बिस्तर ठीक करते समय निरन्तर कामिनी को मना करता रहा, "कहा जा रही हो। एसस्स हवा छोड के। तू तो यहीं रुको। हम बाबू का ठीक कर देव।"

"शम्भू, तुम्हारे बाबू वे बाबू नहीं रहे। मुझे आज जाना ही है।"

"ई माया आपै लोग जानौ।" कह कर उसने एक मन्द मुस्कान के साथ विस्तर बाध कर पलंग पर एक किनारे रख दिया।

कामिनी बधे होलडाल के सहारे पलग पर टिक गई। विचारो के ताने-बाने मे वह गत रात्रि सोई नही थी। उसे उस समय झपकी आ गई। तभी उसने देखा एक स्वप्न, निवेदिता, जयन्त और वह घूमने गए है। एक साथ ऊँचे पहाड पर। इतने ऊँचे पहाड पर जैसे वहा पहाड पर भी नहीं दिखते। तभी निवेदिता और जयन्त मिलकर उसे ऊपर से ढकेल रहे है। वह चिल्ला रही है। सहायता के लिए बिलबिला रही है। परन्तु उस निर्जन पहाड पर आवाज केवल चट्टानो से टकरा कर रह जाती है। और जयन्त ने उसे ढकेल दिया। नीचे खड्ड, न मालूम कितना गहरा। कामिनी बडी जोर से चीख उठी। मा व माधवी अन्दर से भाग कर बाहर आई। शम्भू और जीतू कमरे मे आ गए। कामिनी ने अपनी आखे मली और सम्भल कर सबसे बोली, "स्वप्न मे डर गई थी। सब पुनः अपने-अपने काम मे लग गए। किन्तु कामिनी सोचती रही, स्वप्न सत्य था। वह निश्चित ढकेल दी गई है। किन्तु उसका 'चीखना' केवल इतना ही असत्य था।

निवेदिता पूर्व ही प्रतीक्षा मे ड्राइंग रूम से निकल कर अपने बंगले के छोटे-से लान की क्यारियो मे खडी थी। जैसे गुलाब की क्यारियो मे

एक बडा गुलाब दोपहर की धूप-छाह मे दूर से चमक रहा हो । दृष्टि उसकी सामने जयन्त की ओर से आने वाले मार्ग पर थी ।

जयन्त को दूर से ही देख कर वह अपने लान से बाहर निकल आई और मार्ग मे ही उससे मिल ली । "चलो बाजार की ओर" कह कर निवेदिता ने जयन्त को मोड दिया । जयन्त साथ हो लिया किन्तु सोच रहा था, कामिनी ने यदि बंगले से देख लिया तो वह आ सकती है । वह बुला सकती है । और...और अनर्थ हो जाएगा । यदि कामिनी बहक गई तो ? जयन्त के प्राण सूख रहे थे । जब तक उसने अपना बगला पार नही कर लिया, तब तक उसके मुँह से बोल नही निकला । निवेदिता सोच रही थी, जयन्त कल से कुछ घबडाया-घबडाया-सा हो रहा है । फिर भी उसने अपनी बात उससे कही । उसने कहा, "दिल्ली से टेलीग्राम आया है । पापा की वहा बहुत बडी स्टेट है । कुछ अर्जेन्ट काम है । पापा को जाना है । मुझे भी साथ ले चलने को कहते है ।"

जयन्त को जैसे किसी ने सचमुच पहाड से नीचे ढकेल दिया हो । क्या कामिनी एक आफत ही सब ओर से लेकर आई है । यहा कितनी शान्ति थी उसके मन मे, कामिनी के आने के पूर्व । तभी एक धीमी आवाज से उसने प्रश्न किया, "फिर तुम जाओगी ?"

"कहो तो न जाऊं ।" निवेदिता ने तनिक मुस्करा कर कहा ।

"निवे, सच, तो तुम न जाओ ।" जयन्त ने खिलते हुए कहा ।

"तब अकेले मे तुम्हे मेरे पास बंगले मे रहना पडेगा ।" निवेदिता ने जयन्त की ओर देखते हुए कहा । जयन्त ने निवेदिता को देखा । निवेदिता के नेत्रो के आमन्त्रण को पाकर वह उसकी ओर सिमट आया । मार्ग मे निवेदिता ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा, "मुझे डर न लगेगा ?"

"हा ।" और जयन्त ने निवेदिता के कन्धे को दबा दिया । पहाड़ी पगडंडी उस समय निर्जन थी ।

जयन्त ने बात दुहराते हुए कहा, "निवे, पापा की स्टेट है और तुम्हारी ?"

निवेदिता रुकी। किन्तु तुरन्त ही उसने उत्तर दिया, "हा, हा मेरी भी।"

जयन्त अब तक न जानता था कि निवेदिता कौन है? कहा की है? पापा की वह लड़की है? बस इतना उसने सोच रक्खा था।

जयन्त और निवेदिता बाजार के पहले सिरे पर थे। निवेदिता एका-एक ठिठक गई और सामने देख कर कह उठी, "मोदी।" तभी रुक कर निवेदिता ने जयन्त से कहा, "पापा की स्टेट का मैनेजर है। बड़ा बदमाश आदमी। आप जरा आगे बढ़िये, मै आती हूँ।"

मोदी निवेदिता को देख चुका था और उसके साथ के उस अपरिचित व्यक्ति को भी। एक डोटियाल पर बिस्तर लदाए वह बढ़ा चला आ रहा था। निवेदिता आगे बढ़ कर एक दुकान मे चली गई और कुछ सामान लेने लगी। साथ ही उसने ऐसा 'मूड' बनाया जैसे उसने मोदी को देखा ही न हो।

तब क्रीम की एक शीशी लेकर जैसे ही वह बाहर आई, उसने देखा, मोदी बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसे देखते ही तुरन्त निवेदिता ने चिल्ला कर कहा, "हल्लो, मोदी। यू कम। बट व्हाई। पापा हिमसेल्फ इज लीविंग फार देहली।"

मोदी कुछ न बोला। वह एक क्षण निवेदिता को योंही खड़ा देखता रहा। तब निवेदिता ने ही उससे कहा, "यू नो दि प्लेस।"

"नो, नीतू, नो।"

डोटियाल की ओर सकेत करते हुए निवेदिता ने कहा, "ऐ, तुम ग्रीन वैली जानटा हये।"

"जानता हये, जानता हई।" कह कर वह आगे बढ़ने को उद्यत हुआ।

"मोदी, गो।"

"एण्ड, यू।" मोदी ने अपनी आखे चलाते हुए कहा।

"आइम कमिग।" और निवेदिता आगे बढ गई। मोदी आगे बढते हुए भी घूम-घूम कर देखता गया।

मोदी ३०, ३२ वर्ष का पारसी युवक है। रग उसका आवश्यकता से अधिक सफेद है। किन्तु आकृति का झुकाव और 'कट' बडा ही भद्दा है। लम्बाई भी उसकी लगभग सवा छः फीट है। सदैव सूट पहनता है जो उसके शरीर की लम्बाई व पतलेपन पर ऐसा लगता है जैसे किसी ने सफेद रग से पुते बिजली के पोल पर रगीन कपडा लपेट दिया हो। निवेदिता उससे अत्यधिक घृणा करती है। वह उससे अधिक रुष्ट भी रहती है। अनेक अवसरो पर वह पापा से उसकी शिकायत कर चुकी है। बातचीत और व्यवहार तो उसका उसकी आकृति से भी अधिक भद्दा है।

मोदी निवेदिता की उदासीनता व शुष्क व्यवहार पर मन ही मन झु झलाता हुआ ग्रीन-वैली चल दिया।

जयन्त ने आगे बढकर देखा, प्रमोद व कीर्ति एक दूकान पर खड़े पहाड़ी छडियॉ देख रहे है। वह कतराकर निकल जाना चाहता था। किन्तु कीर्ति की दृष्टि मे पकडा गया। विवश होकर वह उनके पास पहुँचा। पीछे से निवेदिता बढी चली आ रही थी।

निवेदिता ने उस दिन पापा के बिगडने के पश्चात् प्रमोद को नही देखा था, न प्रमोद को ही ऐसा कोई अवसर मिला था। और कीर्ति, उसकी दृष्टि को ओझल करके कोई भी सुन्दरी निकल जाए, असम्भव। उसकी दृष्टि सब ओर से हटकर किसी भी अवस्था मे चट से केन्द्रित हो जाएगी। तभी वह उस के सम्बध मे कभी कोई अनुचित वार्तालाप तो कदापि न करता किन्तु टीका-टिप्पणी किये बिना भी न रहता। उसके सौन्दर्य की, उसकी वेश-भूषा की, उसके केश-विन्यास अथवा आभूषणो की खिल्ली वह उडाता। "ब्लाउज का कट, वह देखिये, अभी अग्रेजी मेम का गाउन काट कर टेलर ने ऊपर

चिपकाया है। हाँ, आपके केश देखिये, मालूम होता है, रोज पकड-पकड कर घसीटती है, तभी इतने बढा लिये है। हा, आपके बालो मे कुरा लग गया है। इत्यादि। इसी प्रकार वह अपना व साथ वालो का मन बहलाया करता। मनोरजन के साथ-साथ स्त्रियो के लिये उसके वार्तालाप मे सदैव एक तिरस्कार और उपहास की भावना रहती। वह सदैव ही उनकी हँसी उडाया करता था। स्त्रियो की कभी कोई बात उसे रुचिकर ही न लगती। हँसना और खिल्ली उडाना ही उसका विषय रहता।

निवेदिता इसी क्षण निकट से निकल गई। सामने दूकानदार एक अच्छी छडी अन्दर से लाकर कहने लगा, "देखिये, देखिये।" अचानक प्रमोद ने देखा, वही लडकी और तब घूम कर जयन्त पर भी एक दृष्टि डाली। कीर्ति ने भी जी भर कर निवेदिता को देखा और बिना बोले वह न रह सका। सबको सम्बोधन करके वह कह गया, "किसी हाल मे हो, अच्छे या बीमार, बिना देखे नही मान सकते। क्यो साहब ? जी।" और लगा हँसने।

प्रमोद भी मुस्करा दिया। जयन्त भी हँस दिया। दूकानदार भी कीर्ति की बात मे रस लेकर हँस दिया। इतनी बात कहकर कीर्ति ने घूम कर देखा तो दूकानदार भी मुस्करा रहा है। उसे मुस्कराते देख कीर्ति बोला, "जी, आप भी हँस रहे हैं। ही, ही, ही।" और उसने अपने दात निकाल दिये। उस पर सब लोग ठहाका मार कर हँस दिये।

तभी प्रमोद गम्भीर होकर बोला, "सडक पर चलते-फिरते किसी महिला को देखकर आपस मे इस प्रकार की बात-चीत अशोभनीय है।"

"हाँ भई, औरो का इधर-उधर नजर घुमाना शोभा देता है, और आप इनको न कहेगे, जयन्त को। किस अदा से आप घूर रहे थे।"

"तुम तो हो उल्लू, जानते हो वह कौन है।"

"मुझे पिटने से डर लगता है। मै किसी का घर-बार नही पता लगाता। यह सब आप ही लोगो का काम है।"

जयन्त खिलखिलाकर हँस दिया। किन्तु संकेत से उसने प्रमोद को

कुछ भी व्यक्त करने के लिये मना किया। अब कीर्ति के सामने उसका साथ छोड कर आगे बढना जयन्त के लिये एक समस्या बन गई।

एक छडी का दाम देकर सब लोग प्रमोद के घर की ओर बढ गए। जयन्त भी साथ हो लिया।

निवेदिता जयन्त को उसके परिचितो के साथ देखती गई थी। बाजार के दूसरे छोर पर आकर वह देर तक जयन्त की प्रतीक्षा करती रही और अन्त मे अपने बगले चल दी। मोदी के आने के बाद से उसका मन भी बडा खिन्न हो गया था। उसे उसकी दृष्टि से भी घृणा होती थी। उसने सोचा, अब जयन्त न आ सकेगा।

जयन्त ने देखा कामिनी का बिस्तर तैयार है और वह उसी के सहारे टिकी हुई बैठी है। माधवी पास ही बैठी बातचीत कर रही है। जयन्त के आते ही माधवी ने कहा, "भैया, अभी खाना नही खाया।"

"कामिनी को खिलाया।" जयन्त ने खूँटी पर अपना कोट टागते हुए कहा।

"आप की प्रतीक्षा मै ये भी बैठी हैं।"

"कदापि नही। मुझे इच्छा होती तो मे खा लेती।" कामिनी ने माधवी की बात काटते हुए कहा। जयन्त को इस बात मे उदासीनता झलकी। फिर भी उसने कामिनी से आग्रह करते हुए कहा, "कामिनी, चलो, कुछ तो खा लो, अन्यथा मै भी नही खाऊंगा।"

अपनी भृकुटियो को ऊपर उठाते हुए कामिनी ने व्यंग्य-पूर्वक कहा, "ऐसा, तो चलो अवश्य कुछ खाऊँगी।"

भोजनोपरान्त कामिनी का सामान एक डोटियाल आकर लाद ले गया और कामिनी चल दी। जाते समय उसने माँ को हाथ जोडे और माधवी को एकान्त मे ले जाकर भरे गले से कहा, "माधवी, मिलने पर निवेदिता से कभी मेरा जिक्र न करना।" और वह उससे लिपट गई।

माँ ने कहा, "तू रुकी ही नही। ऐसे भी क्या आई थी?"

"माँ, ऐसे ही आई थी और ऐसे ही जा रही हूँ।"

जयन्त अपलक कामिनी को देख रहा था। यह वही कामिनी थी जिसके लिये वह रात-रात भर सोया न था। जीवन को होम करने की ठान ली थी। पहाड़ तक आना पडा था। किन्तु आज, उसके प्रति जैसे उसका रक्त जम चुका हो। वह तीव्रता न मालूम पहाडो की बरफ मे जम गई या न मालूम कहाँ विलीन हो गई।

माँ ने चलते-चलते पुन. कहा, "बेटी, हमारे माली से कह देना, हम जल्दी ही आ रहे है। बगला खूब हरा-भरा रक्खे।" सुनकर कामिनी तडप गई।

कामिनी चल दी। जयन्त उसके साथ था।

बस स्टैण्ड पर वह बहुत पहले से आ गई थी। पहाडी 'बस-स्टैण्ड' बस इतना ही था कि स्टैण्ड के नाम पर चीड की लकडी और टीन को मिलाकर तीन चार डब्बे बने हुए थे। एक डब्बे मे खिडकी बन्द करके एक ही बुकिग क्लर्क एक-एक व्यक्ति को आध-आध घण्टे मे धीरे-धीरे एक-एक टिकट निकाल कर दे देता था। वही टिकट देते-देते डोटियाल की किसी पुकार पर टिकट हाथ मे लिये बाहर निकल आता और पहाड़ी भाषा मे किसी सन्दूक पर कोई निशान लगाने को कह जाता या किसी फल के झाबे मे वही हाथ के हाथ स्याही से नम्बर भी डाल देता। तब फिर अपने डब्बे मे वह आकर बैठता और कहता, "हाँ बाबूजी, आपने कहाँ का टिकट माँगा?"

"ही, ही, ही, वह तो यह है मेरे हाथ मे, लीजिये।" और यदि आपने भी दाँत निकाल दिये तो वह और जोर से हँस दिया।

स्टैण्ड पर पत्थर भी इस प्रकार दूर-दूर तक साफ कर दिये गए हैं कि आप उन पर भी नही टिक सकते। तब बैठने के प्रबन्ध की क्या बात है? हाँ, निकट ही पान की दूकान पर खडे हो लीजिये या छोटी-छोटी डलियो मे रक्खे फलो को बेचते हुए पहाडी लडको या बुढ़ियो से अपना सर खपाते रहिए।

अपने हाथ से कामिनी ने सन्दूक पर रक्खा बेडिंग उतार कर नीचे

रख दिया और उस पर स्वयं बैठते हुए जयन्त से उसने कहा, "आप सन्दूक पर बैठिये" जयन्त सन्दूक पर बैठ गया। कहने को कोई बात ही न थी। कामिनी अपने विचारो मे उलझी थी और जयन्त पापा के दिल्ली जाने के बाद के कार्यक्रम मे तल्लीन था। जयन्त बाहर सडक की ओर देख रहा था और कामिनी कभी-कभी जयन्त की ओर देख लेती थी। उसके मस्तिष्क मे था घुमेडे लेता, उठता-दबता भयकर तूफान मे जकडा हाहाकारी जलपोत, गन्धक, अग्नि, शोले, तडतडाहट उगलता हुआ ज्वालामुखी, बादलो मे दरार करके पास से निकल जाने वाली बिजली की कडकती चीत्कारध्वनि, डरावना भूकम्प जिसमे फटती हुई भूमि मे समाते अनगिनत नर-नारी, तब उसने एक बार जयन्त को देखा, जयन्त सर पर हाथ रक्खे अपने मे लीन था। तब फिर एक दृश्य उसकी भरी हुई बस, जिसमे आगे की सीट पर वह बैठी है, साप की तरह रेगती तारकोल की सडक पर दौडती हुई और मूसलाधार पानी, पहिये का घूमना और साथ ही हाथ से ड्राइवर का स्टेरिंग छोड देना, चटर पटर, भर खट्, चे ऊँ सीई और बस सैकडो फीट नीचे। खड्ड मे। धज्जियाँ उड़ गई। बस की लकडी के साथ मुसाफिरो के हाथ-पैर भी लकडी हो गए, और तब कहाँ की कामिनी, पूर्ण शान्ति, किसी को लाश तक की चिन्ता नहीं, जैसे उसे सन्तोष हो रहा था।

और जयन्त सोच रहा था, कभी बनारस मे कामिनी के साथ की केलि-क्रीडाएँ, वे दिन थे मीठे-मीठे, वह कामिनी थी उससे भी मीठी। कामिनी के निर्दोष दोष मे पडी मन की गाँठ। और यदि पिता की तिजोरियाँ व्यापार मे खाली भी हो गई तो ठीक ही है, कामिनी का पिता ही क्या? दुनियाँ आँकती है जीवन का मूल्य, आदमी का मूल्य उन्ही नोटो से। और कामिनी का क्या होगा? अरे, यह तो चलता ही रहता है। क्रम है। सब निबट जाएगा और, और पापा दिल्ली जा रहे हैं। कई दिनो मे लौटेगे। कामिनी, ठीक, तुम जाओ, जल्दी जाओ। उसके अपने नए कार्य-क्रम है। निवेदिता, सुनहली, रुपहली कामिनी से कुछ अच्छी,

कामिनी से बहुत अच्छी, और कल से नए प्रोग्राम, यही। नही, नहीं, कहीं दूर।

तभी एक बस नीचे से रेंगती हुई ऊपर बढ़ी चली आई। स्टैण्ड पर खड़े दस-पाँच आदमियों में भड़भड़ मच गई।

"कामिनी, टिकट।"

"मैं ले चुकी हूँ।"

"कब?"

"पहले ही।" और कामिनी उठी। बुकिंग क्लर्क से जाकर पूछा 'यह बस कहाँ जाएगी।"

"काठगोदाम।" कामिनी चुपचाप विस्तर पर आकर बैठ गई।

"क्यों?" जयन्त सोच रहा था, कामिनी रुकी क्यों? जब अपने ही बुरी तरह अखरने लगते हैं।

"यह बस नैनीताल जा रही है।" कामिनी ने अपनी ठोढ़ी पर हाथ लगाए ही लगाए कहा। कुछ रुक कर कामिनी बोली, "आप जाइए, व्यर्थ समय नष्ट करने से क्या लाभ, मैं चली जाऊँगी, लौटूँगी नहीं।"

जयन्त ने कामिनी की ओर शुष्क नेत्रों से देखा। किन्तु उठा नहीं, बैठा ही रहा।

तभी दूसरी बस आई। कामिनी ने पुनः क्लर्क से प्रश्न किया और "नैनीताल" सुनकर अपना सामान उस बस पर लदवा दिया। वह सचमुच जैसा सोच रही थी, आगे की ही सीट पर जा बैठी। किन्तु माँगने पर मौत नहीं मिलती।

जैसे जलधारा चट्टानों पर गिर कर व्यर्थ हो जाती है। अचल सुमेरु वैसा ही जमा खड़ा रहता है। वैसे ही बस छूटते-छूटते कामिनी के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। उसने उसे छेड़ा नहीं, बहने दिया। किन्तु सामने जयन्त पाषाणवत् स्थिर खड़ा था। तभी कामिनी ने अपने दोनों हाथ उठा दिए। अन्तिम अभिवादन। बस के पहिये चरर चर करके घूम गए, वैसे ही जैसे कामिनी का हृदय चरर चर करके घूम रहा था।

: १८ :

बाजार पार करके जो बहुत से बैरेक फौज के लिए बने है, वहा आज बडी चहल-पहल थी। फौजी टुकड़ी आज वहा से जा रही थी। फौजी इधर-उधर उछल-कूद रहे थे। कोई सामान संभाल रहा था तो कोई अपनी पूरी पोशाक मे बाजार को अन्तिम बार देख लेने के विचार से बाहर जा रहा था।

इस प्रकार जब भी फौज की वहा से विदाई होती तो वे एक नीलाम करते। अधिक समय तक एक स्थान पर रहने के पश्चात् अपना एकत्र किया हुआ फुटकर सामान वे वहीं बेच जाया करते। सामान में अधिकतर होते—व्यवहार किए हुए कोट, कमीजे, जूते, टाइया, हैट और खाने-पीने के बर्तन, क्राकरी, प्याले, प्लेटे, चम्मचे, चश्मे, घडिया, स्टोव, तामचीनी की बाल्टिया, जग इत्यादि। न मालूम क्या-क्या और विचित्र प्रकार का सामान उस नीलाम मे दिखाई देता।

सामान बहुत सस्ता बिकता था और इसी कारण वहा के रहने वालो, विशेषकर नौकरो और डोटियालो के लिए वह एक आकर्षण था। अपनी आवश्यकता की अनेक वस्तुएँ ये लोग नीलाम से ले आते। उस समय एक बडी भीड़ इकट्ठी हो जाती।

आज भी अच्छी भीड थी। बाजार के छोटे-छोटे दूकानदार, फौजियो के सामने भूत से डोटियाल, बंगलो और मकानो मे काम करने वाले नौकर-चाकर, कुछ बुढिये जो सस्ती चीजें लेजा कर देती अपने

घर मे जवान लडकियो को, जैसे कंघा या अष्टकोण कोई दर्पण या बच्चो का कन्टोप, वे सब एकत्र थे।

हर बैरेक के सामने ऊँचे स्टूल पर कोई फौजी खडा हो जाता। उसके सामने एकत्र होता, ढेर का ढेर बैरेक भर का फुटकर सामान, और वह जोर-जोर से चिल्लाता, "यस, यस, बोलो-बोलो। क्या लेगा? हा, इस कोट का कितना पैसा।" और वही पहाडियो मे से ही कोई आगे बढकर नीलाम करता जाता और पैसे उन फौजियो को देता जाता। बड़ी सस्ती चीजे बिकतीं।

प्रमोद का दलसिह, निवेदिता का जगसिह, जयन्त का नौकर जीतू, सब के सब और मानसिह, दानसिंह, हीरासिह, मोटासिह और न मालूम कौन-कौन इधर-उधर के मकानो, बॅगलो और काटेजो से निकल-निकल कर बढे चले आ रहे थे बैरको की ओर। उन सब मे बडी प्रसन्नता थी इस प्रकार के नीलाम के दिन। वे न मालूम कब-कब से इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। तब किसी को मिलता हैट, तो किसी को मिलते जूते। हैट तो वे बन्दर की तरह लगा लेते और जूता कभी ढीला मिल जाता और कभी तग। तब वे झीकते भी। किन्तु लाचारी थी। नीलाम था। उन्हीं के नाम छूट गया।

प्रमोद से दलसिह बोला, 'बाबू, आज दो रुपिया दो। हम जाता है नीलाम, सामान लाएगा।"

जगसिह ने निवेदिता से कुछ नहीं मागा। वह रईस नौकर था। उसके पास यो ही साथियो को पैसा बाटने के लिए फालतू बना रहता।

सब लोग वहा पहुँचे। नीलाम शुरू था। किसी ने टोप पाया तो किसी ने घुटनो तक का ऊँचा जूता। किसी ने दो रुपए छः आने मे नया कोट ही झाड लिया। और तब दल के दल पहाडी नीलाम के मैदान से निकले। इनमे कुछ उदासीन, जिन्हे पसन्द की कोई वस्तु नही मिली या हिसाब से उनके पास पूरे पैसे न थे अथवा साथी के कहने से ज्यादा बोली बोल कर ठगे गए। कुछ बडे प्रसन्न, हू हू करके बाते करते

चिल्लाते बढते चले जा रहे थे। मार्ग मे कोई दूकानदार अपनी भाषा मे कुछ पूछता तो वे आगे बढ-बढ कर अपनी लाई चीजे दिखा देते। तब टीका-टिप्पणी होती।

दलसिह के पास जूता न था। उसने एक रुपये दो आने मे एक घुटनो तक का जूता लिया और वहा से खट-खट करता हँसता हुआ घर आया। जब जीने मे जोर की खटपट सुनाई दी तो प्रमोद और कीर्ति चौके। कौन आ रहा है? देखा, सामने दलसिह साहब तशरीफ ला रहे है। प्रमोद बोला, "ओ जूता, कितने का लाया?" हँसते हुए जूता ऊपर-नीचे करता दलसिह कह गया, "ही, ही, एक रुपया दू आना।"

जगसिह साहब थे, पूरे साहब। एक कोट, एक ढीला-ढाला पेन्ट, एक टाई, एक नीली बनयान और दो आने का एक ब्रुश जो पता नही उनके हिसाब से जूता साफ करने वाला था अथवा कपडे झाडने वाला, उन्होने खरीदा। किन्तु थे वे बडे प्रसन्न। नौ रुपये मे उन्होने सारा सामान खरीदा था। गठरी बाध कर वह सारा सामान निवेदिता को दिखाने ले चला। उसके पहुँचने पर गठरी बधी देख कर निवेदिता समझ गई, आज जगसिह साहब के ठाट है। एक-एक करके सारी चीजे उसने निवेदिता को दिखा दी। वह हँस नही रहा था किन्तु गम्भीरता-पूर्वक आक रहा था कि किसी चीज मे वह ठग तो नही गया। सामान से उसे कोई प्रसन्नता नही थी क्योकि और भी दो-चार जोडी कोट-पेन्ट उसके पास थे। आज के सामान मे सबसे बढ़िया था उसका कोट, बढिया इंगलिश सर्ज का, सिल्केन लाइनिग लगा हुआ, उसके बिलकुल फिट और केवल ४ रुपए मे जब कि ३० रु० उसकी सिलाई के हो सकते थे और उस हालत मे भी किन्ही बाबू साहब के ठाठ बनाने मे वह पर्याप्त था।

उधर जयन्त का नौकर जीतू एक लाया बैंत। उसके ऊपरी भाग में चमड़ा लगा था। केवल तीन आने में। बैत की उसे बड़ी आवश्यकता थी। कुत्ते जैसे उसे और उसके बगले को ताड गए हो। बगले में कमरो तक घुसे चले जाते और उसे देख कर काटने दौड़ते। एक दिन

एक कुत्ते ने उसे दबोच भी लिया। तब से कुत्तो का कोई न कोई ठीक इन्तजाम करने की जीतू चिन्ता मे थे। और आज उनको चिन्ता से मुक्ति मिली। वे नीलाम की ही प्रतीक्षा कर रहे थे और दृढ संकल्प कर चुके थे कि इस बार के नीलाम मे वे एक बेंत जरूर लाएँगे। बेंत लेकर बडे अकडते हुए जीतूराम बाहर आए। सोचा जो भी कुत्ता मिलेगा उसी की मरम्मत करूँगा। सामने ही एक कुत्ते को देखकर डंडा फटकारते हुए जीतूराम बोले, "क्या गुर्रा रहा है, बेटा, तेरे लिये ही लाया हूँ।" इस तरह बेंत फटकारते एक-दो कुत्तो के जमाते और "भै-भै" करके उनके भागने पर प्रसन्न होते मि० जीतू बगले पधारे।

उसी दिन मध्याह्न मे लारियो, बसो और ट्रको पर लद-लद कर लाइन की लाइन पचासो गाडियो मे सारी फौज चली गई।

"नीतू, आइम गोइग। बी काशश हियर।" कहकर पापा निवेदिता के मस्तक को चूम कर पगडडी मे खडे रिक्शे पर आकर बैठ गए। मोदी साथ था। वह बढता आगे जाता था और देखता पीछे निवेदिता को जाता था। तभी बाहर आकर वह निवेदिता से बोला, "ओह, नीतू, डोन्ट यू एकम्पनी मी।"

"नो, सर्टेनली नाट।" कहकर नीतू पापा की ओर देख कर बिगडती हुई अन्दर चली गई।

बरामदे के बाहर किसी ने पुकारा, "बाबूजी, प्रमोद बाबूजी।"

प्रमोद ने बाहर आकर देखा, किशोर महोदय का नौकर पुकार रहा था। प्रमोद ने उसे ऊपर बुला लिया और आने का कारण पूछा।

"साहब ने आपको याद किया है। बडी मुश्किल से आपका मकान मिला।"

"अरे, कहो क्या हाल है?"

"ठीक ही है। और क्या ठीक है!"

"बीमारी के साथ-साथ तुम्हारे साहब का दिमाग भी कुछ अधिक परेशान है।"

"अरे साहब, दिमाग की न कहिये। चौबीस-चौबीस घंटे ड्यूटी देनी पड़ती है।"

"लेकिन ये बीमार कैसे पडे ?" कहने को तो प्रमोद कह गया किन्तु उसे ध्यान आया। उसे यह बात पूछनी नही चाहिए थी और नौकर ने भी जो उत्तर दिया, वह वैसा ही था, "अब आप हमसे यह न पूछिए, हमारा मुँह बन्द है।"

"ठीक है, ठीक है।" कह कर प्रमोद बोला, "चलो कीर्ति, तुम भी चलो, आज मै तुम्हे उनसे मिलाऊँगा।"

पापा के जाने के पश्चात् निवेदिता निर्द्वन्द, स्वच्छन्द पलक मूँदे पलंग पर आ लेटी।

दस मिनट बाद ही जयन्त ड्राइग-रूम से होता हुआ निवेदिता के कमरे मे आ पहुँचा। जयन्त को देख कर निवेदिता सहम कर सिमट गई। वह उस समय केवल अण्डरवियर और बाडिस मे थी। लेटे ही लेटे उसने हाथ से पैताने पड़ा कम्बल घसीटना चाहा किन्तु जयन्त ने कम्बल को अपने हाथ से रोक लिया। अपनी आखो को गड़ाता हुआ जयन्त बोला, "एक क्षण, इस रूप को मुझे एक क्षण योही देखने दो, ऐसे ही। निवे, ऐसे ही।"

"बुरी बात, ऐसे भले आदमी हो कर ऐसी बाते सीख रक्खी है।" निवेदिता ने अपने दोनो हाथो का क्रास बनाते हुए और अपने कन्धो पर उंगलियाँ टिकाते हुए कहा।

"केवल सौन्दर्य-पान; एक अमिट-चाह, एक प्राकृतिक अभिलाषा।"

"अच्छा, अच्छा, चलो ड्राइग-रूम मे बैठो, मै आ रही हूँ।"

"ऐसे ही।"

"हा आ, ऐसे ही ?" कहकर उसने अपनी दो उंगलियाँ ओठ पर

टिका ली और जोर से पुकारा, "आया, आया"। जयन्त ने एक क्षण जैसे ही घूम कर दरवाजे की ओर देखा, वैसे ही पलक मारते निवेदिता ने पलट कर पलंग के नीचे पडी साडी को खींच कर अपना बदन लपेट लिया।

तभी वह ड्राइंग-रूम की ओर बढते हुए बोली, "अब इच्छा हो, यहा बैठिये या चलिये ड्राइंग-रूम मे ही बैठिये।" और तभी जयन्त ने एक सील निवेदिता के ओठो पर जड दी।

नीरव ड्राइंग-रूम की सजावट के बीच पडे सोफे पर निवेदिता और जयन्त आ बैठे। हँसते हुए निवेदिता ने कहा, "पापा इस सब के लिए बगला या मुझे सूना छोडकर नही गए है।" जयन्त भी हँस दिया।

आज इस भेट के समय रह-रह कर जयन्त को कामिनी का ध्यान आ रहा था। वह आई और कितनी गम्भीरता-पूर्वक वातावरण को वैसे ही ज्यो का त्यो छोड कर लौट गई। स्वय त्रस्त, मौन और पराजित हो कर। वह महान् है।

तभी जयन्त ने कहा, "निवे, हम तुम कल चल रहे हैं। नैनीताल। ऐ, हाँ।"

निवेदिता की सचमुच कहीं घूम आने की इच्छा हो रही थी। किन्तु वह बोली, "मै कैसे जा सकती हूँ?"

"जैसे जाना चाहो, घोडो पर या रिक्शे मे।"

"मेरा यह मतलब नही। पापा के पीछे, यो अकेले।"

"पापा के पीछे यो अकेले ही तो जाना है।" और जयन्त ने निवेदिता को गुदगुदा दिया।

"ओह नो, घोडे पर मैं नही जाऊंगी, मुझे बेहद डर लगता है। मै कभी चढी नही।"

"तो रिक्शे पर। ठीक है, कल ही रिक्शे आजाएगे, तुम तैयार रहना, दोपहर बाद।"

"यस।"

और तभी कमरे का वातावरण निःशब्द हो गया। सामने दीवार पर टगे थे उमर-खैयाम के दो रंगीन और सजीव चित्र और सोफे पर थे उसी प्रकार दो मौन-प्राणी।

हिमालय होटल का कमरा नं० २६

पलंग पर बेडिंग खुला पड़ा था। किन्तु होलडाल से बिस्तर निकाल कर बिछाया नही गया था। बिस्तर के ऊपर की चादर की सलवटो से ज्ञात होता था, अभी-अभी इससे उठकर कोई दूसरी ओर गया है। कमरा बडा था और बाहर की ओर खुलने वाली खिडकी का एक किवाड पूरा खुला था और एक आधा उढका था। खिडकी के बाहर एक छोटा-सा किन्तु साफ परदा पडा हुआ था। कमरे के बीच का द्वार पूरा खुला हुआ था। ऊपर से आकर लटकने वाले बडे-बडे दो नीले परदे जमीन को चूम रहे थे। कोने मे रक्खी ड्रेसिग टेबिल पर एक ओर अटैची रक्खी थी। कंघा मेज की स्प्रिट पालिश से चिपका रक्खा था। ड्रेसिग टेबिल के सामने के बेत के स्टूल पर आखो का रगीन चश्मा रक्खा हुआ था। पलग के निकट ही ट्रंक रक्खा था जो खुला पडा था। ज्ञात होता था अभी-अभी उससे कुछ सामान निकाल कर उसे यूँही खुला छोड दिया गया है। प्रातःकालीन शीतल पवन कमरे मे प्रवेश कर रहा था और कभी-कभी पर्दों को उडा कर फर-फर की ध्वनि उत्पन्न कर देता था।

धीरे से होटल के ब्वाय ने कमरे मे प्रवेश किया। इधर-उधर किसी को न देखकर उसने चाय बीच की मेज पर रख दी और अपने कधे पर पड़े सफेद बारीक तौलिये को उस पर ढक दिया। टाइम से चाय, खाना, डिनर लाना उसका काम है।

कमरे के साथ लगे बाथरूम का दरवाजा खुला और दबे पॉव सद्यः-स्नाता एक रूपसी ने कमरे मे प्रवेश किया। महिला के भीगे केश पीछे की ओर बिखरे हुए थे। धुली हुई सफेद इकलाई कन्धे के नीचे से बहुत संवार कर पहनी गई थी। स्नान के बाद गीले गात की निखार बड़ी

भली लग रही थी। सेलोलाइड की सफेद साबुनदानी और गीला तौलिया एक हाथ मे तथा अपनी धोती की चुन्नट को थोडा उठाकर दूसरे हाथ मे लिए कामिनी ने कमरे मे प्रवेश किया।

साबुनदानी उसने ड्रेसिंग टेबल पर रख दी और गीले तौलिये से वह अपने केश पोछने लगी। कभी एक ओर के बालो का गुच्छा गिरा कर वह उन्हे पोछते हुए नीचे तक उतार लाती, कभी दूसरी ओर का। तभी उसका ध्यान बीच की टेबिल पर गया। टेबिल पर रक्खी चाय देख कर वह अनायास तमक गई और तेजी मे बाहर बरामदे मे आकर कड़े शब्दो मे उसने पुकारा, "बैरा, बैरा।"

सामने से एक बुड्ढा अपना सर हिलाता-हिलाता अपनी कमर की पेटी को हाथ से सभालता-संभालता, जल्दी-जल्दी कमरे के अन्दर आया। अपने एक हाथ को दूसरे मे लेकर झुक कर वह बोला, "जी हुज़ूर।"

कंघे को ड्रेसिंग टेबिल से उठाते हुए कामिनी ने तेज स्वर मे कहा, "चाय ले जाओ।"

बैरा सर पर झब्बेदार साफा पहने था। उम्र उसकी ६० के ऊपर ही होगी किन्तु स्वास्थ्य से वह ४५ से अधिक नहीं दिखता था। बैरा एक क्षण रुका, तब पुनः एक तीव्र स्वर कमरे मे गूँजा, "मैं कह रही हूँ चाय ले जाओ।"

बूड्ढे बैरा ने चाय की ट्रे मेज़ से उठा ली। कुछ रुक कर उसने पुनः ट्रे यथास्थान रख दी और बडे धीमे स्वर मे आगे बढ़कर वह बोला, "बिटिया, सुबह का लुकमा नहीं लौटाते। न मालूम दिन कैसा गुजरे? मेरे सामने से तो जमाना और उम्र गुजरी है। मै जानता हूँ। कल से आई हो। १८ रुपये रोज मयखाने के कमरा लिया है। लेकिन मैं देख रहा हूँ, पानी तक नहीं पिया है। न यहाँ होटल से हिली ही हो।"

बुड्ढे के अपनत्व और स्नेह के वाक्यो ने कामिनी को और द्रवित कर दिया। वह मुँह ढॅक कर अपने अधखुले बेडिंग पर जा पडी।

बुड्ढे से और भी न रहा गया। वह आर्द्र हो कर कह उठा,

"मेरे भी एक बच्ची है। बिलकुल तुम्हारे जैसी। उसके माँ नही है। बिना मा की है, बेचारी। शादी अभी मै उसकी कर नही पाया हूँ। मैं ही उसकी माँ हूँ। मै ही उसका बाप। बेटी, तुम्हे कोई दुःख है, यह मैं समझ रहा हूँ। लेकिन खाना-पीना छोडना यह बुरी बात है। और तुम यो अकेली हो, यह भी बुरी बात है। कोई साथ होता तो अच्छा था. . खैर।" और बैरा ने अपने हाथ से कप मे दो चम्मच शकर, थोडा दूध और चाय डालकर कप को चम्मच से हिलाते हुए पुनः कहा, "बटी मेरे कहने से पी लो।"

प्रवास मे पिता क्या बाबा तुल्य मिला वह बैरा और उसका उसके प्रति सहज वात्सल्य। कामिनी उठी और उसने अपनी आँखो को धोती के छोर से सुखाते हुए कप हाथ मे ले लिया। कामिनी की आँखे फूल कर, लाल-लाल होकर और बड़ी, और सुहावनी होकर, चमक रही थीं।

तौलिये से हाथ पोछता हुआ बैरा बोला, "बेटी, यह केक भी लो, ताजी है।"

"नही बाबा, केक नही लूँगी। बस चाय।" फिर भी बुड्ढा बैरा प्रसन्न होगया। वह बाहर बरामदे मे आकर खडा होगया और ट्रे लेजाने की प्रतीक्षा करने लगा। ५-७ मिनट बाद वह अन्दर गया और खाली ट्रे ले कर चला गया।

प्रमोद और कीर्ति नौकर के साथ सेनेटोरियम पहुँच गए। आज कमरे मे पहले से ही एक कुर्सी पड़ी हुई थी। प्रमोद और कीर्ति ने देखा, सामने ऊँचे से पलग पर पडे किशोर महोदय एक चित्र देखने मे तल्लीन हैं। कीर्ति को प्रथम बार ही कुछ विशेष कौतूहल हो रहा था। प्रमोद आगे बढकर पलग के निकट जाकर चित्र को स्वय देखने लगा। उसने अनुमान किया, यह चित्र वही है जिसे उस दिन सभा मे कुर्सी पर रक्खा गया था।

चित्र मजन्टा रग के प्रेम मे मढा हुआ था। चित्र 'इलस्ट्रेटड

वीकली' के साइज का और अनुमानतः छपा हुआ था। ऐसा दिख रहा था कि किसी पत्रिका मे से काट कर मढाया गया है।

अनेक भावपूर्ण रगो से सज्जित वह कलाकृति किसी सुन्दर कलाकार की भावमयी कल्पना थी। उस चित्र मे नीचे छपा था:—

बी ती वि भा व री जा ग री

कितना सुन्दर दृश्यावलोकन था। दूर क्षितिज मे उच्च हिम-शृ गो के ऊपर विस्तृत नीलाकाश स्वच्छ, कहीं-कहीं छिटके श्वेत बादलो की २, ३ घुमेडे, दूरस्थ कोने मे बालरवि की स्वर्ण किरणे, दूर बडी गहराई मे पर्वत की तलहटी. और आगे एक विस्तृत मैदान, हरे-भरे लहलहाते खेतो की क्यारियाँ, किनारे पानी के ताल के निकट से जाता हुआ मार्ग और उस पर जाती हुई एक बैलगाडी, ताल के निकट ही एक फूस का झोपडा, द्वार पर युगल-प्रेमियो का प्रभात की बेला मे विदाई का कारुणिक सजीव चित्रण, बीती विभावरी के पश्चात् उषा बेला मे जागरण और विदाई।

नीचे कोने पर उर्मि कलाकार का नाम उसी के हस्ताक्षरो मे अकित था। किशोर महोदय चित्र की अपेक्षा उस नाम को अनेक बार देखते रहे। तभी चित्र उन्होंने अपने सिरहाने तकिये पर टिका दिया और प्रमोद एवं नवागन्तुक को कौतूहल से देखते हुए अपने हाथ जोड दिए। प्रमोद व कीर्ति ने भी नमस्कार किया। नौकर दूसरी कुर्सी अब तक डाल गया था। किशोर महोदय ने संकेत से कहा, "बैठिये।"

प्रमोद व कीर्ति उस चित्र मे अकित किसी अतीत, किसी रहस्य अथवा किसी मर्मस्पर्शी कथा का मन ही मन अवलोकन करते हुए कुर्सी पर बैठ गए।

किशोर महोदय ने गाव तकिये के सहारे आधा उठकते हुए कहा, "आज इच्छा हो आई, आपको बुलाऊँ। आपका पता ज्ञात ही न था। मेरा नौकर आपको ले ही आया। इस 'सेल' मे आए महीनो हो गए। इधर जी कुछ अधिक घबराने लगा है। बीमारी भी मेरी बढती चली

जा रही है। अब चौबीस घटो मे, जी होता है दो, चार, दस मिनट किसी से बाते करूँ। लेकिन घबराता हूँ, किसी को अपने पास बुलाते। बीमारी जो बेहूदी ठहरी। दूसरे, दूसरे मै लोगो को पसन्द नही करता। व्यर्थ की बाते। जब मिलेगे सौ दो सौ सवाल। व्यर्थ की सहानुभूति 'होपलेस टाक्स' और मै, मुझे छाया से भी नफरत है।"

वे कहते गए, "आप कौन है मै नही जानता। मै कौन हूँ आप नही जानते। किन्तु आपके प्रति मुझे एक आकर्षण है। आपको देखकर, व्यवहार व बातचीत की सीमा पाकर इच्छा होती है, आप से दो-चार मिनट बातचीत की जाए। और ये आज आप किस को पकड लाए है। उस दिन तो आपके साथ कोई दूसरी शकल थी।"

"ये मेरे परम मित्र श्री कीर्ति मोहन है। अभी ही मेर पास लखनऊ से आए है। मैने इनसे कहा था, तुम्हारी भेट किशोर महोदय से कराऊँगा। समाज-शास्त्र का इन्होने अच्छा अध्ययन किया है।"

"ओह, समाज और शास्त्र, अच्छा आपने उसका अध्ययन किया है। खूब, खूब! तब आपसे आज का समय अच्छा कटेगा। वाह प्रमोद बाबू, आप भी क्या ढू ढ कर मेरे लिए आदमी लाए है।"

कीर्ति सुस्थिर किन्तु बात की 'टोन' से कुछ असन्तुष्ट चुपचाप बैठा रहा। प्रमोद ने भी इस बात का कोई उत्तर नही दिया। कमरे का वातावरण कुछ क्षण नीरव बना रहा। सामने के पलग पर किशोर महोदय ने एक करवट इधर से उधर तक ली और पुनः तकिए के सहारे कुछ बैठ कर वे बोलने को कुलबुलाने लगे। आज वे रेशमी कुर्ते पर रेशमी सदरी पहने थे। पलग पर धोती के ऊपर घुटनो तक अलवान ओढ रक्खी थी। ऐसा लग रहा था, कही जाने की तैयारी मे जाते-जाते बैठ गए है। और वे सहसा उत्तेजित होकर बोल उठे, "आज हमारे सामने का यह ससार, बडा सच्चा, बेहद झूठा, महापापी किन्तु प्रतिक्षण धार्मिक बनने का ढोग करने वाला; सर्वथा निकट आकर धोखा देने वाला; सर्वथा अविश्वसनीय, बड़ा भयकर; लोग कहते है, पैसा और पेट

सब कुछ कराता है, मै कहता हूँ यह समाज सब कुछ करता और कराता है। ऐसे नियम बाधे है। और यह हिन्दोस्तान, जाहिल, माफ कीजिएगा मै आई. सी. एस. हूँ, मैं समझता हूँ हिन्दोस्तान की कैफियत अच्छी प्रकार! भले ही ये सामने बैठे मेरे दोस्त हिन्दोस्तान की समाज-व्यवस्था जानने का दम भरे किन्तु यदि ये भी ऐसा करेगे तो ये भी झूठे हैं, धोखेबाज! सब मिलकर समाज बनाते है, सब मिलकर समाज को गन्दा करते है और कहते है अलग-अलग लोग समाज को गन्दा करते है। नियम भग करते है। एक घर मे जब सब बालिग होगे तो सब की राय माननी पडेगी। यदि एक की भी राय न ली, न मानी तो वह विद्रोह का झडा खडा कर देगा और सब को उसका सामना करना पडेगा। यूनानिमस वर्डिक्ट इज इसेन्सियल एण्ड सो विद दा सोसाइटी। मै मानता हूँ अलग-अलग लोग तूफान करते हैं, लेकिन उनको दबाने के लिए हम सचाई से नियमो का पालन नही करते। अभी एक रईस कोई सामाजिक नियम भग करेगा, सब चुप, हल्ला मचाने के बाद; सस्था के नाम पर दान लेकर चुप, और कोई ग़रीब वही उल्लघन करता है तो उसको फासी, साहब सफा फासी। तो क्या समाज है? बेहूदी समाज और है यह सिर्फ हिन्दोस्तान की ही। और आप देखे, दीज इम्मारल सोशल ऐलीमेन्ट्स, ये समाज को गन्दा करते है। अपने मन व आत्मा को बरबाद करके औरो का सत्यानाश करते है। बताइये, आप बताइये साहब, क्या सज़ा है आपकी सोसाइटी मैं, 'लीगल' बात जाने दीजिये, बहुत से मामले इतनी सफाई से होते हैं कि लीगल-वीगल कुछ नही चलता। लेकिन मै कहता हूँ समाज अपाहिज है, वह धोखा देना जानती है। कभी कुछ कर सकने की उस मे सामर्थ्य नही। केवल ढिढोरा पीटना, बस! और साहब, बडे-बडे आदमी, पालिटीशियन्स, लीडर्स, राइटर्स, पीपिल इन गुड आफिसेज, न मालूम कौन-कौन, सब इन काम और तबियत के टुच्चे लोगो के

चक्कर मे आ जाते है। हमेशा सोसाइटी और उसके अधकच्चे नियम ......।"

कीर्ति ने बीच मे ही यह समझ कर कि किशोर महोदय अपनी बात कह चुके, टोककर कहा, "यदि आप अनुमति दे तो मै भी कुछ कहूँ।" किन्तु उन्होंने उत्तर मे कह दिया, जरा रुकिये और पुनः बोलना प्रारम्भ कर दिया। प्रमोद सोच रहा था, आज इन मे बोलने की और इतनी देर स्थिर रहने की शक्ति कहाँ से आ गई ? तभी किशोर महोदय कहते गए, "और लोग, ऐसे लोगो का शिकार बन जाते है, भावुकता मे, नासमझी मे। और 'दीज कर्सेज आफ सोसाइटी,' 'दिस लव स्टुपिडिटी, दिस सेक्स, दिस मेक्स ए मैन मैड, मैड।' कसूर सोसाइटी का है। वैसे नियमो का है। हम 'सेक्स' पढा नही सकते। आप अपने बच्चो को 'सेक्स' पढ़ाएँगे, कभी नहीं, कभी नही पढाएँगे। इसलिए कि आप जाग्रफी पढ़ाते तो सब को देख रहे है किन्तु 'सेक्स' नही। और अकेले आप से सारा समाज स्वच्छ हो जाएगा यदि आप गान्धी जी की टक्कर के 'सोशल लीडर' या 'प्रीचर' हो। मै कहता हूँ गान्धीजी जितने पालिटिकल लीडर थे, उससे बडे सोशल लीडर थे। लेकिन उनका काम भी पूरा कहाँ हो पाया ? तब, और यों हमारे लडके-लड...कियाँ . ." कहते-कहते वे पलग पर चित हो गए। एक पल मे बाहर घटी बजी। नौकर आया वही एक गिलास तरलता, झोले की ५ बूँद दवा और एक घूँट मे सब पीकर किशोर महोदय का स्वस्थ होना।

थोडी देर कमरे का वातावरण पुनः निःशब्द हो गया। कीर्ति अनेक बातो की काट के लिए तैयार बैठा था। किन्तु पुनः किशोर महोदय ने उसे बोलने का अवसर नही दिया और वे कहते गए, "अरे साहब, आज पैसा और रोटी से बड़ी समस्या यह है कि यह 'लव,' यह 'सेक्स' और यह सामाजिक कलक, और ये आस्तीन के साप, बनठन कर बीच मे रहकर जाल बिछाने वाले अभिशाप रूप महानीच लोग, और उनके

घृणित कृत्य। पेट की ज्वाला से अधिक लोग इन समस्याओं मे उलझ कर चीख उठते है ।"

कीर्ति से न रहा गया और वह इस समय कह उठा, "ठीक है, मैं मानता हूँ। समाज मे ये समस्याएँ और उनका रूप जटिल बन चुका है। किन्तु क्षमा कीजियेगा। यह अपने-अपने स्वार्थों की बात है। जहाँ जिसका स्वार्थ सधता है, चुपचाप वह उस काम को किए चला जाता है। जहाँ स्वार्थो पर या अपने पर ठेस लगती है वहाँ वह चीख उठता है। और आस्तीन के साँप आप भी है और हम भी। किसी के माथे पर तिलक तो लगा नहीं होता। 'सेक्स' और 'लव' के चक्कर मे आप बताइए कोई ऐसा भी है जो नहीं है। परिस्थितियाँ आएँगी और आपको अपने अनुरूप पात्र मिलेगा तो आप भी मन पर थर्मामीटर लगाने की सोचेंगे। आप तब यह कदाचित न कहेंगे कि हटाओ, ले जाओ, कहीं कुछ हो भी तो, कैसा बुखार और कैसा थर्मामीटर। सामाजिक-नियमों के साथ आप मानव-प्रकृति कहाँ ले जाएँगे ? और जहाँ सामाजिक-नियमो के साथ मानव-प्रकृति का साम्य हो जाता है वहीं इस प्रकार के कुछ झगडे शेष नही रह जाते। आपको किसी मामले मे कस कर ठेस लगी है, माफ कीजियेगा, तभी आप चिल्ला रहे हैं। किन्तु क्या आपकी अवस्था और आपकी परिस्थिति के लोग अनाचार नहीं करते ? क्या कभी उनको नवोढा और किशोरियो को ढूँढते नही देखा जाता ? मै कहता हूँ, देखा जाता है। एक युवक का ऊधम, चर्चा क्या तूफान का विषय बन जाता है। किन्तु उमर बढ जाने के बाद वही साधारण क्रिया हो जाती है। उन पर 'रेप-केस' भी तो नहीं चल सकता। तब पाप का दड तो एक ही होना चाहिए। अपने घर के लडके की 'लव-सिकनेस' अखरती है किन्तु हम नौ बजे के बाद किस दुनिया मे रहते है, हमे खबर नहीं। हम मौका खुद देते है अपनी नवयौवना बालिकाओं को कि वे दैनिक जीवन की आपकी झाकी को देखकर और उत्सुक बनती जाएँ, उनकी लालसा और बढ़ती जाए। हमारे कोई

नियम नही। हम तो निर्बन्ध और हम चाहे कि हमारे बच्चे अपने प्राकृतिक उभार को दबाएँ। मै तो कहता हूँ, सिखाइए उनको 'सेक्स,' किन्तु आपकी ही श्रेणी इसमे भी बाधक होगी। समाज मे वह चल ही न पाएगा। यदि 'लेजिस्लेशन' ने कुछ कर दिया तो, तब देखिए कितना तूफान खडा होगा। ओह! अब तो लडके-लडकियाँ खुले आम यह और वह.. इसी तरह की चिल्लाहट चारो ओर मच जाएगी। अरे साहब हमारे घर की स्त्रियाँ, चालीस से ऊपर बनाव-शृंगार और नाज-नखरो मे अपनी १८ साल की लडकी को पानी पिलाएँगी। लडकी तो हिचकेगी। कही-कही डाँट भी खाएगी। किन्तु जब अपने कटाक्षो की तरह उस लडकी के कटाक्ष भी अपने तीर फेकने लगेगे तो फिर देखिये उनका ढाँढ़े मारना। समाज-शास्त्र की किस किताब मे लिखा मिलेगा कि चालीस के ऊपर आँखो मे काजर मत डालो। आँखे टेढी मत करो। कभी किसी पंचायत मे भी यह सब तै नही हुआ। न लडकियो के लिये ही कही लिखा है कि तुम सामने के लडके को लडका न समझ कर एक खिलौना समझो या हे रूप कुमार! तुम उस मृग-नयनी को केवल मृग-छौना मात्र समझ कर उसके पीछे मत भागो। जीवन-दर्शन, समाज और सर्वोपरि प्रकृति को भली प्रकार समझो। तब केवल परिस्थितियाँ और वैयक्तिक ससर्ग ही अपने-अपने स्थान पर उचित-अनुचित का निर्णय करके दिन-रात कार्य करते चले जाते है। और प्रकृति मे भी व्याघात आता है। पुरुषो मे भी आता है। आप कभी किसी बात का न समूल निवारण कर सकते हैं न कोई बात पूर्णतः अपना ही सकते हैं।

किशोर महोदय के होश गुम थे। वे सोचने लगे, व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निर्मित उनका दृष्टिकोण बहुत अंशो मे ठीक होने के साथ-साथ अनेक अशो मे दोषपूर्ण भी है। कीर्ति की वैयक्तिक अवसर या अनुभव की बात ठीक प्रतीत होती है। वे कीर्ति की ओर गम्भीर दृष्टि गड़ाते हुए कहने लगे, "ठीक है। आप लड़के हैं। पढे-लिखे हैं। उन्ही कालेजो मे पढ़े हैं। मैं भी पढा हूँ। किन्तु दुर्भाग्य से मेरी उम्र बढ

गई है, परिस्थितियो ने दृष्टिकोण भी बदल दिया है। मै आप ही से पूछता हूँ, ' आप ही की तरह के हमारे बच्चे नई प्यास मे डूबे, अजीब तरह से आकर्षित, दबे-टके इस 'सेक्स' पर डूबते-उतराते है, बिना तैरना सीखे तैरने की चेष्टा करते है, तब वे डूबेगे कि रहेगे ?''

प्रमोद ने बीच ही मे कह डाला, ' तब उनके डूबने का दोष उनके बडे लोगो पर होगा।''

''जी हॉ, 'सेक्स' को सिखाइये तब वह आकर्षण परिमित और क्रमिक होगा। उसमे बाढ या डूबने वाली घुमेड नहीं होगी।'' कीर्ति ने प्रमोद की बात का समर्थन किया।

''ठीक है। उतना दोष यदि प्रचलित न होता तो मै आज उन गधो मे न होता जिनमे लाखो-करोडो है और आँखे बन्द किये सन्तोष की घूँट पीते चले जा रहे है। भले ही उस घूँट के साथ बडे-बडे जानवर भी पेट मे जा रहे है। किन्तु फिर वही बात उठती है। इसका इलाज, इसका क्या यही इलाज है कि हम समझ सोचकर इसी स्थिति मे बने रहे। न नई पौध इसके लिए कुछ करे, न ढलती उम्र के अपाहिज ही जमाने के साथ-साथ अपना कोढ साफ करे। ठीक है, 'वी डोन्ट टीच सेक्स' देयर मस्ट बी एक्स्ट्रा बुक्स वाल्यूमस एन्ड एक्स्ट्रा केरीकुलम एन्ड क्लासेज टु टीच सेक्स। क्वाइट प्लेनली क्वाइट वेल। लेकिन मुझे घृणा है, इन कालेज स्कूलो से, 'दिस फूल्स पैराडाइज, दीज एजूकेशनल इन्स्टीटयून्स दिस कोएजूकेशन विदाउट टीचिंग सेक्स, थारोली, दिस एब्सर्डिटी एन्ड दिस होपलेस मीनिया आफ ब्वाएज एन्ड गर्ल्स एन्ड दिस फुलिसनेस आफ दोज हू आर कनेक्टेड विद अवर एजूकेशन, दे डोन्ट थिक एन्ड मी द थन्डर एन्ड रिवोल्ट रिगार्डिंग सेक्स अन्डर द फाइन रैपर आफ कल्चर एन्ड टुडेज़ एजूकेशन।''

कीर्ति की ओर ''आप तो ठीक मालूम होते हैं, किन्तु आप, प्रमोद साहब, कुछ इससे मिलता-जुलता झटका खाकर ही आप भी

आए है । यहा इन पहाडो पर। और आप लोग समझ लीजिए कही मुझे न समझ बैठिएगा, जैसा अभी मेरे दोस्त कह रहे थे कि मै भी किसी कटाक्ष से दब कर यहा सिमटा पडा हूँ। हा, ऐसे रोगी का शिकार मै जरूर हूँ।"

कीर्ति चुप था। वह कुछ कहना चाहता था किन्तु प्रमोद ने कहा, "किशोर साहब, आप ठीक कह रहे हैं। समाज मे लगे इस घुन के निवारण का हम कोई उपाय नही सोचते न कोई सक्रिय कार्य ही कर रहे हैं और मजा यह है कि दिन-रात हम उससे त्रस्त है, आक्रान्त हैं। किन्तु मेरे सम्बन्धो मे न जाइए। मेरी स्थिति इन वस्तुओ से भिन्न है। "

"उपाय है। हम करते नही है। भली प्रकार से 'सेक्स एजूकेशन, तब हलवाई मावे की ही मिठाई खावेगा। वह उसके मिठास को और मूल्य को समझता है। वह कही मिठाई देख कर फिर कभी लार टपकाने की-सी स्थिति मे अपने को न पाएगा। समय और स्थिति का भी उसे ज्ञान होगा।, बस।"

कमरे के पीछे शीशेदार एक बडा लकडी का फ्रेम लगा था, उससे पीछे की ओर की ऊँची चट्टान दिखाई देती थी। ऐसा लगा वह चट्टान भी किशोर महोदय की बात को प्रतिध्वनित कर रही है। प्रमोद ने अनुभव किया, आज वे अप्रकट रूप मे अपने को हल्का करना चाहते हैं। वे मन के बोझ को, जिसे सम्भवतः वे ऐसा प्रसंग न पाकर चिरकाल से दबाए बैठे है, आज कीर्ति और मुझ से तर्क वितर्क करके, उतारना चाहते हैं।

प्रमोद ने चाहा कि अब वह घर जाए। किन्तु किशोर महोदय पुनः कह उठे, "एक और मजा है। ये तितलिया, मेरी लड़की भी उनमे एक थी 'दिस सेक्सुअल लस्ट', ओह, सोचकर भी कितना वीभत्स लगता है। बच्चा नही चाहती, न शादी के पहले, न शादी के बाद। सिर्फ 'एन्ज्वायमेन्ट' 'प्योर लस्ट।' दे से दे डोन्ट लाइक टू रुइन देयर ब्यूटी बाई गिविग बर्थ आफ ए चाइल्ड और आप देखिये, 'दे हैव नो करेज

आर रादर से विजडम टु थिक एज हाऊ दे रुइन देयर वाडिली एन्ड मैंटल स्ट्रेन्थ वाई हैविग सच इम्मारल एन्ड सीक्रेट इन्टरकोर्सेज ।' और वे एकाएक चुप हो गए।

इसबार निःशब्द वातावरण को प्रमोद ने विदा मागने के लिये भग किया। तर्क-वितर्क तो इस गम्भीर और जटिल विषय पर न मालूम कितना और कब तक चल सकता है। उसने कहा, "अब जाने दीजिये। बहुत समय हो गया। आप भी थक गए होगे। अब विश्राम कीजिये।"

"हा, आज आपके मित्र की स्पष्टवादिता से मुझे बडा सन्तोष मिला है। बात जब भी की जाए स्पष्ट व डट कर करनी चाहिये। "आप फिर मिलियेगा।"

प्रमोद व कीर्ति नमस्कार करके चले आए।

कीर्ति आज जीवन मे प्रथम बार सैनेटोरियम की बाउन्डरी मे गया था। वह बडे कौतूहल से वहा की इमारते, सामने के हास्पीटल की बिल्डिग और विस्तृत मैदान देखता हुआ आगे बढता चला गया।

प्रमोद थोडी देर पहले के वार्तालाप पर विचार कर रहा था। वार्तालाप के मध्य मे किशोर महोदय का आत्म-निवेदन, मै आई. सी. एस. हूँ, और ये तितलिया, जिनमे मेरी लडकी भी थी। दिस सेक्सुअल लस्ट। आदी अनेक बाते उसके मस्तिष्क मे नाच रही थी। वह सोच गया किशोरमहोदय की लडकी का बहुत सम्बन्ध सम्भवतः उनकी इस अवस्था से है। वह आगे बढता चला गया।

"मानता हूँ आदमी विचित्र है।" कीर्ति ने प्रमोद से कहा।

"तुमने आज कस कर मोर्चा लिया। मै तो समझता था, तुम्हारा समाज-शास्त्र एक ढकोसला और बुद्ध बनाने की बात है।"

"जी हाँ, वह है बीमार, बार-बार मागता था पानी। नही तो उधेड के रख देता। कोई मजाक नही था। फिर तुम्हारा है वह दोस्त।"

●

: १६ :

"आया, मै कल शाम तक लौट आऊँगी। और जगसिह, बगले की चौकसी रखना, हाँ!" अपने चेस्टर को बाए हाथ मे सभालते हुए निवेदिता ने ड्राइग-रूम मे खडे आया और जगसिह को आदेश दिया।

"निवे, चलो हमारा सामान चला गया है।" जयन्त ने शीघ्रता में कहा, "जगसिह, अटैची और डलिया रिक्शे पर पहुँचा दी?"

"जी।"

जयन्त निवेदिता के कक्ष-भाग मे हाथ डालकर उसे साथ लिए ड्राइग-रूम के बाहर निकल आया।

निवेदिता आज जीवन मे प्रथम बार, इस प्रकार सयोग पाकर, पापा की अनुपस्थिति का भी प्रथम अनुभव करते हुए, बड़ी घबराहट किन्तु उससे भी अधिक आनन्द मे जयन्त को साथ लिये जा रही थी, दूर, कहीं दूर, केलि करने, अपने जीवन के रसमय अनुराग की सुखद स्वानुभूति के कुछ नवीन और मधुरिम स्वाद पाने।

बाहर बरामदे से कीर्ति ने देखा, जयन्त के साथ उस दिन छडी लेते समय दिखाई देने वाली लडकी जा रही है। उत्सुकता-वश वह अन्दर से प्रमोद को लिवा लाया। बाहर आकर प्रमोद ने देखा जयन्त और निवेदिता कही जा रहे है। उससे कीर्ति ने पूछा, "कहिये श्रीमान् जी, आपको तो मालूम ही होगा, आपके मित्रवर किसे दबाए लिए जारहे है?"

"निवेदिता।"

"ओह, तो सचमुच यह अप्सरा इनके हाथ लग गई ? ओ गाड, बडी-बडी पहुँच वाले है लोग।"

मिलन-वेला मे रिक्शा युगल-प्रेमियो को ले कर उड चला। बाजार, ऊँचाई, ढाल, सैनेटोरियम का गेट, सब कुछ पार करके उसने नैनीताल की ७ मील लम्बी चढाई के छोटे मार्ग को सडक के किनारे से जा पकडा। दाहिनी ओर देखने की ऊँचाई से भी ऊँचे पहाड, चटाने, नीचे रेगती हुई घुमावदार तारकोल की सडक, बड़े गहरे लम्बे दूर तक चले गए खड्ड, और उनके आगे और फैलते, बढते चले गए पहाड, चारो ओर दूर-दूर, किनारे-किनारे ताड और यूक्लिप्टस के पेड, कही हरियाली, कहीं दूर पहाडी पर बना छोटा प्यारा-सा काटेज देखते, सुनते, जयन्त और निवेदिता रूप की दो सुन्दर प्रतिमाएँ, रिक्शे पर बैठे चले जा रहे थे।

रिक्शे वाले चढाई पर बढ चले। ढाल आने पर थक कर रिक्शा छोडने लगे। उनके अपने-अपने मन मे भी अनेक भावनाएँ थीं। चारो सोच रहे थे, ७ मील पहुँचने के बाद छः रुपए। डेढ-डेढ रुपया एक-एक को मिलेगा। कितने परिश्रम, कितनी थकान और दूसरो को कितना सुख पहुँचाने के बाद। उनमे से एक सोच रहा था, सब पैसे वह घर जाकर पहाडिन को देगा तब वह अपने ४ माह के उछलते बच्चे को दूध लाएगी। दूसरा मल्लीताल मे बडे-बडे आलू और तेल की पूडियाँ छक कर खाएगा और बाकी पैसे बूढे बाप को देगा, दवा के लिये, वह बीमार जो ठहरा। तीसरा, अठारह आने की ताडी की बोतल की झोक मे नशे का पूर्व-अनुभव करके ही आगे जुता हुआ तेजी से रिक्शा घसीट रहा था। चौथा, एक लडका था, केवल १५,१६ साल का। वह अपने मे ही मगन था और कभी घूम कर अपने रिक्शे मे बैठे दोनो हँसते हुए मुखडो को देख लेता। तब सामने रिक्शा बढाते हुए वह अपने भावी सुखो के पुल बाधता। और उसी जोश मे रिक्शा तेजी से घसीटता। रिक्शे के पीछे था एक डोटियाल जो ट्रंक और उसी पर होलडाल बाधे अपने बदन को

चारो ओर रस्सियो से बाधे सवा रुपया पाने की प्रसन्नता मे चुपचाप उस रास्ते की चौडी-चौडी नालियो को पार करता आगे बढ रहा था।

जयन्त और निवेदिता, अपने घुटनो पर कम्बल डाले, कभी चुपचाप सामने देखते, कुछ सोचते और कभी शिलाखण्डो के मध्य चारो ओर की प्राकृतिक छटा निहारते, मन्त्र-मुग्ध से रिक्शे मे बैठे चले जा रहे थे।

जयन्त ध्यान कर रहा था, होटल, सिनेमा, बोटिग, स्केटिग हाल, और कमरे मे पडे दो पलंग और एक रात। कल शाम ही को तो लौटना था। काश निवेदिता और रुक सकी। तब उसे ध्यान आया, कामिनी बनारस पहुँच गई होगी।

निवेदिता नैनीताल मे न होकर वहाँ रिक्शे मे थी। पापा देहली आया, जगसिह, बगला और पास ही बैठा एक स्वस्थ सुन्दर युवक जयन्त। वह अपनी कनखियो से उसे देख लेती, उसे पढती और फिर सामने देखते-देखते अपने तार बुनने लगती, पा पा, मोदी, देहली सटे बैठे थे दोनो, बडी घबराहट, बडी प्रसन्नता।

तभी नैनीताल जाने वाले घोड़ो पर निकट से पड-पड करके निकल गए। वे घोडे पर चढे-चढे उन नयनाभिराम मूर्तियो को देखते, फिर देखते। तब आगे बढकर कुछ गुनगुना कर अपने घोडो को ऐड देकर उन्हे दौडा देते शीघ्र मार्ग से ओझल होने के लिए।

इसी मार्ग मे बनी हैं, 'डोटियालो, रिक्शे वालो और घोडे के साथ चलने वाले मिया लोगो के लिये, थक कर दो घडी रुकने, चाय-पानी पीने, चिलम मे दम मारने, बीडी सुलगाने, किसी-किसी को मुँह मे एक पान दबाने के लिये गन्दी कैन्टी ने, उस सात मील मे पाच-सात जगह।

वे बाबू लोग जिन्हे पैसे का मूल्य नही मालूम, उन डोटियालो की गन्दी कैन्टीन की ओर झाकते तक नही, पर हा, रुकते है कभी-कभी दियासलाई लेने या सिगरेट की तलब को मिटाने के लिए। उस समय उन्हे मेक्रोपोलो, ६६६,५५५, गोल्डफ्लेक न मिले न सही। उसके स्थान

पर बर्कले, पासिंग शो या कैंची जो मिल जाए या पहलवान छाप बीड़ी ही सही—वे पी लेंगे।

इसी प्रकार की एक छोटी दूकान की चौपाल के निकट रिक्शे वालो ने रिक्शा लाकर खड़ा कर दिया। तभी चारो अलग-अलग चट्टानो पर बैठ कर सुस्ताते रहे, तत्पश्चात उठकर किसी ने चाय का प्याला लिया और किसी ने डबल रोटी का टुकड़ा। जिसको अपने बाप की बीमारी के लिए पैसे देने थे उसने केवल बीडी पी। उसने और कुछ नही लिया। सामान वाले कुली ने चने-मटर मिली दाल-मोंठ लेकर खाई।

बैठे-बैठे थक जाने के कारण जयन्त और निवेदिता भी रिक्शे से उतरे। अपने पैर सीधे किये। दस-पाच कदम चट्टानो पर इधर-उधर टहले और तब कैन्टीन के निकट खड़े होकर रिक्शे वालो की बातचीत में रस लेने लगे। वे लोग अधिकतर अपनी पहाडी भाषा मे ही बातचीत कर रहे थे किन्तु कभी-कभी टूटी-फूटी हिन्दी भी बोल लेते थे।

केवल बीडी पीकर सन्तोष कर लेने वाले रिक्शेवाले से निवेदिता ने करुणा-भरे स्वर मे प्रश्न किया, "क्यो, तुमने चाय नहीं पी ?"

"नहीं, मेमसाहब।"

"नहीं, नहीं पियो ! हम पैसा देगा। तब दुकानदार को सम्बोधित करते हुए निवेदिता ने कहा, "ऐ, इन सब को चाय पिलाओ।"

और तब सब टूट पडे उस दूकानदार पर ! उसे घेर कर खडे हो गए।

पाच कप चाय ! सब मेमसाहब को धन्यवाद देकर चुस्की लगाने लगे। चारो रिक्शे वाले व कुली बडे प्रसन्न ! चाय समाप्त करके सिर घुमा-घुमा कर वे बोले, "चलिये मेमसाहब, चलिये। हम लोग आप को बडा जल्दी नैनीताल पहुँचाएगा।"

रिक्शा उसी प्रकार व्यवस्थित होकर चलने लगा। चाय की गर्मी

में रिक्शेवाले तेज दौडने लगे ।"

ये दरिद्र है । इनके पास तन ढकने को पैसे नही । इनका पास मन भरने को पैसे नही । ठीक से पेट भरने को पैसे नही । पर इनके हृदय है वैसा ही धडकता हुआ । ये भी सरस हैं । इनके भी करुणा है । इन मे भी प्रेम जागता है । वे बडे मीठे है । ऊपर दिखाई देने मे जितने मैले मन उनका उतना ही स्वच्छ है । तनिक सहानुभूति से ये द्रवित हो जाते है । पाच कप चाय, पाच आने, किन्तु वे प्रसन्न हो गए, इतने जैसे उन्हे कोई निधि मिल गई हो ।

तभी जिसकी पहाडिन बच्चे को लिए बैठी होगी, बोला, "मेमसाहब, आपके कोई बच्चा नेई हुई ।"

ओह, जैसे संसार की सब गतिया स्थिर हो गई हो । जैसे यह कौनसी अप्राकृतिक बात वह कह रहा हो ? निवेदिता की आखे तमतमा गई । जयन्त ने निवेदिता की ओर देखा । निवेदिता उस पहाडी रिक्शे वाले को देख रही थी । उसका मुख-मडल रक्त-वर्ण हो उठा था । और इस बात का उत्तर भी क्या हो सकता था ? रिक्शा अपनी गति से चलता चला जा रहा था । सब रिक्शे वाले ही-ही शब्द करके रिक्शा खीच रहे थे । तब वह रिक्शेवाला फिर बोल उठा, "मेमसाहब, आपके लड़का होगा । हम आशीर्वाद देते है ।"

निवेदिता तमतमा कर बोली, "चुप रहो ।"

जयन्त ने मुस्कराते हुए निवेदिता की पीठ थपथपा कर उसे शान्त किया ।

तभी एक जर्क लगा और रिक्शा एकदम रुक गया । जयन्त और निवेदिता आगे को हिलकर पीछे हो गए । पहाडी लोग अपनी भाषा मे कुछ भुन-भुन करने लगे और एक ने आकर कहा, "देखिये ।"

जयन्त और निवेदिता ने देखा, सामने बीच पगडडी को एक अजगर पार कर रहा है । बड़ा लम्बा, बडा मोटा, चितकबरे रग का । वह दाहिने ओर की किसी चट्टानी खोह से निकल कर रेगता हुआ बाएँ ओर

खड्ड मे उतर रहा था। उसने मार्ग अवरुद्ध कर रक्खा था। रिक्शा रुक गया। ऐसे अवरोध जीवन मे भी अनेक बार आते है और तब गति रुक जाती है।

दो-तीन मिनट मे ही वह अजगर नीचे उतर गया। रिक्शा पुनः आगे बढने लगा।

कामिनी सुबह से शाम तक नैनीताल की सडको बाजारो और घाटो पर घूमती रही।

कामिनी आज अत्यधिक-मोहक-सौंदर्य व वेशभूषा मे ताल के किनारे वृक्षो की छाह मे पडी बैचो मे से एक पर देर तक बैठी हुई जलविहार के दृश्यो को अपने मन मे उतारती रही। उसने धानी रग की जार्जेट की साडी पहन रक्खी थी, जिसके चारो ओर चौडी गहरे लाल रग की छपी हुई किनार और चुन्नट थी। हल्के आसमानी रग के ब्लाउज के अन्दर सिमटा उसका मन ताल के किनारे की बसन्ती-फुहार और शीतल हवा से और अधिक उद्वेलित हो रहा था। उसे किसी प्रकार सन्तोष नही मिल रहा था। पीछे जूडे पर उसने सजा कर काला जाल बाध रक्खा था, जिसके नीचे गर्दन का चमकता सफेद भाग गले तक फैलकर धोती के सफेद लाकेट के आसपास अत्यधिक सुन्दर दिखाई दे रहा था। दाहिने हाथ की पतली तीन उगलियो मे पृथक्-पृथक् चमकती आधुनिक बनावट की तीन अगूठिया रह-रह कर चमक जाती थी। चट्टानो की तेज हवा रह-रह कर धानी साडो को इधर से उधर उडा कर कामिनी को तग कर रही थी। तब उसे रह-रह कर हाथ से अपनी साडी को व्यवस्थित करना पडता। घूमने वाले, अकेले, निकट से निकल जाते और यो एकान्त मे हरीतिमा फैली देख लुभावना मन लिये रुक-रुक कर आगे बढने का प्रयास करते। किसी रूपसी को अपनी बगल मे दबाए निकलने वाले सज्जन भी कम-से-कम दो बार घूम कर बिना देखे आगे न बढते। अपनी स्वजातीय को देखकर और रूप मे अपने से इक्कीस दिखाई देने वाली

कामिनी से लज्जा अथवा ईर्ष्या का भाव मन मे दबाए वे श्रीमती जी भी अनमनी सी आगे बढ जातीं। कामिनी घंटो यो वहा बैठी रही। रिक्शे पर एक चक्कर उसने तल्लीताल से मल्लीताल तक माल रोड पर भी लगा लिया और फिर दूसरी ओर किसी बैंच पर आकर बैठ गई।

फुदकते घोडे पर एक अज्ञात किन्तु मनचले महाशय पास से निकले। पक्की तारकोल की विस्तृत मालरोड के पश्चात् लगभग आठ फीट चौड़ी ताल के किनारे एक पट्टी-सी समान रूप से चली गई है। उसके पश्चात् तार के घेरे के अन्दर आठ-दस फीट चौडी एक और पट्टी-सी फैल रही है जिस पर चमडे की छीलन पडी है। इसी पर घुडसवारी के आनन्द और नए अनुभव पूरे किये जाते है। इसी के बाद थोडी ढलवा कगार के बाद नैनीताल का प्रसिद्ध ताल और उसका जल प्रारम्भ हो जाता है। सडक के किनारे वाली पट्टी पर हरियाली फैली है। थोडी-थोडी दूरी पर ऊँचे-ऊँचे चित्ताकर्षक वृक्ष लगे है। छोटे-छोटे गमले रक्खे है और स्थान-स्थान पर विश्राम अथवा नीरव-वायु सेवन के लिए हरे रग मे रगी बैंचे पड़ी हुई है। घोडे पर चढे उन महाशय ने एकान्त मे बैठी कामिनी के ठीक सामने जानबूझ कर अपने हाथ का पतला-सा बेत गिरा दिया। बेत छुटक कर कामिनी की सैडल से लगकर जमीन पर बिछ गया। श्रीमान् ने ललचाई और अलसाई आखो से पहले कामिनी, फिर बैत और फिर कामिनी को देखा। कामिनी स्थिर बैठी रही। श्रीमान् ने सोचा, जरा भी हिलन-डुलन हुई और उन्होने पासा फेका। बिर्जिस और हन्टिग कोट के ॅचाव मे वे सोच रहे थे सामने का पछी उडकर उनका बेत उनको दे देवे। किन्तु वह थी कामिनी, वैसे ही आक्रान्त और उस पर यह बेहूदगी। कामिनी निरन्तर यो ही बैठी रही।

श्रीमान् जी ने घोडे को एड दे-देकर आस-पास दो-तीन बार घुमाया-फिराया। न दूर तक कोई व्यक्ति ही उन्हे दिखा, न कामिनी ने ही अभद्रता का उत्तर भद्रता से दिया। अन्त मे बेचारे घोड़े का मुँह घास की ओर करके उतरे और बेत उठा लिया। उनके निकट आने पर

बनारस की चचल कालेजियट कामिनी से न रहा गया। उसने अपनी आखे और बडी करते हुए कहा, "कहिए लाट साहब, इतना इन्तजार किस बात का था ? सोच रहे होगे, आपकी परिचित कोई बैटी है, तभी जान-बूझ कर यो डाला था बेत। शायद कोई उठा देगा। आपने सोचा मै उठा दूँगी।"

तार फादकर दूसरी पट्टी पर जाते-जाते आपने कहा, "हर्ज ही क्या हो जाता, यदि "

"तो फिर इधर आइये न .." तब तक उनका घोडा खरामा-खरामा बीस गज आगे बढ गया था। आपने आगे बढकर उसे सभाला।

"उल्लू कही का !" कहकर कामिनी पुनः ताल मे दूर से आते एक 'पाल' को देखने लगी।

प्रातःकालीन एक कप चाय के बाद पेट ज्यो का त्यो था। दो दिन बीत चुके थे। श्मशान मे अपने प्रिय से विदा लेने के बाद घर आकर मन की धधकती ज्वाला के बाद भी पेट की ज्वाला को अपने आप और कहने-सुनने के ऊपरी आडम्बरो के बाद, शान्त करना पड़ता है। जीवन मे कहा कितने कटु सत्य हैं, क्या कोई तालिका बनाई जा सकती है ? इस समय कामिनी की क्षुधा ने अपना काम करना प्रारम्भ कर दिया था।

वह उठी और अपनी लहराती धानी साडी की चुन्नट को हाथ से थोडा उठाकर हरी दूब मे अपने पद-चाप जमाती धीरे-धीरे निकल कर सडक पर आ गई। सामने ही ऊँचे पहाडो पर बना 'होटल-हिमालया' दिख रहा था।

होटल आकर उसने कमरे का ताला खोला और धीमी आवाज मे पुकारा, "बाबा, बाबा।"

बुड्ढा बैरा सामने आया। "बाबा, खाना लाओ।"

"इस वक्त, दोपहर के तीन बजे ।" रुक कर वह कुछ कहने ही को

था कि कामिनी बोल उठी, "खाने की जो भी चीज मिल सके ले आओ ।"

बैरा चला गया । कामिनी बाहर आकर बालकनी मे थोडी देर खडी हो गई । सामने का वातावरण बडा स्वच्छ था । चमकती धूप नैनीताल पर पड रही थी । धूप की किरणों मे उछलते-जल-विन्दु और थिरकती लहरे, सुनहली-रुपहली, रुपहली-सुनहली बनती और बनकर मिटती थो । तेज धूप मे भी चट्टानों को छूकर ऊचे से आने वाली पवन मीठी और शीतल बनी हुई थी । बैरा कुछ सामग्री एक ट्रे मे शीघ्र ही रख लाया और कमरे मे गया । कामिनी ने भी उसके पीछे कमरे मे प्रवेश किया ।

टोस्ट पर मक्खन लगाते-लगाते वह सोचने लगी । उसकी निगाह थिरकती आखे सामने भूमि पर ठहर गई । एक स्लाइस पर मक्खन आधा लगा रह गया और दूसरे हाथ मे 'बटर नाइफ' उलझ गया । वह सोच गई, ससार कितना छलिया, किस चतुराई से जयन्त ने अपना पल्ला उससे झाड लिया । वह छली, लुटी-सी बिना बोले, बिना विद्रोह किए चित्र से ओझल हो गई । जयन्त को बल मिला । उसे रह-रह कर आ रहा था, उसने विद्रोह क्यो नही किया ? तब जयन्त व उनकी निवेदिता को एक तमाशा तो मिल ही जाता देखने को । किन्तु नहीं, विरोध किससे ? जयन्त से, कभी नही । वह पुरुष है । सम्भव है उसको वही सन्तुष्ट कर सके । मै उससे प्यार करती हूँ । इस क्षण भी । मै अपना काम करूँगी । उसने अपना काम किया । और निवेदिता से क्या झगड़ा ? उसका कोई दोष नही । वह जानती होती तो कदापि आगे पैर न रखती । सब ठीक है । सब शान्त.... ।

और उसने पुनः मक्खन लगाना प्रारम्भ कर दिया । कुछ तुरन्त तैयार किये 'पोटैटो चिप्स' टूगे । चाय पी । एक केक खाया । दूसरा केक खाया । टोस्ट खाया और भोजन समाप्त...।

कामिनी कमरे मे थी । इसी क्षण होटल हिमालया के बाहर सड़क

पर जयन्त और निवेदिता का रिक्शा आकर रुका। नया मुसाफिर देख कर बैरे आगे बट आए। कुली आगे बढे। किन्तु उनका अपना कुली साथ था। तभी एक बैग ऊपर ही से तीव्र स्वर मे बोला, "ले आओ २५ न० मे, डबल बेड-रूम। और एक बैरे ने जयन्त के निकट आकर कहा, चलिये साहब।"

"निवे, तुम चलो, मै आया।" मन मे अत्यधिक प्रसन्न, मुस्कराता निवेदिता को हाथ का सहारा देकर रिक्शे से उतारता हुआ जयन्त कह गया।

निवेदिता बैरो व कुली से घिरी ऊपर चल दी। रिक्शे वालो को तुरन्त पैसे देकर उछलता हुआ जयन्त निवेदिता के बराबर मे आ गया।

कामिनी के कमरे के द्वार उटके हुए थे। जयन्त और निवेदिता सामने से निकल कर बराबर के कमरे मे पहुँच गए!

बुड्ढा बैरा खाली ट्रे लेने अन्दर आया। ट्रे मे खाली प्लेट्स रखते रखते बैरा बोला, "बिटिया, तुम्हारे बगल का कमरा आबाद हो गया है। अभी-अभी एक मेम-साहब और उनके साथ एक बाबूजी आए है . ।" कुछ रुक कर, "बिटिया, इस बखत कुछ था नही, शाम को अच्छा खाना खिलाऊँगा।"

और बैरा द्वार उढका कर चला गया।

कामिनी ने अन्दर से दरवाजे की चटखनी लगा ली और पलंग पर पड रही। उसे नीद आ गई।

दो घंटे बाद शाम हो गई। जयन्त निवेदिता को लेकर बाहर बालकनी मे आखडा हुआ।

तभी धुँधली शाम के बाद धीरे-धीरे फैलता अँधेरा, सामने दिख रहा था सुप्रसिद्ध नैनिताल। चतुर्दिक दीवाली की झलक, दूर-दूर

पहाडो पर छिटके बगलो के झरोखो से जगमगाती हुई छन कर आती हुई रोशनी की चमक, और उसका प्रतिबिम्ब ताल के जल मे पडकर, जैसे जल भी आल्हादित हो उठा हो। जैसे विद्युत् के दीप, उन्हे वासना हो गई हो नित्य जल मे डूबने-उतराने और उन्ही मे स्नान करने की। जैसे सारी नगरी स्वर्ग की अप्सरा-सी बनकर, सरे-शाम उतरी हो जल मे सैकडो दीप-शिखाओ को प्रज्वलित करके, अपने दीपक-नृत्य की भंगिमा मे। उस नृत्य मे पानी थिरक उठा। लहरे डोल उठी। और पानी की लहरो के साथ जयन्त व निवेदिता के मन भी हिलोरे ले उठे। लहरता जल जैसे निवेदिता के पैर चूमने को ऊपर बढा चला आ रहा हो, बालकनी की फेसिंग तक। और जयन्त जैसे आरती के क्षणो मे मौन खडा उसकी लौ और सुवास से अपने को सुगधित कर रहा हो।

जयन्त ने निवेदिता की उगलियो को अपने हाथ मे लेकर अपनी पलको मे फिरा डाला। एक, दो, तीन, दस बार जल्दी-जल्दी। तब धीरे से जयन्त बोला, "चलो, कही बाहर घूम आएँ।"

निवेदिता अपने पलक मूदे खडी रही। बालकनी मे ऊपर छत पर एक बल्ब जल रहा था और निकट के कमरे मे एक सोता हुआ मन।

तभी जयन्त ने निवेदिता से बहुत मन्द शब्दो मे कहा, "चलो"

निवेदिता ने उससे भी धीमे स्वर मे कहा, "नही," और वह कमरे की ओर बढ चली। जयन्त ने आगे बढकर उसे थाम लिया।

बालकनी मे पुनः आकर जयन्त ने पुकारा, "बैरा, बैरा।"

बुड्ढा बैरा सामने आया। उधर के होटल के फ्लैट की देख-भाल पूरी तरह उस बुड्ढे की ही थी। उसके आते ही जयन्त ने कहा, "दो थाल।"

बैरा चला गया।

●

: २० :

आदरणीय वकील साहब,

सादर प्रणाम ।

आपके 'लैटरहेड' से यही व्यक्त हुआ है अतः आपको उपर्युक्त रूप मे ही सम्बोधित कर रही हूँ । आपके पत्र से पता चल रहा है कि आप मेरे पिता जी से भी किसी रूप में परिचित हैं। यह मेरे लिये प्रसन्नता की बात है । निश्चिन मै अपने पिता के साथ अधिक समय लखनऊ रही हूँ । और यह सयोग है कि आप भी लखनऊ के ही हैं। और जो प्रसंग आपने पत्र मे व्यक्त किया है, वह निश्चित वियोग के साथ संयोग की बात तो है ही ।

हा, तो आपने अपने पुत्र के सम्बन्ध मे मुझ अपरिचित को इतना खुल कर लिखा है, यह एक विशेष बात है । आपके पत्र का मैं निम्न प्रकार से उत्तर देना चाहती हूँ ।

आप अपने पुत्र के लिए इतने प्रयत्नशील है; इसके लिये मै आपको बधाई देती हूँ । मैने कभी किसी को नहीं जाना । मैने कभी किसी को नही देखा । मै लखनऊ रही । मै बम्बई रही और मै अब यहा विलायत मे हूँ ।

मेरा दिन के सोलह घटो मे एक कार्य है, एक लक्ष्य—पढना और पढना । मै अपने देश की उन लडकियो की कतार मे अपने को नहीं खडा करना चाहती, जो दिन निकलने के पहले उग आती है और दिन

ढलने के पूर्व अपने ढले यौवन को लिए, कहां डूबी, किसी की जर-खरीद दासी, कोई क्या कहे, दर्जनो बच्चो की माँ, अशिक्षिता, अन्ध-विश्वासिनी, मान्यताओ की शिला से अनजाने दबी, पिसती चली जा रही है।

माना कि शतरज के खेल मे, खेल का मनोरजन शै और तब मात मिलती ही है। और यह जीवन भी एक शतरंज का खेल ही है। किन्तु अनसीखा खेल, बिना पूरे खिलाडी बने खेला जाएगा तो आप को क्या लिखूँ, शै और तब मात खेल पर बैठते ही मिलनी प्रारम्भ होजाएगी। हम ऐसा अधकच्चरा खेल, हम अनभिज्ञ की भाति यह शै और मात का खेल खेले ही क्यो ?

मै तो हैरान हो जाती हूँ, सोच-सोच कर, देख-देखकर, अदृश्य से मोह, नए अनुभवो की लालसा, उनके प्रेम की फुसफुसाहट, उनको निगले जाती है। उनका अनुराग, उनका प्रेम-नाटक, वह सब भी वैसा ही विचित्र, वैसा ही अनियमित है, जैसा उनके जीवन का निरुद्देश्य निष्प्राण कार्यक्रम, केवल दो हाथ-पैर, धड-मुह और बिना मस्तिष्क का सर लिए, कुछ ऐसे ही जन्तु ढालना जिनका नियमित, निश्चित और निरन्तर का जीवनदर्शी लक्ष्य बना हुआ है।

कभी कोई अलसाई-सी, उखडी-उखड़ी अपने निकट किसी साथी को टटोलती है, तदनन्तर स्वय विवश होकर कही बंधी चली जाती है। विरोध, विवेक और आत्म की रूपरेखा जीवन मे बना डालने की जिसमे सामर्थ्य नही, वही दूसरे को उलझाती है और उसके जीवन को दूभर कर देती है। तभी बाद मे उसका काम भी चालू हो जाता है। दो हाथ, दो पैर, धड़, मुँह और बिना मस्तिष्क का सर लिए, ऐसे जन्तु ढालने का क्रम।

तो मैंने अपने में इस तरह डूबे कभी किसी को नही देखा, न सुना, न मैं स्वयं डूबी। दिवस के अनेक प्रहरो मे भी न मालूम कितने मिलते हैं, सामने आते हैं, लहर की तरह उठते और विलीन

होते है, मै किसी को नही जानती।

सचमुच मै एक तितली की तरह, अपने सौन्दर्य मे,—दुर्भाग्य या सौभाग्य से सौन्दर्य मिला हुआ है—बिना क्रीम, पाउडर, नेल पालिश, लिपस्टिक लगाए इधर से उधर घूमती हूॅ स्वच्छन्द, दिन-रात। पर मेरी साडी का लहराता पल्लू किसी कॉटे मे नही उलझता, कदाचित् कही नही। यो ही मै अपने देश की सडको, गलियो, बाजारो, मकानो, बंगलो, कालेजो, यूनिवर्सिटी, क्लबो, समारोहो मे घूमी हूॅ, दिन-रात और अब यहॉ आई हूॅ, विलासिता के विश्व-प्रसिद्ध स्थान मे केवल शिक्षा के समृद्ध सागर मे हिलोरे लेने, यहॉ इंग्लैड।

और यहॉ का समाज (सोसाइटी) बडा विलासी पर बडा सीमित, सदैव उल्लसित पर बडा सजग, सचमुच यहॉ के नर नारियो के लिए प्रेमक्रीडाऍ, दिन-रात ऐसी है जैसी हम विद्यार्थियो के लिए परिचित किताबो के पृष्ठ किन्तु वह कभी बुरी नही लगेगी, कभी उस पर आपत्ति का कोई प्रश्न ही नही।

तो यहॉ की दिन-रात की प्रेम-लीलाऍ भी कुछ सिखाती है। यहॉ लोग मिलते हैं, एक-दूसरे को पटने के लिए, सीखने के लिए, आदान-प्रदान के लिए, अपने अनुभवो के विकास के लिए, जीवन के सत्य को समझने के लिए, अपनी जटिल समस्याओ को सुलझाने के लिए, स्वतन्त्र-प्राणी की भाति जीवन-सागर को दृढता से पार करने के लिए, औरो पर सदैव अनाश्रित, पूर्ण यौवन प्राप्त और 'सेक्स' से पूर्ण भिज्ञ। वह होना है जीवन का गहन-सत्य, जिसके आधार पर वे रोमान्स की परिणति करते है जीवन-सूत्र को बॉध कर और पूर्ण स्वच्छन्द, वातावरण पर पूर्णतः अनाश्रित, आर्थिक चिन्ताओ के परे और वे तब चलने देते है अपनी जीवन-नौका 'इगलिश-चैनेल' के गहन जल की भाति जीवन-सागर की गहराइयो मे पैठने के लिए। और तब वे होते हैं सुखी प्रेमी, सुखी दम्पति, सुखी माता-पिता और सुखी नागरिक, अपने देश के नही, विश्व के। तभी उनका देश है समृद्ध, समुन्नत, विशाल,

वैभवशाली,शिक्षा-दीक्षा का केन्द्र, साहित्य, सस्कृति, सभ्यता एव नवीन निर्माणो तथा आधुनिक आविष्कारो का अनन्त केन्द्र ।

कोई कहे, पाश्चात्य सभ्यता और व्यवहारो का यह प्रभाव है। हमारा देश भी उससे अधिक वैभवशाली है । मै मानती हूँ, किन्तु यह सचाई भी छिप कर कहाँ जाएगी ? हमारा समाज, उसकी आर्थिक, सामाजिक व वैयक्तिक स्थिति अभी बगड़ी हुई है । हमसे आगे जो आ चुके है, उनको देखना, सुनना, उनका अनुकरण, पाप हो सकता है, किन्तु वास्तव मे वैसा है नहीं ।

मै यहा आई हूँ 'लान' से घिरी 'यूनीवर्सिटीज' मे अपने को कुछ बनाने । मेरे पिता जस्टिस रह चुके है, उनके स्वप्न पूरे करना मेरा कर्तव्य है । मै अपने ध्येय को छोड कर क्यों सोचू 'हाइड पार्क' की बात ?

फिर लन्दन की यूनीवर्सिटीज़ के लडके उतने उद्दण्ड नहीं, उतने उच्छृंखल नही, जितने मैने अपने देश मे देखे है । एक-एक विद्यार्थी को देखिये तो आप कह उठेगे, आपके सामने कोई स्कालर है, आपके सामने कोई रिसर्चर है, कोई साइन्टिस्ट है, कोई कला-पारखी है । यहा लडकियो को देखकर 'ही-ही' और लडको को देखने मात्र से, 'ची-ची' नहीं होती । मै सोचती हूँ, बडा अन्तर है । बडा अन्तर !

और लडकियो की, पढने वाली छात्राओ की, एक प्रगति है, उनका एक आकर्षक लक्ष्य होता है । वे केवल चंचल मन, चंचल नयन और रगे ओठो वाली नहीं होती । वे अपने जीवन मे पदार्पण करते हुए आत्म-निर्भर होती है । पुरुषो के बराबर परिश्रम करती हैं वे ।

मेरे अनुभव अभी अपरिपक्व है । कुछ सीखने और समझने की अभिलाषा मुझे सजग प्रहरी की भाति रोकती रहती है । संभाले रहती है, मुझे हिलने नही देती ।

और अब मैं आपकी बात सोचती हूँ । आपके पुत्र की भाति मुझे हज़ारो ने ही देखा है, देखते है । परन्तु मुझसे किसीका नाता ? और आप मुझसे पछिये, मैंने एक को भी देखा है ? नही, नही । किसी को

नहीं। उसी अभिमान मे, उसी नशे मे, उसी आत्म-विश्वास को लेकर चली आई हूँ, इतनी दूर, विलासिता के पूर्ण केन्द्र और क्रीडास्थल लन्दन।

सुनिये, मै ऊपर लिख चुकी हूँ मैंने एक को भी अभी तक नहीं देख पाया है। और आपने स्वय लिखा है, आपके पुत्र को भी नही। आप वकील है, इसीलिए बात मैने इतनी घुमाकर लिखी है। हाँ, तो आपके पत्र पाने के पश्चात् मुझे आपके पुत्र व आपसे सहानुभूति अवश्य हो रही है। क्षमा कीजियेगा, यदि मेरे हाव-भाव, वेश-भूषा, सौन्दर्य और यौवन को देखकर—वस्तुतः मुझे आपको यह सब कुछ लिखना नहीं चाहिए था, किन्तु प्रसगवश मै भी विवश हूँ, आप मेरे आदरणीय है—अनजाने, विना मेलजोल, बिना समझे, बिना परखे, किसी के जीवन, स्वभाव, इतिहास, गुणावगुण विना आके, शक्ति और विवशताओ को विना विचारे, मान्यताओ और कर्तव्यो को बिना पूछे, इस प्रकार यदि कोई मेरे नाम को लेकर सैनेटोरियम के निकट मेरी प्रतीक्षा कर रहा है तो मुझे निश्चित उससे सहानुभूति है।

निश्चित आपके पुत्र की उपासना महान् है और प्रशसनीय भी, जिसके द्वारा वे पूर्णतः मौन और विवेकशील होकर स्थिर रहे। लोलुप की भाति पीछे नहीं दौडे। सचमुच यह उनके साधु-गुणो और सौम्य-प्रकृति के प्रतीक है। प्रेम मे त्याग की भावना का ऐसा साम्य, यह एक सजीव उदाहरण है।

इस सबके बाद यह स्पष्ट लिख देना चाहती हूँ कि निर्बन्ध रहकर मैं अध्ययन-रत हूँ। कभी मै ऐसे किसी पचडे मे पडने की सोच भी नहीं सकती। मै कदापि कोई वचन नहीं दे सकती। अभी विचार भी नही कर सकती।

मै प्रतीक्षा अवश्य करूँगी। आपके ऐसे पत्र के बाद। मुझ मे शक्ति है, मै प्रतीक्षा करते हुए प्रतीक्षित रहूँगी। आप चाहे तो यह पत्र उन दिव्य-पुरुष तक पहुँचा दे।

यदि विधि ने उनकी जीवन-रक्षा की, जैसा मै अब चाहती हूँ;

क्योंकि अनजाने कोई व्यक्ति इस प्रकार न चला जाए । मनुष्य-जीवन बड़ा मूल्यवान् है । अभी तक मैने यही समझ पाया है । यह अन्याय ही होगा, भले ही अनजाने मे, किन्तु अब मै जान भी चुकी हूँ । आपका यही काम था, जो आपने बडी चतुराई से पूरा कर दिया है । आप वकील साहब है , तो मै उनसे अवश्य मिलूंगी ।

मेरी एक कसौटी है, उस पर यदि वे खरे उतरे तो मै उनका अभिवादन करूँगी ।

किसी भी प्रसग के सदोष लेखन को कृपा करके क्षमा कर दीजियेगा।

पुनः प्रणाम !

३३ , ईस्ट एण्ड, सादर,
पिकाडेली, लन्दन । प्रतिमा

प्रमोद ने उपरोक्त पत्र तीन बार आद्योपान्त पढा । मस्तिष्क उसका चक्कर खा रहा था । चलचित्र की भाति न मालूम कितनी घटनाएँ सामने से आई और विलीन हो गई । लखनऊ जीमखाना क्लब का एक दृश्य : प्रथम दर्शन की झलक, मन मे उसके एक कॅरोचन-सी हो रही थी । किन्तु चेहरे पर आज एक खिलती आभा प्रकट हो रही थी। प्रतिमा उसके सामने थी । उसकी प्रतिमा । जीमखाना क्लब का खुला लान, लान पर जगह-जगह पडी छोटी मेजे और उनके आगे पडी केन की छोटी कुर्सियां, उन पर स्थान-स्थान पर बैठे नगर के प्रतिष्ठित नागरिक, अधिकारी अथवा सौन्दर्य की झाकी मे अप्सरा-सी नारियाँ । क्लब के सैक्रेटरी महोदय जापान को प्रस्थान कर रहे थे । तभी क्लब के सदस्यो की ओर से उनको 'फेयरवेल' दिया गया था ।

प्रमोद भी अन्य सदस्यो की भाति दूर कोने मे एकान्त मेज पर अकेला ही बैठा था । कुछ लोग लान मे घूम रहे थे । कुछ बैठे थे । कुछ क्लब की बिल्डिग के हाल मे नाना प्रकार के 'इनडोर' खेलों मे सलग्न थे ।

और प्रमोद के सामने की खाली मेज़ पर तभी प्रतिमा अनायास

आकर बैठ गई। उसके बैठते ही सामने से बैरा एक ट्रे मे एक गिलास जल ले लाया। प्रतिमा ने जल पिया। अपने हाथ के छोटे रूमाल से अपने महीन गुलाबी ओठो को सुखाया और उठकर चल दी।

प्रमोद के सामने थी शरबती रंग की साडी मे लिपटी रगीन प्रतिमा, पतले बदन की हलकी-फुलकी जान लिए वह कुर्सी पर बैठी और पानी पीकर उठी और चल दी। उसके केश-विन्यास की विशेष शोभा, उसके जूडे की अद्वितीय गठन, सारस की-सी लम्बी पतली गर्दन और वैसा ही उसका श्वेत धवल रूप, साचे मे ढली एक थिरकती तस्वीर। वह नाच उठा। कानो मे उसने विशेष प्रकार के टाप्स पहन रक्खे थे, जो उसकी रूपरेखा के अनुरूप ही सजे, भले लग रहे थे। मस्तक पर उसने सूई की नोक-सी महीन बिन्दी सजा रक्खी थी। अत्यधिक आधुनिक कट के साडी के रग के ही ब्लाउज के बाद कन्धे के नीचे से गोलाकार चली आई सुनहली बांहे और उनके नीचे की पतली कलाइयो मे पडी मोती की एक-एक चूडी दोनो ओर, लम्बी पतली उगलियो के लम्बे-पतले सुडौल-नाखून : बिना रगे, बिना मढ़े, प्राकृतिक गहरे गुलाबी, जानुओ की मासलता से लिपट कर हिलती-डुलती शरबती साडी को सभाले, केवल इतनी दृष्टि फेक कर की सामने कोई बैठा है, अपनी बडी-बडी आँखो की दृष्टि को और दूर छिटकाते हुए वह आगे बढ गई और दूर खडे जस्टिस महोदय के हाथ को अपने हाथ मे लेकर खडी हो गई। उस समय जस्टिस महोदय नगर के सुप्रसिद्ध व्यक्ति श्री हालवासिया से बाते कर रहे थे।

प्रमोद जहाँ का तहाँ बैठा रहा। किन्तु उसी क्षण से उसका मन न मालूम किस नवीनता का अनुभव करने लगा। वास्तव मे उसी क्षण से अनायास उसके मन ने माना कि कही कुछ कमी है। कही कुछ अधूरा है। वह देर तक अपने पानी के गिलास को हाथ मे लिए रहा। उसने मनोरजन वश सामने से बैरे को पुकार कर एक गिलास पानी और लाने को कहा। पानी आने पर उसने चेष्टा की कि सामने आकर बैठ कर जिस प्रकार एक अनिन्द्य रूपसी अभी-अभी अपने गले की नीली नसो को

चमकाते हुए पानी पी गई है, उसी प्रकार वह पानी पीकर देखे। किन्तु उसे प्रतीत हुआ, पानी पीने मे उसके वह लोच आ ही नही सकता।

तभी जाते-जाते प्रतिमा ने एक दृष्टि दूर से उस टेबिल की ओर फेकी, जिस पर वह अभी-अभी पानी पीकर गई थी। प्रमोद ने समझा, उसने उसे देखने की जैसे चेष्टा की हो। और वह जस्टिस महोदय के साथ क्लब की बाउन्डरी छोडकर चली गई। इसके थोडे दिन बाद ही उसने लखनऊ की बाउन्डरी भी छोड दी।

इस बीच दो अन्य समारोहो मे भी दूर से प्रतिमा दिखी। प्रमोद सिहरा और वही सिमटा रह गया, जहा उसका मन लिए उसका तन स्थित था।

और एक दिन लखनऊ चारबाग स्टेशन पर दो ट्राली भरा सामान, चार-छः लाल पट्टी वाले चपरासी और कुली प्रथम श्रेणी के एक कम्पार्टमेन्ट मे लाद रहे थे सब सामान! जस्टिस महोदय के निकट ही उनकी प्रतिमा खडी थी। जस्टिस महोदय का स्वय एक वैभव था, एक व्यक्तित्व। काली शेरवानी पर भरी पिडलियो मे कसा हुआ चूड़ीदार पाजामा, काला शू, वृद्ध किन्तु गोरे मुख-मडल की गहनता मे ऊँची नासिका पर शोभायमान सुनहला चश्मा और उस पर खल्वाट मस्तक और सर, सब मिलाकर जो एक व्यक्तित्व बनता था, वह जस्टिस महोदय के पद और मान के अनुरूप ही था। और तब उनकी सजीव प्रतिमा, ऐसा लगता था, उस पर अपने पिता की ही छाप पूर्णतः पडी है। जस्टिस महोदय का व्यक्तित्व लखनऊ मे एक माना हुआ प्रतिष्ठित व्यक्तित्व था।

तब प्रमोद सोच रहा था। स्टेशन पर ही उसे लगा, जैसे उसकी कोई वस्तु खो रही है। जैसे उसकी अपनी निधि कही विलीन हो रही है। जैसे उसकी अपनी कोई वस्तु उससे कोई बलपूर्वक छीने लिए जा रहा है। जैसे जस्टिस महोदय उसे भले नही लग रहे थे। किन्तु था क्या? जान-पहचान तक नही। जीवन मे कभी अब तक वार्तालाप हुआ होगा, यह सोच सकना भी सर्वथा अप्रासंगिक। तब उसके मन मे यह

सब कैसा-कैसा हुआ उस समय ? और सयोग उस समय जाने की ही बेला मे उसे भी स्टेशन जाना था। वह गया था व्हीलर से दो-चार नई मैगजीन लाने। किन्तु उसका मन 'मैगजीन' बना जा रहा था। विस्फोट की तैयारी मे।

गाडी छूट जाने पर जिज्ञासा ने अपना कार्य किया। स्टेशन पर खडे रह गए दो चपरासियो मे से उसने एक से पूछा, "साहब कहा गए ?" एक लम्बी सलाम देकर उसने उत्तर दिया, "जी हुजूर, साहब रिटायर हो गए, बम्बई गए है, अब वहीं रहेगे। अपनी उनकी वहो कोठी है। और प्रतिमा-बीबी भी वहीं उनके साथ रहेगी।"

तब वह बाते करता-करता उस चपरासी को बाहर तक ले आया। प्रमोद के एक प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा, "नहीं हुजूर, साहब के घर से नहीं है।" पुनः दूसरे प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा, "नहो, हुजूर, प्रतिमा बीबी की अभी शादी नहीं हुई है। साहब कह रहे थे, उनको अभी पढाएँगे। कहते थे विलायत भेजेगे।"

और तभी प्रमोद अनजाने उस चपरासी को दो रुपए देकर घर चला आया था। और तब से आज का दिन। जैसे उसे जीते रहने का मोह ही न रहा हो। जैसे उसके मन-प्राण उस दिन उन रेल के पहियो मे घूमते-घूमते प्रतिमा के साथ चले गए। जैसे अब उसका रहा ही कौन ? और अब उसका जीवन क्या ? नीरस, निष्प्राण, निस्तेज और जैसे उसने सोच ही लिया कि जीवन मे पुनः वे थिरकती आखे और भरा यौवन अब वह क्या कभी देख पाएगा ?

इसके पश्चात् ही अनजाने उसका मन वश के बाहर हो गया। उसकी अपनी आभा विलीन होती गई। उपासना और आराधना मे रत वह अपनी प्रतिमा को स्वप्नो मे देख-देख कर और भरा-भरा रहने लगा। और तब जो होना था, उसकी अपनी एक विचित्र गति, एक विचित्र परिस्थिति, एक विचित्र-सा प्रसग। अनदेखा, अनजाना,

अप्रकट । वह कभी बातो-बातो मे जान सका केवल मात्र उसका अभिन्न कीर्ति ।

तब उसका ध्यान पहुँचा—लहरो से लहराता-सागर और टेम्स पार करता हुआ लन्दन । वही उसकी सडको मे घूमती हुई प्रतिमा । आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के लान से होकर क्लास-रूम मे लेक्चर समाप्त करके शरबती रग की साडी मे आती हुई थिरकती तस्वीर । वह है लहरो का देश और वह है चट्टानो के बीच—कितनी दूर, बहुत, बहुत दूर चट्टान और लहरे और दोनो का एकात्म, एक अनोखी बात है, सोचने का प्रश्न ही नही उठता है ।

और उसका यह पत्र । यह जितना अच्छा वह पढ सका है, पिता जी ने नही पढ पाया होगा, कोई नही पढ सकेगा । तब उसका एक मन हो रहा था, कोने के लिखे पते पर वह क्यो न एक पत्र स्वय लिख दे ? नही, कदापि नही, कभी नही । नही, यो मूक-तपन मे ही आनन्द है, इस अनूठे प्रेम मे ही आनन्द है, मेरा प्रेम, मेरा अपना आत्म-विश्वास, मेरा अपना आत्माभिमान, मुझे गर्व है । ससार के लिए नही अपने लिए । मेरी साधना, मेरा अनुराग, अनोखा है । मुझे गर्व है । मै परम सुखी हूँ । टीस के वे क्षण, ओह उनका स्वर्गिक आनन्द अकथनीय है । उनके लिए कोई भाषा नही है । भाषा की आवश्यकता भी नही है ।

और पान की छाली को कट करता हुआ कीर्ति बाहर, बरामदे मे आया । प्रमोद के हाथ मे कई कागज लिपटे देख बोला, "कहो भैया जी, क्यो कोई अदालती दस्तावेज है ।"

"नही ।"

"तो गुम-सुम कैसे बैठे हो ? कुछ बताओ ।"

"एक पत्र है ।"

"क्या आ गया, जिओ । चलो शकुन विचार कर बरामदे मे आया था । ज़रा हम भी तो देखे ।" और प्रमोद के 'हॉ-न' करने के पहले कीर्ति ने धीरे से पत्र सरका कर अपने हाथ मे ले लिया । बाऍ हाथ मे पत्र

लेकर उसने पढना आरम्भ किया और दाहिने हाथ से जैसे मूछों पर ताव देता जाता हो। बार-बार वह अपने हाथ को गालो और ऊपर के होठ एव ठोढी पर फेरने लगा। शीघ्र ही उसने पत्र समाप्त कर लिया और एक दृष्टि सामने की ओर फेक कर दूसरी ही दृष्टि मे प्रमोद को देखता हुआ बोला, 'गुरु' पत्र तो आ गया। लेकिन श्रीमान् जी, देखा आपने, इंग्लैण्ड से आया है पत्र। जैसे सारी अकल खोल कर रखदी हो। क्या भिगो-भिगो कर भेजे है उसने लिफाफे मे बन्द करके...। मानता हूँ, शेर मानता हूँ। विचारो मे तीव्रता है। दुनिया को पढ़ने का उसका अपना एक तरीका है। वाह, क्या लिखा है ? क्या मेल खा रही है मुझ से उसकी बाते। मरो, जी भर कर मरो। लेकिन तरीके से मरो। भेजे वाले आदमी की तरह मरो। जी कर मरो। यह क्या ? श्वानवृत्ति अपनाए हैं और उन्हीं की श्रेणी मे मर भी रहे है, उसी की भाति रेल की पटरी के नीचे, कही बस के पास, सडक पर आँते निकली, मुँह अलग .. और दिल-फेंक मरने वाले, माफ करना मै तुम्हारी बात नही कहता, उसी तरह मरते है, रेल के पार, बस के पास, सडक के किनारे, कालेज के ऊपर, स्कूलो के नीचे, अरे क्या कहूँ, जहाँ देखो वहाँ मनचले जो ठहरे।

उसे तो अवसर चाहिए। वह कहता गया। "और हमारी बहन जी के जीजा जी के भैया जी, और बगल के मकान जी के बहन जी के भैया जी के सुनहली बाल, और गाँव से आए थे उल्लू के पट्ठे पढने, पैसे से जले तग और अब दिल से जले तग, और मन बडा कोमल होता है : एक दिन कालेज से आते वक्त किन्हीं जीजी जी को छेड गए थे एक दिलदार और अब उनकी आखे उन्ही को खोज रही है, अब जान दे देगी। इनकी सुनिए, कितनी जल्दी अन्दर का मन बोलने लगता है, जैसे पहाडी तोता, और हमारी छठी, सातवी, आठवी बहन जी, जिनके बगले पर वे आया करते थे, कार लेकर, संगीत की ध्वनि मे कहते फिरते हैं, हम दोनो तबाह हैं...और वे उस दिन जज साहब की बुआ के लडके

के साथ जा रही थी, जिल्लो बेगम, मुल्ला जी के कहने पर, तब से उन का पता ही नहीं है। जज साहब के लडके अब भी शान से घूम रहे है, सडको पर। नया तमाशा, माँ-बाप चिल्ला-पीट कर रह गए। और वे देवी जी थी रुपहली और सुन्दर तो क्या हुआ, डाक्टर भद्दा और काला ही सही, बैंक-बैलैंस तो था, नई कार तो थी, थे पाच बच्चे और पहली बीवी तो क्या हुआ, कलकत्ते की सैर तो हुई, अखबारो मे नाम तो छपा, और दुनिया मरती काहे के लिए है। तो ये सब रात-दिन के किस्से और यह हिन्दुस्तान, बडे-छोटे घरो की बाते। मै कहता हूँ, किशोर मजूमदार बिलकुल ठीक कह रहे थे। आज चारो ओर रोटी-कपडे से बडी समस्या इन दिल फेकने वालो ने पैदा कर रक्खी है। हर घर, हर माँ, हर बाप, हर भाई, हर पति और हर पत्नी इस से तबाह है, मरा जा रहा है, घुल-घुल कर। और लोग कहते है, उन्हे दूसरे मारे डालते हैं।

"और प्रतिमा ने भी क्या लिखा है? सचमुच उसकी ऐसी लडकी, उसको उस कतार मे खडा होना, एक अभिशाप हो जाएगा। और उस का लहराता पल्लू अभी कहीं उलझा नहीं, उसने कहो उलझने नहीं दिया। यह एक बात है। जीवन को परखने, समझने की एक विशेष गति, और अनुभव के बाद पल्लू उलझे चाहे, साडी। ठीक है, उलझे।"

"तो, क्या पत्र पाकर आप बडे प्रसन्न है, आप को कुछ सन्तोष मिला, इतने के बाद। आपका कोई काम बना।" प्रमोद एक व्यग्य करते हुए कीर्ति से कहने लगा

"जी हा, मेरा काम पूरा है। और प्रमोद इन तमाम बातो मे तुम्हे बुरा मानने की कोई बात नही। न मै तुम्हारी किसी बात को लेकर इस प्रकार कह ही रहा हूँ। तुम्हारी एक श्रेणी है। तुम्हारा अपना एक दृष्टि-कोण है, सब से भिन्न। सब परिस्थितियो और ऐसे उदाहरणो से भिन्न। तुम्हारी अपनी एक अलग मान्यता है और एक विशेप आदर्श की बात है। हँसी की बात जाने दो। तुम मेरे इतने निकटतम मित्र हो। मै

तुम्हारी महानता का प्रशसक हूँ। उपासक। तुम्हारी मित्रता से मुझे गर्व है। कार्य-शैली मे भिन्नता और मतभेद हो सकता है, और है। मै तुम्हारे इस प्रसग मे भी इससे कुछ भिन्न परिस्थिति चाहता हूँ, यह दूसरी बात है। किन्तु तुम्हारा तप, तुम्हारी आराधना का एक आध्यात्मिक स्वरूप है मै मानता हूँ।

स्मरणं कीर्तिन विष्णो, स्तवन पाद सेवनं,
अर्चनं, वन्दन, दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्

मै मानता हूँ तुम्हारा वही रूप है। तुम्हारा यह रूप नही

स्मरण, कीर्तिन, केलि, प्रेक्षणं, गुह्य भाषणम्
सकल्पं, अध्यवसाय क्रिया - निष्पत्तिरेव च
एतद् मैथुनमष्टाग प्रवदन्ति मनीषणः।

और. मेरा आत्मविश्वास है कि तुम्हारा आराध्य तुम्हे मिलेगा।"

कीर्ति कहता गया, "प्रमोद, प्रतिमा की बुद्धि की प्रखरता और तुम्हारे तापस-जीवन का जब मिलन होगा तो एक चेतना आएगी। तुम मे ही नही, उससे सम्बन्धित समाज के अन्य लोगो मे भी।

"किन्तु, प्रमोद मेरी प्रार्थना है, मै हाथ जोड रहा हूँ, तुम अपने मन को स्वतः सतोष दो। तुम सोचो कि तुम्हे जीवित रहना है। तुम सोचो कि तुम्हे अपने लक्ष्य की पूर्ति करनी है। तुम सोचो कि तुम्हे प्रतिमा का साक्षात्कार अभीष्ट है, तो वह सब कुछ, वही सब होकर रहेगा। मानो तो। करके तो देखो। मै कहता हूँ, 'टी. बी' कुछ नही, मन की बिगडी अवस्था का एक विषम प्रतिफल है। मनःस्थिति के सुधरने पर लोग अच्छे होते, लोग चगे होते देखे जाते है, रात-दिन। हा, स्थिति का भली प्रकार अवलोकन कर विवेक पूर्वक गतिशील हुआ गया तो..।

अतिरेक मे वह और आगे कहता गया, "और प्रमोद, तुम मर जाते, निश्चय मर जाते परन्तु मैने बीडा उठाया है। मुझे वातावरण का सहयोग भी प्राप्त होता चला जा रहा है। ईश्वर चाहेगा, तुम स्वस्थ होगे। प्रमोद, तुम स्वयमेव चेष्टा करो, मन और शरीर से अच्छे हो लो। जिस दीपक की

जलन तुम्हारे मन मे है, उसका प्रकाश भी तुम्हे अवश्य ही देखना चाहिए और उसका प्रकाश सामने वाले पर पड चुका है। पत्र पढो। फिर पढो। देखो और समझो।" कीर्ति चुप हो गया। यही सब प्रतिक्रिया थी जो कीर्ति ने पत्र पढ लेने के पश्चात् प्रमोद पर व्यक्त की और स्वयं भी यह अनुभव किया कि जिस कार्य का उसने सकल्प लिया है, वह अवश्य पूर्ण होगा। वह सोच गया, काश! प्रमोद ठीक होकर प्रतिमा तक पहुच सके। अवश्य पहुँचेगा।

प्रमोद मौन था। वह सोच रहा था, कीर्ति के शब्दो मे—आत्म-हत्या की प्रवचना श्रेयस्कर नही। कभी नही। एक पल के लिए भी नही। तब, तब उसे ठीक होना चाहिए। तव निश्चित वह ठीक होगा। तब वह सोच रहा था, ठीक है, मन का साथ शरीर ने दिया तो वह चेष्टा करेगा। वह मन को समझाने का दुष्कर कार्य भी करेगा, ठीक होना है तो ठीक हो लू। जीवन भर योही रह कर यदि मै सासारिक थपेडे खाता रहा तो मेरी साध कौन छीन लेगा? मैं किसी को प्यार कर बैठा, कहने के लिए नही, दिखाने के लिए नही। आगे भी कर सकता हूँ। क्या दूर से नही? अवश्य, अवश्य। जी कर भी श्वास के साथ, एकनिष्ठ-आराधना मे रत रहूँगा। तब मुझे कौन रोकेगा? इसी भाति तब भी, जीवन-सागर मे डूब-उतर कर भी मेरा-रोम, रक्त एक-एक बू द, मेरा मन, तन, शिराएँ, धमनिया, मेरा वातावरण सब कुछ वैसा ही बना रह सकता है। मै जीने की चेष्टा करूँगा। यदि जी सका।

साथ ही वह सोच रहा था, इस पत्र की पृष्ठभूमि मे उसे अच्छी प्रकार से झकझोरा गया है। तभी वह वह उठा, "कीर्ति, मै चेष्टा करू गा, मैं अच्छा होना चाहूँगा।

●

: २१ :

बेट-टी के लिए क्रमशः दो बैरो ने कामिनी और उसके साथ वाले कमरे के द्वारो को खटखटाया। पहले कामिनी के कमरे का द्वार खुला और एक नई उम्र के बैरे ने ट्रे के साथ उसके कमरे मे प्रवेश किया।

कामिनी ने अपनी धोती के पल्ले को कन्धे पर सभालते हुए उस बैरा से पूछा "क्यो, आज बुड्ढे बाबा कहाँ है, क्या नाम है उनका?"

"नन्हे, हुजूर। वो पास के कमरे मे चाय देने गए है।" बैरा ने ऊपर से नीचे तक अपनी पैनी नजर से कामिनी को देखते हुए कहा।

कामिनी के बाल बिखरे हुए थे। उर्नादी आँखो के ऊपर भी एक-दो अलके आ पडी थी। हाथ से पीछे के बालो और आँखो के ऊपर की अलको को सभालते हुए कामिनी ने ट्रे के ऊपर का कपडा उघाड़ा।

बैरा लकडी की सीढियो पर खटखट करता नीचे उतर गया।

कामिनी को ध्यान आ रहा था, कल ही पास के कमरे मे कुछ लोग आकर ठहरे है।

जयन्त ने अपने धारीदार नीले रग के नाइट सूट को सभालते हुए अपने कमरे का दरवाजा खोला। बुड्ढे बैरा ने धीरे से अन्दर प्रवेश किया और मेज पर ट्रे लेजाकर जमा दी। और मेज के निकट ही एक क्षण रुक कर उसने सहज भाव से एक दृष्टि कमरे मे दौड़ा ली। कमरे

की दो दीवारो से मिले पृथक्-पृथक् पडे दो पलग। एक पलग का लिहाफ उठा हुआ था, कुछ सरक कर नीचे जा पडा था।

दूसरे पलग पर कुलबुलाहट मे कोई दबा-ढका पडा था। सर के बाद माथे से लिहाफ ओढा हुआ था तथा बाल तकिए के पीछे को फैले हुए थे। चमकती हुई बलखाती काली लटे, सर के अतिरिक्त अगल-बगल भी दो तीन तकिये लगे दिख रहे थे। जिनका कुछ भाग लिहाफ से ढका था और उनके सफेद गिलाफो का कुछ भाग बाहर दिख रहा था। लिहाफ पर लाल, खून के रंग का एक मखमली कम्बल सर के नीचे से ओढा हुआ था।

निकट ड्रेसिग टेबल पर कुछ सामग्री, श्रृंगार के आधुनिक उपादान सजा कर रक्खे हुए थे। कघा, ब्रुश, तेल की कटग्लास की एक सुन्दर शीशी, एक सैंट की शीशी. जिसका ढक्कन खुला हुआ था और निकट ही वैसलीन की एक शीशी खुली रखी हुई थी। सैलोलाइड पेपर का एक लिफाफा पतला-सा मुड़ा हुआ ड्रेसिग टेबिल और पलंग के निकट पडा हुआ था।

जयन्त ने कमरे मे बीच की मेज के आसपास पडी कुर्सियो मे से एक पर बैठते हुऐ बैरा से प्रश्न किया, "कहो जी बडे साहब 'चाइनापीक' यहा से कितनी दूर है और कैसे-कैसे जाना पडता है? किस समय जाना चाहिए?"

कधे के तोलिए को सभालते हुए बैरा ने उत्तर दिया, "साहब, नैनीताल तो घूमने की जगह है। दिन भर घूमिए, रात भर घूमिए। और 'चाइना-पीक' की क्या बात है? अब्र न होने पर लोग जाते है। अभी तो बादल घिरे हुए है। कुछ देर मे अगर धूप निकल आए तो चले जाइएगा। तब, 'आहा, देखिएगा वे चादी के टुकडे। कोहरे में वहा कुछ दिखाई नही देता। जाना बिल्कुल बेकार है। और उसने अपना तौलिया दुबारा संभाल लिया।

बाहर जाते हुए बैरे से जयन्त ने कहा, "दरवाजा बन्द करते जाना, बडे साहब ।"

"निवे, उठो, देखो चाय रक्खी है" कुछ उत्तर न पाकर जयन्त कुर्सी से उठा और सिमटी निवेदिता को ऊपर से गुदगुदाते हुए बोला, "उठिए, चाय.. " कुलबुलाहट के बीच जयन्त ने पीछे पडे केशो के गुच्छो को निवेदिता के गालो पर फेरना प्रारम्भ किया ।

अपने दोनो हाथो की दो उंगलियो को अपनी मुँदी पलको पर फेरते निवेदिता उठ बैठी और अपनी ग्रीवा को तनिक टेढा करके, अपने नेत्रो की कोरो को और थोडा चौडा करके बोली, "यह सुबह-सुबह परेशान करने की बात तो वडी प्यारी है । आपको मजा आ रहा होगा । चलिए, हटिये । मिमच्चिवम, शरारती कहीं के ।"

जयन्त मुसकराहट विखेरता हुआ कुर्सी पर आ बैठा और हँसते हुए कहने लगा, "अच्छा उठो, चाय से थकान मिट जाएगी ।"

और अपने को ऊपर से नीचे तक सभालते हुए निवेदिता पलंग से उठी और धम्म से जयन्त के निकट की दूसरी कुर्सी पर आ बैठी ।

चाय का प्याला बनाकर जयन्त ने निवेदिता की ओर बढा दिया । प्याला सामने आते ही चार आखे सामने आ गई और उनकी काली पुतलिया थिरकने के स्थान पर स्थिर हो गई । सकारण इस नेत्रोन्मीलन मे एक मौन था और था एक हास्य । निवेदिता ने तत्क्षण अपनी दृष्टि हँसकर सामने से हटाली और प्याला हाथ मे लेकर अपने नेत्र उसने मेज के पाए पर गडा दिए ।

जयन्त चाय की चुसकिया लेने लगा ।

"बाबा २६ नम्बर का माल तो तगडा है ।"

"चुप बे बेहूदे । क्या बकता है ?"

"देखो, रामसिह, ये नन्हे खलीफा हर वक्त बिगड़े रहते हैं। आपस

मैं बात करना भी गुनाह है। मैं कुछ अपनी तरफ से कह रहा था। कल तुम्हारे ही सामने वो ११ नम्बर वाले कुवर साहब नही कह रहे थे। और रामसिंह, ये नन्हे खलीफा, यह भी कहेगे कि मैने उनसे कहा होगा। यह इनकी हमेशा की आदत है।"

"देख बे दीना के बच्चे, मुझे रामसिंह की गवाही की जरूरत नही। मेरे मुँह न लगना। और यह भी बताए देता हू। २६ नंबर पर कोई हरवा न कर बैठना। मै तेरी हरकते अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे ख्याल नहीं रहा जो सुबह तुझे वहा चाय लेकर भेज दिया। देख, फिर कहे देता हूँ। वह सताई है बेचारी। और मेरी लडकी के बराबर है।" त्योरिया चढ़ाते हुए नन्हे खलीफा ने एक ताडना दी।

"खलीफा, यकीन मानो, मै नहीं कह रहा। वो कुवर साहब,...... फिर अपना क्या है? अपने को तो मालामाल किए हैं। और कोई न कोई माई का लाल अपने को तो मिलता ही रहता है।" एक शरारत भरी नजर रामसिह के ऊपर फेकता हुआ दीना बोला।

"तेरी हरकते सुन-सुनकर, मालकिन पक गई है। किसी दिन टिकट कटने ही वाला है। फिर नैनीताल में तो है नही इतनी मौज का होटल, जहा तेरी गुलछर्रेबाजी चल जाएगी। लेकिन इस मामले में फिर सुन ले। कोई बदतमीजी होनी नही चाहिए। और कुवर से क्या कहूँ? कैसी दुनिया है? हमारा तो काम ही बुरा है वर्ना ऐसे आतताइयो को तो......... ।"

और भी होटल के कई बैरे पास ही बैठे सुन रहे थे। दीना इस मीटिंग से बिगडता हुआ उठकर चला गया।

आज कामिनी ने सोचा, वह दिनभर कही बाहर नही जाएगी। योही चुपचाप अपने बेडिंग पर वह लेटी रही। कभी बनारस की याद आई और कभी जयन्त की स्मृति हरी हो आई और कभी निवेदिता के मिलन-

व्यापारो की कल्पना वह अपने मस्तिष्क मे उतारती रही।

ट्रक मे अनेक इगलिश और हिन्दी की पुस्तके, उपन्यास, कुछ अंग्रेजी की मैगजीन्स और हिन्दी की कुछ पत्रिकाएँ उसने रख छोडी थी। उन्ही मे से कुछ निकालकर उसने पलग पर सिरहाने रखली। तभी कभी वह किसी को उठाती और किसी को रख देती। डाइजेस्ट की एक कहानी उसने पढना चाही। दो पेज पढने के पश्चात् उसने उसको भी बन्द करके किनारे पटक दिया।

६ बज चुके थे। ठडी धूप चारो ओर फैल रही थी। सुबह का कोहरा मिट चुका था। ब्रेकफास्ट—नाश्ता लेकर बुड्ढे बैरा ने कामिनी के कमरे मे प्रवेश किया। वैसे आज जानबूझ कर दीना ने २६ नं० में ड्यूटी अपनी लगवा ली थी। किन्तु बुड्ढा उसकी हरकते समझता जा रहा था। अत. सिगल ट्रे उसने ली और डबल ट्रे दीना को टिकाते हुए कहा, "जाओ, २५ नम्बर मे पहुँचो और यह रजिस्टर भी लेते जाओ।"

दीना कुढ कर २५ नम्बर मे गया। नन्हे खलीफा २६ नम्बर मे गए। कामिनी उसी प्रकार पलग पर कोहनी के बल लेटी हुई थी।

बाबा को आता देख कामिनी ने कहा, "बाबा, सुबह कहाँ रहे।"

"यहीं रहा, बगल के कमरे मे। हम लोगो को तो सभी तरफ देखना पडता है। और हम लोगो की जिन्दगी है ही क्या? अपनी आँखो से दुनिया का भला-बुरा देखते है। सुनहले दिन भी देखे है और अब ये दिन भी देखने पड रहे है।"

कामिनी ने उसकी इन अनेक बातो पर ध्यान न देकर कहा, "अच्छा, मै इस समय सिर्फ चाय लूँगी। और चीजे वापस ले जाओ।"

बाथरूम मे फेनक से धुली कामिनी की त्वचा मे एक विशेष दीप्ति, एक विशेष आकर्षण उत्पन्न हो गया था। उसके तन से एक भीनी सुवास आ रही थी जो कमरे को सुरभित किए हुए थी।। श्वेतांग पर वेष्टित धवल-वेश सौन्दर्य की श्रीवृद्धि कर रहा था। किन्तु उसके उस प्रखर-

लावण्य का मान करने को दिशाएँ सूनी थी ।

बाबा की उलझन से पृथक् वह कुछ विचार मे ही थी कि दीना ने कमरे मे प्रवेश किया । । उसके हाथ मे काली जिल्द का एक मोटा-सा रजिस्टर था ।

दीना को देखकर बाबा बोले, "हाँ, बिटिया, इसमे अपना नाम-पता लिख दो ।"

"क्यो ?"

"कायदा, यहाँ का क्या, सब जगह का ।"

"और अगर मै न लिखूँ ।"

"लिखना तो पडेगा ही ।" बीच ही मे दीना आँखे चलाता हुआ बोल पडा ।

कामिनी ने दोहराया, "लिखना तो पडेगा," पुनः उत्तेजित होकर उसने तीव्र स्वर मे कहा, "निकल जाओ यहाँ से, मै नही लिखती ।" दीना सकपका गया । बुड्ढे बैरा ने रजिस्टर अपने हाथ मे ले लिया । और दीना को डपट कर कहा, "बेवकूफ कही का, चल यहाँ से ।"

दीना आँखे तरेरता बाहर चला गया । दीना के बाहर जाने पर बैरा ने धीरे से कहा, "बेटी, वह तो उल्लू है । तुम लिख दो ।" और रजिस्टर कामिनी के सामने रख दिया ।

सामने मेज़ पर रक्खे पैन की ओर संकेत करते हुए कामिनी ने कहा, "बाबा, सामने से कलम उठाओ ।"

कामिनी ने रजिस्टर खोला और अपना विवरण लिख दिया । लिखने के तुरन्त पश्चात् जब उसकी दृष्टि अपने से ऊपर के नाम पर गई तो वह स्थिर हो गई । उसने और सभल कर पढा, 'जयन्त कुमार ।' चौक कर उसने आगे पढ़ा । 'साथ मे' के खाने मे लिखा था, 'निवेदिता'; तब आगे का सब कुछ उसे पुता-पुता, काला-काला दिखा । वह जैसे अचेत हो गई । रजिस्टर उसके हाथ से छूट गया ।

बैरा ने रजिस्टर उठाते हुए पूछा, "लिख दिया ?" तब कोई उत्तर

न पाकर बैरा धीरे से बाहर जाने लगा। कामिनी ने चीख कर कहा, "चाय ले जाओ।"

बैरा ने एक क्षण सोचा, एकाएक रजिस्टर देख कर क्या हो गया? किन्तु चुपचाप मेज के निकट खडे होकर उसने कहा, "क्या बात है, बेटी, खाली चाय पी लो।"

"बाबा, वहम न करो, ले जाओ।"

"अच्छा जरा-सा दलिया खालो, सुबह का निवाला है, बेटी।"

"चुप रहो, मैं कहती हूँ ले जाओ।" बैरा यों ही ट्रे लेकर बाहर हो गया।

और 'जयन्त-निवेदिता' मेरे निकट, बगल के कमरे में, कल से। ओह जयन्त! ओह निवेदिता! और, और मैं, मैं।

और नारी का विद्रोह महाभयंकर होता है। तडप कर अपने विरोधी को मसल डालने के लिए दण्ड-नीति और विभिन्न प्रयोगों द्वारा वह अपने बदले की भावना की तुष्टि करती है। अनेक रोमाँचकारी और वीभत्स उदाहरण नित्य देखने और सुनने को मिलते है। पाप, झूठ, चोरी, अपमान, हत्या और अनगिनत अनैतिक व्यवहार उस पश्चात्ताप की वीभत्स प्रतिक्रियाएँ है, जो नारी-द्रोह, प्रतिद्वंद्विता और क्रोध के फल स्वरूप दिन प्रतिदिन, हजार वर्ष पूर्व और आज भी, चाहे राज्य बदले हों, चाहे इतिहास बदले हों, चाहे समाज अथवा मनुष्य बदले हों, चाहे असभ्यता और सभ्यता की चरम सीमा ही मानव ने क्यों न प्राप्त करली हो, प्रकट-अप्रकट रूप मे सामने आती है? यहाँ नारी अडिग है, अटल।

और उसी नारी की सात्विकता, उसका प्रेम, उसका अमर-त्याग, और जब उसका बलिदान जगता है तब वहाँ वह मूक सहती है, सब कुछ सजग, सुदृढ़ और मौन, सब कुछ जान कर भी अनजान। उसके इस स्वरूप की झाकी भी स्पष्ट है, प्रतिपल सर्वत्र। तब प्रताडित होकर वह अपमान, दम्भ, अन्याय सब कुछ सहन करती चली जाती है जीवन

के अन्तिम श्वास तक। अनेक ऐसे प्रसगो और अवसरो पर, जहा पुरुष विचलित हो जाता है, वहा नारी शिला की भाति अटल रहती है। और इस महान् आदर्श पर उसे सदा अपनी बलि ही देनी पडती है।

और पुरुष कहा नारी से मात खाता है। कब, क्यो और कैसे वह स्मृतियो का ताज पहन कर, तडप-तडप कर कभी किसी के प्रति सहानुभूति, समवेदना अथवा स्नेह से आप्लावित हो उठता है, कभी दम्भ, द्रोह, अपमान, ईर्ष्या और द्वेष पाकर, ग्लानि, दुःख व संताप का अनुभव करके चीत्कार कर उठता है? कब अकारण या सकारण बन्धनो मे जकड कर, असहायावस्था मे दोषो की छत्रछाया मे यह कभी उपालम्भ, कभी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, कभी विच्छृंखलता, और कब वेदना और उद्वेलन सहता है। कब एकनिष्ठा मे उसे अपने जीवन को होम करना पडता है? इसके लिए एक शब्द का उत्तर नही, एक वाक्य का उत्तर नही, एक ग्रन्थ का उत्तर नही।

ये कुछ ऐसी बाते है जो जन्मजात है, मनुष्य की छाया के साथ बडी-बडी समस्याएँ और कही छोटी से बढकर बन जाती है, विषम, भयानक, मनुष्य की विवेक-शक्ति के परे हो जाता है उन सबका निराकरण। तब कोई कला नही चलती। वे थीं हजार साल पहले और आज भी। किसी ने कोई हल निकाल भी नही पाया। वे सब आज भी वैसे ही बनी हैं। शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का इन अन्तर्मन की गुत्थियो पर कही कोई प्रभाव भी पडता है, यह आज स्पष्ट करने के पूर्व विचार-शक्ति को मथना होगा। बाह्य जगत की समस्याएँ, रोटी-कपडे की भीषण पुकार, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, शिक्षा-दीक्षा, अधिकारो का युद्ध, वैयक्तिक, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय रूप लेकर नित्य संभलती, नित्य बिगडती है। तभी नए आविष्कार, नवीन योजनाएँ और नए उपक्रम होते है। वे नित नए हैं। नित प्राचीन। इनके लिए न्यायालय है, बडी-बडी सरकारे, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएँ। जिन सबका सम्बन्ध प्रत्यक्ष

अथवा अप्रत्यक्ष रूप से केवल मानव से है, उनका प्रभाव केवल मनुष्य के लिए है, किसी अन्य के लिए नहीं।

परन्तु मानव की अन्य समस्याएँ, वैयक्तिक समस्याएँ, मन और मस्तिष्क की समस्याएँ, जिनमे पिसता मानव, उनका कोई हल नहीं, कोई समाधान नहीं। क्या इसके लिए धर्म और देवताओ के ही नियम केवल युक्ति संगत है, सर्वथा एक से, सर्वथा अनिवार्य !

कुछ देर पूर्व ही कामिनी ने एक पत्रिका के एक लेख मे उपरोक्त कुछ वाक्य पढ़े थे। उन पर वह कुछ विचार करना चाह रही थी। किन्तु इस समय सब समाप्त था, सब नष्ट।

इस समय कामिनी का मन हाहाकार कर रहा था। आज उसकी दीवार से मिले कमरे मे जयन्त केलिरत है, किन्तु ...निवेदिता के साथ। एक दिन था, जयन्त बनारस मे उसी भाति उसके साथ क्रीडारत रहता था। और वही जयन्त है, वही मै हू। किन्तु हा, मन जब डोल चुका है तब, तब सोचना व्यर्थ है। वह निकट है, हुआ करे। उससे क्या ? वह न बाहर निकलेगी, न उसे ज्ञात हो पाएगा कि मै यहा हूँ।

किन्तु वह पुनः सोचे विना न रह सकी—तब निवेदिता कैसी लड़की है। वह कुलीन है अथवा नहीं। वह यो अकेले यहाँ आ कैसे पाई ! कही जयन्त, उसका जयन्त किसी चिन्त्य स्त्री के चक्कर मे तो नहीं है। पर हो, इससे भी उसे क्या ?

सब अपने से सोचते है, सबका अपना दृष्टिकोण है। कोई अहितकर वस्तु किसी के लिए घातक है, पाप है। वही किसी के लिए सुखद और है सत्य। तब समाज, सभ्यता और सस्कृति की दुहाई सामने आती है। पर क्यो आती है ? कही प्यार है, कही धिक्कार है। मनुष्य प्रकृति है। उसे रोक कौन सकता है ? कही पाप-पुण्य की परिभाषा मे मन्थन होने के पश्चात् विष और अमृत का उद्भव होता है। कही एषणा और कहीं

घृणा, कहीं व्रीडा और स्पष्ट निर्लज्जता। कहीं अवस्था न विरोध की है, न स्नेह की। सभी ओर समस्याओं, संस्कारों और मान्यताओं मे जकडा है आज सारा मानव-समाज।

कामिनी ने उठकर अपने कमरे के द्वार को अन्दर से बन्द करके चटखनी लगा ली।

तभी उसे ध्वनि आई, निकट का कमरा बन्द हो रहा है और जयन्त तथा निवेदिता अवश्य कहीं बाहर जा रहे है।

●

: २२ :

हिमाच्छादित, शुभ्र ज्योत्स्ना से चतुर्दिक आप्लाविता, श्वेत भूपा से वेष्टित वे उपत्यकाएँ, वे हिमशिखर और उन पर अंशुमाली की थिरक-थिरक कर पडने वाली रक्ताभ रश्मिया, निरभ्र नीलाकाश से बाल रवि की चमकती-डोलती किरणे वह श्वेत सागर, वे रजत जैसे शिलाखड जैसे हीरक मणि, वैक्रान्त और पुखराज के ऊचे-ऊचे ढेर सामने लगे हो, जैसे मोतियो की दीप्ति से निकटवर्ती शिखर आह्लादित हो, जैसे हीरक, वैक्रान्त, पुखराज और मोती के बडे से बडे नग सामने एकत्र हो, सामने छितरे हो। तब उन्हे देखकर मन मचल उठता है, उडकर दौडकर, वायुयान से, पैराशूट से, किसी भी भाति 'चाइना पीक' से दिखाई देने वाले दूरस्थ उन हिलते-डुलते, पर्वताकार श्वेत हिमखडो तक की दूरी समेट कर वहा पहुचने, वहा किलोले करने के लिए।

कल्पनालोक का मु दे-खुले पलको मे वह सुखद-स्वप्न, इच्छा बलवती हो उठती है, सामने कोई शैलबाला, कोई प्रेयसी, कोई रूपसी थिरक उठे, वह शुभ्र-वसना वहा नृत्य करे, कैसा भी नृत्य, मोहक नृत्य : कथाकली, कत्थक, मणीपुरी संथाली, राजस्थानी। और नृत्य की कैसी भी भगिमा, उसका कोई भी स्वरूप हो। और तब पायल की रुन-झुन, और घु घरू की झकार से गु जरित हो उठने वाला वातावरण, तब पवन भी नाच उठे, पर्वत भी नाच उठे।

अथवा नन्हे-मुन्ने-बालक छोड दिये जाएँ, उन्ही रूई जैसे हिम के गोलो पर, ऊपर से बरस रहा हो रिमझिम-हिम, बालक दसो, बीसो, पचीसो और उनको दी जाए एक भूमडल-सी वडी गेद, तब वह प्रखर कल्पना, उनका वह कन्दुक-कौतुक, छोटे-मोटे हाथ-पैरो की दौड-भाग, उछल-कूद, किलोले, किलकारिया ।

इन्ही सुस्मृतियो और सुखानुभूतियो मे लिपटे दर्शक, यात्री, कवि, कथाकार, गायक, कलाकार, देशी, विदेशी, कोमलागियाँ, सुरूपा, उठते-युवक, उतनी ऊँचाई तक जाकर थकन को भूलने वाले चचल बालक, कोई अपनी दूरवीनो को समेटते, कोई और दूर फेकते, रुकने और लौट पडने का उपक्रम करते है । उन रत्नमडित पर्वतमालाओ को 'चाइना पीक' से देखकर । वही कोई उचकते है, और ऊचे, यह कह कर 'यहा से चीन दिखाई देता है ।' उन्ही मे कोई कहता है, 'नही, वे चपटी नाक वाले चीनी यहा सबसे पहले चढे थे, तब इसका नाम उन्ही ने 'चाइना-पीक' रखा है ।' तभी वही खुल जाते है किन्ही के टिफनदान, खुल जाते है किन्ही के दस्तरख्वान, गपशप, हंसी-मजाक, प्यार ।

और कुछ लौट पडते है, दौडते हुए, ढलवाँ पगडडी पर जल्दी-जल्दी उतरते हुए, घर पहुँच कर, बगले जाकर, थकन से चूर, तान कर सोने के लिये । वही उन्हे नीद मे दिखाई देता है वही सब कुछ, मीठे-स्वप्नो मे वही मोतियो के पहाड, हीरे की खाने, पुखराज के शिखर, चाँदी के डोलते पहाड और रजत, मुक्ता, हीरक, पुखराज का मिलाजुला तरल सागर, चट्टान और लहरे ।

और दर्शनार्थियो मे होते है, दम्पति, युगल प्रेमी, तरुणियाँ, हरे, पीले, नीले, लाल, गुलाबी, बादामी, स्लेटी, शरबती, नारगी, फालसई, रगो और 'पिक कलर' मे खिली, उभरी, इठलाती-उडती तितलियाँ, और टाई, हैट, सूट, काले, भूरे, बादामी, नीले, चाकलेट और ग्रे कपडो मे लिपटे, ओवरकोट और चादरे लपेटे, कोई स्कूल के प्रोफेसर ओवरकोट-पेट पर ऊपर से कम्बल चढ़ाए, कोई कलाकार, कवि या चित्रकार

कुरते-सदरी मे ही ठिठुरते उस हिमगिरि से आने वाली शीत-मन्द मलय की भीनी फुहार मे अथवा कभी तेज उडा ले जाने वाली झनझनाती-हवा मे ।

कभी दोपहर का ठडा-गरम मौसम, हिमावगुण्ठित शिलाखण्डो को छूकर आने वाली मन्द-वायु और कभी सूर्य के उत्ताप से तपित श्यामल पर्वत-मालाओ को पार करती हुई गरम हवा का मिला-जुला वातावरण कितना प्रिय होता है, कितना मनोरम ।

निवेदिता और जयन्त चल दिए 'चाइनापीक' छूने । वातावरण स्वच्छ था । प्रातःकालीन कोहरा समाप्त हो चुका था । मीठी धूप के प्रकाश से चारो ओर चहल-पहल थी । और नैनीताल को चारो ओर से घेरे खडे ऊँचे-ऊँचे पहाड चमक रहे थे । प्रकाश मे ऊँची चट्टाने और उनका पडता प्रतिबिम्ब, उस ताल की लहरो मे भला लग रहा था । सामने कई पर्वत, कई चट्टाने, स्वच्छ, दिखते-दिखते आई एक लहर और वह प्रतिबिम्ब मिट गया । तब पुनः वह धुँधला प्रतिबिम्ब स्पष्ट होते-होते दूसरी लहर आई और तब वह और अधिक धुँधला बन गया और यही मन का भी क्रम है । न मालूम क्षण-प्रतिक्षण कितने प्रतिबिम्ब आते, कितने मिटते है । कितने विचार आते और समाप्त होते है। जीवन मे कितने प्रसग आते और लहराते चले जाते है । उस समय की उन चट्टानो और लहरो की भाति कितने साम्य स्थापित होते और विलीन होते है । चट्टाने स्थिर है । मस्तिष्क भी स्थिर है । किन्तु हृदय, वह कब स्थिर ? वह तो लहराएगा, वह तो डोलेगा । और जहा ऊपर का, जहा वायु का झकोरा नही आता, वहा प्रतिबिम्ब स्थिर है । वहा चित्र स्पष्ट है । वहा मन स्थिर है । यह क्रम है चट्टान और लहरो का, यह क्रम है मस्तिष्क और हृदय का ।

निवेदिता और जयन्त, उनके प्रणय का अरुणोदय, और नैनीताल के स्वच्छ आकाश मे स्निग्ध प्रभात, तभी एक प्रेयसी, एक प्रिय, चल पड़े उस चढाई पर, जैसे जीवन की चढाई वहाँ से प्रारम्भ हुई हो । और वह

ककरीली-पथरीली पगडडी जैसे जीवन की ही कटकाकीर्ण पगडंडी हो। उस पर चलते, थकते, बैठते, फिर चलते जैसे जीवन-क्रम का भी वही रूप हो। उनके ऊपर सूर्य तप रहा था, जल रहा था, जैसे उन पर कोई और तप रहा हो, जल रहा हो। सबको पार करते, सबको पीछे छोडते बढ़े चले वे आगे, जैसे वही उनको, सबको अभीष्ट हो।

मार्ग मे कई छोटी-बडी पहाडी दुकाने मिली, छितरी हुई और उनमे वही, जनरल मर्केण्डाइज : स्फुट सामग्री। चढते-चढते उस छः हजार फीट ऊँचाई पर जयन्त को प्यास लग आई। जयन्त व निवेदिता एक दुकान पर रुके। काच के दो गिलासो मे दोनो ने जल पिया। निवेदिता ने जयन्त की प्यास मे उस समय साथ दिया और दोनो पुनः आगे चल पडे। निवेदिता ने कहा, "पास के ही किसी पहाडी झरने का शीतल जल कितना मीठा था।"

"प्रकृति मीठी है, सदैव।" और जयन्त निवेदिता की ओर झुक गया।

निवेदिता ने अपनी पतली उगली को सामने करते हुए कहा, "वह देखो।" और जयन्त ने देखा, सामने उस धूप मे भी उडता एक बादल का टुकड़ा सामने से निकला चला जा रहा था।

"प्रकृति" निवेदिता ने प्रसन्न होते हुए कहा।

"और तुम, तुम भी प्रकृति, प्राकृतिक नारी, कितना प्रिय, कितनी सुखद।"

निवेदिता की आज प्रथम-मिलन के दिवस वाली वेश-भूषा थी। शुभ्रवसन। उस दिन पापा के कन्धे पर टिका हाथ, आज जयन्त के कंधे पर टिका था। और उसी प्रकार जयन्त के कन्धे पर टिका एक सुन्दर हाथ। उस हाथ की कनिष्ठिका उंगली का नाखून अधिक बढा हुआ था, नेल-पालिश से सुर्ख रंगा हुआ था, एक परम सुन्दरी नवयौवना का सुगोल हाथ। बडी नशीली-रसीली उसकी आखे थीं, जिनकी काली पुतलिया क्षण-क्षण मे इधर-उधर घूम जाती थीं। काश्मीरी सफेद सेव पर छिटकी

लाली की भाति उसके कपोल थे भरे-भरे, चमकदार। ओठ जैसे उसने मीठे लाल रग मे रग लिए हो किन्तु रगे न होकर वे अपने वास्तविक मोहक रूप मे थे। कानो मे सितारो-सी जडी हीरे की छोटी-छोटी दो कीले वह पहने थी। उस सर्दी मे भी सफेद जार्जेट की साडी मे वह आगे बढ रही थी। साडी पर सफेद ऊनी चेस्टर जिसकी बाहो मे पुट्ठे पर दोनो ओर दो बडे-बडे फूल कढे थे, उसने पहन रखा था। अन्दर के ब्लाउज से उठते उरोजो के बीच मे से दो क्लिप चमक रहे थे। जयन्त के साथ वह धीरे-धीरे मचलती, थिरकती आगे बढ रही थी।

ऐसा जान पडता था, जैसे शुभ्रता से उसे विशेष स्नेह हो। साडी, चेस्टर और ब्लाउज,सब कुछ सफेद था। कानो मे चमकदार हीरे की कीले, वे भी श्वेत थीं। और चेस्टर के कालर पर टंकी अधखिली गुलाब की कली आज भी सफेद ही थी। जिसे चलते समय उसने होटल-हिमालिया के लान से लिया था। सफेद मोजो के रेशम पर कसी चप्पल आज भी कतई सफेद थी।

वेणी मे आज उसके रत्नजडित-जूडा शोभायमान था।

शुभ्रवदना, शुभ्रवसना लावण्यलतिका की भाति, पतली कटि पर ऊपर व नीचे का भार सभाले वह अपने मनोनीत प्रियतम के साथ आकर्षक गति से आगे बढ रही थी।

वे चलते, थकते, रुकते, चलते और फिर बैठ जाते। दूरी और, और आगे ऊँचाई, इसी प्रकार जयन्त और निवेदिता को चाइना-पीक का मोह आगे घसीटे लिए जा रहा था। वे बढ रहे थे अन्तिम लक्ष्यविन्दु तक पहुँच जाने की सुखानुभूति की लालसा लिए, उल्लसित मन से।

"सुनिए, मै थक गई हूँ। लौट चलिए।" पैरो को दाहिने हाथ से दाबते हुए निवेदिता कहने लगी।

"इतनी दूर आकर बीच मे लौट पडने की कैसी बात? लौटने मे भी उतनी ही दूरी है और गहरी थकान।" जयन्त ने बात को अन्योक्ति रूप देते हुए कह डाला और अपने हाथ से निवेदिता को संभालने

लगा, वैसे ही, जैसे साथी को मंजिल तक लाकर उसकी थकान मे अपना भी हिस्सा बटाना अनिवार्य हो ।

"आपको बढ़ते ही चले जाने मे आनन्द मिलता है, अध्यवसायी पुरुष ठहरे न ।"

"नारी के सहयोग के साथ। और आनन्द तुम्हे भी मिलता है, मिलना चाहिए ।"

तभी पास से दो पहाडी युवक, शिष्ट, मधुरभाषी, कन्धो पर दूरबीने लटकाए, सम्भवतः किसी कालेज के छात्र, जयन्त और निवेदिता पर एक दृष्टि डालते हुए आगे बढ़ गए ।

निवेदिता ने ऊपर की ओर दृष्टि दौडाई। सामने दूर तक पगडंडी मे कही पक्तिबद्ध, कही-दो तीन, पृथक्-पृथक् व्यक्ति, कही और आगे केवल दो-तीन बच्चे और कही केवल दो स्त्रिया, दर्शनार्थियो के रूप मे आगे बढ़ते चले जा रहे थे। अपनी स्वजातीय स्त्रियो को देख कर उसे बल मिला और वह उनका पथानुगमन करती बढती चली गई ।

इच्छा न होते हुए भी एक बार उसने पीछे घूम कर देखा। उससे केवल पचास गज नीचे एक जोडा—पति-पत्नी अथवा उसी की भाति प्रेयसी और प्रेमी—आगे बढते चले जा रहे थे। इससे भी उसे आगे बढ़ने को बल मिलता था। जीवन की चढ़ाई मे भी ऐसे संयोग और बढ़ावे मिलते है और वही मानव की गति है। तभी निवेदिता ने अपने बाएँ पैर की चप्पल टिका दी एक चट्टान के ऊपर, पैर को थोडा विश्राम देने के विचार से।

"काश, मै तुम्हे यहा गोद मे लेकर चढ़ सकता ।"

"काश, आप केवल बात बना सकते।" और निकट से ही बात सुनकर मुस्कराते हुए पीछे वाले वे ही युगल स्त्री-पुरुष आगे बढ़ गए । जयन्त और निवेदिता भी हँस पडे। मार्ग इस हास्य से कुछ सुगम प्रतीत हुआ और निवेदिता पुनः पग जमाती आगे बढने लगी।

जयन्त का पुरुषोचित सौन्दर्य, गले मे बंधी मन की भाति

लहराती चमकती रेशमी लाल टाई, उस पर उसका क्रीचदार ग्रे सूट, जिसके अन्दर से उभरते उसके चौडे पुट्ठे, लम्बी बाहे, जो हरदम लिपट जाने को आतुर रहती है, जो स्वय भी हिमावगुण्ठित नोकीले शिखरो की भाति बाधता है अवगुण्ठन, उसकी उन भुजाओ मे कस जाता है हिम-सदृश-श्वेत-वक्षस्थल, और उसकी बडी-बडी आखे, बडी पैनी, अन्दर तक बीधने वाली, और उसके पैर की भरी पिडलियाँ, किसी भी मंजिल को तय करने के लिए सदैव तत्पर और विजयोन्मादित ।

पास से निकल जाने वाली नारी ने पुनः-पुनः देखा जयन्त और निवेदिता को। और जब एक स्त्री दूसरी को देखती है, अपना रूप उसमे मिलाती है, अपनी वेशभूषा को उससे मापती है, कुछ सोचती है, कुछ व्यग्य, कुछ ईर्ष्या, अनेक दृष्टिकोण, विचित्र भाव से। निवेदिता ने उसे और उसने निवेदिता को अनेक रूपो मे, अनेक दृष्टियो से देखा। सौन्दर्य तो छिटका है सर्वत्र, कही अधिक, कही कम और एक से एक बढकर स्वरूप लिए वैसी ही मात्रा मे, जितनी मात्रा मे ससार मे कुरूपता फैली पडी है। सम्भव है यह रूप ही, नारी के ईर्ष्यालु मन को आखो तक ले आता हो, तब मस्तिष्क मे बनने-बिगडते अनेक दृष्टिकोण। तब वह सौन्दर्य के साथ वेशभूषा और आभूषणो के मापदड मे मन को तौलती है, अपने सामने की नारी को देखती है। यह सत्य है—एक निश्चित सत्य। और तब वह साथ के व्यक्ति को देखती है, वह सोचती है, उसके अपने से स्वस्थ, सुन्दर, मोहक नही, कभी यह भी कि उस का अपना भी स्वस्थ सुन्दर और मोहक है, उससे बलिष्ठ है। ऐसी-सी तुलना अनेक रूपो मे सामने आती है एक नारी के मन मे, जब वह अपने सामने किसी को बराबर मे देखती है ।

जयन्त और निवेदिता ने डग बढाए। तभी देखा नैनीताल, पीछे छूटा, नीचे छूटा। नैनीताल की स्फुट बस्ती, जैसे किसी चित्र मे 'ऐरोप्लेन व्यू' लिया गया हो। जैसे नीचे, बहुत नीचे, कोई नगर, कोई बस्ती, 'फ्राम ए बर्ड आई' और निवेदिता के नेत्रो मे झूमती ताल की

तरगे, सामने की हरियाली, श्यामल पर्वत-माला और वे पर्वतारोही जयन्त और निवेदिता।

ललचाई मजिल तै हो गई। तब वे प्रसन्न हुए 'चाइनापीक' पहुँच कर। तभी वे 'चाइनापीक' के छोटे से, एक ओर समतल मैदान पर आ गए। एक ओर चट्टाने, नीचे एक ओर खड्ड और नैनीताल, एक ओर नीचे से आने वाली पगडडी, और सामने एक ओर वही. ...... जयन्त तथा निवेदिता ने देखे, हीरे के पहाड, मोतियो के पहाड, चाँदी के पहाड, सूर्य की चमकती किरणे, ग्लैशियर से सरकते छोटे-बडे बरफ के टुकडे। दूर बहुत दूर, जैसे बरफ की चाँदनी बिछी हो, नृत्य की पूरी तैयारी हो और जैसे अभी आने को हो कोई स्वर्ग की किन्नरी और उसकी थिरकन,पायल की मृदुल झनकार अभी प्रारम्भ होने को हो और दर्शनार्थी पहले से ही मन्त्रमुग्ध खडे निहार रहे हो। निवेदिता देखती रही देर तक वही श्वेत, स्निग्ध, आभायुक्त मनोरम दृश्य, उसके अपने लोल-लोचन चमक उठे। उसकी शुभ्रता की प्यास और हरी हो गई। उस जगमगाती बर्फीली पहाडी को देख कर मानो उसे जयन्त ही शुभ्र-वसनो मे लपेट गया हो और आज भी वह उन्ही मे लिपटी हो। उसका श्वेत वक्षस्थल और फूल उठा उस प्राकृतिक छटा को निहार कर।

सौन्दर्य, प्रकृति की दिव्य छटा, जैसे बरस रहा हो। जैसे लदा पड रहा हो, चारो ओर और दर्शनार्थियो पर भी। और उस सुखानुभूति को पा कर, आँखो से जी भरकर पी रहा था स्निग्ध, शीतल और कान्तिमय लावण्य, निकट खडा जयन्त। कुतल-केशराशि के मध्य निवेदिता का शान्त सौम्य मुखमडल उससे वह तादात्म्य स्थापित कर रहा था, उस प्राकृतिक वैभव का, उस श्यामल पर्वत-राशि के मध्य सामने के सौम्य सागर का।

आँखे न चाह कर भी थक गई, पैर जैसे चूर हो गए। किन्तु सामने का दृश्य वैसा ही हिम की भाति जमता रहा।

पास ही एक छोटी चट्टान पर जयन्त और निवेदिता बैठ गए और

चतुर्दिक छितरी उस प्रकृति-नटी के मूक-नर्तन को मुग्ध-मन-प्राण लिए देखते रहे।

कामिनी का 'चाइना-पीक,' उसका नैनीताल उसी कमरे मे सीमित हो कर रह गया। निर्बल और निःसहाय वह अपने बैड से हिल सकने मे भी असमर्थता का अनुभव कर रही थी।

दोपहर का भोजन उसने बुड्ढे बैरा के अनेक बार अनुरोध करने पर भी नही किया। अन्त मे उसने केवल नन्हे खलीफा का मान रखने के लिए चावल की प्लेट दही से खा ली। एक पापड टूंगा और पानी पी लिया।

तभी बुड्ढा बैरा बोला, "बिटिया, बगल के कमरे के बाबू व उनके साथ की मेम साहब 'चाइना-पीक' देखने गए हैं। तुम मेरे साथ चलना, मैं तुम्हे किसी दिन दिखा लाऊगा।"

बैरा के पितृवत् सहज स्नेह से कामिनी द्रवित थी किन्तु उसके वाक्यो के अन्तरतम से निकलने वाली गूज उसे मृतप्राय बना रही थी। साथ ही वह यह भी सोचने लगी, इसी प्रकार बैरा मेरी बात निकट के अन्य कमरो मे भी कहता होगा अथवा निकट के उस कमरे मे भी अवश्य कही होगी या कहेगा। किन्तु वह कहेगा क्या? वह जनता भी क्या है? और कोई जानेगा भी क्या?

बैरा खाने की ट्रे लेकर वापस चला गया।

कामिनी का ध्यान 'चाइना-पीक' पर मडरा रहा था। 'चाइना-पीक' का कल्पना मे चित्राकन, निवेदिता और जयन्त वही गए है। किल्लोले करने। और पुनः वही ध्यान, वे यहा आए कैसे? और यह कि यो एकान्त-सेवन अनियमित है, समाज की दृष्टि मे पाप। और हॉ, वह भी इस प्रकार एकान्त-सेवन कर चुकी है। किन्तु वह उसकी बात थी। उसका स्वार्थ था। तब उसने सोचा, क्यो न वह यो किसी बस से चुपचाप बनारस निकल जाए? किन्तु रिक्शे मे बैठते ही कही जयन्त

सामने से आ गया तो ? तो क्या होगा ? वह बात तक न करेगी। किन्तु कैसे ? सामने जयन्त को पाकर वह बात नही करेगी। असम्भव, असम्भव। और यदि यो ही कमरे मे बनी रहे तो क्या हानि है ? जानेगा कौन ? और एक सुलभ आकॉक्षा, जिज्ञासा, जयन्त को एक दृष्टि देख लेने की दबी चाह। वह सोच रही थी, नारी का यह कौन-सा रूप है ? प्रेम-रूप अथवा असहायावस्था ? नही असहायावस्था कदापि नही। असहायावस्था कैसी ? उसकी आत्मा मे बल है। वह अब भी यही दोनो को पानी पिला सकती है। किन्तु नही। उसे जयन्त से विद्रोह करना ही कब है ? वह मन और वचन से बद्ध है। और वचन निभाना यदि जीवन मे पूर्ण हो सके। यदि किसी पर कोई मिट सके।

एक दिन पूर्व नैनीताल मे उसने जो कुछ घूम लिया, जो कुछ देख लिया, पर्याप्त था। पूर्ण था। उसे नैनीताल क्या, अब जीवन मे कही नही घूमना है। इस अल्पायु मे वह जो कुछ घूम चुकी, जो कुछ देख चुकी, जो कुछ अनुभव कर चुकी, पर्याप्त है। वह दिनभर कमरे के बाहर न निकलने का निश्चय कर चुकी थी। वैसी ही पडी रही। कल नैनीताल देखकर कुछ क्षण का बहला हुआ मन पुनः भारी-भारी, पहले से भी अधिक भरा-भरा हो गया। एक ओर वह सब सोचती थी कि वह उदासीन बने। अब उससे क्या ? होने दो, जो कुछ हो रहा है। उसका अपना प्रसंग तो समाप्त है। तब व्यर्थ वह उस ओर देखकर क्षुभित हो रही है। किन्तु वह क्या करे ? उसका अपना मन मानते-मानते मानेगा। उसने किस गहराई तक पैठ कर जयन्त को प्यार किया था, इसका वास्तविक अनुभव तो यथार्थ मे अब उसे हो रहा था। और प्रेम की यही स्पष्ट परिभाषा है। यही गति है। अब जीवन की यही चेतना है। इसमे प्रश्न न पुरुष का है, न नारी का है। न यह किसी प्रकार की असहायावस्था है। यह कुछ नियमित सत्य-सा है।

जयन्त और निवेदिता की गन्ध और उसका आभास उसके मस्तिष्क को विकृत बना रहा था।

नैनीताल का शांत वायुमडल, 'चाइना-पीक' के ऊपर से दिखाई देने वाले दूरस्थ हिमशिखर, वहाँ का हिम-पात भी मन के जलते अगारे को और दहका देगा। उस चाँदी के पहाड का एक बर्फीला टुकडा भले ही क्यो न उस तपते अगारे पर रख दिया जाए, वह और दहकेगा। बाई ओर पसलियो के नीचे धडकते, छिपे, किन्तु गतिमान हृदय के ठीक ऊपर ही चाहे उस गलेशियर और बरफ की सिल को लाकर तोप दीजिये, उसकी गरमाहट नही कम होगी, नही कम होगी। चाहे उससे सारे शरीर की गरमाहट, चाहे उस हृदय की गति भले ही बन्द हो जाए। पर, पर जब तक प्राणो का सचार है, जब तक शिराओ, धमनियो मे रक्त का सचार है, जब तक हृदय और मस्तिष्क मे जीवन है, तब तक रोम-रोम को तडपा देने वाला अतीत, व्यथा, टीस, निरन्तर अपना कार्य करती रहेगी बिन देखे। उस अवस्था मे प्राकृतिक दृश्य, वे चाँदी के डोलते पहाड, मोतियो के ढेर, बर्फीली चट्टाने, डोलती लहरे सब कुछ और अधिक वेदना उत्पन्न करेगी और तग करेगी। आज नैनीताल की शीतल, मन्द वायु मैदानी लू से कम गरम नही थी, उस मन को जो जीवन से उखड चुका हो, जो प्रणय और अतीत की झुलसन मे तप रहा हो, उसे चट्टान, लहरे सब समान है।

कामिनी ने खटपट की आवाज से जाना कि कोई, सब कुछ आ गया। निकट का कमरा खुला और एक तेज खिलखिलाहट से कमरा गूँज गया।

थकन के भार से दब कर की गई दो डाडिया, होटल हिमालया के लान से निकल कर बाहर जाने लगी।

और नीद, सुख-सेज पर वे मीठे स्वप्न, कल्लोले, अट्टहास, और चट्टानो का डोलता सागर।

एक कमरे मे तपती चट्टान, दूसरे कमरे मे मीठी लहरें।

: २३ :

"प्रमोद, मै सोचता हूँ चलूं, तुम्हारे साथ। किन्तु तुम्हारे किशोर महोदय ने यदि आज छेड़ा तो मोर्चा कसकर ही जमेगा। मै यो उखड़ने वाला नही। हा अपने से बड़े की मर्यादा का ध्यान मै कभी नहीं भुलाता, किन्तु ब्लाइण्ड-थिकिंग' कम्पलीटली इग्नोर्ड द ला आफ लाजिक। मैं कुछ ऐसा अन्धविश्वासी कभी नही बन सकता। भले ही वे मेरे पिता ही क्यो न हो ?" कीर्ति ने कुर्सी पर बैठते-बैठते प्रमोद से कहा।

"अच्छा भाई, मुझ से सबेरे-सबेरे बहस न लगाओ। चलना चाहते हो तो चलो। वहाँ भी किशोर महोदय की अवस्था का ध्यान करके मग़ज खाना। तुमको तो बहस करने और अपनी बात जमाने का एक 'मिनिया' हो गया है।" प्रमोद ने उत्तर दिया।

"जी, लेकिन उखड़ते क्यो हो ? दम हो तो जमो। मै अपनी बात पर कभी नही उखड़ूँगा। इस हवा मे न रहना।" रुक कर, "अच्छा उठो, चलो।" और प्रमोद व कीर्ति सैनेटोरियम के लिए तैयार हो कर चल दिए।

बाजार मे एक स्थान पर बड़ी भीड़ थी और बड़ा शोर हो रहा था। प्रमोद तो स्वभावत. आगे बढ रहा था। किन्तु कीर्ति से बिना कारण जाने आगे न बढा गया। उसने चलते-चलते भीड के कई व्यक्तियो से प्रश्न किए किन्तु भीड मे किसी को भी कोई बात ठीक से ज्ञात न थी।

अतः किसी ने भी ठीक उत्तर नहीं दिया। सभी दर्शक थे और स्वयं एक दूसरे से पूछ-ताछ कर रहे थे। भीड भेडियाधसान। उसका कोई महत्त्व नहीं। कोई अस्तित्व नहीं। उसकी बात का कोई विश्वास नहीं। उसकी कोई स्थिर बुद्धि नहीं। उसके कोई स्थिर मन्तव्य नहीं न स्थिर कर्तव्य अथवा गति। एक बहाव है। जिधर बह चला।

इतने ही मे एक निकट की गली से आठ-दस पुलिसवाले और एक सब-इस्पेक्टर बाहर निकले। ये लोग एक पहाडी को हथकडी मे कसे थे। पहाडी गन्दे कपडे पहने एक मजबूत और लम्बा-तडगा जवान था। वे लोग सडक पर आ गए। भीड ने जगह दे दी और सिपाही घेरा बाध कर उस पहाडी को ले चले। साथ के ही एक सिपाही के हाथ मे एक पहाडी भुजाली थी। भुजाली खून से सनी थी और उसमे अब भी बूंद-बूंद खून भूमि पर टपक रहा था।

तभी ज्ञात हुआ कि इसने कुछ क्षण पूर्व ही अपनी स्त्री को कत्ल कर डाला है। हत्यारे को देखकर कीर्ति को बडी घृणा, साथ ही घटना को जानने की उत्कठा उत्पन्न हुई।

और पुलिस के घेरे मे बढता हुआ वह पहाडी, उसकी भयकर आकृति, उसका कुकृत्य उसके चेहरे पर स्पष्ट था। इस पर भी वह झूमता हुआ आगे बढ रहा था। जैसे उसे अपने किए पर कुछ भी पश्चात्ताप नहीं। मानव-प्रकृति, कुकृत्य पर पश्चात्ताप किसी को नहीं होता। यदि होती भी है तो प्रसन्नता और अपने कृत्य की पुष्टि की एक चाह। दुकानो, मकानो और चारो ओर से भय और तिरस्कार की मुद्रा मे नर-नारी व बालक घटना के रोमाच का अनुभव कर रहे थे।

कीर्ति को सम्बोधन करके भीड के एक व्यक्ति ने कहा, "बाबूजी, कितना अच्छा था वह पहाडी। दिनभर बस-स्टैन्ड पर माल की पेटिया ढोता था। सबसे हँसकर बोलता था। अरे अभी जरा देर पहले सामने से बीडी पीकर गया है। और उसकी पहाडिन भी कितनी सीधी थी।"

कीर्ति ने सोचा। मस्तिष्क मे कब क्या विकृति आ जाती है, मनुष्य

स्वय नहीं जानता। किन्तु बैलेस को सभाले रहना ही बुद्धिमत्ता है। मनुष्य को बुद्धि मिली किस लिए है। अन्यथा उसमे और पशु मे अन्तर ही कितना है? और उस पहाडी का पाशविक कृत्य। कीर्ति का मन उत्तेजना और ग्लानि से भर गया।

तभी दूसरा व्यक्ति बोल उठा, "एक बच्ची है। छोटी-छोटी।" और हाथ के सकेत से उसने बच्ची की छोटाई भी बता दी।

और अब बच्ची अनाथ हो गई। कुछ क्षण पूर्व वह माँ की गोद मे किलकारिया भर रही होगी। पिता देख कर मोहित हो रहा होगा। और उस हत्यारे के प्रति कीर्ति का क्रोध बढता गया। पहाडिन के प्रति उसे सहानुभूति हो रही थी। किन्तु मृतक से काहे की सहानुभूति। सहानुभूति भी मन का भ्रम है और एक दिखावा मात्र।

हत्या का कारण अब तक अज्ञात था। कुछ अन्य सिपाही घटना-स्थल से भीड को दूर कर रहे थे। प्रमोद आगे बढ आया था। वह पुनः लौटा। कीर्ति के निकट आ, हाथ बढा कर वह उसे आगे ले चला और बोला. "छोडो भी, घटनाएँ तो छाया की तरह प्रत्येक के साथ है। उनके पीछे तुम्हारे ऐसे दर्शनवेत्ता भी पड सकते है, यह मुझे आज ही मालूम हुआ।"

'पग-पग पर जीवन और ससार को पढते जाना चाहिए। मनुष्य जीवन भर विद्यार्थी और अन्वेषक बना रहता है।" कहकर मन मे कारण जानने की उत्कठा लिये कीर्ति आगे बढ गया।

काटेज के उसी परिचित कमरे मे अपने पलंग पर यथास्थान किशोर महोदय का विशाल किन्तु कृश तन लेटा हुआ था। प्रमोद ने अन्दर पहुँच कर किशोर महोदय को नमस्कार किया और निकट ही कुर्सी पर बैठ गया। अब कमरे मे निरन्तर दो कुर्सिया पडी रहती थी।

बैठने-बैठते ही किशोर महोदय ने मन्द स्वर मे प्रश्न किया, "कहिए आप के कीर्ति बाबू नहीं आए ?"

कीर्ति बाहर ही रहा गया था। उसने काटेज के कमरे के साथ लगे कमरे मे देखा एक भद्र महिला, नौकर जीवन को कोई आदेश दे रही हैं। इन महिला की अवस्था अधेड थी और स्वच्छ वेशभूषा मे उनमें आकर्षक कान्ति विद्यमान थी। कीर्ति ने अनुमान किया, सम्भवत. वे ही किशोर महोदय की पत्नी हैं। और वह अन्दर पहुँच गया।

प्रमोद के उत्तर देने के स्थान पर स्वय कीर्ति को देख कर किशोर महोदय को एक प्रसन्नता हुई। तभी वे बोले, "प्रमोद बाबू, धीरे-धीरे डाक्टर मेरे मामले मे हताश होते जा रहे हैं। वे कहते हैं गैलपिग, किन्तु मुझ से नहीं। हा, मै सुन पाता हूँ, समझ पाता हूँ, और ठीक है। मुक्ति मे ही शान्ति है। किन्तु मुझे आश्चर्य है। मेरी आकृति वैसी ही है। मैं कहता हूँ, मै बीमार ही नहीं। हा, मेरा मन कुछ बिगडा-सा है तो उससे क्या होता है ? किन्तु डाक्टर तो अपनी ही बात पर जमते हैं। उन्हे अपने टेस्ट और परीक्षाओ पर मृत्यु से अधिक विश्वास है। मै मानता हूँ, मेरी मन की बीमारी मे शरीर गला जा रहा है और मुझे लग रहा है, मे ठीक हूँ। वैसा ही, जैसा रायबरेली का कलेक्टर किशोर मजूमदार आई०, सी० एस०, आज से कई माह पूर्व।

प्रमोद व कीर्ति ने एक दूसरे को देखा।

"और आज से २० वर्ष पूर्व का हँसता-खेलता युवक अपने लखपति पिता, वर्दमान निवासी, कार्तिक मजूमदार का होनहार पुत्र, आई० सी० एस० करके इगलैण्ड से लौटा और तब से सरकार मुझे यू० पी० के ही चक्कर कटवाती रही। और अब मै वैसा कैसे बना रह सकता हूँ ! और सुनिये, तब से मे यू० पी० मै ही घुल-मिल गया। उन्ही की भाति, क्या उनसे अच्छी हिन्दी बोल लेता हूँ। क्योकि मेरी हिन्दी मे बगला का मिश्रण रहता है और बगला है सस्कृत का मिश्रण, तो सोचिए, मेरी हिन्दी अच्छी हुई या नहीं। और शब्द-ध्वनि तो ससर्ग से वैसी हो ही जाती है।

कोई कहता ही नहीं कि मै बगाली हूँ। परन्तु मुझे वर्दमान का होने का गर्व है। और मेरी वाइफ तो ठेठ यू०पी० की है, इलाहाबाद की। किन्तु वह बगला की ही भक्त है। और मेरी.. .. . लडकी. . ...और वे रुक गए।

प्रमोद ने देखा, जब भी लडकी का प्रसग आता, तभी किशोर महोदय रुक जाते जैसे उन्हे कोई जर्क-सा लगता हो। इस प्रकार किसी भाति रहस्यो घाटन का जब अवसर आ पाता, वे बिजली की भाति तडप जाते और वह बात वहीं की वहीं दबी रह जाती। कोई उनसे इस बात पर जोर भी नहीं दे पाता था।

इसी क्षण घटी बजी। फिर वही, जीवन, एक गिलास भर तरलता झोले की ५ बूँद दवा, एक घूँट मे सब पी जाना, जीवन का चले जाना एक चिर-परिचित घटना बन गई, वह सब।

इसी समय डाक्टरो के एक दल ने कमरे मे प्रवेश किया। उन्होने देखा, उनका रोगी उसी क्षीण दशा मे तकिए के सहारे टिका है।

तभी दल के मुख्य डाक्टर ने अपने डाक्टरो को एक किनारे ले जा कर धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया, "डाक्टर्स, यू नाऊ एग्जामिन दिस केस, एण्ड जस्ट सी। दिस इज दी कण्डीशन ऑफ रिलैप्सेज एण्ड हार्ट अटैक्स टाइम टु टाइम। एण्ड एडीशनल दैट ही इज दी सैनेटोरियम पेशेन्ट विद एडवान्सड् स्टेज आफ ट्यूबरकल बेसाइल्स।"

एक डाक्टर ने तब आगे बढकर किशोर महोदय की नाड़ी-परीक्षा की। अन्य डाक्टर भी पलंग के चारो ओर फैल गए। किसी ने स्टेथेस्कोप से दबे मन को टटोला और किसी ने वक्ष पर ठक-ठक करके दिल के ऊपर की हड्डियो की मजबूती को टटोला और किसी ने उंगलिया उठा कर नाखूँनो की परीक्षा की।

प्रमोद व कीर्ति जाने लगे। उन्होने सोचा, सम्भव है परीक्षा देर तक चले और उपचार भी। तभी किशोर महोदय बोल उठे, "आप लोग आइयेगा, देखिये किस प्रकार इन डाक्टरो के आश्रित हूँ। और ये लोग

मुझे छोड़ेंगे नहीं।' वे बड़े हताश थे।

इतनी कड़वी बात भी सुनने का डाक्टरों का स्वभाव बन जाता है। इस प्रकार की बातों का उन्हें अभ्यास हो जाता है। चिकित्सक को आत्म-संयमी बनना पड़ता है। सैनेटोरियम में हो या किसी हास्पिटल के सर्जिकल वार्ड में अथवा अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस में। न मालूम कितने प्रकार के और किस-किस इतिहास को लेकर उनके निकट रोगी आते हैं। जटिल, सीरियस, वे अच्छे भी हो जाते हैं और मृत्यु भी होती ही है। जितना बन पड़ता है परिश्रम, शिक्षा, बुद्धि और अनुभव के द्वारा वे रोगी के रोग और मन को सान्त्वना देकर निवारण करते हैं। रोगी के अच्छा होने पर ये भी प्रसन्न होते हैं, जैसे उसके आत्मीयजन, तब उनका परिश्रम भी सफल होता है, अनुभव भी सफल होता है और डाक्टरी पढ़ते समय पानी की भांति बहाया हुआ पैसा भी स्वार्थ लगता है। उन्हें मान मिलता है।

इन डाक्टरों की दृष्टि में रोगी और रोग दोनों ही समान हैं, इन्हें तो अपना कर्त्तव्य निभाना है। किन्तु जो कुछ ऊँचे हैं, जो सोसाइटी में मान्य हैं जिनकी जान अधिक लोगों के काम की है, अधिकारी, वकील डाक्टर, नेता, बैरिस्टर, अभी जिनकी आयु केवल हँसने-खेलने की है ऐसे नई अवस्था के बालक या बालिकाएं, इन पर वे विशेष गम्भीर मनन करते हैं। वैसे निराश्रित और निम्न-वर्ग का कोई भी कैसा हो, चिकित्सक के लिए सब समान हैं। वे उसी लगन से रोग का निवारण करते हैं। इन सब को जब वे नहीं बचा पाते तो उन्हें भी दुःख होता है। अन्तर्मन में वे भी द्रवित होते हैं। किन्तु उनका काम वैसा ही है। वे किसी को लेकर नहीं बैठ जाते। काम करते आगे बढ़ते हैं।

किशोर मजूमदार से डा० श्रीखंडे विशेष प्रभावित थे। वे सोचते, इतने आला आफीसर, जिन्होंने अपने रोग का कारण कभी नहीं बताया, अपना इतिहास बताने की तो आवश्यकता ही क्या थी? किन्तु डाक्टर से सब कुछ, बहुत कुछ बताना पड़ता है। किशोर महोदय गलते चले

जा रहे थे। गैलपिंग ट्यूबर-क्लोसिस के साथ-साथ, एक्यूट 'हाई ट्रबुल', और जब से वे सैनेटोरियम मे आए हैं, कोई औषधि, कोई उपचार कार्य नही कर रहा है। अवस्था उनकी दिन-प्रतिदिन 'डेट्रोरिएट' होती चली जा रही है। और इधर हृदय के दौरे अधिक होने लगे है। रुपया भी उसने न मालूम कितना व्यय किया है।

प्रमोद सोचता चला जा रहा था। किशोर महोदय का-सा सुदृढ व्यक्तित्व, अब जर्जर! किन्तु फिर भी उनके मन मे अभी घबराहट के चिह्न नही आए है। मन और तन दोनो की जलन मे मस्तिष्क की विकृतावस्था! ऐसे चिह्न होते हुए भी वे सजग है—अपने कार्यों और सिद्धान्तो के प्रति। न मालूम जीवन की किन कष्टकर अनुभूतियो ने इनका विनाश कर डाला।

घर लौटते समय कीर्ति उद्विग्न था। किशोर मजूमदार के विषय में सब कुछ जानने के लिये। दूसरी ओर पहाडी और उसके द्वारा अपनी पत्नी की हत्या की घटना।

सैनेटोरियम से उसके लौटने पर भी भीड और पुलिस वैसी ही एकत्र थी। भीड के लोग उत्सुक होकर बार-बार सामने की ओर देखते और पुनः घटनास्थल पर जमे रहते।

बाज़ार की दुकानो के पीछे की ओर मजदूरो की बस्ती है। इनमें गरीब मजदूर दिन भर परिश्रम करने के पश्चात् शाम को आकर विश्राम करते है। यही उनके छोटे-छोटे झोपडे अधिकतर कटी-फटी टीनो और माल की पेटियो के चीड के तख्तो के बने है। किसी के परिवार मे उसकी स्त्री,दो-चार बच्चे और वह स्वय। किसी झोपडे मे डोटियाल और उसकी बूढी माँ। किसी मे कई डोटियाल एक साथ शाम को इकट्ठे होकर गाते, चावल पकाते और आलू भूनते है। चीथडे लपेटे अपने मे मगन ये दिन भर मेहनत करके शाम को अनेक रुपए लेकर लौटते है अथवा

कई कई दिन तक बिना एक पैसा पाए ही लौट आते है। आपस मे ये बहुत कम लडने-झगडते है और जब लडते है तो एक दूसरे की जान के ग्राहक बन जाते है।

भीड के निकट आने पर कीर्ति की उत्सुकता देखकर प्रमोद ने कहा, "तुम रुको, मै घर चलता हूँ .आकर मुझे भी अपना अन्वेषण बता देना।"

घटनास्थल पर गली के कोने मे एक दर्जी की दुकान थी। दर्जी मुसलमान था और उम्र भी उसकी ४५ के लगभग थी। सफेद फरफराती दाढी पर वह अनेक बार बैठे-बैठे हाथ फेर लेता था। कीर्ति आगे बढकर कोने मे दर्जी की दुकान पर टिकने लगा। दर्जी बोला, "आइए बाबू साहब, वल्लाह, इधर आइए। आप तो हमारे हमवतन है। कहकर अपने सामने की चादर साफ करके कीर्ति को बैठने का सकेत करने लगा। कीर्ति तो उत्सुकतावश ऐसा अवसर चाहता ही था। वह उन मियाँ जी के निकट जा बैठा।

तभी मियाँ जी ने कहना प्रारम्भ किया, देखिए बाबू साहब, यह भीड इकट्ठा है और ये पुलिस वाले। देखते ही सैकडो दल के दल एक जगह पहुँच जाते है। और ये डोटियाल भी कितने जालिम होते है। देखिए, कम्बख्त ने अपनी बीवी की जान ले ली। वह भी किस बात पर। बीडी पीने बाहर सडक पर आया था। तब बीवी को घर पर छोड आया था। लौट कर जाने पर बीवी घर पर नही मिली। बेचारी बच्चा लेटा कर पडोस मे किसी स्त्री से बाते करने लगी। और वह ससुरा कहने लगा कि वह जरूर किसी आदमी से बात कर रही थी। और उसने अपनी भुजाली उसके सीने के पार कर दी।"

कीर्ति ने घटना का उडता-सा कारण सुना और 'शुक्रिया' कहकर वह उठ कर चला आया। उसका मन बडा खिन्न हो रहा था। किस प्रकार कलुष मनुष्य को दानव बना देता है। और यह पति-पत्नी का

सम्बन्ध, अनिवार्य किन्तु कितना सघर्षमय है। सम्बन्ध सदैव भ्रामक बने रहते है। सर्वथा एक कटुता विद्यमान रहती है। सदैव से नारी की मासलता पर राज्य करने वाला पुरुष अधिकारो की सीमा मे मदमत्त होकर यह क्या, इससे भी भयावह कुकृत्य और कुकर्म करता रहता है। संशय तो—मस्तिष्क रखने वाला यह बिना पूँछ वाला डारविन का जन्तु—किस गहराई तक कहा-कहा रखता है ? कोई नही कह सकता। डारविन स्वय नहीं बता पाया और कोई क्या बताएगा ?

घर आकर सक्षेप मे कीर्ति ने प्रमोद से घटना का विवरण कह सुनाया। प्रमोद ने केवल सुन भर लिया। वह किशोर मजूमदार मे कुछ इतना उलझा हुआ था कि कीर्ति की बात का कोई उत्तर ही न दे सका और स्वयं अपनी बात कहते हुए वह कहने लगा, कीर्ति, किशोर महोदय का मामला गम्भीर परिस्थिति मे आता जा रहा है। मुझे तो कुछ गडबड होता दिखाई देता है।"

"मुझे भी कुछ ऐसा-सा ही प्रतीत हो रहा है। और आज तो मैने उनकी पत्नी को भी देखा है। वे बडी गम्भीर, चिन्ताग्रस्त-सी दिख रही थीं। निकट-वर्ती कमरे मे वे जीवन को कोई आदेश दे रही थीं। सम्भवतः वे प्रारम्भ से ही उनके साथ हो या अभी आई हो। उनके मुख-मडल पर भी एक सौदर्य और नारी-सुलभ कान्ति विद्यमान थी।" कीर्ति ने प्रमोद की बात का अनुमोदन करते हुए कहा और वह स्वयं भी इस प्रसग मे उस घृणित हत्याकाण्ड की बात भूल गया।

इसी क्षण जीवन बडी शीघ्रता मे आया और कहने लगा, "प्रमोद बाबू, साहब की हालत ठीक नहीं है। मै एक दवा लेने अभी नैनीताल जा रहा हूँ। आप समय पाकर वहा हो आइयेगा।"

प्रमोद की मा ने अन्दर से यह बात सुनी और बाहर आकर वे जीवन से कहने लगीं, 'यह स्वयं बीमार है। यह किस को देखने कहा जाएगा ?"

प्रमोद कुछ स्थिर होकर बोला, "नहीं मा, ऐसी बात नहीं है। मनुष्य को मनुष्य के प्रति सहानुभूति अपने अन्तिम श्वास तक रखनी चाहिए। तुम मेरी मा होकर मुझे भले काम से विमुख कर रही हो।' तब जीवन को सम्बोधन करके प्रमोद बोला, 'जीवन, तुम निश्चिन्त होकर जाओ। मै व कीर्ति वहा पहुँच जाएँगे।"

: २४ :

प्रमोद और कीर्ति जब सैनेटोरियम पहुँचे तो किशोर महोदय अचेतावस्था मे पलग पर लेटे थे। निकट ही एक डाक्टर और नर्स इजेक्शन लगाने की व्यवस्था कर रहे थे।

जीवन की निरन्तर प्रतीक्षा थी। डाक्टर ने अपने स्टेथेस्कोप की रबड ठीक करते हुए नर्स से पूछा, "सर्वेन्ट डिडिन्ट टर्न, एज एट।"

"जस्ट सीग" कहकर नर्स बाहर चली गई।

डाक्टर भी इजेक्शन लगा कर बाहर चला गया।

किशोर महोदय को देखकर कीर्ति की बात-बात मे टीका-टिप्पणी, उसका हँसोडपन विलीन हो जाता। उसे उन पर एक श्रद्धा हो गई थी।

जीवन हवा की तरह गया और दवा लेकर लौट आया।

जीवन ने अन्दर आकर देखा, कमरे मे प्रमोद और कीर्ति बैठे थे। किशोर महोदय उसी भाति अचेत पडे थे। वह तुरन्त बाहर निकल गया।

तभी कीर्ति को ध्यान आया, ये निकटवर्ती कमरे की महिला निश्चित ही किशोर महोदय की पत्नी ही हो सकती है, कोई अन्य नही। तब वे उनके पास क्यो नही आती? इस संकटापन्न परिस्थिति मे भी वे इतनी दूर कैसे हैं?

शीघ्र ही जीवन सैनेटोरियम के मुख्य डाक्टर श्रीखडे व अन्य एक डाक्टर के साथ लौटा। इनके पीछे ही एक नर्स एक ट्रे हाथ मे लिए हुए आई।

इनके आते ही जीवन ने नैनीताल से लाई दवा के दो-तीन पैकेट डाक्टर के आगे बढा दिए। डाक्टर श्रीखडे ने उनमे का एक पैकेट खोला। उस समय दूसरा डाक्टर किशोर महोदय की नाडी देख रहा था और नर्स एक चम्मच मे पानी गरम करके इजेक्शन की सूई व पिचकारी साफ कर रही थी।

तभी दूसरे डाक्टर से धीमे स्वर मे डा० श्रीखडे ने कहा, "पल्स नाट स्टेडी।"

दूसरे डाक्टर ने सिर हला दिया। तभी डाक्टर ने इजेक्शन लगाया। उसका परिणाम देखने के लिए कई मिनट निकट ही सब लोग खडे रहे। इस इजेक्शन ने कुछ काम किया और धीरे से उन्होंने अपना सर हिलाया। नर्स को कमरे मे छोडकर डाक्टर बाहर हो गए।

प्रमोद ने सोचा, यह कोई विशेष इजेक्शन मालूम होता है, तभी डा० श्रीखडे स्वय इसको देखने के लिए आए थे।

प्रमोद व कीर्ति चित्रवत कुर्सी पर बैठे सारी क्रिया देख रहे थे। प्रमोद सोच रहा था—क्या किशोर महोदय ह्रासोन्मुख हो रहे हैं? क्या जीवन अब शेष नहीं है? किन्तु न मालूम क्यो उसको आत्म-विश्वास हो रहा था कि किशोर महोदय ठीक हो जाएँगे।

किशोर महोदय का व्यक्तित्व, उनका गाम्भीर्य, उनका जीवन-दर्शन, समाज व व्यक्तियो के प्रति उनकी प्रिय, अप्रिय, कटु, तिक्त अथवा सुखद अनुभूतिया, सब कुछ यदि उनके गहन अन्तस्तल मे यो ही विलीन हो गया तो सचमुच प्रमोद को बडा क्लेश होगा। शनैः-शनैः उनके द्वारा प्रकट होने वाला उनका जीवन-रहस्य, उनकी व्यथा, उनका इतिहास, समाज के एक अश का ऐसा चित्रण होगा, अनुभूतियों

का ऐसा सजीव दिग्दर्शन होगा, जिससे अवश्य ही बहुत कुछ सीखा और समझा जा सकेगा। वह कामना कर रहा था कि किशोर महोदय शीघ्र ही कम से कम इस गम्भीर अवस्था से मुक्ति पाएँ। कीर्ति निरन्तर किशोर महोदय को देख रहा था।

तभी किशोर महोदय ने सर हिलाया और धीरे से आखे खोली। प्रमोद व कीर्ति ने उन्हे हाथ जोड कर नमस्कार किया, जिसका उत्तर उन्होने अपनी पलके मूद कर दिया। उस क्षण वे इतने अशक्त थे कि हाथ-पैर हिलाना भी उनके लिए असम्भव था।

जीवन ने आकर वही एक गिलास तरल, ५ बूंद दवा दी। वे गिलास से पानी पी सकने मे भी असमर्थ थे। अतः जीवन ने 'फीडिंग-कप' से उन्हे पानी पिलाया।

रात्रि होने को थी और किशोर महोदय अब पहले से कुछ ठीक थे, अतः प्रमोद और कीर्ति घर चले आए।

घर आने पर उसे मा ने लखनऊ से आया पिता जी का एक पत्र दिया। वकील साहब के पत्र मे ही एक पत्र अंग्रेजी मे लिखा हुआ प्रतिमा का था, जो वकील साहब के लिए ही था। प्रमोद दो-तीन मिनट यो ही पत्र हाथ मे लिए रहा। वह सोच रहा था—यह कैसा संदेश है, सुखद अथवा दुःखद? इस नीलिमा के अन्दर क्या बन्द है? हफ्तो तडपाने वाला विष या तुरन्त प्रभावकारी कोई 'इंगलिश टानिक'। और उसे आश्चर्य हो रहा था। अनायास यह कैसा पत्र है? पहले उसने पिता जी का ही पत्र पढा।

वकील साहब ने इधर प्रमोद के स्वास्थ्य-लाभ की बात सुनकर संतोष प्रकट किया था और लिखा था कि उसे शीघ्र ही लखनऊ आ जाना चाहिए। वहा पानी भी काफी गिर चुका है और वातावरण

ठडा हो गया है। सलग्न पत्र के सम्बन्ध मे उन्होने कुछ नही लिखा था।

तब उसने दूसरा पत्र खोला। नीले रग का सुन्दर इग्लिश बैक-पेपर, कोने पर 'आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी' का 'मोनो-ग्राम' उभरता हुआ दूर से चमक रहा था। प्रमोद ने ५-७ लाइनो का संक्षिप्त पत्र पढ डाला।

रिसपेक्टेड वकील साहब,

आई उड लाइक टु नो समथिंग एबाउट दा हेल्थ आफ मिस्टर प्रमोद कुमार। प्लीज इनफार्म माई फादर इन दिस रिसपेक्ट।

आई विश टु से दैट आई हैव फारवर्डेड योर लेटर टु माई फादर। ही विल हैव ऐ कन्टेक्ट विद यू इन द मैटर एज द मैटर इज इक्वली इम्पार्टेन्ट टु हिम एज वेल। दी नथिग इज वरीग फार यू। माई फादर इज आफ सच नेचर। ही इज बोल्ड एनफ एण्ड फ्रैन्क टू। आई हैव नो एडवाइजर बेटर देन माई बिलव्ड फादर। आल्सो यू रोट टु मी दैट यू आर एक्वेन्टेड टु माई फादर। सो प्लीज कन्वे द मेसेज थ्रू हिम।

रेस्ट रिमेन्स विद माई स्टडीज।

विद रिगार्डस्।

प्रतिमा।

प्रमोद सोच रहा था, तब उसने अप्रत्यक्ष मे पिता जी को पत्र लिखने को मना कर दिया है। और इस सब से जस्टिस मानसिह क्या सोचेगे ? वे परिस्थिति का अवलोकन न मालूम किस दृष्टिकोण से करे ? पिता जी का यो पत्र लिखना कुछ अच्छा नही हुआ। किन्तु इस प्रकार उन्होने सम्बन्धो का श्रीगणेश तो कर ही दिया है। यह सब ठीक नहीं हुआ। सम्भवतः यही सब कुछ आगे चल कर ठीक हो। किन्तु वह आगे चलना कब चाहता है ? क्या उस मे आगे चलने की सामर्थ्य है ? किन्तु

जस्टिस महोदय संकीर्ण विचारधारा के व्यक्ति कदापि नही हो सकते। उन्होने अपनी पुत्री को इग्लैड भेजा है। क्या थोथी मान्यताओ मे दबे रह कर ही ?

और प्रमोद का नाम उसकी प्रतिमा तक पहुँच गया। ओह, जीवन मे उसे इसकी भी कभी आशा न थी। वह चाह भी नही रहा था। किन्तु अब वह यह सब कुछ चाहने लगा है। और उसे आनन्द मिल रहा था। उसने अपनी पलके मूँद ली। प्रतिमा के मन मे पडा उसका नाम। वहा कुछ अकुरित हो रहा है। कुछ प्रस्फुटित हो रहा है। काश, वह सब कुछ एक नन्हा पौधा बन जाए, फूल निकले और फल भी। ओह ! वह सुख स्वप्न ! क्या कभी प्रतिमा से यो साक्षात्कार भी सम्भव है ? कभी नही। यह सब भ्रामक है। कही कुछ नही है। यह वैसी ही स्वाद मे मीठी दवा है, जो मृत्यु को कुछ क्षण टालने की प्रवचना मात्र कर सकती है। किन्तु उसका कोई स्थायी महत्व नही। एक हलचल है, प्रतिमा के मन में यो एक उथल-पुथल प्रारम्भ हो गई है। यह पूर्व राग ही है। वैसा ही, काश मेरे जैसा। और प्रतिमा सामने झीना परदा भी नही चाहती। वह प्रकट रूप मे ही सामने आएगी। उसकी ऐसी-सी ही प्रकृति है। यही सब कुछ उसके पत्र व्यक्त कर रहे हैं। उसके निकट कही कुछ नही है और कुछ होगा भी तो स्पष्ट, पूर्ण प्रकट। वह लुका-छिपी सम्भवतः पसन्द भी नही करती। उसने तभी अपने पिता को अपने मन के भाव और पत्र की बात स्पष्ट लिख दी होगी।

कीर्ति इसी समय अन्दर से निवृत्त हो कर आया। प्रमोद को कुछ विचार-मग्न और हाथ मे पत्र देख कर वह अपने सहज स्वभावानुसार कहने लगा, "क्या मामले हैं ? है कोई नया रग ?"

"है," कह कर प्रमोद ने वे दोनो पत्र आगे बढा दिए।

प्रतिमा का पत्र पढकर उसने एक तीव्र अट्टहास किया, "ओफ़ हो।" वह कहने लगा, "वाह ! क्या तीर निशाने पर बैठा है। वाह ! लन्दन मे आधिया चलने लगी। जिओ।" और वह पुनः हँसता रहा।

प्रमोद से भी उसको देखकर बिना हँसे न रहा गया। प्रमोद हँसते हुए बोला. ' तुम को तो कहीं जोकर का काम दिया जाता तो. .।"

प्रमोद और कीर्ति के चले जाने के तुरन्त पश्चात् सैनेटोरियम मे मि० टामस किशोर महोदय से मिलने गए। आगे बढ कर जीवन उन्हे कमरे मे अन्दर ले गया।

हर समाज और हर जाति मे ऐसे व्यक्ति रहते हैं जो स्वभावतः मनुष्योचित कर्तव्यो के प्रति सजग, सहानुभूति पूर्ण और सज्जनता मे पगे होते हैं। उन दिनो जब देश विदेशियो के आधीन था, तब भारतवासियो के हृदयो मे अग्रेज आफीसरो के प्रति ही नहीं अपितु अग्रेज नागरिको के प्रति भी तिरस्कार, ग्लानि और घृणा के भाव बने हुए थे। बात पूर्णतः उचित थी। अग्रेजो का अस्तित्व ही देश के लिए सर्वथा अवाछनीय व असह्य था।

इतने पर भी शासन की, उन दिनो की मशीन मे, अग्रेज आई० सी० एस० आफीसर सब एक से नहीं थे। कुछ तो सचमुच बडे धूर्त थे। और इस प्रकार के छटे हुए अग्रेजो का चालान भारत को किया ही जाता था। किन्तु इनमे भी कुछ अग्रेज बडे सरल, मृदुभाषी, और भारतवासियो के प्रति सहानुभूति पूर्ण थे। वे कभी-कभी कहते सुने जाते थे कि भारतवासियो के प्रति होने वाले अन्याय से उन्हे पूर्णतः असहमति रहती है। किन्तु यह कि वे विवश है। अकेले वे ही क्या कर सकते हैं? भारतवासियो के प्रति उनके व्यवहार भी सम्मान पूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण रहते थे। उन्हे भारतवासियो से घुलने मिलने मे भी बडा आनन्द मिलता था। कुछ ने तो केवल भारतीयो की ही गोष्ठी बना ली थी। ऐसे लोगो के साथ काम करने वाले उच्चपदस्थ भारतीय अधिकारी भी सन्तोष की सास लेते थे। अन्यथा पाजी अग्रेज आई० सी० एस० भारतीय आई० सी० एस० की नाको दम रखा करते थे।

मि० टामस दूसरे प्रकार के अंग्रेज थे। वे बडे सज्जन और भारतीयो के प्रति बडे सरल थे। नाटे कद के सदैव हँसने-बोलने-वाले मि० टामस संयोगवश अनेक स्थानो मे किशोर मजूमदार के सहयोगी रह चुके थे। कई नगरो मे उनका और किशोर महोदय का उच्च और आधीन-अधिकारियो के रूप मे सहयोग हो चुका था। उनका आपस का सम्बन्ध भी बडा सरस और मैत्री-पूर्ण था। कुछ काल तक मि० टामस किशोर मजूमदार से अलग हो गए। तब बहुत समय तक एक दूसरे से सम्पर्क न रह गया।

उस दिन विद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर ५० हजार का दान और किशोर महोदय की विक्षिप्त की-सी स्थिति देख कर मि० टामस को बडी उलझन हुई थी। किशोर महोदय से फिर किसी समय भेट करने के विचार मे वे समारोह समाप्त करके शीघ्र ही चले गए थे। और तभी आज वे उनसे मिलने सैनेटोरियम गए।

मि० टामस ने बडी फुर्ती से कमरे मे प्रवेश किया। किशोर महोदय पलग पर अर्धचेतावस्था मे पडे थे। मि० टामस ने आगे बढकर स्नेह से उनके माथे पर हाथ फेरा। दो मिनट वैसे ही सहानुभूति मे वे पलग के निकट खडे रहे। किशोर मजूमदार जैसे उच्च व्यक्तित्व के अधिकारी की वह दशा देख कर सचमुच मि० टामस को बडा क्षोभ हो रहा था। तभी धीरे से किशोर महोदय ने अपना हाथ ऊपर उठाया जिसको मि० टामस ने द्रवित हो कर अपने हाथ मे ले लिया।

वही कुर्सी घसीट कर मि० टामस पलंग के निकट आ बैठे। कुछ रुक कर उन्होंने अपना सर ऊपर को उठाते हुए कहा, "मजूमदार, हाऊ, हाऊ, यू, सच हेल, हार्टी एण्ड स्टाउट केम हियर, टु दिस सैनेटोरियम।" तब कुछ रुक कर किशोर मजूमदार का बिना कोई उत्तर पाए वे पुनः कहने लगे, "एण्ड, एण्ड, व्हेयर इज योर वाइफ, एण्ड योर लविंग डाटर ।" मि० टामस उत्सुकतावश अनेक प्रश्न करना चाहते थे।

तभी किशोर महोदय ने अपनी एक उगली अपने उच्च भाल पर टिका ली। जैसे वही उनका उत्तर था। भाग्य, लक।

इतने ही मे जीवन एक छोटी टेबिल लाकर मि० टामस के सामने रख गया, तत्पश्चात् चाय की ट्रे।

मि० टामस उन सभी से परिचित थे। जीवन को भी वे भली प्रकार जानते थे। उन्होने बडी आत्मीयता पूर्वक चाय तुरन्त बनाई और पीना प्रारम्भ कर दिया। उन्होने किशोर महोदय से चाय पीने का आग्रह किया। इसके उत्तर मे किशोर महोदय ने बडे धीमे स्वर मे कहा, "नो, थैंक यू।"

मि० टामस को उस समय तक उनकी उद्विग्नता की शान्ति के लिए कोई भी उत्तर नही मिला था, अतः वे बडे उत्कंठित थे।

चाय पीते समय मि० टामस उस सुनसान कमरे को देखते रहे। वहाँ की नीरवता का स्वयं भी अनुभव करते रहे। वे ध्यान कर रहे थे, अपने वे पुराने दिन, जब किशोर मजूमदार उनके सहयोगी थे। लखनऊ मे भी वे कुछ दिन साथ रहे थे। उस समय मि० टामस वहाँ के डिस्ट्रिक्ट-मैजिस्ट्रेट थे और मजूमदार महोदय, ज्वाइन्ट-मैजिस्ट्रेट। तब वहाँ का सामाजिक जीवन, मजूमदार महोदय का वहाँ के अनेक लोगो से निकटतम परिचय, उनका आतिथ्य-सत्कार, रोज शाम को मि० टामस के बगले पर 'ब्रिज' की बैठके। उनकी एक सुन्दर और बडी चपल लडकी और उनकी वाइफ थी। उनको मि० मजूमदार हर समय साथ रखते थे। उनको हर कार्य-क्रम व समारोह मे साथ ले जाते थे। पति-पत्नी मे प्रगाढ प्रेम था। मि० मजूमदार आधुनिक विचारो के बडे 'सोशल' व्यक्ति और तत्पश्चात् एक कुशल शासक थे। पाश्चात्य सभ्यता से स्वयं प्रभावित होते हुए भी जब वे किसी स्त्री या पुरुष को वहाँ की अधूरी नकल करते देखते तो उसकी खिल्ली भी वे मि० टामस के सामने ही उडाया करते थे।

और आज उन्ही किशोर मजूमदार की वैसी अवस्था थी। और वहाँ न उनकी पत्नी दिखाई दे रही थी, न उनकी लडकी। उनकी लडकी तो बडी चंचल थी। वह मि० टामस को इतनी देर एकान्त मे बैठने ही न देती। मि० टामस भी उसको पितृवत् स्नेह करते थे। मि० मजूमदार अपनी इकलौती लडकी को आवश्यकता से अधिक स्नेह करते थे। कभी कुछ क्षणो को यदि वह ओझल हो जाती तो वे भागते हुए मि० टामस के पास जाते। तभी सूचना मिलती कि वह आ गई। मि० टामस का और मजूमदार का इस प्रकार बडा निकट सम्पर्क था। ऐसा संयोग भी रहा कि स्थान-परिवर्त्तन मे कभी मि० टामस कही भेज दिए गए और मि० मजूमदार कही अन्यत्र। तब कभी घूम-फिर कर दैवात् उनकी नियुक्तियाँ एक ही स्थान पर पुनः हो जाती। और ऐसा कई बार हुआ।

चाय समाप्त करके मि० टामस वहाँ कुछ देर एकान्त मे बैठे रहे। किशोर महोदय को निर्बल देखकर उन्होने उनसे कोई विशेष बात न की। अपने एक-दो प्रश्नो का उत्तर भी न पाकर उन्होने समझा, सम्भवतः निर्बलता के कारण किशोर महोदय उत्तर दे नही पा रहे हैं अथवा कुछ विशेष कारण-वश। किन्तु उन्होने फिर उस प्रसग को दोहराया नहीं।

विदा लेते समय मि० टामस ने पुनः किशोर महोदय के मस्तक पर स्नेह-सिचित हाथ फेरा। वे अवस्था मे भी किशोर महोदय से कुछ बड़े ही थे। बड़े क्षीण स्वर मे, "कम अगेन।" कहकर किशोर महोदय ने अपना हाथ मि० टामस के आगे बढा दिया, जिसे आन्तरिक उद्वेग में उन्होने अपने सम्बन्धो की लड़ी जानकर चूम लिया। किशोर महोदय भी इस भेट से बडे प्रभावित हुए थे।

तभी मि० टामस प्रसन्न-मन कमरे के बाहर हो गए। उनकी उत्सुकता अब भी सजग थी। बाहर जीवन को पाकर उन्होने धीरे से प्रश्न किया,

"हल्लो जीवन, यू आर आल्सो चेञ्ज, टोटली लाइक योर मास्टर। टेल मी, वट व्हेयर इज 'ऊर्मि' एण्ड हर मदर।"

"सर, मालकिन अन्दर है......।" उसने भी लड़की के प्रसंग को इस क्षण अव्यक्त ही रक्खा। जैसे उस बात के सामने आने पर लोगो के मुँह पर ताला लग जाता हो।

"फिर आएगा।" कहकर मि० टामस चले गए।

: २५ :

निवेदिता और जयन्त इतना थक गए कि शाम को कहीं भी बाहर निकलने की उनकी इच्छा नही हुई। वैसे आज उनको नैनीताल आए दूसरा दिन था। निवेदिता 'चाइना-पीक' से आकर केवल एक बार इतना कहकर रह गई, "हम लोग आज नही लौट सके। आज लौट चलना चाहिए था। केवल दो दिन के लिए वह आया और जगसिह से कहकर आई थी।" वह सोच रही थी, इतने शीघ्र पापा लौट तो न सकेंगे किन्तु सम्भवतः कोई सूचना ही आई हो......।

किन्तु चलने का नाम नही था। उसकी काया और मन भ्रमण के पुलक से आप्लावित थे; किन्तु थकान से वह चूर-चूर हो रही थी। उसकी स्वर्णिम-काया थकन मे दबन का सुख चाहती थी। अपने पलग पर उसने हिलाफ को खोल कर मुँह तक ओढा और अतिरेक को दाब कर डुबकी-सी सो गई।

जयन्त को कुछ चुहल सवार थी। उसने उसी की पूर्ति के लिए जब लिहाफ़ उघाड़ा तो निवेदिता निद्रानिमग्न थी। मुँदी-पलको मे उसकी सुन्दरता को वह अपलक निहारता रहा और तत्पश्चात् स्वय भी अपने पलंग पर आ लेटा।

'चाइना-पीक' के चिरस्मरणीय दृश्य और निवेदिता के साहचर्य के स्वर्गिक आनन्द की अनुभूतियो मे विभोर वह देर तक विचारो की लड़िया पिरोता रहा और तत्पश्चात् उसे भी झपकी लग गई।

इस समय ५ बजे थे। सायंकालीन आनन्द-उपभोगो की कामना लिए नैनीताल की उपत्यकाएँ भी अंगडाइया ले रही थीं। अंशुमाली अपनी धूप की रुपहली चादर समेट कर रक्तिम आवरण मे अपना विशाल भाल टिकाए हुए था।

चटखती तितलिया अपने आकर्षक आवरण और आभूषणो से सुसज्जित, इठलाते भ्रमर अपने भनभनाते स्वरो और काले-नीले सूटों मे, चपल बालक फुदकती चाल मे "फ्लैट" की ओर बढ रहे थे। माल रोड, आवागमन के तारतम्य को स्थिर किए, पुराने इतिहास लिए, नए इतिहास बनाती यो ही मौन विराजी हुई थी। मन्द वायु मे भी ताल का जल हिलोरे बना और बिगाड़ रहा था।

कहीं दीप जल रहे थे किन्तु उनका प्रतिविम्ब अभी ताल को छू नहीं पाया था।

घोडो की चहल-पहल समाप्त हो चुकी थी। स्केटिंग हाल में पहियो की रगड और पैरो की थिरकन के साथ मन और तन का डोलन पूर्ण गति पर था। निकट के सिनमा-हाल मे 'वेदिग ब्यूटी' देखने के लिए भीड़ मे पंछी, उनको चुग्गा देने वाले परिचित-अपरिचित सभी, पुलक मन लिए डूब-उतरा रहे थे।

ताल मे पडी पालवाली नौकाएँ, सरकती हुई मन्द गति से किनारे लग रही थी। नावो की कई रेसे हो चुकी थी और अब अन्धकार की प्रतीक्षा मे सुरक्षित स्थानो पर पहुँच जाना ही श्रेयस्कर जान नाविक छोर की ओर बढ रहे थे। ताल के अथाह जल मे किसी क्षण घटना घटते देर नहीं लगती थी। जब तक दौडो, दौडो, भागो की पुकार कानो को हिलाए, तब तक वहाँ कोई ज्ञात अथवा अज्ञात ताल की तह तक पहुँच चुकता।

और फ्लैट की भीड, अपने सर्वांग सुन्दर वस्त्रो से सुसज्जित नर-नारी, उभरती बालाएँ, बढ़ते बालक और उनका मिला-जुला उमड़ता सागर, चट्टानो के बीच लहराती नवयुवतिया और नवयुवक। इनमें

सभी श्रेणी और सम्प्रदाय के व्यक्ति, जज, बैरिस्टर, वकील, डाक्टर, दार्शनिक, समाजशास्त्री, नेता, व्यापारी, उच्चाधिकारी, कार्यरत, कार्य से अवकाश प्राप्त सभी होते है। अपने परिवार सहित अथवा अकेले। फ्लैट एक केन्द्र-स्थल है, जहा सध्या समय एकत्र होकर संयोग और सहयोग होता है। विचारो और भावनाओ का आदान-प्रदान होता है। मन, जहाँ कुलाचे भरता है। मन, जहा सिमट कर भी रह जाता है। जैसी जिसकी अनुभूतिया चल रही हो। जैसी जिसकी कहानी टर्न ले रही हो। वह है सगम, मन और तन दोनो का। मैदानो की तीक्ष्णता और उष्णता को तिलाजलि देकर, समर्थ आते है ठंडाने, तृप्ति के लिए, केलि करने। स्वास्थ्य को बनाने, मन को संतोष देने और मन का संतोष मिलता भी है कहीं? जो जन्मा ही है अतृप्ति से नाता जोडे, अपनी उद्दाम भावनाओ से ओत-प्रोत, प्रेम के केवल आध्यात्मिक दर्शन तत्व को लेकर, वह फ्लैट मे केवल फ्लैट ही होकर रह जाता है। उसको जीवन मे सचमुच कही कुछ प्राप्त नही हो पाता और वहा भी ताल के किनारे वह भूखा-प्यासा ही रह जाता है। कच्चा धागा एक झटके मे टूट जाता है फिर लाख मरोडे देने पर भी नहीं जुड पाता।

और कामिनी, कमरे से नही हिली। वेदना की उद्दाम तरंगे लिए वह निकट के कमरे से बहुत दूर थी। वह जान चुकी थी कि निकट का कमरा, ओह, उस कमरे के निवासी, बैरिन प्रीत के विषैले डक, और उन विषैली लहरो से उत्तप्त उसका मन, चट्टानो से टकरा जाने वाली उसकी-सी अशक्त गति, तन और मन, उसके प्राण लेने को आतुर हैं।

वह कभी बीच की कुर्सी पर आ बैठती, पुनः 'बैड' पर पड रहती। कभी कमरे से साथ लगे छोटे से ड्राइग-रूम के सोफे पर जा बैठती।

चलने मे तनिक खटका न होने देती।

उस नीरव कमरे मे उसने कभी कुछ पढा, कभी अपनी डायरी के कुछ पृष्ठ रगे, पुनः लेटी, बैठी और शाम हो गई।

एक मन हुआ कि बाहर बरामदे मे जाकर वह ताल की मोहक छटा देखे, प्रकृति की सुषमा से अपना मौन तादात्म्य जोडे, माल रोड की चहल-पहल देखती रहे, अथवा कही चुपचाप बाहर जाकर बडी रात को होटल लौटे। किन्तु वह कही नही हिली। उसके पैरो ने साथ नहीं दिया। उसके मन ने साथ नही दिया। वह यो ही विक्षिप्त-सी कमरे मे डोलती रही।

नीचे कुँवर साहब के कमरे मे दीना खडा बाते कर रहा था। कुँवर साहब ने उसे ५ रु० का एक नोट देते हुए कहा, "दीना, वाह क्या चीज दिखाई है तुमने, जी खुश कर दिया। लेकिन, ले...कि.. न मै भी जी खुश ही कर दूँगा।" और यह कह कर उन्होने पलग पर लहरियाँ ले ली। कुछ रुक कर पुनः बोले, "अब जाओ, ठीक कसके जल्दी बता जाना .. ।"

दीना चला गया। कुँवर साहब पलग से उठे और बीच की मेज पर आ विराजे। वही उनकी बोतल और गिलास खनकने लगा।

'होटल-हिमालया' नैनीताल का प्रसिद्ध होटल रहा है। यो तो छोटे बड़े अनेक होटल, बाहर से आकर ठहरने वालो के लिए नैनीताल बने हुए हैं। किन्तु 'होटल-हिमालया' उनमे प्रथम श्रेणी का था। आधुनिक सुविधाओ से पूर्णतः सुसज्जित 'होटल-हिमालया' आने वालो का एक आकर्षण था। प्रत्येक प्रकार की सुविधा वहा उपलब्ध हो जाती थी। सभी काम ऊँचे स्तर पर चलता था। वहा के कार्यकर्त्ता, बैरे इत्यादि सब सधे सधाए रहते थे। और आज के युग मे होटल, सरस जीवन का कितना उपयोगी अग बन चुका है, यह भुक्तभोगी ही बता सकते हैं।

'होटल-हिमालया' की शान भी बडी निराली थी। बहुधा सुनने में आया कि वहा बडे-बड़े 'रोमान्स' पूरे हुए है, जिन्होने किसी समय अखिल भारतीय रूप लिया था। कइयो ने अपने प्रणय का सुखमय प्रभात वहा देखा था। आगे चलकर कोई ऊँचे स्तर का सोशलिस्ट नेता बना और कोई बना विदेश मे 'एम्बेसेडर'।

यही आफत की मारी कामिनी भी आ फसी। किन्तु 'रोमान्स' अब उससे दूर हो चुका था। भविष्य के पृष्ठ अभी वैसे ही बिन देखे पडे थे। कुछ स्थायी विचार-धारा बनने का प्रश्न ही कब उठता था?

अवध के ताल्लुकेदार, छोटे-मोटे हिज हाइनेस, कुछ उच्च-शासनाधिकारी—गवर्नमेंट की समर-सीट रही है, नैनीताल। कुछ साहूकार, उनके बिगडैल लाडले, कुछ स्थायी रसिक, इस ग्रीष्मकालीन राजधानी मे आकर सुख लूटते है। बैरे इनसे अनधिकृत धन लूटते और होटल मालिक का 'बार' तेजी से चमकता है। यदि कुछ कमरो में उच्च परिवार ठहरे हैं तो साथ ही ऐसे मनचले भी कुछ कमरो मे अपना काम कर रहे है। वेराइटी का मोल-भाव निरन्तर चलता रहता है। और ताल से भी अधिक तरल बोतलो का बन्द पानी भर-भर जाम लुढकाया जाता है।

कुँवर साहब इन्हीं मनचलो मे अपनी साख जमाए अकेले कई माह से नैनीताल मे हजारो रुपया व्यय करके आनन्द-विभोर पडे थे। होटल मे दीना उनका मुंहलगा बैरा था। वह रात-दिन उनके सौ काम पूरे करता था। उसने ऐसे-ऐसे तो काम किए थे कि अन्य बैरे अब उससे होड़-सी करने लगे थे और उनको भी ऐसे काम करने का मोह बढ़ रहा था। उन्होने भी इधर-उधर अवैध कार्यों की ओर अपनी दृष्टि दौडानी प्रारम्भ कर दी थी। भले भी संसर्ग से बुरे बनते जा रहे थे।

कुँवर साहब ने अकेले होटल मे तहलका मचा रखा था। नित्य नए कृत्य सामने आते थे। पैसे के नशे मे उनके अपने नशे और अपने

दुष्कर्म ढके रह जाते। अनेक ऐसी घटनाएँ उनके द्वारा घटित हो चुकी थीं कि प्रसाद स्वरूप होटल मालिक को भी उसका कुफल भोगना पड़ा था। किन्तु लालच मे वह अपने होटल के स्तर को गिरने नहीं देना चाहता था और निःसकोच कुँवर साहब या अन्य इस प्रकार के कर्मठ लोगों को उसने अपनी छत्रछाया मे पनपा रक्खा था।

रात्रि के लगभग ८ बजे दीना कुँवर साहब के कमरे मे आया और कान में फुसफुसा कर कहने लगा, "हुजूर, कमरा खोल आया हूँ। अभी-अभी काफी की ट्रे देकर आया हूँ।"

मत्त कुँवर साहब काली अचकन, दुपल्ली टोपी, चूड़ीदार पाजामे मे रसराज बने उस समय सोफे पर आधे उढके, केवल सिगनल की प्रतीक्षा मे बैठे थे। दीना के आने की प्रतीक्षा मे उनका मन अकुला रहा था। और लो।. दीना आ ही गया सुसंवाद लेकर।

दीना के आते ही पुलक मन उन्होंने अपने पैरों को कालीन पर उतारा, लखनउआ हलके जूतों मे अपने पैर डाले और बल खाते, हौले-हौले, दबे-दबे, एक नजर आगे और एक नजर पीछे फेंकते आगे बढ़े। कमरे के किवाड यों ही उढकाए। उनमे जोर की आवाज होने पर दरवाज़े के पल्लों को अपने हाथ से उन्होंने थपथपा दिया, जैसे पुचकार रहे हों; और तब आगे दीना को किए चल निकले। कमरे के आगे का भाग तै किया, सारा बारामदा पार किया और लकडी की पहली सीढी पर पैर रक्खा। पैर जरा इक्कीस पड गया, नशे मे धुत्त थे ही। पैर की धमक से सिर तक भनभना गया। किन्तु मस्तिष्क कुछ कस कर काम कर रहा था। सोचा, यह खट-पट तो चौपट कर देगी। तब उसी सीढी पर उसी पैर को पुनः उन्होंने धीरे से रक्खा और बिल्ली की चाल धीरे-धीरे चढ़ने लगे। लकडी की सीढी पर भी उनके नागरा जूतों की खट-पट सहम कर रह गई। .. दीना दूर दबे पाँव पथ-प्रदर्शन कर रहा था।

कुँवर महोदय बड़ा परिश्रम करके ऊपर के बरामदे तक आ पहुँचे। नशे मे पैर भारी पड़ ही जाते है। वे बेचारे क्या करें और फिर एक

सुकार्य करने मे दत्तचित्त थे। दीना ने सकेत से कमरा बता दिया।

नीरवता का साम्राज्य था। सूई के गिरने की भी आवाज होना सम्भव थी। लकडी की सीढी ऊपर के बरामदे के बीचोबीच पहुँचती थी। दाई ओर के कमरे लाइन की लाइन खाली पडे हुए थे। बाई ओर का कमरा २६ नम्बर था जिस मे कामिनी थी और उसके बाद २५ नम्बर कमरा था जिस मे निवेदिता व जयन्त प्रगाढ आलिगन और निद्रा मे निमग्न थे। उनके आगे के दो कमरो मे भी लोग ठहरे हुए थे।

और पहाडो की रात, कितनी काली, कितनी गहन। बडी डरावनी, दिन छिपते ही लगता है, आधी रात बीत गई। बरामदे मे ऊपर छत पर एक सुनसान बल्ब जल रहा था।

जब अन्दर का शैतान जागता है, कामुकता की सीमा पार हो जाती है, मनुष्य का पशु अपना कार्य अधिक सतर्कता से करना आरम्भ कर देता है और जब वह आदी हो जाता है नित्य नए रंग रचाने का, तो उसे कुछ नही सूझता। तब उसका लक्ष्य किसी कर्मनिष्ठ से भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

कुँवर साहब ने कमरे के पल्ले को तनिक ढकेल कर अन्दर पहले कुछ देखना चाहा। सामने पलंग पर कामिनी कोहनी के बल लेटी कुछ पढ़ रही थी। पैरो पर कामिनी ने कम्बल डाल रक्खा था। बीच की मेज पर पिया हुआ काफी का खाली कप और ट्रे रक्खी हुई थी। बैरा उसे लेने नही आया था। बैरा जो ट्रे दे गया था, अन्य कार्य मे लग गया था। उढके द्वार के बीच की संद फैल गई। कामिनी ने समझा, बैरा आ गया अथवा हवा ने अपना काम कर डाला। सामने के अन्धकार को देखकर अनायास उसके मन मे एक डर-सा हुआ किन्तु वह अपने हाथ की पुस्तक मे ही पुनः लीन हो गई।

इतने मे ही उस आधे खुले पल्ले को पूरा खोल कर श्रीमान कुँवर साहब ने कमरे मे प्रवेश किया। अन्दर पहुँच कर बडे इतमीनान से उन्होने उस पल्ले को पुनः अन्दर से उढ़का दिया। हा, बन्द नही किया।

और अब.. कुँवर साहब के सामने कामिनी थी; उनकी पलकों में पलंग पर लेटी एक षोडशी, जो सम्भवतः उनके विचार मे उनके रंग में ही अवश्य रंगी होगी। वह अकेली जो वहा टिकी हुई थी। और कुँवर साहब की पैनी नजर। और कामिनी के सामने था एक अपरिचित .. एक उलझन एक शैतान.. एक क्षण मे वह सोच गई, सचमुच शैतान ...। उनकी रंगीन धजा ही उनको भली प्रकार व्यक्त कर रही थी और फिर इतना साहसिक कार्य बिना पूछे, बिना समझे, बिना परिचय, किसी के...नहीं किसी स्त्री के कमरे मे दिन मे क्या...रात्री मे...यों आराम से घुस आना...।

अपने सामने द्वार के निकट इन छैला को देखकर कामिनी सहमी किंतु परिस्थिति का अवलोकन कर दृढता से उसका सामना करने के ध्यान मे वह पलंग से भूमि पर आकर खडी हो गई और उसने डपट कर कहा, "कौन हैं, आप ?" कोई उत्तर न पाकर पुनः और तीव्र स्वर में उसने आपका मोह छोड कर ठीक-ठीक कहा, 'कौन है, किसे चाहता है... कहीं नशा पिया है...या कमरा भूल गया है...?"

पूर्ण निस्तब्धता, सामने एक धूर्त...सामने एक रूपवती...। और तभी श्रीमान् कुँवर साहब एक-दो पग आगे बढ़े। तत्क्षण कामिनी ने परिस्थिति को और गम्भीर समझ इधर-उधर दृष्टि दौडाई। कहीं कुछ न दिखाई दिया..। हा, सामने बीच की मेज पर काच का गिलास दिखाई दिया। एक पल मे दो पग आगे बढकर उसने काच का गिलास उठा लिया।

सहमते हुए भी उसने जोर से चिल्ला कर कहा, "निकल जाओ, एक पग भी आगे बढाया तो जान ले लूँगी।" किन्तु कुँवर साहब संलग्न थे। उन्हे कहां कोई स्वर सुनाई ही नहीं दे रहा था। 'वह सब तो' वे सोच रहे थे उनका स्वागत है। और उन्होने एक पग और आगे बढाया। तभी कामिनी ने ताक कर काच का गिलास हाथ से तीर की भांति सामने फेंक दिया।

देखते-देखते कुँवर महोदय धराशायी हो गए। गिलास ने उनके मत्थे को भेद दिया था। एक 'झन्न' से आवाज हुई और काच का गिलास चूर-चूर हो कर फर्श पर खील-सा बिखर गया। और गिलास के साथ ही कुँवर साहब ने भी जमीन चूम ली। सर भन्ना गया। चक्कर खाकर वे गुढुरगूँ हो गए। मस्तक से रक्त की धार बह चली। कॉच पर ही गिरने से हाथ की हथेलियो से भी रक्त बह निकला। पाजामे की चूडियो मे भी छेद हो जाने के कारण घुटनो और टखनो से रक्त बाहर आने लगा। उनका सफेद पाजामा बिना पैसे लाल रंग गया। जीवन मे उनको यह पहला हृदय-विदारक अनुभव हुआ था।

"निकल, बाहर निकल जा नीच, बदमाश। चिल्लाती हुई कामिनी द्वार की ओर झपटी। कुँवर महोदय उठ सकने मे पूर्णतः अशक्त थे। रक्त माथे से अत्यधिक बह रहा था। कामिनी ने शीघ्रता में द्वार खोल दिया।

इस प्रकार की चिल्लाहट सुनकर कमरे के लोग और बैरे वहाँ आ गए। दीना का कही पता न था। कामिनी बडी घबराई हुई थी। अधिक पास ही शोर सुनकर जयन्त और निवेदिता भी कमरे के बाहर आकर देखने लगे कि क्या बात है ?

बरामदे की रेलिग को पकडे कामिनी खडी थी और बाहर की ओर देख रही थी। उपस्थित लोग, उत्सुक होकर, क्या घटना घटी है ! इस नीरवता मे क्यो यह चीख-पुकार थी ? इसी को जानना चाह रहे थे। कामिनी ने अभी तक किसी को कुछ नही बताया था। एक-दो व्यक्ति आगे बढ़कर कामिनी से घटना का विवरण जानना चाहते थे कि इतने ही मे नीचे से सीढी चढता हुआ बुड्ढा बैरा ऊपर आया। सम्भवतः उसे घटना का आभास नीचे ही हो गया था। लोगो को एकत्र देखकर और सामने कामिनी को यो खडा देखकर उसने समझा कामिनी ही इस घटना की शिकार हुई है। दीना की बात एक क्षण मे उसे स्मरण हो आई और वह बिना कुछ कहे कामिनी के कमरे मे घुस गया।

एक क्षण मे ही वह बडबडाता हुआ बाहर आया, "आखिर यह पाजी-पन हो ही गया। वह साला दी.. ना का बच्चा। आज साले की जान ले लूँगा।" तभी अन्य लोग भी अन्दर कमरे मे गए और एक व्यक्ति को लोहूलुहान पाया।

सबने एक साथ मिल कर नन्हे खलीफा से प्रश्न किया, "क्या बात है? यह आदमी कौन है?"

"क्या बताऊँ साहब, रईसजादे हैं, हरकतें करते घूमते हैं...।"

तभी नन्हे कामिनी के पास गया और धीरे से उसने प्रश्न किया, "बिटिया, क्या बात हुई?"

"हुआ कुछ नहीं? उस शैतान को कमरे से बाहर घसीट कर डाल दो।" इतना कामिनी ने सामने देखते-देखते ही कहा।

"अरे साहब, एक कुँवर साहब हैं। नीचे ठहरे हैं। कमरे मे घुस आए मालूम देता है। अब क्या किया जाए?" बैरा ने आगे बढ़कर लोगों से कहा। "मैं मालिक को खबर देने जाता हूँ।" कहकर बैरा सीढियो से नीचे जाने लगा।

"निकालो साले को बाहर।" एक सज्जन कह रहे थे।

"निकालो, निकालो साले को मारे जूतों के ठीक करदो, साला...।" दूसरे सज्जन ने आवाज दी।

"कुछ नहीं जी, आप नीचे जाइये। मैनेजर के कमरे मे फोन लगा है। पुलिस को फोन कीजिये, साहब।" तीसरे सज्जन ने अपना मत व्यक्त किया।

"मै जाता हूँ, नीचे।" कहकर चौथे सज्जन नीचे जाने लगे। नीचे से भी सूचना पाकर अनेक व्यक्ति अब तक ऊपर आ गए थे। मैनेजर भी आ गया।

"ऐ मैनेजर, ऐ कैसे लोगो को टिकाते हो अपने यहाँ।" एकत्र लोगो मे एक सज्जन ने मैनेजर को देख कर कहा।

"मैं क्या बना सकता हूँ? मेरे यहाँ तो आप सभी ठहरे हुए हैं।

अब मैं क्या जान सकता हूँ कौन कैसा है ?" मैनेजर ने अपने को पूर्ण सन्तोष देते हुए कहा।

"नही, यह झूठ बात है। मै यहाँ बहुत समय से ठहरा हूँ। इस बदमाश की हरकत यह पहली नही है। और इन मैनेजर साहब की उसे शै रहती है।" एक अधेड महाशय जो अभी-अभी ऊपर आए थे कहने लगे।

"साले का काला मुँह तो देखो। उसे बाहर तो निकालो।" पहले सज्जन ने कहा। "और आप बाहर व्यर्थ खडी है। उसको बाहर निकाला जाए तो आप अन्दर जाएँ।" उन्ही सज्जन ने दोहराया।

कामिनी अत्यधिक क्षुब्ध थी। घटना से अधिक क्लेश उसे यह विचार करके हो रहा था कि जयन्त और निवेदिता यो उसे इस घटना के रूप मे देख पाएँगे। कितनी भद्दी बात है। और रह-रह कर उसे उस शैतान की गर्दन दबोचने का ध्यान आ रहा था।

इतने ही मे नन्हे ऊपर आया। सामने मैनेजर को देखकर वह तुरन्त बोल उठा, "देखो बाबू, कहता था। इस दीना को...और आज फिर वही कुँवर......।

"क्या बकता है......चुप रह।" मैनेजर ने बुड्ढे को डपटते हुए कहा।

तभी जयन्त ने आगे बढ़कर कहा, "ठीक है। बुड्ढा ठीक कह रहा है। ऐसे आदमी को तुमने जानबूझ यहाँ हम लोगो के बीच मे टिका रक्खा है। तुम्हारी भी खबर ली जाएगी।"

कामिनी अकारण ही लज्जा से गडी जा रही थी। जयन्त का स्वर उसने पहचान लिया था। अभी भी वह देख बाहर की ही ओर रही थी।

मैनेजर एक 'एंग्लो-इडियन' था। परिस्थिति की गम्भीरता मे चुप रहना ही श्रेयस्कर जानकर वह मौन हो गया।

कई व्यक्ति कमरे मे घुस गए और रक्तरंजित रसराज कुँवर महोदय

को घसीटते हुए बाहर निकाल लाए। उनका छैलापन इस समय और अधिक भला प्रतीत हो रहा था। उनकी दुपल्ली टोपी की नोक पूर्व-पश्चिम के स्थान पर उत्तर-दक्षिण दिशा का संकेत कर रही थी। माथे से रक्त निरन्तर बह रहा था। नशा हिरन हो गया था किन्तु सम्भवतः माथे की चोट से व अधिक रक्त के बहाव से कुछ मूर्छा-सी हो आई थी। इस पर भी लोगों ने पीछे दो-चार हाथ जमा ही दिए थे।

"देवीजी, आइए आप इधर कमरे मे चली आइए।" जयन्त ने कामिनी को दूर से ही सम्बोधित करके कहा।

और कामिनी की दशा। वह सोच रही थी इस स्थिति के पूर्व वह न मालूम क्या करले? वह अभी जाकर ताल मे डूब मरे। ऐसी घटना, ऐसा बडा अनर्थ, और वह सोच रही थी, जब निवेदिता उसे देखेगी। उस ने कनखियो से देखा, निवेदिता चुपचाप अपने कमरे के द्वार पर खडी है। उसका मन चीत्कार कर रहा था। ओफ ..वह गहरी सास ले लेती थी। जयन्त के आग्रह को उसने सुना-अनसुना कर दिया।

तब जयन्त अपने कमरे के सामने गया और निवेदिता से कहा, "निवे, देखो तुम आगे बढकर पूछो, क्या बात है? और इधर लिवा लाओ।"

निवेदिता ने पग आगे बढाने के पूर्व जयन्त से प्रश्न किया, "क्या वह अकेली ही इस कमरे मे ठहरी हुई है?"

दो-तीन सज्जन अलग खडे बाते कर रहे थे, "अरे भई, पता नही क्या किस्सा है? वह कुँवर जबरदस्ती अन्दर घुस गया ..या जाने क्या बात हो?"

"अरे मामला कुछ और होगा। बाद मे हो गया झगडा।" उन्हीं मे के एक सज्जन ने कहा।

कामिनी के कानो मे स्वर गूँज गए। उसके मन मे आया, इन सज्जन का मुँह नोच ले...किन्तु......।

निवेदिता ने कामिनी के निकट आकर कहा, "आइये......।"

और जैसे वह सन्न रह गई। उसके मुँह से अनायास निकल गया, "अरे...।" और वह बिना एक शब्द बोले वैसी ही अपने द्वार के पास लौट आई...। जयन्त उसके मुख का भाव देख रहा था और उसने 'अरे' भी सुना था। उत्सुकतावश आगे बढ़कर वह निवेदिता से पूछने लगा, "क्या बात है. ....।"

"आपकी बहन... ।"

"मेरी बह... न " जैसे जयन्त को काठ मार गया हो। "माधवी... उसका यहाँ क्या काम?" और वह कामिनी की ओर बढ़ा। उपस्थित समुदाय इस रहस्यवाद से और अधिक हैरान होने लगा। कौतूहल और बढ गया। निवेदिता ने बात कान मे ही कही थी। किन्तु हाव-भाव देखकर लोग उत्सुक हो रहे थे।

आगे बढकर जैसे ही जयन्त ने कामिनी को देखा, उसकी दशा माधवी के नाम को जानने के पश्चात् से भी अधिक भयानक हो गई। उसके मुँह से अनायास निकल गया, "कामिनी .।"

इस कौतुक, इस घटना, इस अपमान को सोच-सोच कर कामिनी अत्यधिक मृतप्राय हो रही थी। अपनो के सामने अपना अपमान और अधिक असह्य होता है। वह रह-रह कर अपने को धिक्कार रही थी।

जयन्त उसके पास से लौट आया। उसने कुछ कहा नही। निवेदिता से उसने कहा, "जाओ उसे कमरे मे पहुँचा दो।"

उपस्थित लोग समझ रहे थे, घटना से सम्बन्धित सामने खडी महिला कुछ इनसे परिचित है। कुँवर साहब भूमि पर औंधे पडे हुए थे। जैसे वहा किसी मनुष्य के स्थान पर कोई पशु पडा हो और निकट के खडे लोगों को कोई सहानुभूति ही न हो।

इसी समय नीचे की सीढी से धडधडाते हुए दो नवयुवक ऊपर आए। सम्भवतः घटना की सूचना उन्हे नीचे ही मिल गई थी। आते ही उन्होंने कुवर साहब को सीधा करके उनका मुँह देखा। तभी उनमे से एक बोला, "मैंने भी इन्हीं का अनुमान लगाया था। ठीक है।

तबियत है आगई। अब आप क्या करेंगे या कोई क्या करेगा ?''

दूसरा युवक बोला, ''करेंगे तो वह, जो अभी इनको मालूम देगा। और कुछ तो मालूम हुआ प्रतीत हो रहा है।'' तब अन्य उपस्थित लोगो को सम्बोधित करके उसने प्रश्न किया, ''मेरी राय मे अभी मरम्मत कम हुई है। कहिए, आप लोगो का क्या ख्याल है?'' और उसने एक ठोकर कुँवर साहब के जमा दी।

तभी एक सज्जन ने कहा, ''अरे आप कहते है मरम्मत। किसी ने छुआ तक नही है। वह तो अन्दर ही इतना परसाद मिल चुका है।''

''तब तो देवीजी ने हिम्मत का काम किया।'' पहला लडका बोला।

जयन्त ने आगे बढकर आवेश मे और दस-पाच लाते कुँवर साहब के जमाई। कुँवर साहब कराह कर रह गए। उठकर भागने अथवा विरोध करने की शक्ति उनमे रही ही कब थी? निरन्तर मार खाते रहे।

नीचे से खट-पट, खट-पट करते हुए सब इंस्पैक्टर और अनेक पुलिस वाले ऊपर आगए। उनके साथ कई और व्यक्ति जो होटल मे ठहरे हुए थे, ऊपर आए। एक अच्छी भीड ऊपर जमा हो गई।

सब-इंस्पैक्टर ने प्रश्न किया ''क्या बात है?''

उपस्थित कई लोगों ने एक-साथ कहा, ''यह हरामजादा, एक महिला के कमरे मे, अकेले जान कर, घुस गया था।''

''फिर।''

''वह तो कहिए, महिला अकेले होते हुए भी बडी साहसिक निकली, उन्होंने किसी प्रकार इसकी मरम्मत करदी और माथा फोड़ दिया। तभी वे बेचारी स्वयं इस अधम के चंगुल से बच गई।'' एक सज्जन ने सब-इंस्पैक्टर के प्रश्न का उत्तर दिया।

सब-इस्पैक्टर ने कुँवर साहब के निकट जाकर कहा, ''आदमी तो कपड़े और लिबास से ठीक-ठाक दिखाई देता है।''

''जी हाँ, कपड़ो और लिबास से भी कोई आदमी ठीक दिखाई देता

है ? तब तो आप लोग अच्छी पहचान रखते है।" जयन्त ने सब-इस्पैक्टर से कहा ।

"इस्पैक्टर साहब, बदमाशो को आप पहचान सकते है। शरीफो को पहचानने के लिए बडे कमाल की जरूरत है।" उन्ही नवयुवको मे से एक ने कहा ।

सब-इस्पैक्टर चुप था। तभी उसने पुनः प्रश्न किया, "वह महिला कहा है ?"

"कमरे मे।" जयन्त ने उत्तर दिया।

"मै उनसे कुछ पूछना चाहता हूँ।" सब-इंस्पेक्टर ने उत्तर दिया।

"पहले इनका चालान करके इनका मुँह काला कीजिए, तब महिला से कुछ पूछ-ताछ कीजिए। हम लोगो ने जो कुछ कहा है ठीक है।" जयन्त ने कहा।

"ऐ श्रीमान जी, जरा खडे तो हो जाइए। इस काली अचकन मे आपकी शक्ल तो देखी जाए।" सब-इस्पेक्टर ने कुँवर साहब के ऊपर झुकते हुए कहा।

"अब यह यो कैसे उठेगा ? बेचारा नशे की झोक मे पस्त हो गया है। एक-आध ठोकर लगाइए तब सीधा होगा।" उस नवयुवक ने कहा।

"ऐ हबीब, इसको सीधा करो और नीचे ले चलो।" सब-इंस्पेक्टर ने पास खडे एक कान्स्टेबिल से कहा।

तीन-चार कास्टेबिलो ने मिल कर कुँवर साहब को सीधा किया। माथे पर के अत्यधिक रक्त को देखकर सब-इस्पेक्टर बोला, "ऐ हबीब, ठहरो।" और उपस्थित लोगो से वह बोला, "यह तो साहब, इसके भी चोट आई है। यह चोट कैसे आई है। मामला जरा पेचीदा है।"

"पेचीदा-वेचीदा कुछ नही। मारे जूतो के सर फर्श कर दिया गया है, बस। और आप इन्हे फौरन यहाँ से ले जाइए।" उस नवयुवक ने फिर कहा।

कान्स्टेबिल कुँवर साहब को थोड़ी दूर घसीट कर, थोड़ी दूर लादकर, सीढ़ियों से नीचे ले गए। उनके पीछे सब-इन्स्पेक्टर भी नीचे उतर गया। निकट के सब लोग और जयन्त भी नीचे चला गया।

जयन्त नीचे से तुरन्त ही ऊपर लौट आया।

कामिनी अपने कमरे में चुपचाप भूमि पर दृष्टि गड़ाए बीच की कुर्सी पर बैठी थी। निकट ही निवेदिता बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठी थी। कभी वह कामिनी को देख लेती और कभी कमरे के सामान को। उसके किसी भी प्रश्न का कोई उत्तर कामिनी ने नहीं दिया था। और तभी दोनों चुप बैठी थीं।

कामिनी लज्जा व संकोच के कारण उस क्षण बोलना क्या किसी की छाया भी निकट नहीं चाह रही थी। और फिर निवेदिता को सामने पा कर।

निवेदिता सोच रही थी, अत्यधिक क्षोभ के कारण वह कुछ नहीं कहना चाहती। यहाँ तक कि घटना का विवरण भी नहीं देना चाहती। किन्तु उनकी बहन यहाँ आई कैसे? उनके जाने अथवा बिना जाने। जाने में आने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तब वह क्या हम लोगों का पता लेने यहाँ आई और पास ही ठहर गई। यह तो बहुत बुरा हुआ। और लौट कर वह हम लोगों के सम्बन्ध में कहेगी...।

तभी जयन्त ने कामिनी के कमरे में प्रवेश किया। जयन्त की दशा स्वयं कामिनी के समक्ष उस समय अपराधी की-सी हो रही थी। और कामिनी, उसको तो उस क्षण इस प्रसंग से अधिक मृत्यु श्रेयस्कर प्रतीत हो रही थी। निवेदिता की उलझन भिन्न प्रकार की थी। वह केवल यही सोच कर मन में असन्तोष का अनुभव कर रही थी कि जयन्त की बहन ने उन्हें इस प्रकार अकेले नैनीताल में देख लिया है और सम्भवतः वह उनके पीछे लगी आई है।

तभी निवेदिता ने जयन्त से प्रश्न किया, "ये आपकी बहन यहाँ आई कैसे, और अकेले इस कमरे मे ठहरी किस प्रकार ?"

जयन्त सन्न था। विचित्र परिस्थिति थी। कुर्सी पर बैठते-बैठते उसने सोचा, कामिनी अब यहाँ अवश्य ही घातक सिद्ध होकर रहेगी।

कामिनी ने अपना सर उठा कर एक तीव्र दृष्टिपात जयन्त की ओर किया।

तभी उसने उसी प्रकार तीव्र स्वर मे कड़क कर कहा, "प्रश्न का उत्तर क्यो नही देते ?"

और कमरा एक क्षण को निःशब्द हो गया।

जयन्त ने साहस बटोर कर कहना प्रारम्भ किया, "निवेदिता, ये मेरी बहन...नही है।" निवेदिता सुनते ही सन्न रह गई। वह सोचने लगी, यह क्या ? आगे क्या रहस्योद्‌घाटन होने को है ? और उसने आँखे फैलाते हुए अपने मुख पर पूर्णतः कौतूहल का भाव व्यक्त करते हुए कहा, "तब—।"

कामिनी ने अपनी दृष्टि भूमि से हटा कर जयन्त के मुख पर जमा ली थी और वह उतावली हो कर सोच रही थी, देखे, जयन्त अब क्या कहने जारहा है ?

तभी जयन्त ने कहा, "निवेदिता, ये मेरे बनारस की मेरी परिचिता हैं और...मैं...।" जयन्त आगे कुछ कह न सका।

मूल घटना से महत्त्वपूर्ण इस समय उस कमरे का वातावरण बना जा रहा था। ऐसा भयंकर मिलन, ऐसी विषम परिस्थिति, इस प्रकार विचित्र रहस्योद्‌घाटन, निवेदिता हैराना थी। वह कुछ-कुछ समझ रही थी। किन्तु इस पर भी सब कुछ सुनना और सब कुछ उसी समय जानना चाहती थी।

"और मेरे बंगले पर तुम्हे भ्रम हो गया था। मेरी बहन माधवी उस समय प्रमोद जी के यहाँ गई हुई थी। ये मुझ से मिलने बनारस ने आई थीं...। अगले दिन ये बनारस के लिए चल दी। किन्तु न

मालूम.. कैसे ये यहा आई और यह घटना ।''

निवेदिता चुप । कामिनी चुप और अब जयन्त भी चुप—

कामिनी के प्रति निवेदिता की अब तक की सहानुभूति न जाने कैसे स्वतः ईर्ष्या मे परिवर्तित होने लगी । वह बोली, ''यस, यू से, ये आपकी परिचित हैं । तब ये इतना बिगड क्यो रही हैं ?

''निकट के कमरे मे आपको आनन्द मनाते देख कर. ' कामिनी ने तिलमिला कर कहा ।

जयन्त सोच रहा था, दो दिन पूर्व जिस परिस्थिति को वह किसी प्रकार बचा पाया था, इस समय वह उससे अधिक उग्र रूप मे सामने आने को है । किन्तु बचाव का कोई उपाय समझ मे नही आ रहा था । जयन्त स्वयं एक भयावह घटना का शिकार हो गया था ।

निवेदिता चुपचाप उठी और अपने कमरे मे चली आई ।

''आप भी जाइए ।'' कामिनी ने दरवाजे की ओर देखते हुए कहा ।

''और कामिनी यह सब हुआ कैसे ? तुम यहाँ आईं कैसे ? अकेले, यो ।''

''आप से परिचय प्राप्त करने !'' कामिनी ने शुष्क उत्तर दिया । कुछ रुक कर वह पुनः बोली, ''व्यर्थ के प्रश्नोत्तरो से कोई लाभ नहीं, अब आप कृपा करके जाइए और मुझे एकान्त मे रहने दीजिए ।''

जयन्त बिना कुछ कहे वहाँ से उठ आया ।

कामिनी ने अन्दर से द्वार बन्द कर लिया ।

●

: २६ :

जयन्त अपने कमरे में न जाकर सीढियो से नीचे उतर गया।

मैनेजर के कमरे मे, सब-इंस्पेक्टर, मैनेजर, बैरे, कुछ एक पुलिस वाले और अन्य यात्री एकत्र थे। सभी कुँवर महाशय को भली प्रकार तिरस्कृत कर रहे थे।

जयन्त के सामने आते ही सब लोगों ने उसे हटते हुए स्थान दिया और कहने लगे, ''इनसे पूछा जाए। इनका कमरा निकट ही था और सम्भवतः वे महिला इनकी परिचित भी हैं।''

तभी नन्हे खलीफा विनम्र भाव से हाथ जोड कर कहने लगे, ''बाबू, सरकार, आप लोगों के सामने मुझे बोलना तो न चाहिए लेकिन तबियत मानती नहीं है। यों ही बुड्ढा हो गया हूँ, देखते-देखते। अब इस मामले को यहीं खत्म कीजिए। बहू-बिटिया जैसे आप सब की वैसे वह। मामला पुलिस मे देंगे, मुकदमा चलेगा, बिटिया को न जाने कै बार कहा से आना पडेगा? कितनी जहमत होगी, उसकी जान को। बाकी आप लोग जैसा समझें।''

गम्भीरता पूर्वक सब लोगो ने बैरे की बात सुनी। एक-दो व्यक्तियो के मुंह से निकला, ''बुड्ढा कहता ठीक है।''

किन्तु कुछ ऐसे भी थे, जो कह उठे, ''अरे यह बुड्ढा भी बदमाश है। यह भी मिला हुआ है। क्या मजे की बाते समझा रहा है? इस्पेक्टर साहब, इस की भी खबर लीजिए। और इस कुँवर के बच्चे

को ले जाइए, बन्द कीजिए। साले को रात मे ही कुन्दी बनाइएगा, थाने ले जाकर!"

तभी एक-दो व्यक्तियों ने जयन्त से प्रश्न किया, "कहिए, आप ने उन देवी जी से कुछ बात की? क्या किस्सा था? आप राय दीजिए क्या होना चाहिए?"

जयन्त की अवस्था उस समय इतनी शोचनीय थी कि जीवन में इतनी विषम स्थिति का अनुभव उसे कभी नहीं हुआ था। सामने बेंच पर कुंवर बैठा था। नशा समाप्त था और माथे पर रक्त जम कर पपड़ा चुका था। आखें ढपी सी हो रही था। किन्तु बैठा वह पूर्णतः मौन था। उसको देखकर जयन्त का खून खौल रहा था। वह सोच रहा था, इसी शैतान ने उसके रग मे भंग किया है। किस प्रकार इसने एक महिला की मर्यादा भग करने की चेष्टा मे अन्य व्यक्तियों को भी कष्ट पहुँचाया है। उसे वेदना दी है। निवेदिता को उद्विग्न किया है। इन लोगों को इस भयावह शीत मे तंग किया है। उसको जो भी सजा दी जाए, कम है। कैसा अप्रत्याशित प्रभाव इस घटना से व्यक्तिगत उस पर पड़ रहा था। वह व्यक्त नहीं कर सकता।

इसी समय नन्हे ने जयन्त को एक ओर ले जाते हुए उससे कहा, "बाबू जी, ऊपर आप ने बिटिया से कुछ बात की?"

"नहीं...।"

"तो चलिए ऊपर उनसे तो पूछा जाए, क्या मामला था और अब क्या होना चाहिए?" जयन्त के पीछे-पीछे नन्हे सीढ़ियों से ऊपर चढ गया। ऊपर जाकर कामिनी के कमरे के बन्द द्वार को उन्होंने अनेक बार खटखटाया किन्तु कामिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। हताश होकर दोनो पुनः सीढियो से नीचे उतर गए।

नीचे बरामदे मे आकर नन्हे ने जयन्त से कहा, "बाबू जी, आप तो उनको शायद जानते हैं। देखिये, मैने मना किया था। मैने कहा था, जमाना बडा खराब है। यो अकेले आने का नतीजा आखिर

सामने आ ही गया। अब आपने क्या सोचा है? बिटिया तो कमरा खोलती नहीं है।"

जयन्त सोच रहा था। कुकर्म की कैसी जीत है। यदि उस पाजी को पुलिस मे दिया जाता है तो सचमुच कामिनी एक दूसरी परेशानी मे पड़ जाएगी और यो छोड देने से दुष्कर्म को बढावा देना भी कहा तक उचित है? और उस कुँवर को सजा तो भली प्रकार मिलनी ही चाहिए, जिससे भविष्य के लिए भी उसके कान हो जाएँ।

जयन्त को विचारमग्न देखकर नन्हे ने पुनः कहा, "बाबू जी, अभी वह कुँवर का बच्चा है नशे मे। देख नहीं रहे है, कैसा बुत बना बैठा है। सवेरे नशा जब ठीक होगा तो इसी दरोगा को १००-५० रु० देकर अपना पिंड छुडाएगा। बाबू जी, ऐसे लोगो का यह रात-दिन का काम है। मै तो दिन-रात देखता हूँ।"

जयन्त सोच रहा था, सचमुच यही सम्भव है। पैसे के बल पर दिन-रात बडे से बडे कुकर्म और पाप इसी प्रकार होते और मिटते हैं। किन्तु यह उसकी समझ मे अब तक नहीं आ रहा था कि होना क्या चाहिए? कुँवर यो बिना दंड के बचना नहीं चाहिए।

नन्हे ने पुनः कहा, "बाबू जी, वह शैतान सिर्फ कमरे मे गया भर था। सर फूट गया है। कितनी लानत-मलामत हो चुकी है। कितनी मार खा चुका है। सजा काफी मिल चुकी है।"

तभी जयन्त ने कहा, "तो एक काम करना चाहिए। इस समय तो कुँवर को उसके कमरे मे बन्द कर देना चाहिए और दरोगा से कहना चाहिए, दो कास्टेबिल बाहर छोड़ जाए। सवेरे कामिनी से पूछकर जो ठीक समझा जाएगा, किया जाएगा।"

"बाबू जी, आप नाम भी जानते हैं। तो वो आपकी जानने वाली हैं। आपने नहीं कहा वो अकेली क्यो आई?" जयन्त को सौ बिच्छुओं के काटने जैसा कष्ट हो रहा था।

रात अधिक हो गई थी। शीत अत्याधिक था और हवा भी सर्राटे

की चल रही थी। कौतूहलवश घटना की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए होटल मे ठहरे हुए बहुत से व्यक्ति यो ही जमे हुए थे। दर्शको ने अपने-अपने कमरो मे जाकर शीत के बचाव का प्रबन्ध भी कर लिया। कोई अपने कमरे से शाल ले आया, कोई ओवर-कोट पहन आया और कोई पतली रजाई ही ओढ कर सामने जम गया। तब कभी सब-इस्पेक्टर से बहस, कभी नया सुझाव, कभी कुँवर को दो-चार गाली, यही चलता रहा। एक सज्जन जो रजाई ओढ़े थे, उन्हे गरमाहट भी अधिक आ रही थी। तभी वे और तेजी मे बोले, "ये बैरे और मैनेजर सब मिले हुए हैं। वह बुड्ढा देखो, क्या इधर-उधर मीठी बातें करके कुँवर को बचाना चाहता है। दरोगा जी, इस उल्लू के पट्ठे को भी बन्द कीजिए। क्या विलायती अचकन पहने रंग दिखाता घूम रहा है।"

वातावरण को इतना गरम देख कर जयन्त की हिम्मत स्वय कुछ कहने की नहीं हो रही थी। किन्तु जयन्त ने सब-इंस्पैक्टर और एक दो अन्य व्यक्तियो को अलग लेजाकर अपनी बात कहदी।

कुँवर साहब नजरबन्दी की हालत मे अपने कमरे पहुँचाए गए और दो पुलिसमैन कमरे के बाहर नियुक्त कर दिए गए। कुँवर साहब को अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ था। उस समय उन्हे अपने अनेक पूर्वजो का स्मरण हो आया। उनके खेल के अरदब मे अब तक कई पक्षी आ चुके थे किन्तु आज का पक्षी, बाज निकल गया, जिसने उन्हे ही दबोच खाया।

तभी नन्हे ने दीना से हुई उसकी बात को जयन्त और इस्पैक्टर से कहा। इस्पैक्टर ने तुरन्त दीना को लाने का आदेश दिया। नन्हे कहता गया, "बाबूजी, नौकरी रहे चाहे जाए। लेकिन अब जिन्दगी ही कितनी बची है। अपने सामने मै ऐसा बुरा काम बरदाश्त नहीं कर सकता।"

अन्य बैरे भी दीना से ईर्ष्यालु थे। तुरन्त दो-तीन बैरो ने पता लगा कर दीना को सड़क पर एक पान वाले की दुकान से घसीट लिया। वे

कहते गए, "अबे यहा छिपा क्या करता है ? कुँवर साहब बुला रहे हैं। और इनाम तो ले आ।" और दो कांस्टेबिलो ने आकर उसका हाथ थाम लिया।

दस-बीस हाथों और इंस्पैक्टर के पाच-सात जूतो की ठोकरो के बीच मि० दीना ससम्मान थाने ले जाए गए।

रजाई वाले सज्जन कह रहे थे, "दरोगाजी, इसकी रात मे अभी चटनी और बनाइएगा।"

रात्रि मे अधिकाश कमरो का वातावरण गम्भीर हो गया था। कमरो मे स्त्रिया भी जग आई थीं और तब अनेक प्रकार के वाद-विवाद व घटना पर आलोचना-प्रत्यालोचना चल रही थी।

सबसे भयावह और रोष से परिपूर्ण वातावरण तीन कमरो मे था। इनमे एक मे थे मरे-पिटे दो पुलिसवालो के पहरे मे बन्द धनपति सेठ कुँवर महोदय। दूसरे कमरे मे सिसकिया भरती, रोष, ग्लानि और अपार दुःख से त्रस्त कामिनी। और तीसरे कमरे मे एक पलंग पर लेटी, घटना मे उलझी, कामिनी मे उलझी, जयन्त मे उलझी, 'बहन नहीं, मेरी परिचित हैं' मे उलझी निवेदिता। इस बात मे उलझी कि वह क्यों इस प्रकार किसी अपरिचित व्यक्ति से बिना जाने-समझे भावुकता और अनुराग मे घिर गई। और उसका मन अत्यधिक कुण्ठित हो रहा था। और वहीं दीवार के सहारे दूसरे पलग पर लिहाफ़ को पैरो पर डाले बैठा था जयन्त। उस समय वह अत्यधिक रोमाञ्चित था। प्रणय-लीलाओं, प्यार, तिरस्कार, और सौन्दर्य की उपासना के बीच आज कुछ क्षण पूर्व दानवता की जो घडिया वह पार कर चुका था, उससे वह विक्षिप्त-सा हो रहा था। जीवन की आपदाओं, घटनाचक्रो, जीवन की कंटकाकीर्ण दुर्गम वीथियो, दम्भ, धूर्तता, भयकरता, अनाचारो और पाप से परिपूर्ण इस संसार के अनुभवो से वह बहुत अशो मे शून्य था।

आलिंगन और चुम्बन की गहराइयों में सभी को सुख मिलता है, सभी को अतिरेक प्राप्त होता है। किन्तु उसके बाद की गरम श्वासों के बीच निविड़ एकान्त में प्राप्त दुर्दान्त वेदना का भार प्रत्येक व्यक्ति नहीं सहन पाता। वह घटना की प्रतिक्रिया से सिहर उठा था। उसके प्रतिफल की कल्पना उसे पागल बना रही थी।

जयन्त को 'चाइना-पीक' का दूसरा ही रूप दिखाई देने लगा। उस सौन्दर्य में भी कहीं दानव छिपा हो सकता है। यह उसकी समझ में अब आ रहा था। और वह चाँदी का पहाड़, उस पर थिरकी एक अप्सरा जैसे कामिनी ही हो। और तब दूर काली चट्टानों से निकल आया हो कोई दानव, एक पिशाच, बड़े लम्बे उसके बाल, उसके नाखून, और 'ही, ही' करता वह आगे बढ़ता चला आया हो उस रूपसी के निकट, और वह अप्सरा चीखी, फड़फड़ाई, बची, भागी, तभी वहाँ फट पड़ा एक ग्लेशियर और उसी में समा गई वह सुन्दरी। और दूर आँखें तरेरता, हू, हू करता रह गया वह दानव और मानव के रूप में कुँवर। जैसे मानव के रूप में दानव उसे सब ओर दिखाई दे रहे हों, जीवन में, प्रत्येक दिशा में, सब ओर। और उनकी दानवता से आच्छादित समस्त मानव समाज, और स्वयं की अनुभव-हीनता, अनर्गल भावुकता, त्यागहीन अनुराग के अकल्पित ववंडर के मध्य उसकी दयनीयता, इस समय उस पर पूर्णतः आक्रान्त थी।

अब तक का उल्लास, प्रेम-क्रीडाएँ, भावी सुखानुभूतियाँ, सब कुछ अनिश्चितता और विषमता में परिवर्तित होता जा रहा था। जैसे चाँदनी रात में शशि पर आया एक काला बादल, जैसे मैदान की चमकती धूप के स्थान पर पहाड़ की गहन अँधियारी रजनी, रोमांस, रोमांच में बदला दिख रहा था। यह घटना, एक कलुष, उसकी, निवेदिता की और कामिनी की उसके पश्चात् की दुरावस्था। वह चिल्लाना चाहता था। वह सोच रहा था, निवेदिता का मन और मस्तिष्क निश्चित रूप से बिगड़ चुका है। तब उसकी स्थिति क्या होगी? यदि

निवेदिता न सभली तो। तो वह पागल हो जाएगा। वह आत्मघात कर लेगा।

निवेदिता सोच रही थी, जयन्त और अपने व्यतीत और आगामी सम्बन्धो की बात। उसने अब तक विवेक से काम नही लिया है। उसने केवल भावुकता से ही नाता जोडा है। जीवन की गहराइयाँ कुछ और सतुलन, कुछ और स्थिरता और 'रिजर्वेशन' चाहती है। तो क्या, वह किसी प्रपंच मे फंस गई? तो क्या, जयन्त की परिस्थिति सदिग्ध है! कामिनी और उसका सम्बन्ध एक चिन्त्य स्थिति का द्योतक है। तब तो निश्चित ही उसने धोखा खाया है। जयन्त पर विश्वास-अविश्वास वह क्या निर्धारित करे? वह पागल हो जाएगी। और उसने इस प्रकार नैनीताल आकर तो कितनी भारी भूल की है। जयन्त ने उसके साथ विश्वास-घात किया है। उसने अपनी कहानी पहले क्यो नही बताई! हाँ, मैंने भी अपनी कथा उसको अभी तक नही बताई है। तभी उसने एक तीखी दृष्टि सामने पलंग पर बैठे जयन्त पर डाली और अपनी दृष्टि दूसरी ओर टिका ली।

वह सोचती गई। और कामिनी के सामने जयन्त की स्थिति, जैसे कोई अपराधी हो। ऐसा-सा ही व्यवहार कामिनी उससे करती है। और अपने प्रति कामिनी की वह तिरस्कार और अपमान पूर्ण दृष्टि। उसने सोचते-सोचते लिहाफ से सर ढक लिया।

निवेदिता और जयन्त मे उस रात कोई वार्तालाप नहीं हुआ। निवेदिता तो सो गई किन्तु जयन्त रात भर न सो सका। घटना के पूर्व का सरस वातावरण, 'चाइना-पीक' का अमर चित्रण, प्यार की बाते, प्यार की घाते, न जाने एक पल मे कहाँ विलीन हो गई। वह सोच गया, कैसा मोहक-नृत्य, गुंजरित हो रहा था। ताल और स्वर की लय में न जाने कैसे असम-सम आ पडी कि वह तिलमिला उठा है, वातावरण सिहर उठा है, भावी गतियाँ विशृंखल-सी हो गई प्रतीत होती हैं।

कामिनी सोच रही थी, मालरोड के किनारे घास पर बैठे हुए एक श्रीमान् ने अपना बेंत उसके सामने जानबूझ कर डाल दिया था। आज श्रीमान्, दूसरे किस साहस से, आगे बढ़ आए। यह सब क्या है? समाज के किस स्तर को ये लोग व्यक्त करते हैं। और पुरुष ने क्या समझ रक्खा है? क्या स्त्री उनकी इतनी नीच प्रवृत्ति भी सहन कर लेगी? क्या इतनी नीच क्रीडा ही आज तृप्ति का नाम है? क्या सौन्दर्य इतना बड़ा अभिशाप है? क्या समाज नाम के जन्तु ने अपने बीच ऐसे कीड़े-मकोड़े ही पनपा रक्खे हैं? और वह दम भरता है प्राचीनता, संस्कृति सभ्यता और आध्यात्मिक लक्ष्य-बिन्दु का? कहता है आत्मा और परमात्मा की बात और ऐसे पामरों के समूल निवारण की भी शक्ति उसमें नहीं। उस घुड़सवार का वह क्या कर सकी, कोर्ट क्या कर पाता? मैंने एक ललकार दी, वे सहम गए। किन्तु आगे किसी और को देखकर उससे भी मोटी हरकत वे कर पाए होंगे। और इन श्रीमान् का क्या होगा? मैं मानती हूँ, मैंने उनका माथा छेद दिया किन्तु मैं मानती हूँ, इतना साहस और प्रत्युत्पन्नमति प्रत्येक में नहीं हो पाती। और तभी अबला और तभी अपनी पाशविकता की विजय। यही नैतिकता है जो समाज के नियमों में पल रही है, युवकों में पल रही है।

और जयन्त और निवेदिता। वही प्रणय और प्रेम का आज सात्विक रूप है। मरम वातावरण में भी नैतिकता न डोले वही गर्व की बात है। मुझे अपने पर गर्व है। मैंने अपने को थाती बनाकर रक्खा है। मन नहीं मान रहा है। निर्मोही जयन्त की आराधना में ही जीवन व्यतीत करूँगी किन्तु मुझे अपने पर मान है।

तभी उसने निश्चय किया रात्रि में ही बिना कहे-सुने वह यहाँ से चली जाएगी। अब उसमें पहले से अधिक बल है। आत्म-विश्वास है। सामान वह वहाँ छोड़ देगी। जयन्त ले जाएगा अपने साथ।

सामने ताल है, सामने बस-स्टैण्ड है। मेज पर उसने एक स्लिप लिखी और वहीं रख दी। उसके ऊपर उसने अपनी 'डायमण्ड-रिस्टवाच'

जो किसी समय जयन्त की एक स्मृति थी, एक उपहार था, उसने उसी के ऊपर रख दी और वैसे ही चुपचाप, शाल ओढकर वह कमरे और दबे पॉव, होटल के बाहर हो गई।

दिन निकलते ही सारे होटल मे गत रात्रि की घटना की चर्चा थी। अपने कमरो से लोग निकलते, कुँवर के कमरे के सामने पुलिस वालो को बैठा देखते और तब आपस मे नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करते। प्रत्येक प्रसंग के दो दृष्टिकोण, दो भावनाएँ और दो पक्ष होते है। अच्छा और बुरा, सहानुभूतिपूर्ण और दुर्भावना से ओत-प्रोत, बात का सीधा-सच्चा निचोड अथवा नमक-मिर्च लगाकर अपनी चटँपटी रुचि की तुष्टि। दिन-रात साथ है, प्रकाश-अन्धकार साथ है, भलाई-बुराई साथ है, प्रीति-अप्रीति साथ है, मान-अपमान साथ है, सुख-दुःख साथ है, शान्ति-अशान्ति साथ है, जीवन-मृत्यु साथ है। सर्वत्र दो पहलू, मानव और प्रकृति के दो पहलू।

कुछ लोगो का ध्यान था दोष निश्चित उस कुंवर का था। कुछ लोग कहते थे, कुछ बढ़ावा बिना मिले ऐसा साहस कोई नही कर सकता। सत्य निष्कर्ष को व्यक्त करने वाला वहा से जा चुका था। और इसी प्रकार दिन-प्रतिदिन जीवन के अनेक गूढ रहस्य, सत्य घटनाएँ अन्धकार के गर्त मे दबी रह जाती हैं।

स्त्रिया और साथ की लडकियॉ अधिक रोमाचित थी। उनकी प्रतिक्रिया, पुरुष के विद्रोह के रूप मे सजग हो उठी थी। एक नवोदित रूपसी ने कौमार्य की अक्षुणता पर गर्व करते हुए कहा, "पापी, उसकी जगह मै होती तो आखे निकाल लेती।"

नियमानुसार बुड्ढा बैरा 'बैड-टी' लेकर २५ नम्बर और २६ नम्बर में गया। उसके साथ एक सहायक और था, जिसने एक ट्रे ले रक्खी

थी। उसको नन्हे ने २५ नम्बर में भेजा और स्वयं २६ नम्बर में जाने लगा। २५ नम्बर का दरवाजा अभी बन्द था, अतः बैरा द्वार खटखटा रहा था। किन्तु २६ नम्बर का दरवाजा खुला देखकर बुड्ढा बैरा कुछ ठिठका। उसके मन में एक आशंका उत्पन्न हुई। इस पर भी वह, "बिटिया, बिटिया !" पुकारता अन्दर चला गया। सामने पलंग पर किसी को न देख कर वह निकट के ड्राइंग-रूम में झाँक आया। तत्पश्चात् वह बाथ-रूम की ओर गया। बाथ-रूम का द्वार भी खुला था, किन्तु पुकार कर वह उसके अन्दर भी देख आया। सब ओर देखने के पश्चात् उसने विश्वास किया कि वह कहीं चली गई ?

दो कमरे के बीच की टेबिल पर दिये कर उसने निकट के कमरे वाले बाबू को पुकारा। दूसरा बैरा अभी तक वैसे ही खड़ा था। भड़भड़ाहट में जयन्त बाहर आया। बुड्ढे बैरा ने पहला प्रश्न किया, "बाबू, बिटिया का कमरा खाली पड़ा है। वहाँ तो नहीं है ?"

जयन्त का नकारात्मक उत्तर पाकर उसने कहा, "बाबू, तो वह कहाँ चली गई ?"

जयन्त भी हतप्रभ रह गया और नन्हे के साथ शीघ्रता से कामिनी के कमरे में गया। उसने भी वहाँ सब ओर देख डाला।

बीच की मेज पर रिस्टवाच की सुनहली डब्बी के नीचे की स्लिप को उसने पढ़ा।

'जयन्त बाबू, सामान साथ ले जाना।' —कामिनी।

और उसके ऊपर उसने रक्खी देखी 'रिस्टवाच' जो उसने कामिनी की विगत साल-गिरह पर दी थी। जयन्त का मन रो पड़ा। उसे आज वैसी ही दारुण व्यथा ने आ घेरा, जैसी दंश का अनुभव अब से कुछ मास पूर्व विरही की दशा में वह कामिनी के लिए अनुभव करता रहा था। उसकी आँखों से आँसू ढुलक पड़े। तो कामिनी कहाँ गई ? कहीं उसने अप...घा...त तो नहीं...? किन्तु अब चारों ओर अन्धकार है। उसका पता लगाना सर्वथा असम्भव है।

उसने कामिनी के सामान को नन्हे खलीफा को बाधने का आदेश दिया। नन्हे ने बडे मरे मन से सामान बाधा। जैसे उनका अपना ही कोई खो गया हो, जैसे उनका अपना ही कोई कही चला गया हो। बाधते-बाधते नन्हे ने जयन्त से कहा, "बाबू, अब बिटिया मुझे क्या मिलेगी? कहीं पता चले तो मुझे खबर कर देना। लेकिन कहा खबर करोगे? अब मेरी नौकरी तो यहा होटल मे क्या रहेगी? खैर!" और उसने एक गहरी निःश्वास छोडी।

नन्हे खलीफा एक साधारण व्यक्ति थे। साधारण स्थिति और साधारण काम। किन्तु उनका हृदय कितना विशाल था। मानवता के प्रति उनका कितना स्नेह था। सत्य से उनका कितना नाता था। नैतिकता मे वे कितना पगे थे। कष्ट मे वे कितना सहायक थे। कर्त्तव्य के प्रति वे कितना सजग थे। आत्म-बलिदान करके भी वे अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हो सकते। पाप के निवारण मे भले ही उन्हे अपनी नौकरी से हाथ धोना पडे किन्तु वे निश्चिन्त, सत्यता का पल्ला थाम कर अनाश्रित और असहाय की पूर्णतः सहायता करने के लिए प्राणपण से सचेष्ट थे। नन्हे खलीफा आज के इस युग मे सात्विक मानव की भव्य प्रतिमूर्ति थे। उस समय की उनकी व्यथा एक पिता की थी, एक मा की थी, एक स्वजन की-सी थी। जैसे उन्हे स्वयं ही इस अनाचारी समाज से घृणा हो रही हो। उनकी नौकरी न छूटी तो वे स्वय अब वहा से चले जाएँगे।

और उन्होंने कामिनी का बैडिग तथा अन्य सामान बाध दिया। उनकी अन्तरात्मा रो दी। जाने वाले के दुःख से अधिक परिस्थितियो पर उन्हे क्षोभ हो रहा था।

जयन्त माथे पर हाथ टिकाए कामिनी के कमरे मे बीच की कुर्सी पर बैठा था। उसके हाथ मे हीरे के नगो की घडी और स्लिप थी। उस समय ऐसा लग रहा था, जैसे एक सलोना पक्षी कहीं उड गया हो अपना पिंजरा खाली छोड कर, खुला छोड कर। तो क्या कामिनी,

अब .इस ससार मे है, नहीं है ? क्या ? निवेदिता की इस समय उसे तनिक भी सुधि नहीं थी। 'बैड-टी' की ट्रे सम्भवतः निकट के कमरे की टैबिल पर यो ही रक्खी हो। निवेदिता जगी या नहीं ?

और एक-एक करके सारा सामान नन्द ने जयन्त के कमरे मे रख दिया। अत्यन्त खिन्न मन और व्यथित तन से जयन्त ने अपने कमरे मे प्रवेश किया।

निवेदिता अपने पलग पर बैठी कभी सामान और कभी जयन्त को देख लेती। तभी जयन्त ने कहा, "निवेदिता, कामिनी कल रात ही कहीं चली गई। यह स्लिप रख गई है।" और जयन्त ने स्लिप निवेदिता की ओर बढा दी। सहानुभूति के पुनः जागरण मे निवेदिता ने स्लिप पढी और वह भी विचलित हो उठी। तो आत्म-ग्लानि मे उसने कहा... और वह स्वय भी क्लेश का अनुभव करने लगी। सहज सहानुभूति मे ओत-प्रोत होते स्त्रियो को देर नहीं लगती। रात्रि का सारा विद्रोह और रोष इस समय लुप्त हो गया और कौतूहल मे वह जयन्त से पूछ बैठी, "तो कुछ अनुमान है, कहाँ गई होगी ?"

"कुछ नहीं।" और जयन्त ने अपने को पलग पर जा पटका। "अरे चाय।" कहकर वह उठा और बैरे को दूसरी चाय लाने का आदेश देने बाहर चला गया।

"निवे चलो घर चलें। मेरा मन यहाँ एक क्षण के लिए भी नहीं लग रहा है।"

"आप से पहले मै तैयार हूँ। निवेदिता ने पलग से उठते हुए कहा।

निवेदिता दबे पाँव और गम्भीर मुद्रा मे होटल हिमालया के ढाल से उतर कर नीचे माल रोड पर आ गई। नैनीताल मे जैसे आज उदासी छाई हो। कहीं कोई चहल-पहल थी ही नहीं। एक धूमिल छाया मे चट्टाने,

ताल की लहरो मे डूब-उतरा रही थी। दर्शक के उत्साह के साथ वातावरण का उत्साह भी खिन्न था। मन की उदासी मे प्रकृति भी सहयोग देना चाह रही थी।

जयन्त, होटल का पैसा चुकाने के लिए मैनेजर के कमरे मे गया। बिल का पेमेन्ट करने के बाद जैसे ही उसने अपना पैर कमरे के बाहर रक्खा, मैनेजर ने विनम्र हो कर कहा, "और साहब, उस 'केस' का क्या होगा? मैने सुना है, वह स्त्री रात्रि मे ही कही चली गई। और उसका सामान आप लिए जा रहे है। लेकिन इस सब की परेशानी हम लोगो पर आएगी।"

"वह तो आनी ही चाहिए।" कहकर जयन्त आगे बढ गया।

"आप लोग मुझ पर व्यर्थ बिगडते है। कल रात को भी सब लोगो ने मुझ से बुरा-भला कहा। बताइए, मेरा क्या कसूर है?" मैनेजर ने साथ ही आगे बढते हुए कहा।

"और आप उनसे पैसा कमाते है, जी।"

"जो हो, लेकिन वह पुलिस केस है।"

"तो आप निबटिएगा।" कहकर जयन्त चल दिया।

बस छूटने मे बीस मिनट की देर थी।

इसी क्षण सामने से गत रात्रि वाला सब-इस्पेक्टर आता दिखाई दिया।

जयन्त ने समझा, कोई नया तमाशा पुनः आने को है। और वह बस की सीट छोड कर नीचे उतर आया।

सब-इस्पेक्टर ने आकर हाथ मिलाया और जयन्त से कहने लगा, "आप जा रहे है। और रात को वह लड़की भी कहो चली गई। आप कुछ बता सकते है कहाँ गई?"

"जी नहीं।"

"और उसका सामान आप लिए जा रहे हैं। सुना है, वह आपके ही घर की थी।"

"तब .. ..।"

"आप को रुकना पड़ेगा पूरी इन्क्वायरी के बाद आपका जाना हो सकेगा। मैंने उन महाशय का चालान कर दिया है।"

"देखिए, मेरा रुकना तो हो नहीं सकेगा। हाँ, यह मेरा पता है। आप वहां मुझ से 'कन्टैक्ट' कर सकते हैं।"

बस की सीट पर निवेदिता मार्ग भर ऐसे बैठी रही, जैसे किसी अपरिचित के निकट बैठी हो।

नैनीताल जाते समय रिक्शे की यात्रा के एक-एक दृश्य, अतीत की स्मृति के रूप मे मन के तार को छेड़ देते। 'चाइना-पीक' की चाँदनी, धूमिल अन्धकार बनकर सामने आती और गहरा विषाद उत्पन्न करती। नैनीताल की लहरे जैसे बड़ी ऊँची उठकर मन के सुख को डूबो चुकी हों।

निवेदिता, जयन्त जयन्त—निवेदिता के सम्बन्ध कुछ अस्थिर हो उठे थे ..।

●

: २७ :

"वेदना मे एक शक्ति है जो दृष्टि देती है। जो यातना सहे वह द्रष्टा हो सकता है।"

कीर्ति प्रमोद की एक पुस्तक लेकर पढने की इच्छा से बाहर बरामदे में आ बैठा। पुस्तक का प्रथम पृष्ठ खोलते ही कीर्ति ने देखा, फाउन्टेनपेन से उपरोक्त वाक्य एक कोने पर लिखा था। जैसे उसको किसी ने आह्वान किया हो। उसने सोचा, यह उसके सिद्धान्तो पर एक चैलेंज है। उसने यह भी समझा, यह लेख केवल श्रीमान् प्रमोद जी के अतिरिक्त और किसी का नहीं हो सकता। पुस्तक के चार-छः पृष्ठ उसने पलटे किन्तु उसका मन उलझा हुआ था। तर्क-वितर्क के दो-दो हाथ हो जाएँ, और प्रमोद स्नानागार मे था। तो कुर्सी तो उसकी किसी बात का उत्तर देने से रही। कीर्ति जैसे फडफडा रहा हो।

"इस जाडे मे भी तुम स्नान मे दस घटे लगाते हो, प्रमोद।" कुर्सी से उठकर प्रमोद को जल्दी लाने के लिए उसने स्नानागार को थपथपाकर एक आवाज़ दी।

"आ रहा हूँ, आ रहा हूँ ..।"

"हाँ, आओ ज़रा, सबेरे ही सबेरे तुम्हारे सिद्धान्तो का प्रतिपादन हो जाए।"

प्रमोद ने अनुमान लगाया, किसी बात पर कीर्ति उखड रहा है और साथ ही यह कि सबेरे ही सबेरे वह प्राण खाएगा। शीघ्र ही प्रमोद

निवृत्त हो कर बरामदे मे आ गया। दलसिंह को उसने जलपान लाने को कहा।

बरामदे में आ कर कंघा करते प्रमोद को कीर्ति ने पुस्तक का पृष्ठ खोल कर दिखाते हुए कहा, "श्रीमान् जी के करकमलों की ही यह कृपा दीखती है, और श्रीमान् के सिद्धान्तों की यही रूपरेखा।"

प्रमोद इधर स्वस्थ था। उसका बल भी बढा था और वजन भी। वह अब मुख की तेजस्विता की निखार मे सुहावना प्रतीत होता था। उसके बलिष्ठ और उभरे कन्धो म अब भरापन दिखने लगा था। हँसते हुए वह बोला, "चाय पियो चाय। सवेरे-सवेरे न उलझो। हाँ, कहिए, लिखा तो मैने ही है।"

"यह सनक ही तो सैनेटोरियम के निकट घसीट लाई है। अरे बाबूजी, मान्टेग्यू ने एक जगह कहा है, 'द मोस्ट सिक आर द लीस्ट सेन्सिबल' और बिल्कुल ठीक है। चाहे जब इसका अनुभव करके देख लिया जाए। यह वेदना और वह टीस, ऐसे जितने भी देखे, सनकी, विक्षिप्त, पिंजर, जैसे मस्तिष्क उनका कहीं किसी आलमारी मे अलग हवा खा रहा हो। जैसे आप, न, सेन्स कोई विवेक जैसे है ही नहीं।" कीर्ति ने पुस्तक को उसी भाति प्रमोद के सामने किए-किए ही कहा।

"मुझे झिक लड़ने की आवश्यकता ही नहीं है.. बाबू साहब मेरा अपना जो कुछ है बहुत शुद्ध और स्पष्ट शब्दो मे आप के सामने लिखा रक्खा है।

"यही कि वेदना लिए बैठे रहो और जीवन के सार उद्देश्यो की पूर्ति स्वतः हो जाएगी। टीस को दाबे रह कर व्यापार, शिक्षा, आफिसो के काम, बडे-बडे अनुसन्धान, डाक्टरो, वकीलो, प्रोफेसरो के काम आप पूरे हो जाएगे। द्रष्टा हो कर भी यदि कोई जीवन मे जूझेगा नही तो उसकी दृष्टि क्या स्वार्थ-साधन करेगी, यह आप ऐसे सनकी दिमाग के आदमी ही भली प्रकार सोच सकते है। कर्त्तव्यो, प्रतिक्रियाओं और उद्देश्यो से दूर भागने वाला ही ऐसे सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर सकता

है। अब सोचिए, आप के वकील साहब पुत्र-रोग की वेदना लिए बैठे रहे कि कोर्ट मे जीवन की आवश्यकताओं और कर्त्तव्यों की पूर्ति करे।

"समझदार अधिक हो न। वह भी एक वेदना है। अपने स्वजनो और स्वतः की सुख-शान्ति के लिए जो वेदना मन मे उठती है, वही कर्त्तव्योन्मुख करके एक शक्ति देती है, एक प्रेरणा देती है। और मान्टेग्यू की बात भी पूर्णतः ठीक है। वह तो मेरे पक्ष मे जाती है। 'द मोस्ट सिक आर द लीस्ट सेन्सिबल।' जो बाते थोथी मान्यताओ और अन्धे समाज से टक्कर लेगी, अहर्निश विचारो और वेदना के वातावरण से सम्प्राप्य जो सत्यतत्व है, उसे आप ऐसे रूढियो से ग्रस्त कूपमण्डूक कैसे सहन कर पाएँगे। वह आप के लिए सेन्सिबल कभी हो ही नहीं सकता। जो जितना बडा चिन्तक होगा, जिसे तुम 'सिक' की ही संज्ञा दे सकते हो, वह सचमुच 'सिनिक' कहलाएगा सेन्सलेस, शा को कितने ही लोग खब्ती कहते है। बट ही हैड ऐ सिकनेस आफ द वर्ल्ड्।

प्रमोद ने आगे कहा, "या आपका आशय यहाँ पहाडो पर पडे रोगियों से है। तब तो आपने अपने ही बताए सिद्धान्त को अच्छा समझा है। यही सही। मृत्यु से आप घबराते क्यो है? मरणोन्मुख रोगी की अन्तर्व्यापी शक्ति की समानता साधारण प्राणी, आप ऐसे जन्तु तो कर ही क्या सकते है? जो शक्ति परिवर्तन मे है, वही उसमे सम्प्राप्य है। मृत्यु के पश्चात् जीवन का अटल सत्य उस परिवर्तित शक्ति का एकमात्र सिद्ध सिद्धान्त है। जीवन ही मृत्यु चाहता है। श्रीमान्जी, इसे पहले समझिए।"

"जी, द ट्रुथ आफ ऐ मैन इज हिज इन्डिविजुयेल्टी, नाट लूजिग हिमसेल्फ इन ब्लिस, बट इन द शार्प पेन आफ कान्सेसनेस। जीवन की गहराइयो मे पैठ कर मोती निकाल लाने मे ही शक्ति है। जीवन की गहराइयो से भाग कर समुद्र या खाई मे डूब मरने मे जो शक्ति और साहस आप महानुभाव खोजना चाहते है, उस सिद्धान्त को मै दूर

से नमस्कार करता हूँ। मृत्यु सत्य है, अवश्यम्भावी है, ठीक। बिल्कुल ठीक। किन्तु कब, समय पाकर, संसार में जीवन का अधिकांश भाग समाप्त करने के पश्चात् ही मृत्यु में जीवन है। जन्मते ही मर जाने में भी क्या आपका सिद्धान्त लागू होता है? तो जीवन ही व्यर्थ है। और जीवन और मृत्यु का सारा खेल ही अनौचित्य का मूल अंग है। क्यों साहब।" कीर्ति ने जमकर उत्तर दिया।

"दलसिंह जलपान की सामग्री लाकर मेज पर रख गया। प्रमोद ने कीर्ति से कहा, "यदि इच्छा न हो तो ये तश्तरियाँ अन्दर ही भिजवा दूँ, वहम के पश्चात् दलसिंह को कष्ट देना था।"

"जी, आप तो अपने सिद्धान्त की पुष्टि मुझ पर ही सोदाहरण करना चाहते हैं। न खिला कर मृत्यु-मुख में पड़ने से तो अच्छा है किसी चट्टान से कूद कर खड्ड में सोने लग जाएँ, चट्टान से चिपट कर। तब न मैं रहूँ न मेरी छाँह।"

"किसी मूर्ख का मृत्यु-गीत पढ़ लिया होगा। अच्छा, चलो यह पकौड़ी की प्लेट पहले पूरी करो।" प्रमोद व कीर्ति जलपान में जुट गए।

पकौड़ी को मुँह में डाल कर घुमाते-फिराते कीर्ति बोला, "जो शान्ति इस प्रिय पकौड़ी और रवे के गरम हलवे में है, वह न जीने में है न मरने में।" दोनों ही विनोद पर अट्टहास कर रहे थे।

अन्ततोगत्वा मनुष्य की गति। जन्म और मरण की चक्की में पिसता उसका अस्तित्व। अपने मन के आगे वह द्रष्टा है। अपने मन के आगे वह शक्तिशाली है। किन्तु प्रकृति उसकी दृष्टि और उसकी शक्ति एक पल में समाप्त कर देती है। अपनी सारी सभ्यता, सारे मद सारे ऐश्वर्य—यहीं-यहीं प्राप्त करके जीर्ण-शीर्ण, थकित, त्रस्त, विकृत, स्नेहार्द्र, तिरस्कृत भी यहीं होकर—यहीं समाप्त हो जाता है वह।

किशोर मजूमदार की दशा दिन प्रति-दिन शोचनीय हो रही थी।

प्रमोद और कीर्ति के सैनेटोरियम जाने पर उन्होने बताया कि एक लाख पचास हज़ार का चेक आज ही सुपरिन्टेन्डेन्ट किग जार्ज सैनेटोरियम के नाम दान स्वरूप भेजा है ।

जीवन और परिस्थितियो से ऊब कर मनुष्य जिस त्याग की बात सोचता है, उसमे वह अपने अस्तित्व तक को समाप्त कर देने को आतुर हो जाता है। धन तब एक गौण विषय होता है उसके लिए ।

तभी किशोर महोदय ने एक बडा-सा कागजो का बंडल प्रमोद को दिया। प्रमोद ने उसे पढा। वह एक 'विल' था। चौदह लाख रुपये का एक प्रकार से दानपत्र, जिसे उन्होने अनेक प्रकार से सार्वजनिक कार्यों मे व्यय करने के लिए निर्देश किया था। इस धनराशि के प्रबन्ध हेतु उन्होंने एक ट्रस्ट का निर्माण किया था। मालती मजूमदार बी. ए., जीवन सिह तलवार बी. एस. सी और प्रमोद कुमार ये तीन व्यक्ति उसके अधिष्ठाता बनाए गए थे ।

प्रमोद को अपना नाम पढकर कुछ आश्चर्य हो रहा था। किन्तु उस ने विचार किया, किसी अन्य व्यक्ति का नाम भी प्रमोद हो सकता है। इस प्रकार इस अतुल धनराशि के सद्प्रयोग की बात सोच कर प्रमोद को बडा सन्तोष हो रहा था ।

कागजो को पढकर प्रमोद ने कागज किशोर महोदय को लौटा दिया। कागज़ो को हाथ मे लेते हुए, कापते हुए किशोर महोदय ने कहा, "आप ने अपना नाम पढ लिया ?"

"मेरा नाम, तो आपने मुझ अपरिचित पर इतना विश्वास व्यक्त कर डाला। मुझ मे इतना सम्बल कहाँ है ?"

"ठीक, ठी.. क है, मैने समझ लिया है। हाँ, दूसरा नाम मेरी पत्नी का है, और तीसरा जीवन का।"

प्रमोद ने विचार किया, जीवन सिह तलवार बी० एस० सी० और जीवन एक ही व्यक्ति।

प्रमोद ने कागज पुनः किशोर महोदय से ले लिए और कीर्ति के आगे बढा दिए।

घर आकर प्रमोद बड़ी चिन्ता मे था। चौदह लाख रुपये की स्टेट और उसका वह भी एक ट्रस्टी। माना कि उसके पिता वकील है और उसने भी लॉ की कक्षाएँ देखी है, पुस्तकें पढी है किन्तु वह अभी कढा कहाँ है? कालेज से निकलने से पहले ही वह भेज दिया गया है. आया है पहाड़, अपनी रोगीली काया और सिमटा मन लिए। अभी वह जीवन की इतनी व्यस्तताओं और व्यवस्थाओं से कितना दूर है। उसे यह भी नहीं मालूम, वह स्टेट कहाँ है? उसमे क्या है, कितनी चल और कितनी अचल सम्पत्ति है? वह अभी किशोर महोदय के निकट जाकर अपना नाम उससे पृथक करा लेगा। किन्तु वह तो 'रजिस्टर्ड-डीड' प्रतीत होता था। किन्तु यह ठीक नहीं है। वह ऐसे झमेले मे कदापि नहीं पड़ेगा। किशोर महोदय को इस कार्य के पूर्व उसकी अनुमति ले लेनी आवश्यक थी। आज वह स्वय ही अनिर्देशित है, अनिश्चित, अस्थिर।

कीर्ति अपनी अलग खिचड़ी पका रहा था, "प्रमोद, क्या बात है, हो भाग्यशाली। एक-दो नहीं चौदह लाख का अधिकार हाथ आया है। पहाड़ आकर यह काम हुआ है बढिया। विदेश जाने के पहले मुझे उसका मैनेजर बना जाना, श्रीमान् जी. सारी स्टेट का चौकस प्रबन्ध रक्खूँगा।'

'कीर्ति, तुम्हे हर समय 'ही-ही' करने मे ही आनन्द आता है। मै उलझन मे हूँ इस फदे को कैसे काटूँ। व्यर्थ का झगड़ा, और तुम अपना राग अलाप रहे हो।'

"ठीक है, तुम अपना नाम हटवा कर मेरा लिखवा दो।"

'अच्छा चुप रहो।"

"छोडो झगडे को। प्रमोद, सोच रहा हूँ, तुम तो सैनेटोरियम से जाकर

अपनी स्टेट का कार-भार सँभालो और मै लूँ एक घोडा। दस पाच मील के इधर-उधर के स्थान देख आऊँ।"

"हर बात मे शरारत ही रहेगी। चलना हो तो चलो, मै भी चलूँ।"

तभी दो घोडो पर प्रमोद और कीर्ति चल दिए, निकटवर्ती दर्शनीय स्थानो को देखने। दो घुडसवार, घुडसवार क्या घोडो पर चढ़े हुए, घुडसवारी उन्हे आती कब थी ? पहाड के घोडो पर जीन कसी होनी चाहिए। घुडसवारी जानने की कोई आवश्यकता नही रहती। और वे कदम-कदम चलते गए पहाडी पगडडी और चट्टानो को लाघते।

कही बाग, कही ऊँचे पेड, कही ऊँची चट्टाने, कही नीची कगारे, कही ढाल जहा घोडो को साध कर उतारना पडता था। और कैसे सधे थे वे घोडे, उन पहाडी स्थानो पर चढने-उतरने के लिए।

कीर्ति कह रहा था, "प्रमोद, इस ट्रस्ट मे तुम तो क्या कुछ बना पाओगे किन्तु जानते हो लोग ट्रस्टो मे किस प्रकार अपने को बडा आदमी बना लेते है।"

"मुझे जानने की कोई आवश्यकता नही है।"

"तुम भी चाहो, तो किशोर मजूमदार के ट्रस्ट की अतुल धन-राशि से, इग्लैण्ड मे बैरिस्टरी पढो। ससार का भ्रमण करो, और जीवन को मौज से बिताओ। किन्तु तुम क्या करोगे ? साधु आदमी...तुम्हारा तो ट्रस्टी होना ऐसा बेकार है, जैसा सामने आकाश मे घुमेडे लेता वह सफेद बादल का टुकडा। उसमे तो बरसने को पानी तक नही।"

दोनो घोडे निकट ही बराबर-बराबर चल रहे थे। केवल उतनी ही चौडी पगडडी थी। प्रमोद अपने घोडे को मोड कर लौट जाना चाहता था। किन्तु वहाँ घोडा मोडने का स्थान ही न था। वह कीर्ति के वार्तालाप से कुछ खिन्न हो रहा था। और वह घोडे पर से एकाएक उतर पडा। कीर्ति ने यो अनायास उसे घोडे से उतर जाने पर प्रश्न किया, "क्यो ?"

"तुम जाओ। मैं नही जा पाऊँगा।" कह कर प्रमोद पीछे से

आने वाले घोडे के मालिक की प्रतीक्षा करने लगा।

कीर्ति समझ गया कि प्रमोद कुछ नाराज हो गया है। तभी उसने स्नेहपूर्ण स्वर मे कहा, "अच्छा आओ, आओ, बिगडो नही। ट्रस्ट न सही, कुछ और बात करेगे। और तुम चाहो कि मै गुम-सुम चलूँ तो चलो, मै भी घर लौट चलता हूँ।"

और प्रमोद पुनः हँसता हुआ घोडे पर बैठ कर आगे चल दिया।

सामने था रामगढ का विस्तृत मैदान, वहाँ के लहलहाते अनेक बगीचे। निकट जाकर प्रमोद और कीर्ति मोहित हो गए। सेवो की डाले लदी-लदी, भरी-भरी, रगीन, रुपहली, सुनहली, भार से भूमि को चूमती हुई। और इस प्रकार के अनगिनत पेड चारो ओर। ओह! कितना सेव वहाँ लदा पडा था!

प्रमोद और कीर्ति ने अपने घोडे एक पेड की छाँह मे खडे कर दिए और पैदल घूमने लगे इधर-उधर। कही स्टाबेरी के वृक्ष झूम रहे थे, कही सेव के पेड हवा के झोको से चाह कर भी बोझिल तन लिए हिल नही पाते थे।

और तभी प्रमोद बोला, "मुझे तो वासना हो रही है, इन्ही पेडो की छाया मे पडा रहूँ, हमेशा, हमेशा ।"

कीर्ति भी मोहक दृश्य का आनन्द लेता हुआ हँसते हुए कहने लगा, "देखो, तुम्ही छेडते हो। फिर अभी कुछ कहूँगा तो घोड़ा संभालते फिरोगे। आप को वासना . हो रही है।"

और निकट की एक चट्टान पर अपने को टिकाते हुए प्रमोद ने हँसते हुए कहा, "वासना न सही एषणा कहूँ। ठीक, ठीक, वासना तो तुम्हारा शब्द है। मेरी दृष्टि मे वह एषणा है।"

"यह एषणा क्या जन्तु है?"

"हिन्दी कुछ और पढो। दार्शनिकता और समाज-शास्त्र मे एषणा का बडा महत्त्व है किन्तु अभी कच्चे हो। कुछ और पढना शेष है...।"

"मुझे इसी मे प्रसन्नता है कि तुम बडे आनन्द मे दिख रहे हो

प्रमोद मुझे इस समय। तुम्हारी इस वासना मे मै तुम्हारा सहयोगी हूँ।"

'फिर वही, वासना तो तुम्हारा शब्द है। मै तो एषणा कह रहा हूँ। दार्शनिक की तर्केषणा, धार्मिक की शास्त्रेषणा, गृहस्थ की पुत्रेषणा, साधु की ईश्वरेषणा, वणिक् की धनेषणा और प्रेमिक की प्रियेषणा .. ठीक है। तुम उसे वासना ही कहना। तुम उसी दायरे मे हो, तुम्हारी वही परिधि है, कुप-मण्डूक तुम उसी मे डूबे रहा।"

"इस ट्रस्ट मे तुम्हे जो लाभ इस समय मिल रहा है वह किशोर महोदय के चौदह लाख मे नहीं मिलेगा मै जानता हूँ। किन्तु ट्रस्ट के धोखे की तरह इसमे भी कहीं धोखा है, मै जानता हूँ।"

निकट ही बगीचे के किसी माली ने दो भ्रमणार्थियो को देखकर पास आते हुए कहा, "सेव खायगा, मीठा-मीठा।" पहाडी माली की मुस्कराहट मे उस निमन्त्रण को सुनकर कीर्ति हँस दिया और बोला, "लाओ, लाओ। वो गोल्डेन वाला।" माली अतिथि-सत्कार की प्रसन्नता मे मुग्धमन सेव लाने चला गया।

प्रमोद कीर्ति की अनेक विचारधाराओ से कभी सहमत नहीं हो पाता। वह सोच रहा था, ट्रस्ट सचमुचच ऐसी छूत है कि कीर्ति क्या प्रत्येक व्यक्ति उसे इसी दृष्टिकोण से देखता है। और कीर्ति कहता भी ठीक है। किन्तु उसे उससे क्या लेना देना? कीर्ति की अन्तर्भावना उसके प्रति कदापि वैसी नही है। किन्तु वह स्वय उस जंजाल मे व्यर्थ उलझा दिया गया है।

और कीर्ति क्या करे? वह तो देखता था किसी भी बात का स्पष्ट रूप, प्रचलित रूप। वह था अत्यधिक स्पष्टवादी। किसी को बुरा लगता है तो लगा करे। दैनिक क्रम और आज के जीवन का जो नग्न चित्र है, उसको वह तीखी दृष्टि से देख कर, घोलघाल कर ऐसा विषभरा प्याला सामने रखता कि न चाहकर भी कडवा विष पीना ही पडता। उसकी भेदक दृष्टि, उसके स्थिर और सशक्त तर्क, ऐसे शिलाखण्ड पर खड़े हो

कर बोलते थे कि उनको काटने के लिए बडे परिश्रम, बडे उपाय और वितर्क रूपी तीक्ष्ण शस्त्र की आवश्यकता होती थी। इस अल्पायु मे भी सुने-देखे, जो कुछ भी उसके अनुभव थे, उन्ही के परिणाम स्वरूप वह एक निर्देशक, एक समीक्षक, एक मित्र, एक विद्रोही की भाति अपना मतदान देता रहता था, सदैव, समय-समय पर।

ट्रस्टो के सम्बन्ध मे जो प्रचलित है, ऐसा भयानक अधेर उनके नाम पर चलता रहता है। कीर्ति का इंगित उसी ओर थी। अपवाद को वह भी मानता है। प्रमोद उस अपवाद मे निश्चित आ सकता है। यह वह जानता था। किन्तु ऐसे कठिन पाश मे फॅसने के पूर्व प्रमोद को आगाह कर देना भी उसका विशेष कर्त्तव्य था। और जब भार आ पड़ा तो उसे निभाना ही चाहिए। किन्तु वासना और एषणा के इस तर्क मे वह देर तक उलझा रहा।

प्रमोद अधीर होकर कभी कोई कटीली बात कह देता था। उसके अपने सिद्धान्त भी बडे ऊँचे से पुकारते थे। किन्तु वह कीर्ति की तरह हर समय बडबड नही करता था। ऐसा उसका स्वभाव ही था।

माली एक छोटी डलिया मे अनेक स्वाद, रूप और रंग के सेव भर लाया। उनमे से अपने भर के लिए थोडे सेव निकाल कर प्रमोद व कीर्ति ने माली को धन्यवाद देते हुए उन सेवो के पैसे पूछे, जिस पर वह माली बिगड गया और अपने हाथ से सब सेव डलिया मे रखने लगा। "आप बड़ा आदमी है, पैसे वाला। हमको पैसा देगा। तुम हमरा मेहमान नेई हेई ..हमरा खातिर तुम .।"

प्रमोद और कीर्ति ने माली के स्नेह को समझा और यह कि पैसे देने की बात से उसे चोट पहुँची है। तब कीर्ति ने उसे सन्तोष दिया, उसे थपथपाया।

वह अपने मन से उनके छुटे सेव और कुछ अपनी ओर से देकर अपने पेड़ो को देखता 'नमस्ते' करके आगे बढ़ गया।

प्रमोद व कीर्ति ने बडे चाव और स्वाद से उन ताजे सेवो को खाया ।

"कहो, एषणा हो रही है कि नही...?"

"नही वासना.. ।" कीर्ति ने सेव के एक टुकडे को मुँह मे दाबते हुए कहा ।

निकट ही से सेव की-सी लाल, सेव की-सी भरी-भरी, सेव की-सी मीठी एक पहाडी तरुणी निकल गई । सौन्दर्य की अनदेखी छटा...।

प्रमोद और कीर्ति घोडो पर सवार हुए और चल दिए। प्रमोद बोला, "और आगे।"

"नही, घर...।"

●

: २८ :

सब मिला कर सात थे।

तीन उनमे सर्कस के जोकरो की-सी कई रगो की मिली-जुली ऊनी कमीजे और नीले-पीले ऊनी पेन्ट पहने थे। दो की वेशभूषा भलेमानुसो की-सी थी। एक काली अचकन, चौडी मोहरी का पाजामा और सर पर फर की टोपी पहने थे, जैसे हिरन की खाल, समेट कर सर मे बाध ली हो। ये छः दिव्य-पुरुष पैदल थे और सातवे महानुभाव खाकी ब्रिजिस और चारखाने का ऊनी हन्टिग कोट पहने, हाथ मे एक छोटा सा बेत लिए, घोडे पर सवार उसे टिकटिका रहे थे। घोडा कुछ अडियल और सूखा-सूखा था।

सभ्य वेशभूषा वाले दो सज्जनो मे एक गबर्डीन का 'ग्रे-सूट' पहने हुए थे और दूसरे सज्जन चेक-डिजाइन की सर्ज का सूट धारण किए हुए थे। आकृतियो मे कालेजपन स्पष्ट भासित हो रहा था। एक सज्जन के कन्धे पर कैमरा व दूसरे के कन्धे पर दूरबीन लटक रही थी।

पहले तीन महानुभावो मे से एक घाघरे-सी फैली हुई नीली पेन्ट पहने थे। उसके ऊपर रूई के गद्दे की-सी चौडी पट्टियो की नीली और लाल रंग की बुशर्ट थी। सर पर गोरखो की-सी नीली टोपी पहने हुए थे। उन को केवल बिगुल हाथ मे देने भर से उनमे पूर्ति हो सकती थी।

दूसरे साहब, सफेद पेन्ट पर बादामी बुशर्ट धारण किए हुए थे। कन्धे पर इनके थर्मस लटका हुआ था। जिस के अन्दर भरी चाय आप

अकेले ही थोडी-थोडी देर मे पी लेते थे। इनकी आखो पर धूप का चश्मा चढा हुआ था। इनके चलने मे एक थिरकन थी, जैसे कही 'बाल-डान्स' की तैयारी मे हो।

तीसरे साहब, ब्लाउज के डिजाइन की पूरी बाहो की बुशर्ट पहने हुए थे, जिस मे दूर-दूर बडे-बडे बेल-बूटे छपे हुए थे। इन की बाहो और कमर की पेटी मे एलास्टिक लगी चुन्नटे पडी हुई थी। ये पीली कार्टराई का भद्दा-सा पेन्ट पहने हुए थे। कन्धे पर इनके दूरबीन लटक रही थी।

घुडसवार महोदय के कन्धे पर भी दूरबीन पडी थी। घोडे की जीन के साथ इनकी बन्दूक बधी हुई थी।

सातो नवयुवक स्वस्थ, सुन्दर, बडे नट-खट, बडे हँसोड, और किसी की भी अवस्था पचीस के ऊपर न थी। जब जिधर जाते, जब जिस दुकान मे घुस जाते, जब जिस फल वाले का झाबा टटोलने लगते, वही एक हलचल मच जाती, वही का सामान तितर-बितर हो जाता। सौदा होने पर दो रुपये के स्थान पर डेढ़ रुपया ही टिका कर वे आगे बढते। दुकानदार कभी कुछ कहता तो कतर-ब्योत का हिसाब उसे बता कर सब उसकी जान को आ जाते। कही गाली-गलौज, मार-पीट, घूँसे-लात, और तब उछल कर सबसे आगे आते वे घोडे पर सवार और पुकार आती, 'मार-मार, शटअप।'

कृपा करके, यह टोली उस छोटी पहाडी बस्ती मे पधार गई। आध घटे मे ही उस छोटी-सी बस्ती मे, उन लाइन की लाइन दुकानो मे, हलचल मच गई। लोग भयभीत हो उठे। चाह कर भी आस-पास के लोग उस दल की ओर न देखते। जिस दुकान के सामने से वह दल चुपचाप निकल गया, वही शान्ति की साँस लेता। और यदि निकट का दुकानदार लपेट मे आ गया तो बाकी के लोग तमाशा देखते। टोली निकली ही थी, घूमने-फिरने, मौज करने, ऊधम मचाने।

अनेक स्थानो मे कहा-सुनी होने के पश्चात् अन्त मे एक व्यक्ति ने पूछ ही दिया, "आखिर आप लोग आ कहाँ से रहे है?"

"जहन्नुम से। कहिए, आप जाना चाहते हैं कि आना।" कई

आवाजे एक साथ आई। प्रश्नकर्ता को अपने प्रश्न का यथोचित उत्तर मिल गया और वह चुप।

तभी प्रश्नकर्ता को छेडते हुए टोली के एक महाशय ने कहा, "माफ कीजिएगा, ये लडके तो बेहूदे हैं। आपके घर मे कोई जगह है या आप कही बता सकते हैं। हम सब लोग ठहरना चाहते है। बहुत भूखे है और बहुत थके भी। और सच-सच, अगर ठीक-ठाक इन्तजाम हो गया तो सारे दगे शान्त हो जाएँगे। जब तक हम लोग यहाँ रहेगे, एक दिन, चार दिन।"

प्रश्नकर्ता सोच रहा था, बेकार उसने इन शैतानो को छेड दिया। किन्तु इस बार उसने युक्ति से काम लिया। निकट ही उसने होटल का पता बता दिया और स्वयं भी उनकी बात-चीत मे रस लेने लगा।

तभी निकट की एक पान की दुकान पर ऊधम उठ खडा हुआ। एक श्रीमान् ने सिगरेट का पूरा पैकेट उठाते हुए पूछा, "कितने पैसे?"

दुकानदार के देवता कूच कर गए, किन्तु साहस करते हुए उसने हँसी के स्वर मे कहा, "टेन आनाज।"

तभी हँसी के साथ दो-तीन आवाजे आई, "ओह, मि० हार्डी, अग्रेजी बोलता है। विलायती।" सभी हँस रहे थे। दूकानदार की उस अग्रेजी ने काम कर दिखाया और तंग करने के स्थान पर सब लोगो का ध्यान मनोरजन की ओर चला गया।

इस पर एक साहब बोले, "नो, नो, नाट टेन, नाइन एण्ड हाफ आनाज।"

"थैंक यू, थैंक यू।" दुकानदार ने दो पैसे मे ही बला टालते हुए संतोष लेना चाहा। किन्तु चौंका वह तब, जब उसके हाथ मे नौ इकन्नियाँ ही आई।

जिन महाशय ने पैकेट उठाया था, उन्होने अपने सर के हैट को उठाकर आधे बालो पर टिकाते हुए और आँखों को तिरछी करके दुकानदार की ओर देखते हुए कहा, "थैंक यू, थैंक यू।" जैसे दुकानदार

तिलमिला कर रह गया हो। यदि वह कुछ अधिकार रखता होता तो सातो को एक लाइन मे खडा करके कोडे लगवाता। और उसने नौ इकन्नियाँ खट्-खट् करके छोटी सन्दूक मे डाल दी।

खट्, खट्, एक, दो चार, छः, नौ......।

"दे यार एक इकन्नी और दे, आदमी भला है, और अग्रेजी बोलता है" साथ के एक श्रीमान् जी ने हँसते हुए कहा।

और सन्दूक मे एक इकन्नी और खट्ट से बोली।

सबने उसके साथ स्वर मिलाते हुए कहा, "वाह . "और सब खिलखिला कर हँस पडे।

और जब कभी एक साथ उठ जाते थे उनके कैमरे, दूरबीने और वही ली हुई स्टिके, किसी पहाडी दृश्य अथवा अकेले मे किसी तरुणी को देखकर। उद्दण्डता का वह चलता-फिरता समूह जिधर जाता उधर ही वातावरण आक्रान्त हो जाता।

उनके शब्दो मे, फेयर-सेक्स का उनके अनुरूप कोई भी सदस्य निकल जाता, तब दिखाई देता जैसे भूचाल आ गया हो। किलकारियाँ, बन्दरो की-सी उछल-कूद, कैमरो की खटर-पटर, और दूरबीनो की भाग-दौड, जैसे सामने १०० मील दूर की वस्तु देख रहे हो ..और अनुमान कीजिए उस कमसिन की दशा का, जिसके साथ उसके होता हो कोई घर वाला। और कही वह अकेली पड गई तो बस, समझिए उनकी सारी सभ्यता चरम सीमा पर पहुँच जाती थी। और ये भले घर के लफगे— जिनके मुँह लग गए थे रामगढ के बगीचो के खट्टे-मीठे सेव, जो देख आए थे बोझिल डाले, सेवो लदी, रंग-बिरगे सेव, बडे, छोटे, मंझोले और तब वे उसी दृष्टि से आकते थे, सामने की वस्तु को।

सबसे अधिक उनका घोडा उनसे परेशान था। उस बेचारे पर एक व्यक्ति के अतिरिक्त अपनी यात्रा का सारा सामान उन्होने लाद

रक्खा था। एक मे एक फसे कई झोले, कम्बलो के बडल, पानी की चार-छः बोतलें, दो अटैचिया और जोते थे उसे चौबीस घंटे। ऊपर से उसकी गर्दन पर बन्दूक लटका रक्खी थी, जो चलते हुए उसके पैरो पर खटपट करती थी।

शाम हो गई। दो सज्जनो ने होटल को देखने के पश्चात् सूचना दी, "उस होटल मे मैनेजर का कमरा इतना बडा अवश्य है कि उसमे बण्डल की भाति लेटा जा सकता है अन्यथा वह होटल है। उसके कमरे है जैसे घोसले।"

"और यह घोडा। इसे तो मैनेजर के कमरे मे ही ठहराना होगा और वह न माने तो हम लोग वहीं ठहरेंगे।" बेचारे मैनेजर की शामत आ गई।

रात मे किसी प्रकार दब-ढक कर सब सो गए। मैनेजर को कहीं अन्यत्र जाना पडा। दुकानदारो ने भी सन्तोष की सास ली, यह सोच कर कि सर्कस के कुछ भालू छूट कर आ गए हैं। अब सुबह फिर घूमेंगे वे सडको पर।

नैनीताल से लौट कर निवेदिता का मन बडा खिन्न था। एक मूक विद्रोह उसके मन मे अनायास स्थान बना चुका था। दो दिन व्यतीत हो गए, जयन्त से उसने भेट नही की। वह कुछ निर्धारित ही नहीं कर पाई थी। आगे की रूप-रेखा क्या होगी? अब जयन्त से आगे सम्बन्ध कैसे होगे? किन्तु अब इस बात का प्रश्न भी क्या उठता है? अब वह जयन्त के जितना निकट पहुँच गई है, उस स्थिति मे तर्क-वितर्क का प्रश्न ही क्या उठता है? वह आगे अपने अधिकार का प्रयोग करेगी। उसे अन्य बातो से क्या सम्बन्ध? किन्तु हाँ, अब वह स्पष्ट रूप से जयन्त की कहानी पहले जानेगी। अपनी आपबीती वह उसे सुनाएगी। तब वह कुछ कह-सुन सकेगी। किन्तु यह अनुभव उसका

नया है। इस स्थिति मे उसे क्या करना चाहिए? जयन्त ने अच्छा नही किया। उसने कुछ बताया नही। और ठीक है, वह बताता भी क्यो? तो क्या उसका उस स्त्री से भी निकट सम्बन्ध है? कितनी बुरी बात है। वह कहा फॅस गई है? किन्तु जयन्त के प्रति न जाने क्यो उसको इतना मोह है? दो दिन से उसे नही देखा है। न जाने कैसा-कैसा लग रहा है। उसे चैन नही है।

जयन्त तो अपराधी की भाति अपने कमरे के बाहर ही नही निकला। किन्तु उसका दोष ही क्या है? कामिनी व्यर्थ वहा चक्कर मे आई और उसने उसे भी अपने साथ घसीटा। और यदि वह निवेदिता का मन स्वच्छ न कर पाया तो, तो उसके जीवन मे कितना विषम आन्दोलन उठ खडा होगा। पुनः वह उसी परिस्थिति मे पहुॅच जाएगा, जिससे उसने किसी प्रकार छुटकारा पाया है। और वह दो दिन से निवेदिता के यहा सकोचवश न जा पाया था। निर्दोष का दोष तो मौन साधना मे स्वय बन जाता है। और निवेदिता, उसे कैसे समझाऊॅ? तभी से उसका व्यवहार बडा नीरस हो गया। तभी वह बस मे मार्ग भर मौन चली आई। वह भी न बोल सका। विचारो मे ही उलझा रहा। आज वह निवेदिता से अवश्य मिलेगा। उसकी शका का समाधान करेगा . . और कामिनी, उसका क्या हुआ? वह कहा है? कहीं नैनीताल ..मे जल ..और वह सिहर उठा।

निवेदिता को पापा की कोई सूचना नही मिली थी। वह जयन्त से भी नही मिली थी। उसका मन अत्यधिक आन्दोलित हो रहा था। वह कुछ संतोष पाने के विचार से बाजार और ढाल तक घूम आने के लिए चल दी।

जयन्त के बंगले के सामने वह ठिठकी। सोचा, जयन्त से मिलती चलूॅ। किन्तु नही, और वह आगे बढ़ गई।

कल की ऊधम-मंडली के एक सदस्य, जिन्हे सिग्रेट से अत्यधिक प्रेम था, जिन्हे सिग्रेट एक क्षण के लिए भी न छोडती थी, जो सोते समय भी सिग्रेट के अधजले भाग को बुझा कर मुँह मे उसका टुकडा लगा कर सोते थे। सिग्रेट पाने की चिन्ता मे अपने साथियो को सोता छोड कर बाहर सडक की ओर चले आए। कल की 'टेन आनाज' वाली दुकान बन्द थी। बिल्कुल सवेरा था। अन्य दुकाने भी खुल रही थीं। सिग्रेट की खोज मे लगभग पैतालीस मिनट उन्होंने व्यतीत कर दिए किन्तु उन्हे सिग्रेट न मिल पाई। जैसे पहाड की किसी कन्दरा मे उन्हे एक बडे खजाने का पता लगाना पड रहा हो।

इस टहलने मे ही उनके पास से निकल गई, वह स्वर्ग-सुन्दरी, कौमार्य की सजीव प्रतिमा निवेदिता। दबे पाव वह आगे बढती चली जा रही थी।

ये श्रीमान् जी थे अकेले। साहस हलका था। सोचने, समझने और देखने भर मे सामने का पक्षी हवा के साथ आगे निकल गया।

और सिगरेट ढूंढे, साथ लगे या अपने साथियो को सूचना दे, इसी असमंजस से पक्षी तो उड गया और ये अब भी बिना सिगरेट पाए होटल लौट आए।

और इनकी दशा, दुविधा मे दोनो गए . ..माया मिली न .और ऊपर से वह मदमाती छाया। जैसे अब परदे की ओट मे हो बिजली का प्रकाश, जिसकी एक किरण उनके मन को छू रही हो। उनका धारीदार नाइट सूट हवा के झोको और शीत का, अब अनुभव कर रहा था। सिगरेट की गरमाहट की झोक इस प्रकार विलीन हो गई।

"अबे ऐ, ओ, उठो, उठो, यह कपूर क्या कह रहा है। यह कहता है, देख आया है छिपी हुई कही उभरती चादनी। अबे ऐ, ओ, उठो, उठो, दूर देख आया है यह कोई हूर ।" शर्मा चिल्लाया।

सभी कुलबुलाए। किसी ने मन ही मन गाली दी और तकिए को दोहरा करके कोई दुबारा अपना सर दबा कर करवट ले बैठा। एक ने

आँखे खोली और बिगडता हुआ बोला, "अरे, ऐ कपूर के बच्चे, सबेरे-सबेरे यह क्या मजाक है? क्यो हम कमसिनो को छेड रहा है। सोने नही देता।" और उसने करवट लेली।

तीसरा बोला, "अबे, हम रात भर सोए ही कब है...।" और अपना तकिया उन्होने नीचे से उठा कर मुँह के ऊपर रख लिया।

एक-एक करके सभी हिल-डुल गए। दो, जो नही चेते थे, कपूर ने उन्ही के कम्बल समेट-समेट कर उनके पैरो के नीचे रख दिए और 'हो हो, हो।' कपूर और शर्मा ने सबको पहाडी हवा का आनन्द दे दिया और एक ने जाकर खोल दी छज्जे की ओर से सामने की किवाड। ओह! जैसे बरफ़ की डली छुपा दी हो किसी ने कानो के पास, पैरो के नीचे। बिगडते, बकते, और गालिया देते सब जग कर बैठ गए। और जैसे हो-हल्ले का रिकार्ड किसी ने लगा दिया हो ग्रामोफोन पर सबेरे-सबेरे। इनमे एक साहब अपने सर को बैठे-बैठे घुटनो के बीच रख कर न मालूम क्या-क्या बडबड़ाते रहे, "पाजी कही के, हमी को तंग करते है। अबे, इस हवा की तेजो मे न्यूमोनिया हो गया तो...वह हूर की बच्ची क्या हमे पानी देने आएगी। कपूर, साला, बदमाश।"

उठे हुए महानुभावो मे चपतबाजी भी चलने लगी। अजमल, जिसे सर्द हवा से फुरहरी आ रही थी और दात किटकिटाते कम्बल उठाने की चिन्ता मे वह इधर-उधर टटोलता घूम रहा था, अपने दात टनटनाते हुए बोला, "अरे, ऐ कपूर, तुझे सिगरेट मिली या नही। ला वे, एक सिगरेट तो दे। अबे हम सबसे यह कब की दुश्मनी निकाली है?"

"देखो बे ओ, इस अजमल को अब कम्बल न ओढने देना।" कपूर ने कहा।

सतीश, राजीव, दत्ता और अन्सार ने अजमल को दूर ढकेलते हुए कहा, "सीधा खड़ा हो बे अजमल के बच्चे, यह कपूर हूर देखकर आया है और तुझे सर्दी लग रही है।"

"अबे इसके साथ तुम भी सब गधे हो गए हो। हूर इसने देखी है कि तुम सबने। वाह बे कपूर, सुबह-सुबह अच्छा मुर्गा बनाया है सबका। सब जागे और सब तेरी ही हाँ मे हाँ मिला रहे है। भई मानते है। अबे तभी तुझे मास्टर कहते है।" अजमल झल्ला कर कह रहा था।

शर्मा ने बहुत सोच-विचार कर कहा, "देख बे कपूर, यह अजमल ठीक कहता है। या तो मुझे हूर दिखानी पडेगी या आज हम सब तेरा हुर्रा बनाएँगे दिनभर। बोल क्या कहता है?"

"ठीक है, ठीक है। बोल बे। तुमने आज खूब उल्लू बनाया है सवेरे-सबेरे।" सब एक साथ बोल पडे।

कपूर सोच रहा था कही वह न मिली या इधर-उधर निकल गई तो? उसका क्या ठिकाना? पक्षी है न जाने किधर फुर्र कर जाए। तब तो बुरी रही। किन्तु आत्म-विश्वास के स्वर मे वह साहस करके कह ही गया, "पक्का. .।"

"तो चले।" कई आवाजे कमरे मे गूज गई।"

"जल्दी चलो, नहीं, मैं नहीं जानता। कहीं इधर-उधर हो जाए।" अपना मन इधर-उधर करते कपूर ने कहा और बहाने के लिए कोई बचाव तैयार रखना ही चाहिए था।

"चलो भाई, तैयार होओ। आज कपूर का भी रग देखना है।" दत्ता, राजीव और शर्मा ने उठते हुए कहा।

अबे तैयार क्या होना है? ऐसे ही चलो। अभी आते है। जाना ही कहा है? और इस बस्ती वालो से तो ज्यादा भले हम यो ही लग रहे है। और देर हुई तो कपूर झट कह देगा, "वह चली गई। और तब हीं, ऊँ, हीं, हीं, और साला रो देगा।" अजमल, अन्सार और सतीश ने शर्मा की बात का समर्थन करते हुए तैयारी प्रारम्भ कर दी।

और सबके सब खटर-पटर, खट्, खट् करते सडक पर आ गए।

सतीश और कपूर अपने नाइट सूटो मे थे किन्तु मारे ठंड के अपने-अपने हाथ छाती से चिपकाए हुए थे। अजमल मियाँ न माने और

कम्बल ही ओढ़ आए। राजीव अपना काश्मीरी चोग़ा जमा आया था। अन्सार सब मे हट्टा-कट्टा था। उसे किसी कपडे-वपड़े की चिन्ता नही थी। वह रात मे सफेद नेकर व बनयान पहन कर सोया था। उमी बाने मे वह सडक पर आ गया। वह बोला, "अबे मै तो ऐसे ही चलूगा। मुझे तो वह देखने से रही। मुझे ही उसे देखना है।"

"अबे अन्सार, वह जादू है जादू, हिप्नोटिज्म। तुझे इस जागिए मे नही दिखाई देगा। ले, यह होटल की दरी लपेट ले।" कपूर ने कहा।

"चलो कम्बल ही सही।" और अन्सार लपकने लगा।

सारा दल सडक मे झूमता, इठलाता आगे बढा। दुकानदार देख-देख कर घूम रहे थे, सबेरे ही पाजीपन शुरू।"

"अबे भाड मे जाए हूर, हम तो पहले चाय पीकर आगे बढेगे।" अन्सार ने एक चाय की दुकान के सामने रुकते हुए कहा। देर क्या लगती थी, सब उसी ओर झुक पडे।

"बाबू, अभी पानी कम गरम है .....।" चायवाले ने बला टालने की नियत से कहा।

"उसे तो हम लोग गरमा लेगे। घबराओ नही, बिना पिए जाएँगे नही।" कपूर ने कहा।

"हाँ, हाँ, जल्दी गरमाओ पानी ..।" शर्मा बोला, और कोयलो पर रक्खी केटली को उठा लिया।

"अच्छा बाबू, अच्छा अभी तैयार करता हूँ।" दुकानदार ने कहा और सात प्याले चाय बनाने मे सलग्न हो गया।

सातो प्याले एक साथ ओठो पर लग गए।

और तत्क्षण लहराती हुई दिखाई पड गई, ढाल से चढ़ती चली आती निवेदिता।

"अटेन्शन, तीन कदम पीछे।" कपूर ने हुकार दी।

तभी दत्ता बिगडता हुआ बोला, "अबे कैमरे और दूरबीने तो कमरे मे सटर-सट कर रही है और साले यहाँ आए हैं, चाय पीने।"

सब चुप थे। जैसे सबसे बड़ी भारी भूल हो गई हो।

सतीश और राजीव ने आधा-आधा प्याला चाय पीकर दुकान के तख्ते पर अपने प्याले रख दिये। "शकर डालो शकर, और दोनों देख रहे थे। सामने की ही ओर।

दुकानदार ने आधी-आधी चम्मच शकर डाल कर दोनो प्यालों को हिला दिया। चम्मच रोक कर दुकानदार भी सामने ही देखने लगा। उसका हाथ थम गया।

अजमल, कपूर और दत्ता की पीठ दुकान की ओर थी और सामने की ओर प्याले ओठों पर लगे थे। अन्सार और सतीश दुकान के लकड़ी के पटरे पर सामने को मुँह किए बैठे हुए थे। राजीव और शर्मा सड़क की दूसरी ओर आकर खड़े हो गए थे। जैसे सबके सब कोई हमला बोलने वाले हों।

और सामने से पग बढाती, गम्भीर मुद्रा में कुछ विचारो मे लीन, चुपचाप निकल आई निवेदिता।

वह आई और आगे बढी चली गई। जैसे एक बिजली-सी कौंधी हो और सब लोग अचकचा कर रह गए हो। सब देखते रह गए। किसी के मुँह से आवाज तक नहीं निकली। वह थी अनिन्द्य सौन्दर्य की मूक प्रशंसा या व्यक्तित्व का प्रभाव। अथवा निश्चित ही हिप्नोटिज्म जिसने दृष्टि बाध दी थी, सबकी एक साथ। इतनी देर मे निवेदिता कम से कम चालीस-पचास कदम आगे जा चुकी थी। उसने इधर-उधर देखा भी नहीं कि उसके प्रसंशक किनारे ही उसकी प्रतीक्षा मे थे।

खट, खट, खट, खट, खट, खट, खट, ..सब प्याले दुकान के तख्ते पर रख गए।

जैसे सबकी आकृतियो पर एक क्षण को पक्षाघात का प्रभाव हो गया हो। जैसे कुछ खो गया हो। जैसे उन्हे किसी ने उल्लू बनाया हो।

"साढ़े दस आने .।" दुकानदार की आवाज गूँजी।

"पैसे तो हम घर भूल आए है।" अन्सार ने तख्ते पर से उतरते हुए कहा।

कपूर ने एक रुपए का नोट दुकानदार के सामने बढा दिया।

"अबे उल्लुओ, अब खडे देख क्या रहे हो ? अबे जाओ, उसका घर तो देख कर आओ... .। कपूर और अन्सार, तुम्ही जाओ जल्दी ।" सतीश ने खीझ कर कहा।

आज की-सी हार उनकी याद मे उस मण्डली की कभी नहीं हुई थी।

"यानी सब चुप। जैसे आवाज पर बिजली गिर गई हो।" शर्मा कह रहा था।

: २६ :

किसी की स्मृति, किसी की प्रतीक्षा, किसी के प्रति खेद, विश्वास-अविश्वास, प्रेमोद्गार के कतिपय मोहक, द्रावक, अनुभव समेटे निवेदिता बगले की ओर बढती चली जा रही थी। जयन्त के बगले के सामने से वह भरा मन लिए निकल गई। आज उसे बडी वेदना हो रही थी। जीवन मे प्रथम वार उसने एक विचित्र वेदना का अनुभव कर पाया था। वह अत्यधिक उलझन मे एक वार चाह रही थी, जयन्त को पुकारे, उससे मिले। किन्तु दूसरी ओर जयन्त के प्रति उत्पन्न नवीन उदासी उसे ऐसा करने से रोक गई और वह अपने बगले की ओर बढती चली गई।

उससे ४०-५० गज की दूरी पर थे अन्सार और कपूर। कपूर के लिए एक अनहोनी बात थी। उसने इस चक्कर मे प्रातः से ही एक सिगरेट तक नहीं पाई थी। किन्तु उसकी बिना चिन्ता किए वह अपने कार्य मे संलग्न था। इस समय उसका मोह सिगरेट से अधिक तीव्रतर था।

अन्सार साथ था किन्तु बिगड रहा था, "यह सतीश का बच्चा, भेज दिया लाम पर। जाओ काटेज का पता लगा लाओ।" अब नौबत आ गई तो जूते खाएँ अन्सार और कपूर। अन्सार तगडे ठहरे मार खा लेगे। और कपूर...इश्क मे कभी ऐसी भी हालत पाई जाती...दे तेरे की...ले तेरे की। और हजरत आग भी तो तुम्हारी ही लगाई हुई है...।

अब जा रही है, अकेली, आगे-आगे, दिखा डालो कुछ बहादुरी।"

"एक जादू है। न जाने आगे बढने की क्या, बात करने की भी हिम्मत नहीं हो रही है।" कपूर ने पगडडी के मोड पर निवेदिता को घूमते देख स्वय उचकते हुए कहा ।

"लेकिन क्या बात है ? कपूर अच्छी चीज दिखाई है सुबह-सुबह ।"

सामने निवेदिता अपने बंगले के लान मे चली गई और तब कमरे के अन्दर ।

"लो अब तो चली गई अन्दर। और यह उसका बंगला। अब लौटे या अन्दर भी चले।" अन्सार ने पुनः कहा ।

"अबे चुप-चाप चला चल। सामने दरवाजे तक तो...।"

और तब सामने से निकल आए उसका बाप या बाप का भाई, या उसी का भाई.. तब। समझे रहना, तुझे फट अकेला छोड कर मै फरार हो जाऊँगा।"

"तो समझेंगे पहाड पर किसी ने देखा ही नहीं।" कपूर ने पूर्ण सन्तोष मानते हुए कहा।

न जाना जाए तो मनुष्य को किसी काम से कोई डर नही। तब मानापमान की भी कोई बात नही।

पापा को दिल्ली आए कई दिन हो गए थे। दो-तीन दिन के विचार से वे पहाड से आए थे। दिल्ली की गर्मी से भी वे हैरान थे। किन्तु महीनो का पिछडा काम था। अधिक समय लग गया। अभी उन्हे एक सप्ताह और ठहरना था।

"मोदी, नीतू को लिख दो। अभी मुझे एक 'वीक' और रुकना है। रीचिंग नेक्स्ट सण्डे।" मोदी को पापा ने आदेश दिया।

मोदी जैसे चमक उठा । जैसे उसके मन की कोई बात पापा ने कह डाली हो ।

आफिस मे आकर उसने पापा की ओर से वैसा ही पत्र लिख कर डाल दिया ।

विलासिता और अनैतिकता के कार्यों मे रात-दिन डूबा मोदी बड़ा ही धूर्त व्यक्ति था । अपने वेतन के अतिरिक्त सैकडो रुपया प्रतिमास वह इधर-उधर करके फूॅक देता था । पापा सब कुछ देख नहीं पाते थे । उन्हे अपनी उस अवस्था मे मोदी पर ही आश्रित रहना पड़ता था । विश्वास करने के लिए उनके पास और कोई व्यक्ति था भी नहीं । वह उनका दूर का सम्बन्धी भी था । और वह अपना काम इतनी चतुराई से करता रहता था कि किसी को उसका आभास होना भी सम्भव न था ।

हॉ, उसके अवैध व्यवहारो की शिकायत निवेदिता ने पाप से अनेक बार की थी । अपने प्रति उच्छृॅखलता की बात भी उसने पापा से कही थी । जिस पर पापा ने उसे बहुत भला-बुरा कहा था ।

मोदी जानता था कि निवेदिता को पा लेने पर वह पापा के सम्पूर्ण धन का भी सहज अधिकारी बन सकता है । अतः वह इस ओर भी अपने हाथ-पैर पटकता रहता था ।

पापा पारसी थे । पारसी समाज मे सौन्दर्य बिखरा पड़ा है । निवेदिता का सौन्दर्य भी अनिन्द्य था । उसके प्रति, समाज के अनेक युवक आकृष्ट थे किन्तु पापा के सरक्षण के कठिन बाध के आगे किसी का साहस प्रकट नहीं हो पाता था । अनेक कारणों से, केवल निवेदिता के कारण से भी, पारसी होते हुए वे स्त्री-स्वतंत्रता के विरोधी बने हुए थे ।

आकर्षित युवको मे से कुछ को मोदी ने उल्लू बना रखा था । वे उसके द्वारा अपना स्वार्थ साधन करना चाहते थे । फ्राम जी से वह न मालूम कितनी बार सिनेमा, रेस्ट्रॉ और शराब जमा चुका था । हीरजी से उसने

सैकड़ो रुपया नगद ही लेकर उसे लासा दे रक्खा था। "आज नीतू को सिनेमा ले आऊँगा। आज उसे ग्रीन मे चाय पर ले आऊँगा। वह तुम्हारी है। जाती कहाँ है? धीरे से पापा ठीक हो जावेंगे।" इत्यादि बातो से मोदी औरो को मूर्ख बनाकर स्वय आनन्द लेता था। निवेदिता मोदी की छाया को नमस्कार करती थी।

एक अनार सौ बीमार। नारी के रूप पर अनगिन भौरो का यो प्रलाप जन्मसिद्ध है अथवा नही, इसका उत्तर देने वाले भी नही दे पाते। न देने वाले दे देते है—अपने सक्रिय व्यवहार द्वारा। इसका उत्तर भौतिक सत्य होगा अथवा प्राकृतिक यह सोच जाना भी चिन्त्य है, यह प्रश्न स्वयं चिन्त्य है।

मोदी को इस प्रकार बड़ा सम्मान, बडा सत्कार और बडा धन मिलता रहता। किन्तु निवेदिता पर विजय वह स्वयं प्राप्त करना चाहता था। सामाजिक घेरे का यह कितना स्पष्ट रूप है।

आज पापा के एक सप्ताह पश्चात् पहाड जाने की निश्चित बात को जानकर उसका मन कुलाचे भर रहा था। यह उसके लिए एक उपयुक्त अवसर है। सोच कर वह योजनाओ के ताने-बाने बुनने मे केन्द्रित हो गया। पापा की अनुपस्थिति मे पहाड पहुँचने के लिए वह पर लगा कर उडना चाहता था। उस दिन, वह दिन भर किसी उधेड़बुन में रहा और अन्त मे उसे कुछ सूझ गया।

न्याय, स्वेच्छा और पात्रता का अपना महत्व है। अपना-अपना एक सुनिश्चित स्थान। यह सिद्ध है, प्राकृतिक भी की विजयश्री उन्ही के हाथों रही है जिन्होने अपने उन विश्वासो, उन सिद्धान्तो का ही पोषण किया है जो न्याय-संगत हैं। वे कार्य, कारण जो स्वेच्छा से हुए है। जिनके पूर्ण होने में कोई प्रभाव, कोई बन्धन न हो। अन्तर्मन जिनका साक्षी हो। वही नैतिक है, वही अपना है, वही सुखकर है। और पात्र-कुपात्र को लेकर ही अप्ने मन की लड़ी बंधती है, टूटती है। अपवाद भी हैं। बन्धन इसके विपरीत फल भी घोषित कर देते है। मान्यताये बरबस

मरोड़ कर रख देती हैं। किन्तु पात्र की मान्यता भी अडिग है। यह नैतिक है, यह सात्विक है, यह स्वाभाविक है।

किन्तु शठता अपना गुण छोड़ दे। शठ अपना कार्य समाप्त करदे यह भी असम्भव है। खल अपनी प्रवृत्ति छोड दे तो जीवन नीरस हो जाए, उत्तेजना नष्ट हो जाए, गति रुक जाए, अनुराग एकाकी होकर फीका हो जाए। विरोध मे मन हिलोरे लेता है, प्रेम पगता है, स्नेह जगता है। बिना विरोध, बिना खेद, बिना कष्ट के प्रेम मे, जीवन मे जड़ता आ जाती है। सुगमता, अनुराग मे विलासिता ला देती है। सरलता जीवन को निष्प्राण बना देती है। सरलता औरो के दुरुपयोग का कारण बन जाती है।

मोदी की शठता—उसकी अभिलाषा कि वह पापा की अनुपस्थिति मे पहाड़ पहुँच जावे, निवेदिता तक, एकान्त मे दौडे—अपना कार्य कर रही थी। वह पापा के पास गया और विनम्र भाव से बोला, "सर, उस 'विल' पर निवेदिता के 'साइन' होने जरूरी हैं।"

"हू सेज, यह कहाँ का लॉ है?" पापा ने डूबे ही डूबे कहा।

"कल अपना 'एटार्नी' कह रहा था।"

"एब्सर्ड, फोन मिलाओ हम बात करेंगे . ..।"

"कोर्ट मे होंगे इस समय.. मै फिर पूछ कर शाम तक बता दूंगा।"

और शाम को ठीक-ठाक करके उसने कह दिया कि निवेदिता के हस्ताक्षर होने ही चाहिएँ।

"देन गो, एन्ड ब्रिग हर . ...एटवन्स।" पापा वैसे ही तकिए पर लुढ़क गए।

कैमरे, दूरबीने और अपने आप मे पूरी तरह से लैस होकर वे सप्त विभूतिया चल दीं—चल दी यूनिवर्स जीतने, अपना मन जीतने, अपने

कर्म जीतने। और सबसे आगे थे, मिया अन्सार और मि० कपूर... ..
अहं .हं...हं।

निश्चित क्या था, कुछ पता नही। जा रहे थे जैसे कही का मार्च हो। सतीश अपने पैर आगे-पीछे डालता मुँह से बीन बाजे की गत बजाता जाता था। उसके मुँह मे लगा हुआ था अभी-अभी एक दुकान से लिया हुआ बीन।

राजीव कन्धे पर बन्दूक संभाले हुए थे। जैसे कही दुश्मन घेरे मे आ पडा हो।

बाजार से निकल कर जब दल, नीरव पगडडी को कुचलने लगा तो लोगो ने समझा कि जा रहे है सब के सब किसी पहाडी चट्टान को हिलाने। चलो कुछ देर को शान्ति मिली।

और क्या करेगे कुछ पता नही? उस बंगले के दर्शन करके लौट आऐंगे, वहा परिक्रमा देगे, चीखेगे, चिल्लाऐंगे, बंगले के मालिक से मिलेगे, उससे मिलेगे, कुछ पता नही। चार-छः घटे चट्टानो से सर मारेगे, जिसे यो देखा है उसे कहीं उडा ले जावेगे—कुछ भी ध्यान नही। बस चलना था, चल दिए। जीवन मे स्वच्छन्द है। मन मे हरियाली है। बस चल दिए। अनुभव और शिक्षा के बल पर आयु उनकी इसी हेतु है। बस इतना सोचने भर की क्षमता इनमे भले ही है। अन्यथा ये क्या सोच पाते है, ये स्वय नही जानते।

और कपूर साहब के तो सचमुच मीठा-मीठा दर्द भी होने लगा था। उन्होने ही नई खोज की थी। आज ऐसा सा दर्द किस को नहीं होता? बहुत बडी बात है, साहब, आत्म-समर्पण और आत्म-विस्मृति की बात। आज सब को इसका अच्छा ज्ञान हो गया है। सभी अमर प्रेमी है। बनते देर क्या लगती है? दस मिनट, पाँच मिनट।

ढाई अक्षर प्रेम को पढ़े सो पण्डित होय.।

और इनको पण्डित होना ही है। रिसर्च स्कालर बनना है।

किताब को पढ कर भी कोई कालेज को पार कर पाया है ?

हा, तो दल आगे बढ रहा था। कम-से-कम इस समय एक लक्ष्य तो था ही। और जीवन के किसी क्षण भी एक लक्ष्य बन सके। कैसा... बस यही गाडी अटकती है।

अन्सार ने ऊबते हुए कहा, "वह है भइया, ताजमहल !" और वह आगे के बजाए सब से पीछे हो गया।

कपूर ने प्रश्न किया, "अन्सार यह क्या.. ?"

"भई मेरा काम पूरा हुआ ..अब आगे का ..मार खाने का काम मुझ से पूरा न होगा। उसके लिए आप लोग शेर हैं। चलिए-चलिए, आगे बढिए, मेरा क्या सब मुँह ताक रहे हैं. ?" अन्सार ने वातावरण मे उत्तेजना लाते हुए कहा।

बगले से दस-बारह गज दूरी पर किसी ने दूरबीनें संभाली, किसी ने कैमरे को यो ही 'क्लिक' किया। सबकी आखे उचकने लगीं। कन्धे फूल गए, एडिया उठ गई। और राजीव, उनकी बन्दूक क्या करती ? किन्तु अन्सार की जगह वे आगे आए और तमक कर बोले, "अबे कपूर, इसकी तो खिडकिया और दरवाजे सब बन्द हैं। यही बगला है, उस हूर का। अबे बगला है कि सन्दूक।"

"पहाडी बंगले ऐसे ही होते हैं।" कपूर ने उत्तर दिया।

"और उनमे रहने वाले।" अजमल ने सामने की चट्टान को टटोलते हुए कहा।

"आप ..हीं ..हीं।" कपूर ने अजमल को खिझा कर दाँत दिखाते हुए कहा। और सब हॅस पडे।

बगले को सब ओर से बन्द देख कर जयन्त सचमुच लौट पडा था। उसे यह भी ज्ञात न था कि पापा अब तक आए हैं या नहीं। निवेदिता से न मिले उसे जैसे एक युग बीत गया हो।

जयन्त के पास से निकलने पर सतीश ने छेड़ा, "क्यो साहब, आप यहीं रहते है...मेरा मतलब आप पहाडी नही है .कही बाहर से आए है ? जो हो, आप बता सकते हैं इस सामने वाले बगले मे कौन रहता है ..क्या नाम है. .क्या काम है ?"

जयन्त ने समझा दल कुछ भले लोगो का ही है। किन्तु इन्हे इस बंगले वाले से मतलब। यो ही मनोरजनार्थ यह मटरगस्ती हो रही है। अन्यथा ये निवेदिता को क्या जाने ? जो हो। उसने साधारण सा उत्तर दे दिया, "मै किसी के बगले का पता नही लगाता फिरता।"

सातो के लिए तिलमिला देने वाली बात थी। और सामने उन्ही की तरह दिख रहा था एक लहलहाता युवक, उनमे प्रत्येक से अधिक सुन्दर, स्वस्थ और एक ही बार मे उखाड दिया उसने. .।

फिर भी यो रह जाना उनकी प्रकृति के तो विपरीत ही था—पूर्णतः। कपूर ने निकट आते हुए कहा, "मालूम तो आप भले आदमी देते है।"

"और आप . ।"

"हम भी.. ।"

"हर्गिज नही ..यो इठलाते चलना, राह चलतो से व्यर्थ की छेड़-छाड़ भलमनसाहत नही.. ।"

"तो क्या है ?" अजमल ने जयन्त को धक्का देते हुए कहा. .।

"बेहूदगी...।"

और आवाज आ गई, "मार साले को. .बहुत बडबडा रहा है।"

जयन्त ने उन सबके देखते-देखते पलक मारते अपने जेब मे पड़े रिवाल्वर की मैगजीन भरी हुई दिखा कर कहा, "देखो बे . साले, सुअर ..एक भी इधर बढा तो सूट कर दूंगा .।"

और मैगजीन को सचमुच आँखो से भरी देखकर सातो के देवता

कूच कर गए। सारी शैतानिया हिरन हो गई । जैसे सबको लकवा मार गया हो।

"और एक जबान भी निकाली तो...साले बदतमीज कहीं के।"

घाटा यह था कि राजीव की बन्दूक खाली थी। और उसकी पेटी होटल मे थी। अन्यथा उस क्षण कुछ भी अनर्थ हो जाना सम्भव था।

किन्तु सातो की दशा! जैसे किसी बहेलिये ने ऊपर से जाल फेंका हो और सबको नाथ दिया हो। मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। मौत का डर भयानक होता है। आज पहला अवसर था जब जीवन में इस प्रकार उन्होने मुँह की खाई थी। कोई चारा नही था। सारी हेकड़ी हवा थी।

और वे सोच रहे थे, उन्ही के सा एक बखेड़ा सामने भी था।

जयन्त न माना, और ललकारते हुए बोला, "क्यो, इतनी ही दमदारी थी।" उसने और छेड़ा, "अबे हर मोहरा एकसा नही होता। चलो जाओ अपना काम देखो।" तब और तेज स्वर मे उसने कहा, "जाओ, बढ़ो आगे ..बढो ।"

और दात कटकटा कर सब धीरे-धीरे आगे बढ़ गए। अन्सार सोच रहा था, किसी प्रकार मिल पाता तो चट्टान से नीचे एक हाथ से फेंक देता। किन्तु सामने रिवाल्वर है। सभी सोच रहे थे, कच्चा चबा जाते। किन्तु हाथ मे रिवाल्वर है। सभी सोच रहे थे जैसे राह मे कोई डाकू मिल गया हो।

उन सबके पचास पग आगे बढ जाने पर जयन्त मुड़ कर घर की ओर चल दिया। रिवाल्वर उसने अब भी हाथ ही मे ले रक्खा था।

अनिर्दिष्ट सातो लगभग एक मील निकल गए। किसी ने एक दूसरे से बात नहीं की।

धीरे से अन्सार बोला, "अबे क्या सबका एक साथ बाप मर गया!

और इतना क्यो डर गए थे। क्या साला सूट कर देता ?"

"तुम भी तो थे.. ।" सतीश ने पश्चात्ताप और क्षोभ के स्वर में कहा।

"कुछ भी हो .हम सभी हिजडे साबित हुए। और मैं पूछता हूँ, किस काम से चले थे। उसे छेडने की क्या जरूरत थी ?" अन्सार ने पुनः खिन्न स्वर से कहा।

"खैर, जिन्दगी भर याद रहेगा।" शर्मा ने कहा।

"अब वापस तो लौटो।" अजमल ने भुनभुनाया। और सब लौट पडे।

लौटते समय बंगला पुनः सामने आया। इतनी हार हो जाने के बाद अब यो ही लौट जाना और लज्जा की बात थी। उन्ही के कई विचारो मे डूब मरने की बात थी। और शैतानी कटूक्तियो, ताडनाओ और अप्रिय अनुभवो के पश्चात् भी छूटती कब है ?

अन्सार, अजमल और शर्मा ने मिलकर मना किया और कहा कि चुपचाप घर चला जाए किन्तु अन्य लोग न माने।

सतीश बोला, "नही बे, हम नही जाएँगे। जा बे कपूर, अन्सार को ले जाकर दरवाजे पर आवाज तो दे।"

"देखो बे मैं नही जाऊँगा. ....।" अन्सार ने बिगडते हुए कहा।

"अब यह नही हो सकता।" सतीश बिगड़ते हुए बोला।

"अब इस छेडछाड़ से क्या उससे बदला ले लोगे ? मैं पूछता हूँ।" अन्सार ने स्वस्थ मत प्रकट करते हुए कहा।

"कुछ कोफ्त तो कम होगी...।" राजीव ने समर्थन के स्वर मे उत्तर दिया। और बहुमत से 'एक्शन' की बात निश्चित हो गई।

अनैतिकता और अनियमन का ऐसा-सा ही स्पष्ट रूप है। जब संस्कारो में कलुष आ जाता है तो कुटेव घटने के स्थान पर बढते हैं।

दुःसाहस भी तो साहस है। यह कितना बड़ा सन्तोष है।

शैतान जगा, शरारत फिर उभरी, चुलबुलाहट न मानी। राजीव, सतीश, दत्ता, अज्मल और शर्मा सामने के टीले पर दूर-दूर फैल गए, बन्दरो की तरह, सामने को गर्दन और आँखे निकालते. .। दूरबीनें सभाले, कैमरे साधे। निश्चित हो गया, कपूर और अन्सार ही पुकारेंगे और वही निकल आई तो कैमरे और दूरबीने अपना काम करेगी।

कपूर ने बन्द कमरे के द्वार को खटखटाया। अन्सार पास ही खड़ा था। हट्टा-कट्टा आदमी। यदि हाथ-पैरो की बात आई तो अकेला कई को काफी होगा। लेकिन पिस्तौल-बन्दूक से वह घबराता है।

और यह क्या?

अन्दर से कोई उत्तर नहीं आया किन्तु सामने गेट से आते हुए पीछे खडे हो गए दो व्यक्ति। एक डोटियाल सर पर सूटकेस और होल्डाल लादे और दूसरे सज्जन सभ्य वेशभूषा मे सूट, टाई और हैट चढाए।

कपूर और अन्सार की सास की गति रुक गई, तीव्र हो गई।

अपरिचित ने प्रश्न किया, "कहिए. .।"

और कोई उत्तर न बन पडा। तत्क्षण अन्दर से द्वार खुला और सामने थी निवेदिता, एक अप्सरा-सी।

कपूर कभी निवेदिता को देखते। कभी उस व्यक्ति को देखते। निवेदिता कभी उन व्यक्तियो को देखती, कभी आगन्तुक को।

सामने की चट्टान पर बैठे महानुभावो की बातचीत और विभिन्न धारणाएँ प्रथक् कार्य कर रही थी।

निवेदिता ने सबको सम्बोधित करके एक ही प्रश्न किया, "आप लोग कैसे आए है.. और किसको चाहते हैं?" उसकी भृकुटियाँ कुछ तनी हुई थी और मन विचलित हो रहा था।

कपूर और अन्सार की दशा! अन्सार बगीचे मे लगे विलायती लाल फूलों को देख रहा था, और कपूर क्या उत्तर दे?

"अबे अजमल नीचे तो जाओ। देखो तो क्या हो रहा है। अबे वहाँ तो पूरा जलूस इकठ्ठा हो गया। और भीड़ बढती ही जा रही है।" शर्मा ने अजमल के निकट खिसकते हुए कहा। सबके सब छिपकली बने चट्टानो पर लेटे थे। सर आगे की ओर था और धड पीछे। सामने जगसिंह भी द्वार पर आ गया था।

"इसको भेजो राजीव को। इसके कन्धे पर बन्दूक है।" सतीश ने कहा।

"मजाक बन्द करो। मामला सीरियस है।" राजीव बिगडकर बोला।

एक साथ सब हँस पडे और सतीश बोला, "मरे साले कपूर और अन्सार...।"

दत्ता ने मुँह पर उंगली रखते हुए कहा, "अबे, ऐ ओ, हँसो मत बे। अबे धीरे बोलो, यहाँ कमसिने लेटी हुई हैं।"

"और वहाँ.. . ?" सतीश बोला।

निवेदिता के प्रश्न के उत्तर मे कपूर ने साहस बटोर कर कहा, "हम लोग कुछ गलत चले आए मालूम देता है.... .।"

"जी . " कहकर निवेदिता मौन हो गई। रुककर वह पुनः बोली, "यह तो कोई अच्छी बात नहीं। आप लोग मालूम तो भले आदमी देते है। जेन्टलमेन, लेकिन ठीक है। शक्त-सूरत से क्या पता चलता है।"

"जी .।" कहकर कपूर घूम पड़ा। अन्सार उसके साथ हो लिया।

"ऐ मिस्टर जरा सुनिए" निवेदिता ने पुकारा।

"सहमे हुए कपूर ने दूर से ही कहा, "मैं..."

अन्सार की ओर सकेत करते हुए, "नही आप...।"

और अन्सार सामने आया "जी आप भी रास्ता भूल कर इधर निकल आए थे ?"

"जी, मै इनके साथ था। हाँ, आपके यहाँ आने का खाश मनशा नही था .।

"और अब क्या ख्याल है ?" निवेदिता ने अपनी भृकुटियो के मोड़ को और तीव्रतर करते हुए कहा।

"वापस जा रहे है।" अन्सार ने मुडते हुए कहा।

"आप गलत समझ रही है।" कपूर ने अन्सार के बचाव मे सामने आते हुए कह डाला।

"आप जितने भी सामने खडे हैं मैं सब को सही समझ रही हूँ। खैर जाइए।" निवेदिता ने दरवाजे से अलग होते हुए कहा, "गुड बाई।"

और सामने मोदी यह सब देख-सुनकर तिलमिला रहा था। उसके मजदूर ने अब तक सामान बरामदे मे टिका दिया था। कपूर व अन्सार बाहर जा चुके थे।

"यस मोदी, हाऊ, हाऊ यू हैव कम। व्हैयर इज पापा।" निवेदिता ने और अधिक उत्तेजना के स्वर मे अनेक प्रश्न कर डाले ? और वह ड्राइग-रूम मे चली गई। मोदी निरुत्तर साथ हो लिया।

बहुत बेआबरू होकर तेरे बंगले से हम निकले। कपूर और अन्सार बाहर सडक पर आ गए थे। और खटर पटर सटर सट। उनके सब साथी चट्टान से नीचे उतर आए।

बगले से ५० गज दूर आकर अन्सार बोला, "अबे सब याद करलो। चाहे जितनी बदमाशियाँ करना लेकिन किसी लडकी के पीछे न पडना। पिस्तौल और घूंसे-लात सबसे बचे हैं आज।"

"और फिर बदमाशी ही क्या बचती है दुनियाँ मे बे ?" दत्ता ने हँसते हुए कहा।

"ठीक है। फिर मौके पर शेरदिली कहाँ हिरन हो जाती है।" अन्सार ने निवेदिता के बंगले का लाल फूल, सामने हाथ लाकर, देखते हुए कहा।

"यह क्या है बे ? उस बंगले की और कपूर की हूर की यादगार लेता आया हूँ। इसे ही प्यार करलो—लो, लो।"

विस्फारित नेत्रों की चौदह पुतलियाँ लाल फूल पर जा टिकी, "चलो मेहनत सफल हो गई।" शर्मा ने मुँह घुमाते हुए कहा।

सोफे पर बैठ कर एक पैर पर दूसरा पैर टिकाते हुए निवेदिता ने कहा, "यस मोदी, कैसे आए? पापा का लेटर था वो एक हफ्ते मे आवेगे।"

मोदी निरन्तर प्रश्नो को सुनकर हकबका रहा था। द्वार की घटना, इतने सारे प्रश्न, निवेदिता का उसको बैठने तक के लिए न कहना, इन अनेक बातो से वह बौखला रहा था।

और उसी हैरानी मे वह ऊट-पटाग बहक गया।

"पापा ने देखने भेजा है कि तुम उनके पीछे यह सब क्या कर रही हो।"

जैसे निवेदिता तिलमिला उठी हो। जैसे किसी ने उसको आह्वान किया हो। जैसे विस्फोट के लिए किसी ने मैच बाक्स की सीक दिखा दी हो। वह तमक कर सोफे से उठ खडी हुई और तीव्र स्वर मे पुकारा, "जगसिह, जगसिह.. ।"

और क्रोध मे अपने द्विगुणित सौन्दर्य को बटोरे वह कमरे मे पडे, बड़े कालीन के ऊपर, अपने सैडल को दबा-दबा कर, टहलने लगी।

जगसिह पुकार सुनते ही कमरे मे आ पहुँचा।

"जगसिह, कुली बुलाओ. .इसका सामान अभी बस-स्टेण्ड पर फेंक कर आओ, जल्दी जाओ।"

जगसिह ने कुर्सी पर बैठे अपने परिचित मैनेजर साहब को ऊपर से नीचे तक देखा और कमरे के बाहर हो गया।

"ऐ मिस्टर गेट अप, यह बेहूदगी पापा के सामने ही किया कीजिये,

और उन्हीं से. .रबिश...।" अपने कमरे की ओर जाते-जाते निवेदिता ने कह डाला। वह अब भी क्रोध मे पागल हो रही थी।

और मोदी इस स्वागत से तिलमिला उठा। न मालूम कितने मधुर स्वप्न वह देहली से यहाँ तक देखता चला आया था। उसका अपना क्रोध भी सीमा तक पहुँच चुका था। किन्तु दोषी का दोष पकड जाने पर वही गति उसकी होती है जैसी कुछ काल पूर्व नैनीताल मे कुँवर बहादुर और अभी-अभी सात मनचलो की हो चुकी थी। और अब मि० मोदी, मैनेजर, ग्रेट स्टेट आफ पापा का नम्बर था। एक साधारण हँसी के स्वर मे मोदी ने वह बात कही थी। उसे स्वप्न मे भी यह आशा नही थी कि निवेदिता इस प्रसंग पर ही इतना बिगड जाएगी।

किन्तु निवेदिता मोदी की धूर्त-प्रकृति को भली प्रकार जानती थी। उसका यो पापा की अनुपस्थिति मे आना ही निवेदिता के क्रोध का पर्याप्त कारण था। वह जान गई थी कि मोदी किसी शरारत के मन से ही यो वहाँ आया है।

और जगसिह कुली लेकर आ गया।

"तुम्हारी यह हिम्मत। यू यू यहाँ पापा के पीछे तुम्हारा क्या काम था. गेट आउट. .गेट आउट।" कुली की खटर-पटर सुनकर निवेदिता ने बाहर, ड्राइंग-रूम मे आते-आते कहा। जैसे वह मोदी को देखने मात्र से आवेश मे आ जाती हो—जैसे वह पागल हो गई हो।

"ऐन्ड यू डोन्ट हियर मुझे क्या काम है .।" मोदी ने गुस्से मे तमतमाते किन्तु कुर्सी पर बैठे-बैठे ही कहा।

जगसिंह व कुली आदेश की प्रतीक्षा मे सामने खडे थे। उन्हे देख कर जैसे मोदी का रक्तचाप बढता चला जा रहा हो।

"नो, नथिंग, कुछ नही कोई काम नही। बहाना। गेट आउट।" निवेदिता ने और उत्तेजित हो कर कहा।

"जगसिह, लादो, सामान.कुली पर लादो ।" जगसिह की ओर मुडते हुए निवेदिता बोली।

जगसिंह ने सामान उठवाना प्रारम्भ कर दिया।

पापा ने अपनी स्टेट की 'विल' तुम्हारे नाम की है और तुम्हे दिल्ली बुलाया है .।" मोदी ने अपने कालर मे लगी टाई की 'नाट' को संभालते हुए कहा।

"ओह...दिस मच, तुम्हारे साथ दिल्ली चलना है. । यस।" अपनी गर्दन और आँखे घुमा-घुमा कर खिल्ली उड़ाते हुए और अपने हाथ से उठा कर मोदी की अटैची कुली के कन्धे पर रखते हुए निवेदिता बोली, "आलराइट, मिस्टर, गेट अप...।" जैसे मोदी के अन्तर्मन मे उठी बात की तह तक निवेदिता स्वतः ही पहुँच गई, बिन कहे, बिन जाने ।

मोदी बड़ा चलता हुआ व्यक्ति था किन्तु जीवन मे प्रथम बार उसने किसी लड़की से इतना बड़ा अपमान पाया था। किसी से भी उसके जीवन में ऐसा अनुभव प्राप्त नही हुआ था। वह तड़प रहा था। वह सोच रहा था, उछल कर निवेदिता को दबोच ले। वह सोच रहा था इस अपमान का बदला इसी क्षण वह निवेदिता से ले। वह सोच रहा था अभी उस की गर्दन मरोड़ दे। किन्तु वह कुछ भी कर सकने मे असमर्थ था। निवेदिता वहाँ अकेली नही थी। बंगले मे जगसिंह, आया और माली थे। इस समय कुली भी उपस्थित था।

मोदी अपमान को पीकर चुपचाप उठा किन्तु क्रोध को दाबते हुए अपने भर्राए गले से बोला, "इस वक्त कोई बस नही मिलेगी। मै सुबह चला जाऊँगा।"

"देन सी सम होटेल......।" निवेदिता ने उसी प्रकार तने हुए कहा।

मोदी पिटा-सा धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गया।

जाते-जाते वह बाहर से बड़बड़ाते हुए बोला, "आइल सी दिस...।"

"गो अवे स्टुपिड ....." निवेदिता ने और तीव्र होकर अन्दर ही से दहाड कर कहा।

और जब कपूर ने देखा उनके कमरे के निकट वाले छोटे कोठे में वही लडकी के दरवाजे पर मिलने वाला व्यक्ति सामान रखा रहा है तो वह अत्यधिक विस्मित हुआ। यह यहाँ कैसे ? तो क्या यह भी उसकी ही तरह भूल कर वहाँ चला गया था ? तो क्या यह भी बहुत स्वागत-सत्कार करके उन्हीं की भाति बाहर निकाला गया है ? किन्तु इसका तो सामान उसके सामने कमरे के अन्दर चला गया था। वह चिल्लाता हुआ बाहर आया, "अरे अन्सार, अबे यहाँ आ। वह चपटी नाक वाला, जो अभी-अभी वहाँ मिला था यहाँ भी धरा है ।"

अन्सार भी देखते ही पहचान गया और बोला, 'इसी पाजी के कारण वहाँ का मामला फिस्क हो गया। इसके हाथ-पैर ढीले करने चाहिएँ.... ।"

और सामने से मोदी ने भी इन्हे अपनी ओर घूरते हुए देखा।

देर तक सातो शैतान मोदी को तंग करते रहे।

किसी प्रकार रात बिताकर मोदी प्रातःकाल ही बस-स्टैण्ड पर भाग आया। किस बुरी तरह उसकी योजना विफल हुई थी, उसका उसे मर्मान्तक क्लेश था।

●

: ३० :

कीर्ति के पहाड़ आने पर प्रमोद उसमे व्यस्त हो गया था। उसकी रूपरेखा ही बदल गई। उसका स्वास्थ्य ही बदल गया। एक प्रकार से उसकी कहानी का मोड़ ही परिवर्तित हो गया। निराशा की परिणति तनिक-तनिक आशा मे होने लगी। प्रतिमा का प्रसंग अनेक प्रकार से आशामय होकर सामने आने को था। सामने आया था। रेगिस्तान मे जल का छिपा श्रोत उमडता दिखाई पड़ने लगा था।

जलभरे बादलो मे बिजली का छिपा रहना अवश्यम्भावी है। किन्तु बिजली की चमक और कडक रगड-से ही उत्पन्न होती है। प्रत्येक बादल के साथ की विद्युत नहीं चमका करती। बन्द ज्वालामुखी के धक्के दूर-दूर तक प्रभाव करते है। उनकी भयंकरता उभरे ज्वालामुखी से कहीं भयकर होती है। किन्तु ज्वालामुखी के फूट जाने पर निकलते शोले, चिनगारियाँ, चमक, दहकते अगारे समय पाकर पूरे ज्वालामुखी को भी कभी-कभी शान्त कर देते है। और मन बाहर आकर, खुल कर कुछ हलकापन जानने लगता है। कुछ मात्रा मे सन्तोष न सही एक विचित्र शान्ति तो प्राप्त होती ही है। कीर्ति के प्रकाशन से वह पहले कुछ आन्दोलित हो उठा था किन्तु अब वह आशा लिए उसकी सराहना मन ही मन करना चाहता था। उसके कारण ही प्रतिमा तक उसकी क्षीण रेखा पहुँच पाई है। अब उसे बढता प्रकाश सामने दिख रहा था।

और उसका स्वास्थ्य भी बहुत ठीक हो गया था। मन की शान्ति मे तन की शान्ति अनिवार्य है।

दूसरी ओर जयन्त को शान्ति की आभा लिए मिल गई थी अनायास निवेदिता। जिसने उसे मन की तुष्टि के साथ जीवन-दान दे डाला था। नवल-धवल मन-प्राण लिए स्वर्गदूती-सी निवेदिता उस पर आच्छादित हो कर उस पर स्वर्गिक पराग बखेरती हुई 'स्व' और 'त्व' दोनो को मोह रही थी।

किन्तु इधर नैनीताल के बाद दोनो ही खिन्नमना अपने बंगलो के लान और पलगो के बिस्तर कुचल-कुचल कर रह रहे थे।

अभी-अभी उसे एक लिफाफा मिला था। जिसके अन्दर की स्लिप को पढकर वह रह-रह कर आन्दोलित हो रहा था।

नमस्कार,

अनेक शुभ कामनाये। बहुत रोकने के बाद भी मन न माना और लिखना ही पडा। सकुशल हूँ .उपेक्षिता किन्तु कामिनी नारी ही तो।

लिफाफे पर मोहर थी . . बनारस।

इस ओर से जयन्त को और अधिक निश्चिन्तता मिल गई।

मन-बहलाव के ध्यान से वह चल दिया प्रमोद की ओर, महीनो क्या हफ्तो बाद।

प्रमोद व कीर्ति उस समय दोपहर के खाने पर बैठे थे। और जयन्त आया जैसे दूर देश का कोई परिचित वर्षों मे मिला हो। और इस दीर्घकाल मे जैसे उसकी कोई सूचना ही न मिली हो। ऐसी ही-सी भेट हो रही थी आज प्रमोद और जयन्त की।

प्रमोद की माँ ने थाली मे दो रोटी रखते हुए कह ही तो दिया, "क्यो रे, जा कर चिट्ठी भी नही दी। अच्छा तो रहा। आ खाना खा ले।"

प्रमोद, कीर्ति और जयन्त तीनो हँस दिए। माँ भी हँस दी।

पास ही चटाई पर बैठते हुए जयन्त बोला, "कहाँ माँ गया कहाँ

था ? और ठीक भी कहती हो । तुम क्या बहुत सी माँ सोचने लगती है, अब यह हाथ से गया और वही स्थिति मेरी आ गई है ।"

माँ तो विशेष न समझ पाईं किन्तु प्रमोद ने कह दिया, "माँ, यह अब दुकेला होने वाला है...।"

"अरे तभी" माँ ने पापड़ परोसते हुए कहा ।

भोजनोपरान्त प्रमोद, कीर्ति और जयन्त मे 'रमी' जम गई ।

"जयन्त तुम अच्छे आ गए, अगले सप्ताह मै जा रहा हूँ...। तुम्हे सूचना देनी ही थी ।" प्रमोद ने पत्तो मे से जोकर उठाते हुए कहा ।

"यह क्या, भाई साहब आप अभी से जा रहे है । अभी एक माह यहाँ और रुका जा सकता है । वैसे मेरे यहाँ भी सब ऊब रहे हैं । किसी भी समय बिस्तर बंध सकते है ।" जयन्त पत्तो को इधर-उधर करते हुए बोला ।

"और कहो, पार्टनर के क्या हाल है...?" कीर्ति ने रमी 'शो' कर दी । प्रमोद और जयन्त आँखें खोल-खोल कर देखने लगे । और हँसते हुए जयन्त ने कहा, "बहुत-बहुत खुश, तनिक नाराज. .।"

"यह क्या ..? अरे हम लोगो को तो कम-से-कम चाय पिलवाई होती...पार्टनर के हाथ की...।" कीर्ति ने पत्ते वितरित करने के लिए प्रमोद की ओर गड्डी बढा दी ।

"घबराइए नही, जरा मूड ठीक हो ले तब 'ग्रेन्ड' दावत रही । आजकल कुछ ऐसा ही मामला है ।"

"अरे मूड को क्या कर दिया ? अरे इनका मूड संभाले रहा कर भई । मूड ही तो इनकी जान है । और जान है तो जहान है...।" कीर्ति ने अपने पैंतरे दिखाना प्रारम्भ कर दिए ।

और तब संक्षेप मे जयन्त ने नैनीताल की रोमाचकारी घटना का विवरण दोनो को सुना दिया । प्रमोद अत्यधिक रोमाञ्चित हो रहा था । ताश बन्द हो गए थे ।

किन्तु कीर्ति का हँसोड़पन न माना, वह बोला, "चलो बला टली ।

जजाल से बचे। भूत की तरह चिपट रही थी वह तो। जो हो, नैनीताल मे बास-वास डलवाए।"

"आज ही सूचना आई है, बनारस पहुँच गई है, कामिनी।"

जैसे प्रमोद को पूर्ण संतोष हुआ हो।

"अरे अभी छोड़ेगी नहीं, मास्टर तुम्हारी कामिनी...।" कीर्ति ने मुँह विचकाते हुए कहा।

बातचीत के साथ 'रमी' का रग फिर चलने लगा। कीर्ति तीनो से जीत रहा था। उसके बाद जयन्त का नम्बर था। प्रमोद आज हार ही रहा था। ताश के पत्तो को फैलाते हुए जयन्त की दृष्टि सामने सड़क पर गई और वह देख कर हत्प्रभ रह गया।

सामने से पापा मय सामान के बढ़े चले आ रहे थे। वे दिल्ली से लौट आए। और जयन्त को लगा क्या मुसीबत आई, जैसे उनसे उसका जन्मजात वैर हो। उनकी उपस्थिति से वह हर समय चौंका करता था। आज उनके लौट आने पर वह सोच गया, "अपने वैभव के साथ बुड्ढे ने अपनी आयु भी कितनी बढ़ाई है?"

निवेदिता ने सोच लिया था कि मोदी ने दिल्ली जा कर पाप से भली प्रकार नमक-मिर्च लगा कर बातें कही होगी और पापा का मस्तिष्क विकृत किया होगा। और किया भी हो तो उसे चिन्ता नहीं है। इस बार मोदी को लेकर वह पापा से निबटारा कर ही लेगी।

आज बिना सूचना के एकाएक पापा को लौटा देख वह समझ गई यह मोदी ही शरारत है। और मोदी को भी पापा के साथ देखकर तो वह और भी अधिक व्यग्र हो उठी।

हाल मे घुसते ही निवेदिता को सामने देखकर पापा ने एक व्यंग्यात्मक हास के साथ कहा, "गुड आफटरनून नीतू, वैल।"

"यस गुडआटरनून, पापा ।" और वह मुस्कराती हुई पापा को सहारा दे कर सोफे पर बैठाने लगी ।

हैट और स्टिक को बीच की टेबिल पर रखते हुए पापा ने निवेदिता का मस्तक चूमा और सोफे पर बैठ गए ।

अब तक मोदी भी पापा के पास पीछे की ओर आ कर खडा हो गया ।

तभी निवेदिता ने मोदी की ओर अपनी गर्दन घुमाते हुए कहा, "यस, हाऊ यू हैव कम अगेन, आफ्टर वन्स टर्नड् आउट आफ दिस प्लेस ।" निवेदिता का स्वर अत्यधिक उत्तेजित हो उठा था ।

मोदी पापा की ओर देख रहा था । पापा ने सभल कर बैठते हुए कहा, "नीतू, दिस इज वैरी बैड, तुम इससे क्यो लडती हो ?"

"नो पापा नो, टर्न हिम आउट, जस्ट नाऊ, टर्न. हिम ।"

"बट व्हाई. ?" पापा ने बात काटते हुए कहा ।

'नो ही मस्ट नाट स्टे इन दिस बगलो एनी मोर ।" और निवेदिता ने जगसिह को जोर से पुकारा ।

मोदी समझ रहा था, कही फिर उसका सामान न लदवा दिया जाए ।

पापा भी निवेदिता के उस क्रोध और भयकरता को देख कर मौन हो रहे और सोचने लगे कि मोदी ने अवश्य ही उसको अत्यधिक नाराज कर दिया है । सम्भव है कोई बेहूदगी की हो । मोदी एव निवेदिता दोनो की ओर वे एक भेदपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे । तभी कुछ रुक कर उन्होने कहा, "अच्छा-अच्छा, बरामदे के बाहर वाले रूम मे उसका सामान रखवा देते है । वह चला जाएगा ।"

मोदी को देख-देख कर निवेदिता लाल हो रही थी । उस लाली मे उसका सौन्दर्य और निखरा पड रहा था । और जब सौन्दर्य लाल हो उठता है अनेक अवसरो पर ! क्रोध मे भी !

और मोदी तथा पापा की मिली-जुली कान्सप्रेसी पर तुषार-पात हो

गया। निवेदिता के पहले हमले से पापा स्वय भी हैरान थे। वे थके हुए अपनी गजी चाँद पर पुनः-पुनः हाथ फेरते जाते और आगे के वातावरण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

निवेदिता ने भी पापा की मुद्रा मे पढ लिया कि यदि मोदी उनको दिल्ली से कुछ सिखा-पढा कर लाया होगा तो उसने पहले झटके मे पापा का मन पलट दिया है।

तभी सामने जगसिह आ खडा हुआ।

निवेदिता कुछ कहे उसके पूर्व ही पापा ने आदेश दिया, "ऐ, मैनेजर बाबू का सामान बाहर के कमरे मे लगा दो ।"

मोदी और उसका सामान बाहर चला गया। तभी निवेदिता ने सतोष के स्वर मे पापा से कहा, "पापा इतने दिन क्यो लगा दिए ? अब आपके चार दिन हुए है ?"

"मैने बुलाया था, तुम देहली क्यो नही आई ?"

"उस मस्कैटियर के साथ, दैट फूल . ।"

तभी पापा धीरे से उठे और कमरे मे रक्खे सामान मे से अटैची से एक कागजो का बडल लाकर निवेदिता के हाथ मे रख दिया।

निवेदिता ने बिना पढ़े उलट-पलट कर कागज मेज पर रख दिए। वह थी पापा की सारी चल-अचल सम्पत्ति की 'विल' निवेदिता के नाम। निवेदिता समझ गई ।

"नेतू, कीप इट इन सम प्लेस आफ सिक्योरिटी। जाओ लोहे की आल्मारी मे रख कर आओ।"

"बट व्हाई पापा, दिस मच, आनली फार मी ..।"

पापा ने एक भावुक दृष्टि निवेदिता के ऊपर फेकी और कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् बोले, "यू लवली चैप, दिस इज पापाज ओन विल नाट टुबी डिस्कर्ड. ।"

निवेदिता धीरे से उठी और कागजो को उसने मेज से उठा लिया। अपने कमरे मे आ कर उसने कागजो को सरहाने पटक कर दीवार पर

टगे मीरा के चित्र को देखा और तकिये का सहारा लेकर लेट गई ।

इस समय उसकी बन्द पलकों मे नाच रहा था, जयन्त । वह विले जयन्त के लिए हैं, उसके लिए नही । उसका सब कुछ जयन्त के लिए है । और आज अनेक दिवसो से उससे न मिलने का उसे खेद हो रहा था । आज इतने दिन बाद उसका मन डोल रहा था, इतने दिनो का असहयोग आज उसे अखर रहा था । जैसे विरोध, विद्रोह, नैनीताल की घटना के पश्चात् की प्रतिक्रिया, और सब कुछ भुला कर वह उसी क्षण दौड कर जयन्त से जा चिपटना चाहती हो । वह सोच रही थी, वह जयन्त के सामने जी भर कर रो ले और उस 'विल' को उसी को सौप दे । उसने उसे अपना सर्वस्व, अपना हृदय भी तो सौप रक्खा है । और यह कई दिनो का अनबोला इस मे क्या रक्खा है? इसने तो और निकट ला दिया है उसके अनुराग को.. ।

वह तड़प कर उठी और शृंगार मेज पर रक्खे पेन और पैड को उठा लाई । उसने लिखा—

डियर ! नथिंग एल्स, मीट एण्ड मीट आनली इन प्रियरोज, इन द ईवनिंग एट सेवन ..।—नीतू ।

निवेदिता ने स्लिप मोड़ी और कमरे के बाहर आई । पापा अपने कमरे मे थे । जगसिंह रसोई मे पापा के हाथ-मुँह धोने का पानी गरम कर रहा था । स्लिप जगसिह को देते हुए उसने कहा, "जाओ अभी देकर आओ, बाबूजी को ।"

जगसिंह लेकर चल दिया ।

बाहर बरामदे मे मोदी टहल रहा था । उसने देखा जगसिह हाथ में कोई कागज लिए जा रहा है । उत्सुकतावश उसने उसे देखना चाहा । जगसिंह को उसने पुकारा और कहा, "क्या है...?"

एक क्षण रुक कर जगसिह ने उत्तर दिया, "बाजार के सामान का परचा ।" और जगसिह कहकर शीघ्रता में बंगले के बाहर हो गया ।

उसके लौटने पर उसके हाथ मे कोई सामान न था । मोदी ने सोचा

सामान का परचा न होकर वह कुछ और था। और अब वह निवेदिता के पीछे पडा हुआ था। बदला लेने की भावना अपना कार्य तीव्र रूप से कर रही थी।

प्रमोद ने डाक्टर साह की दवाओ के बिल का भुगतान किया। एकसौ अठासी रुपये छः आने देकर उसने वाउचर ले लिया।

ईश्वरी बाबू बोले, "जा रहे है प्रमोद बाबू, अब तबियत तो ठीक मालूम देती है।"

"जी हाँ जा रहा हूँ, ईश्वरी बाबू।"

"बैठिए-बैठिए।" कह कर ईश्वरी बाबू ने नौकर को पुकारा और दो आने देकर पान लाने का आदेश दिया।

प्रमोद व कीर्ति सामने पडी कुर्सियो पर बैठ गए।

"मन मे चिन्ता न रहे। ठीक व्यवस्था रहे तब देखिये आप हमारे पहाड की हवा-पानी का असर। कितने कमजोर हो कर आए थे आप। अब ठीक है। ईश्वर सब को आनन्द देता है। कुछ रुक कर वे पुनः कह उठे, "और हाँ प्रमोद बाबू, आप ने इनका परिचय तो दिया नही। मैं इनको आपके साथ हमेशा देखता हूँ।"

प्रमोद ने हँसते हुए कहा, "ईश्वर चाहे और ईश्वरी बाबू चाहें तो सब रोगी ठीक हो जाते है। अपने हाथ से जैसी दवा दे दे।" सब लोग हँस दिये। तब प्रमोद ने कीर्ति की ओर सकेत करते हुए कहा, "ईश्वरी बाबू, ये मेरे मित्र है, अभिन्न मित्र श्री कीर्तिमोहन। लखनऊ रहते है। मेरे पास कई माह से है। लखनऊ से ये दृढ सकल्प करके आए थे कि मुझे ठीक करके घर लौटेंगे। और इनका संकल्प किन्हीं अंशो मे पूरा भी हो रहा है। ईश्वरी बाबू, सच मानिए, इनकी लगन और आप के स्नेह ने ही मुझे ठीक कर दिया है।"

"ऐसे मित्र सभी को मिले और आप...आपसे तो मैं स्वयं बड़ा

प्रभावित हुआ हूँ। मैं देख रहा हूँ, आज की सी ऊपरी मित्रता से आप दोनो ही बहुत दूर है।”

प्रमोद का हृदय भर आया। रुग्णावस्था मे रोगी का हृदय दुर्बल हो उठता है। तनिक-सी बात मे उसका मन भर आता है। अनायास यह भावना मन मे स्थान ग्रहण कर लेती है कि अब क्या अच्छे होना. ? अब सब से बिछुडना ही है। न जाने कोई मिले न मिले। और जीवन का अन्त। अभिलाषाओ का अन्त. .कार्यों की अपूर्ति . जीवन के सुस्वप्नो का अकाल मे ही विलीन होना। सब मिल कर रोगी के मन को शिथिल बना देते है। और फिर रोग की पीडा, रोग-मुक्ति के बाद भी अधिक समय तक मन का हलकापन वैसा ही बना रह जाता है।

पान आ गए। तभी प्रमोद ने ईश्वरी बाबू से विदा ली।

प्रमोद के मकान के निकट एक बडेमिया रहते थे। बाल इनके पके हुए, चेहरे और हाथ-पैरो मे झुर्रियाँ ही झुर्रिया पडी हुई, कमर बल खाई हुई और सफेद रग की फरफराती दाढी लिए हुए बडेमिया अपने चारो ओर चहल-पहल रखते थे। लम्बाई इनकी बिलकुल पठानो की सी थी। प्रतीत होता था कि अपने यौवनकाल मे वे अवश्य ही स्वस्थ व हट्टे-कट्टे जवान रहे होगे। बहुत काल से इन्होने वही पहाडो पर बसेरा कर रक्खा था।

एक टूटा-फूटा झोपडेनुमा ऊँचा मकान था जिसका चबूतरा काफी लम्बा-चौडा था। ऊँचे चबूतरे पर चढने के लिए पहाडी कंकरीली पगडंडी से लगी हुई तीन-चार सीढिया बनी हुई थी। उसी चबूतरे पर कई स्थानों पर इन्होने कई लकडी के कटहरे से बना रक्खे थे। दो कटहरो मे मुर्गियो और कबूतरो के अडे-बच्चे इन्होने रख छोडे थे। बडे-मिया ने पचासो मुर्गिया व कबूतर पाल रक्खे थे। दो कटहरे टेढ़े-मेढ़े, फैले

हुए तार के बने थे। जिनमे रात के समय ये मुर्गियो और कबूतरो को बन्द कर देते थे। उसी चबूतरे मे तीन-चार बकरियाँ और दो-तीन उनके छोटे मेमने, छोटी-बडी रस्सियो मे बधे रहते थे। चबूतरे मे जगह-जगह, गोली-गोली सी बकरियो की मेगन छितरी पडी रहती। कही फूटे अडो के सफेद टुकडे, कही पंख—सब मिला कर चबूतरा बड़ा गंदा रहता था।

चबूतरे के नीचे, पगडडी मे, इनकी तीन गाये बंधी रहती थी और उनके कई बछडे इधर-उधर डोला करते थे। इनकी गाये व बछडे बडे प्यारे थे। एक बछडा तो बिलकुल सफेद था, कही सफेदी के अतिरिक्त कोई अन्य चिह्न उसके मुलायम रोयों पर नही था। और उसकी माँ भी वैसी ही सफेद थी पर उसके माथे पर एक कत्थई रग का टीका बना हुआ था। बडेमिया की एक गाय काली-सफेद चित्तियो दार थी। और दूसरी कत्थई रंग की। इनके बछडे भी अपनी माँ के रगो के ही थे। स्वाभाविक भी था।

इन सबके साथ बडेमिया का एक बकरा था। बड़ा मोटा जैसे जंगली सूअर और बडेमिया की तरह उसकी भी फरफराती एक दाढी थी। बकरा सदैव छुटा, इधर-उधर घूमा करता था। एक शरारत थी उस मे। वह कभी भी अपने निकट से किसी छोटे बच्चे को नहीं निकलने देता था। जब कभी कोई छोटा बच्चा उधर से आता तो वह आँखे और गर्दन घुमा-घुमाकर चौकडी भरता और उसके पास आ जाता, अपने छोटे-छोटे टेढ़े सीगो को वह गर्दन सहित जमीन पर ले जाता और तब फूं-फूं करता हुआ बच्चे को डराता। ऐसा लगता जैसे बच्चे को उठा कर फेक देगा। तभी बच्चा डर कर रोता और चिल्लाने लगता। बच्चे की चिल्लाहट सुनकर बडेमिया की आवाज आती, "अरे जालिम, चल इधर।" और तब बकरा गर्दन घुमा कर दूसरी ओर चल देता। जैसे मार्ग का अवरोध उसने हटा लिया हो। तभी बच्चा धीरे से आगे बढ जाता। तब बडेमिया बच्चे को पुचकारते हुए कहते, "जाओ, बेटा जाओ"

कभी बडेमिया न होते तो इस प्रकार के अवरोध को देख कर पास से निकलने वाला कोई व्यक्ति बकरे को कंकडी या डंडा दिखा कर भगाता, तब बच्चा आगे निकल पाता। बकरे की शरारत से बच्चे बेहद तंग थे। बच्चे भागते-भागते आते और बकरे के सामने जैसे ब्रेक लग जाता। एक दिन एक छोटी लडकी बाजार से थोड़े चावल बाधे ला रही थी। वह तेजी मे पगडंडी पर से घर की ओर भाग रही थी। बस, बकरे-महाशय न मालूम कहा से सामने आ पडे। जैसे किसी गुफा से सामने शेर निकल आया हो। और तब उस लडकी की दशा। जैसे दौडते इजन मे किसी ने ब्रेक लगा दिया हो। लडकी रुक गई और पहले तो उसने कतरा कर जाने की चेष्टा की पर जब बकरा कई ओर से गर्दन घुमा-घुमा कर उसे घेरने लगा तो वह चिल्ला पड़ी। उस समय घर पर न बडेमिया थे न मार्ग मे देर तक कोई व्यक्ति ही निकला। प्रमोद के छज्जे से वह स्थान स्पष्ट दिखाता था। प्रमोद बकरे की शरारत से परिचित था। उस समय प्रमोद ने जैसे ही यह काड देखा वह अपने छज्जे से उतर कर बकरे को भगाने के लिए आया। किन्तु तब तक उस नन्ही बच्ची की पोटली छीन कर बकरा भाग गया था। और गाठ खुलने से चावल वही पत्थरो पर खील-खील हो कर जा मिले थे। खाली कपडा बकरा चबाने लगा। दूर खडी लडकी अत्यधिक रो रही थी। प्रमोद ने आकर जब यह तमाशा देखा तो आज सचमुच उसे बकरे पर बडा क्रोध था। अनायास कही से बडेमिया भी आ निकले। प्रमोद ने उनसे बकरे की बेहद शिकायत की। बडेमिया चुपचाप गर्दन लटकाए सुनते रहे जैसे उसका कोई लडका नालायक निकल गया हो और उलाहना उनके सर हो।

प्रमोद लडकी को पुचकारने और थपथपाने लगा। उसने उसे गोद मे उठा लिया और स्वयं बाजार जाकर उसे चावल दिला लाया। कपडा तो बकरा चबा गया था। किन्तु काग़ज मे ही चावल लिए लड़की घर की ओर चली गई। दूर खडा बकरा अब भी गुर्रा रहा था।

बडेमिया की बीवी गुजर चुकी थी। कभी उनसे उस बात को छेड देने पर बीवी की याद कर-कर के वे रोने लगते और हजार दास्तान की तरह अनेक किस्से सुना जाते। वे ऐसे कहते जैसे उनकी बीवी हूर की परी थी, जैसे उनकी बडी प्यारी थी, जैसे बड़ी कामीदा थी, जैसे उसने ग्यारह बच्चे पैदा किए और बचा है एक लडका जो कही बाहर फौज मे काम कर रहा है और उस लडके की बीवी और तीन लडकिया, तीनो जवान, बडेमिया के पास हैं। बडेमिया उन लडकियो की चिन्ता मे रात-दिन घुले जाते है। रोते-झीकते हैं। लडकिया भी थी एक तूफान। तीनो एक-सी उम्र की, लहलहाती जवानी लिए, इठलाती, रास्ते चलते लोगो को छेडती हमेशा, बडेमियां की गाढी कमाई के बल पर एकसे एक चमकते कपडे पहनती थी। लडकियो के रावरंग और हलचल से बडे-मिया का दम घुटा करता था। वे आदमी की छाया को अपने मकान के पास देख कर घबराते थे। अक्सर वे कहा करते, "तोबा-तोबा. .... क्या गजब है जमाने मे .....किसी का विश्वास नही.... आग-फूस को दूर ही रखने मे ईमान .हॉ, ईमान बचा रह सकता है। और मेरी लडकिया . आफत की परकाला है। चलती हवा से बाते करती हैं इत्यादि।" लोगो को लडकियो के साथ-साथ बडेमिया की बातो मे भी रस आता। कस्बे के कई लडको ने मिल कर अथवा अलग-अलग तीनो लडकियो से 'रोमान्स' चला रक्खे थे। बडेमिया कुछ खबर रख पाते थे, कुछ नही भी रख पाते थे। कभी उन बातो को लेकर बडेमिया के यहा तूफान और हल्ला मचता। लडकियो की मॉ और बडेमिया दोनो ही चीखते, चिल्लाते। उसकी फुहार पास-पडोस तक सुनाई पड़ती। सर्वत्र बडेमिया की इन लडकियो की चर्चा रहा करती थी। परदेशी भी सब सुना-जाना करते थे। इतने पर भी यौवन और सौन्दर्य मे चूर तीनो लड़कियो के अपने-अपने निराले काम चालू थे। प्रकृति है, सौन्दर्य भी उन तीनो मे कूट-कूट कर भरा हुआ था।

बडेमियॉ ने कई धन्धे कर रखे थे। पहाड पर मरीजो को गाय और बकरी

के दूध की बडी आवश्यकता रहा करती। तभी बडेमिया ने गाय और बकरिया पाल रखी थी। इनका दूध मनमाने भाव से वे बेचते। और मुर्गियो का धन्धा, कबूतरो का धन्धा। कुछ सीधी-सीधी मुगया और कबूतर ही ले जाते थे। कुछ उनके अडे। इस तरह तरकीब से उस बुढापे मे भी बडेमिया दिन भर मे बडे पैसे पीट लेते थे।

नियम से नित्य सुबह व शाम अपने मकान के सामने बडी चट्टान पर कई बडी-छोटी बाल्टिया लेकर वे आ बैठते और गायो का नाम ले ले कर पुकारते। आस-पास के लोग समझते बडेमिया दूध दुहने आ गए और तभी किसी का लोटा, किसी की पीतल की बाल्टी, किसी का गिलास और किसी का जग सामने आ जाता। छोटे-बडे अनेक बर्तनो को घेरे बडेमिया दूध बाटते और पैसे ले-लेकर अपने लम्बे से कुर्ते की झोले-सी जेब मे भरते जाते।

वे उधार दूध भी बाटते। किन्तु इतनी याद रखते थे कि महीनो मे हिसाब करने पर भी अलग-अलग लोगो के हिसाब मे एक पैसे का अन्तर न पडता। लोग अपने यहा दूध की हिसाब की कापिया भरते किन्तु बडेमिया का मस्तिष्क ही कापी का काम करता।

गाय और बकरी के दूध के ग्राहक दूर-दूर बंगलो से आते। दाम बडेमिया कसकर अवश्य लेते थे किन्तु उनके व्यवहार मे सचाई थी और दूध भी वे बडा अच्छा देते थे। कुछ दूध बडेमियाँ बचा कर भी रखते। तब पहाडो पर बनने वाली हर समय की चाय की तलब मे जब कोई उनके यहा दूध लेने जाता तो वह कस्तूरी के भाव देते वह दूध।

और इस सारे व्यापार का काम अकेले दम पर करते थे। शैतान लड़कियो के घर मे नौकर रखते वे डरते थे। अनेक बार उनके मन मे नौकर रखने की बात आती, किन्तु वे सब कुछ विवश होकर सभालते और नौकर न रखते थे। अन्य लोग कभी कहते, "बड़ेमिया, इतना पैसा कमाते हो। कम से कम एक नौकर रखना ही चाहिए। अब बूढे हुए। सब काम नही निबटता होगा।" तब उत्तर मे वह कह देते, "बाबू,

कहो तो औरों का काम भी निबटा आऊँ।"

प्रमोद से एक दिन बातो-बातो मे उन्होने कहा था, "बाबू साहब, नौकर क्या रखूँ ? एक बार एक नौकर रखा था। पहाड़ी तो मेरा काम कर नही सकता था। एक देश का ही एक आदमी रख लिया था। तो बाबू साहब, क्या बताऊँ ? अपनी इज्जत की बात है। काठगोदाम जाकर पकडा था। मुआ दो लडकियो को टहलाए लिए जा रहा था। वह तो कहो तीसरी अपनी मा के साथ उस दिन नैनीताल गई थी वर्ना उसे भी...इतना शातिर निकला कम्बख्त...अब बताइए क्या नौकर रक्खूँ ? और मेरी लडकिया मुझे खाकर मानेंगी।"

प्रमोद के यह कहने पर कि उनका ब्याह कर डालो, तो बडेमिया अपने लडके को सौ गाली सुनाने लगे, "उस सुसरे को फिकर नहीं। अब मै किसके साथ बाध दूँ ? और पैसा चाहिए। मैंने तो एक दिन उससे कह दिया, इनको भी फौज मे लेता जा।" तो लडकियो और उनकी मा ने महीनो मजाक बना बना कर मेरा नाक मे दम कर दिया।

चलते समय प्रमोद ने बडेमिया को दूध का हिसाब ले जाने को बुलाया, "बडेमिया, अपने दाम ले लो, मै जा रहा हूँ।"

"अल्ला करे आपकी बडी उम्र हो। उसने अच्छा कर दिया आप को। आपके ऐसा आदमी तो होना मुश्किल है। क्या मीठी तबियत पाई है आपने ? लडना-झगडना क्या मैंने इतने दिनों मे कभी जोर से बोलते नहीं सुना, आप को। और उस दिन की मुझे याद है। उस जलील बकरे की शिकायत आपने की थी। कितनी शायस्ता थी आपकी बातचीत। और वह कोई आपकी बच्ची तो थी नहीं। लेकिन ये पहाडी लडके भी उस बकरे को दिन-रात तंग करते है। तभी उसने अपना बचाव यो करना शुरू किया है। अब ये उसे छेड़ते भी कम है।" बडेमिया ने धीरे से बरामदे की जमीन पर बैठते-बैठते कहा।

"अरे बडेमिया, ऊपर बैठो, ऊपर बैठो।" कहकर प्रमोद ने उनको हिसाब के रुपये दे दिये।

रुपये बिना गिने हाथ मे लिए ही बडेमिया द्रवित होकर कहने लगे, "बाबू साहब, आपके जाने पर जी टूट रहा है। अभी और रुकिए। मुझे तो बडी मोहब्बत हो गई थी, आप से। और मै मुसलमान हूँ लेकिन मानता हूँ सब एक है। सब भाई हैं। मुझे सबसे मोहब्बत है। सब को अपने बच्चो-सा मानता हूँ। बाबू साहब, अब क्या? मेरा तो जमाना देखा पडा है। एक जमाना था जब हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे से दूर न थे। और यही पहाड पर देख लीजिए। यहा की भी यह खासियत है। बीसो बरस से यहा पडा हूँ। और भी मुसलमान है। लेकिन यहा कभी कोई फसाद नही होता। यहा पहाडियो मे भी बडी मोहब्बत रहती है बाहर वालो के लिए। लेकिन आपका लखनऊ तो मशहूर है और पास ही मे कानपुर। रात-दिन फसाद। मेरे एक चचा-जात भाई वहा रहते हैं। एक मर्तबा उनसे मिलने गया था। वही फंस गया, बडी मुश्किल से निकल पाया।" और हाथ उठा-उठाकर "अल्ला, करे बडी उम्र हो" कहते हुए बडेमिया सीढ़ियो से नीचे उतर गए।

कीर्ति बडेमिया की लडकियो की चर्चा सुन चुका था। बडेमिया के चले जाने पर वह बोला, "प्रमोद, इन लड़कियो को लखनऊ ले चला जाए—क्या ख्याल है? वहा उनका उद्धार जल्दी और आसानी से हो सकता है। कहो तो बडेमिया से कहूँ।"

"हा, हा बुला लो। अभी पास ही मे होगे। चलो यह धन्धा तुम जरूर शुरू कर दो। पढ़-लिख कर इतनी आमदनी नही होगी। बेहूदे कही के।"

और कीर्ति व प्रमोद दोनो ही देर तक हँसते रहे।

●

: ३१ :

बंगले आते ही जीतू ने निवेदिता की स्लिप जयन्त को दी। जयन्त उसे पाकर बाहर बरामदे मे खडा रह गया। ओह, जयन्त जैसे नाच उठेगा। जैसे वह हर्षातिरेक मे पागल हो जाएगा। जैसे घटा, कोहरा, अंधकार और डरावने लाल-काले रंग के बादलों से आच्छन्न आकाश, निरभ्र नीलाकाश मे परिणत हो रहा हो। जैसे श्यामल पर्वत शृंगों पर भीना-भीना हिम पड कर उन्हे श्वेत-धवल रूप मे आच्छादित करने का मौन कार्य कर रहा हो। जैसे काले-काले शिलाखंडो पर खडे होकर वह पुनः 'प्रिमरोज' के लान से दूर, बहुत दूर, चारो ओर वे ही 'चाइना-पीक' वाले हीरक, मुक्ता, पुखराज के पहाड उठते देख रहा हो। जैसे 'प्रिमरोज'—चाइना-पीक—से वह सब स्पष्ट दिखाई देने को है। और जैसे कोई शैलबाला, कोई रूपसी—निवेदिता—झिरक कर अपने पदचाप टिकाती आगे बढ रही हो। सुरभित पराग बिखेरने, सुरभित अनुराग बिखेरने।

वह पलटा। जैसे वह नैनीताल जाने ही क्यो लगा ? जैसे वह कभी गया ही नहीं। जैसे उससे होटल हिमालया की २६ नम्बर कमरे की घटना से क्या मतलब ? उसका क्या सम्बन्ध ? जैसे यह सूक्ष्म अवरोध, प्रेमियो की एक अस्थायी अनबन मात्र थी। जैसे इसने अनुराग की लड़ी को और गूँथ दिया है...और मधुरिम बना दिया है।"

शाम होने मे अभी देर थी। एक विचित्र मदहोशी में—पलकें

कुछ खुली-मुँदी लिए—वह कमरे मे पडे पलंग पर डूब गया। विचारो के मीठे झोको मे वह करवटे लेने लगा। और वह तडप कर रह गया। उसने एक क्षण पूर्व विचार किया था कि वह कामिनी को पत्र लिख कर पुनः पहाड आने का अनुरोध करेगा। कितना अनर्थ हो जाता। कितना अनुचित हो जाता? अच्छा ही किया उसने कामिनी को पत्र नहीं लिखा। उसने सोचा था कामिनी को वह पहाड बुला कर इस गुत्थी को सुलझावेगा। कामिनी के कारण उसके जीवन मे अनायास जो विषमता उत्पन्न हो गई है, उसका शमन, सदेहो का स्पष्टीकरण, उसी के द्वारा सम्भव है। वही निवेदिता को सतोष दे सकती है। और तब बीच का 'इन्टरवल' इन्टरवल होकर ही रह जाएगा, 'दि ऐन्ड' न हो सकेगा, किन्तु अब निवेदिता का निमन्त्रण पा कर वह पहले से अधिक आप्लावित था, अधिक सुरभित था और अधिक मगन था।

इसी क्षण वह सोच गया—किन्तु कामिनी क्यो आती? उसने उसके साथ कौन-सा सलूक किया था? इसके विपरीत किस बुरी तरह से उसने उसके मन, प्राण को कुचला है? उसके मदमत्त यौवन पर उसने कैसा व्यंग्य किया है? उसके सौन्दर्य पर कैसा तुषार डाला है? उसकी सुरभित मीठी मुस्कानो पर कितने अन्याय से उसने रुदन का आवरण पहना दिया है। उसके हँसते हुए चंचल नेत्रो को जानबूझ कर उसने कितने कसकर भीच दिया है जिससे वह प्रणय-लीला मे किसी अन्य को न देख सके ..किसी अन्य प्रणय-तरगित तरल-रुपसी को देख कर वेदना, विद्रोह, उपालम्भ, क्षोभ और घृणा को पनपाते रह कर उल्लसित, सुवासित, मधुरिम प्रेम-मदिरा की शरबती मुस्कान से सिक्त सम्पूर्ण प्याले को कही वह सुखा न दे!

और तब वह सोच रहा था, हो न हो इस अवरोध, इस कुसमय के घटना रूपी अप्रासंगिक घटाटोप के अन्तरग मे, इस 'स्टाप' मे कामिनी की उस शापित फुफकार का ही प्रभाव है जिसे वह निकट के कमरे मे एकान्त पर्यंक पर पडे-पडे उगल रही थी। जिससे भर-भर जाम पीने की

मौन क्रिया, गतिमान पैरो के पायलो की रुन-झुन, अधरचाप की कमनीय सीत्कार, गूढालिंगन की कसक की मीठी कडक मे तरलता के स्थान पर एक स्थायित्व, एक 'स्टैन्डस्टिल स्टेज' आ गई।

किन्तु नही, ऐसा भी क्या? पुरुषोचित अधिकारो की गूँज मे ऐसा सब कदापि नही चल सकता। मै खिलाडी हूँ। मुझे कुछ जन्मजात अधिकार प्राप्त है। मेरे आह्वान पर परिस्थितियाँ बन-बिगड़ सकती हैं, परिवर्तित हो सकती हैं। अब भी मैं चाहूँ तो पहले की भाति मेरी एक हुंकार पर अनेक कामिनिया, क्रीतदासी की भाति मेरे तलवो के नीचे मेरी कृपाकोर की प्रतीक्षा मे अपने यौवन के भार को दाबे पडी रह सकती है और तब मैं किसी एक . दो .चार की चिन्ता क्यो करूँ? पर नहीं अब निवेदिता पर मैं आश्रित हूँ। अब मै एक का हूँ। एक का रहूँगा। अब मुझ मे बल नही, गति नही, मन मे ऐसी हुंकार को स्थान भी नही है। और मेरे प्यार ने मुझे सीमा मे बाँध दिया है। किसी अपमान को सहकर जहाँ मैं जम कर टिका हूँ, अब केवल वही मेरे जीवन का सारा सुख, ऐश्वर्य, समृद्धि और अनुराग सिमट कर, फैलकर केन्द्रित हो चुका है। मेरी एक से प्रीत. .निवेदिता से अथाह प्रीत है ..।

वह हडबडा कर उठ बैठा...निवेदिता की स्लिप...वह उसकी पेन्ट की जेब मे सुरक्षित थी।

तभी माधवी ने कमरे मे प्रवेश किया। जयन्त को देखकर उसने प्रश्न किया, "भैया, कितनी देर हुई आए? अभी मैं यहा आई थी तब तो तुम यहा थे नही। अब तुम्हारे सारे काम गुप-चुप होने लगे हैं... अच्छा चाय-वाय पियोगे? कुछ लाऊँ?"

"हा, हा मै यहा क्यो था? तेरी आख थोडे ही है, बटन है... बटन। मैं यहा दो घटे से हूँ। अच्छा जा-जा, अगर आज तूने कूट्टू की पकौडी नही खिलाई तो समझ लेना आज ही तुझे चालू कर दूँगा...सास के यहा।" जयन्त ने हँस कर मुँह बिचकाते हुए कहा, "और वह सास भी होगी मरी हुई ...।"

"कोई कह रहा था, तुम्हारे तो मरी-जिन्दा कोई सास-वास है नही। हा, एक सुसर है, बुड्ढा, खूसट-सा। देखने मे वह बौना है और अपने से लम्बी छड़ी लिए रहता है। सोते मे भी हैट पहनता है। और आजकल दिल्ली गया है।" कमरे से भागते हुए माधवी कह गई।

पलग से उठकर एकदम जयन्त भागा और रसोई मे जाकर मा के पास खड़ी माधवी की चोटी पकड कर अपने कमरे मे ले आया। चोटी को हाथ से और कसते हुए उसने कहा, "कहिए, बहन जी, ये सब कहा से लाई, किसने कहा? या यो ही मन से उपजाती है, सब बाते, नटखट कही की।"

माधवी की चोटी कसी जा रही थी, और मुँह फैला जा रहा था। उसने चिल्ला कर कहा, "भले आदमियो की तरह बात पूछो तो बताऊँ। यो तो बताऊँगी नही। बताऊँगी भी तो झूठ-सच।"

जयन्त ने माधवी की चोटी छोड दी किन्तु भाग न जावे इस डर से उसका हाथ पकडे रहा। किन्तु मन मे बातो की सचाई का ध्यान करके वह सोच रहा था निश्चित ही किसी प्रकार इस को यह सब ज्ञात हुआ है और उसने कहा, "अच्छा, अब बता. ।"

माधवी ने भागने की चेष्टा की। किन्तु न हिल सकी। तब विवश होकर वह बडबडाती रही, "हमसे छिपा-छिपा कर भाभी ढूँढी जा रही है। बडे चले है वहा से...मा कह रही थी, 'कामिनी के बाप की तरह उसका बाप भी निकलेगा।' "

तब जयन्त सचेत हुआ। ओह, मा भी जान गई है।

माधवी की ओर आँखे बन्द-खुली करते हुए वह बोला, "बहनजी अच्छी, नही, बहुत बुरी बहन जी, मै यह सब नही पूछ रहा हूँ। मै जानना चाहता हूँ—यह सब तुम्हारे मस्तिष्क मे आया कैसे?" जयन्त रहस्योद्-घाटन के मूलश्रोत को जानने के लिए लालायित था। कामिनी से वह सब ज्ञात होना सम्भव न था। कामिनी इतना सब जानती भी नही थी।

"ठीक, ठीक। हाँ......बहन जी के हाथ जोड़ो .....पैर छुओ।"

माधवी ने तन कर खडे होते हुए कहा।

"ले..." और जयन्त ने माधवी की कमर मे एक घूंसा दे पटका।

"तो पूछ लो.. बडा मजा आ रहा होगा। उनकी बातें जानने मे।"

और जयन्त ने माधवी के दोनो हाथ से हाथ जोड दिए। माधवी छिटक कर दूर खडी हो गई। उसने भागना चाहा किन्तु जयन्त ने पुनः उसे पकड लिया। विवश होकर उसने कहना प्रारम्भ किया।

"सुनिए, कल मै और माँ इधर आगे की ओर घूमने गए थे। हम तो पहले देख चुके थे उस दिन, जब कामिनी यहाँ आई थी। वे देवीजी बगले से बाहर जा रही थी और हम प्रमोद भाई साहब के यहाँ से आ रहे थे। कामिनी ने भी भली प्रकार से उनका परिचय दिया था। कितना तरसाया है तुमने उस बेचारी को। हाँ, तो वे ही आपकी रुपहली देवी जी खडी थी अपने दलान मे। जो हो, भैया, ढूढी खूब है! कितनी खूबसूरत है, वह!" तभी जीतू भी बोला, "बीबी, ये जयन्त भैया की... दोस्ती हई . दोस्त।" तब माँ चौकी और बोली, "क्या है रे.. ...?" "हाँ, माजी, भैया बहुत दफा मीलता हई ईनसे . ।"

'होगी कोई, बुरी लडकी।" माँ ने मुझ से कहा, "अब इससे नाता जोडा है। और अभी उसकी तबियत ही कब ठीक हो गई है ..।"

मै चुप थी। तब जीतू ही कहता गया, "हाँ, माजी, ईसका एक नौकर है, जगसिह। वह कहता था की, ई बहुत बड़ा आतमी हई। अऊर, ऊसका एक बाप है, सीरफ। ओपी दिल्ली गिया है .. .।"

मैं भी चुपचाप सुनकर केवल उधर ही निहारती रही। मैने माँ से कहा, "माँ, चलो उसके पास चले।" तब तक वह भी हमारी ओर देखने लगी। वह हमे कुछ-कुछ पहचानने की चेष्टा करती प्रतीत हुई। भैया, सच कह रही हूँ, उस समय मेरा बड़ा मन उसके यहाँ जाने का हो गया।" किन्तु माँ ने बिगड़ कर कहा, "मै नही जाती। जान न पहचान . ...।"

तभी मैंने माँ से कहा, "नही माँ चलो, मिल ले। यहाँ पहाड पर यो ही लोग बिना जान-पहचान मिल लेते है। फिर वह तो जब जानेगी कि आप, आप श्रीमान् जयन्त जी साहब बहादुर की माता जी है और मै, मै, उस शैतान जी की बहन जी हूँ तो वह हमे उठाए-धरे घूमेगी, मारे खातिर के...मारे खातिर के...जी।" और माधवी ने अपनी नाक बिचका दी।

जयन्त चुपचाप मुग्धमन, उतावला होकर माधवी के कथन मे डूबा जा रहा था, तुरन्त वह बोला, "फिर...।"

"अच्छा, अब वादा करो कि कल नैनीताल चलकर सिनेमा दिखाओगे। वर्ना बाकी तुम्हारा हाल भी...पर्दे पर। और यह कह कर माधवी भागने का उपक्रम करने लगी। जयन्त ने पुनः उसे रोका और बोला, "अच्छा, मेरी अच्छी बहन जी, वादा रहा।"

"अरे मै सब समझती हूँ। मामले सब ठीक है। तभी कितनी जल्दी वादा मिल रहा है. ।"

"अच्छा बताती है कि नही...?" और जयन्त ने उठाया घूँसा।

"सुनो, तब मेरी ठुनुक-ठुनुक के आगे माँ मान गई और हम लोग वहाँ गए। हमको देखते ही लान से बढकर उसने हमारा अभिवादन किया, हमारा स्वागत किया और हमे अपने ड्राइगरूम मे ले गई। अपने बनारस वाले ड्राइंगरूम से बढिया सजा है उसका ड्राइंगरूम, बहुत बढ़िया। हाँ तो, अपनी महीन आवाज मे उसने अपने नौकरो को पुकार कर हमारे लिए जलपान मंगाया। न हमारा नाम पूछा न ग्राम और उसकी खातिर शुरू हो गई .।"

"अरे तुम मेरी बहन जी हो न। कही चली जाओ तुम्हारी खातिर होगी...।" जयन्त ने बीच मे टोक कर गर्व से आखे तरेरते हुए कहा।

"जी हाँ, वह तो है ही...वह तो है ही।"

"फिर... .।"

"फिर, फुर्र...।" और माधवी भाग गई।

जयन्त सोच रहा था। कितनी विचित्रता है। ये लोग निवेदिता के घर हो आई। पता नही क्या बाते हुई? माँ ने क्या सोचा? क्या कहा?

इतने ही मे माँ कूट्टू की पकौडियो की प्लेट लेकर कमरे मे आई। उनके पीछे था जीतू चाय की ट्रे लिए हुए और उसके पीछे दुबकी सी आ रही थी माधवी।

"माँ, इस माधवी को मना कर लो मुझे तंग करती है।"

"क्यो री". .कहकर माँ ने प्लेट लिए-लिए ही कुर्सी पर बठते हुए कहा .।

"माँ, जरा कल की खातिर का हाल भैया को बता तो दो। देखो ऐसे फूलेगे जैसे गोलगप्पा। फूल कर कुप्पा हो रहे है घंटो से और मेरा सर खा रहे है। अ हा-हा! क्या खुश है?"

"क्यो रे जयन्त, तू बहुत इधर-उधर घूमने लगा है ..।" माँ ने ऊपरी गुस्सा दिखाते हुए कहा।

जीतू ने समझा कि अब उसका नाम आने को है। जयन्त भी वक्रदृष्टि से जीतू की ओर निहार रहा था। वह ट्रे रख कर चुपचाप खिसकने लगा, तभी जयन्त ने कडक कर पुकारा, "जीतू .. ।"

जीतू के जैसे देवता कूच कर गए। वह दबे-पॉव सामने आया।

"एक गिलास पानी ।"

जीतू सुनकर चला गया।

"हॉ, माँ क्या कह रही थी? किसने कहा तुम से?"

"बन मत। मै सुन क्या देख आई हूँ .।"

और जयन्त माँ के पास आ गया। कुर्सी घसीट कर बैठ गया। पैर दबाने लगा और धीरे से बोला, "माँ, मेरी माँ, पसन्द है वह। कैसी है?"

माँ भी द्रवित हो गई। सेवा मे मेवा का स्वाद है। माँ ने धीरे से कहा, "बेटा, अब तो तेरी खुशी मे मेरी खुशी है और तेरी पसन्द मे मेरी

पूरी पसन्द । और उस लडकी की क्या बात है ? वह तो बडी भली लगी मुझे । और बडे घर की है ।"

जयन्त हिलोरे लेने लगा । माँ की स्वीकृति.. ओह ! जैसे जीवन किलोले करने को अकुला रहा हो ।

और माधवी ने जबरदस्ती मुट्ठी भर पकौडी समेट ली ।

मोदी निरन्तर इस चिन्ता मे था कि वह निवेदिता को अपमानित करे । निवेदिता की प्रत्येक गतिविधि पर वह तीव्र दृष्टि लगाए हुए था । अपने अपमान का बदला लेने मे वह ऊच-नीच का ध्यान भी भूल जाने को तत्पर था । स्वाभाविक था । मानव का जन्मजात गुण ठहरा । उसका विश्वास था कि जब लडकियाँ किसी ओर ढुलक जाती है तभी यो हत्थे से उखडी-उखडी रहती है और काट खाने को दौडती है वर्ना .. और निवेदिता के सम्बन्ध मे वह विश्वास बनाए हुए था कि निश्चित ही वह कही डूब-उतरा रही है ।

जगसिह को स्लिप ले जाते देख लेने के पश्चात् तो उसका मत और भी दृढ हो गया था । उसने पापा से इस प्रकार की अनेक बाते दिल्ली मे बनाई थी और उनको विश्वास दिला दिया था कि वह पहाड पर साथ चल कर अपने कथन की पुष्टि कर देगा । और अब वह प्रमाण की चिन्ता मे कार्य-रत था । उसने आज भी पापा से कहा था कि आज वह उन्हे कुछ बतावेगा ।

पापा को निवेदिता पर अविश्वास न था । पापा को उसके रूप और इठलाते यौवन पर अवश्य इधर अविश्वास हो चला था । उन्होने जिस कठिन पाश मे उसे रक्खा था, रखना चाहा था व रख रहे थे उस मे उन्हे शका होने लगी थी । उनका मन अपने विचारो की गहराइयो मे और अधिक डूबने लगा था । न चाह कर भी मोदी के कथन को उन्होने बढावा दिया था ।

और शाम को मोदी ने देखा बहुत बन-ठन कर, सुन्दर वेश-भूषा मे निवेदिता बाहर निकल कर एक ओर बढ़ गई है।

इसके पूर्व बंगले के सामने से एक व्यक्ति को जाते उसने देखा था। वह विचारो का तारतम्य जोड़ रहा था। सोच रहा था, उसने उस व्यक्ति को कभी देखा है। बगले को घूम-घूम कर अनेक बार देखने की उसकी क्रिया से उसी समय उसके मन मे एक शका उत्पन्न हुई थी और अब निवेदिता उसी ओर गई है जिस ओर वह गया था। मोदी का विचार स्थिर हो रहा था कि आज निश्चित ही कही मिलन-व्यापार चलने को है। वह तुरन्त पापा के पास गया और उसने उनको शीघ्र चलने के लिये तत्पर किया। तब तक वह बाहर आकर निवेदिता के पीछे दूर-दूर लग लिया।

आगे जाकर दूर से उसने देखा कि निवेदिता कही ऊपर चढ़ी चली जा रही है। वह तुरन्त बंगले लौट आया और पापा से शीघ्रातिशीघ्र चलने को कहा।

पापा उद्विग्न मन बाहर निकले। चलते-चलते उन्होने जगसिह से पूछा, "नीतू कहाँ है ?"

"बाहर गई है, मिस साहब।" कह कर वह सोच मे पड गया कि आज कही कुछ गडबड न हो जाए। मिस साहब भी इधर ही गई हैं जिधर पापा बढ रहे है।

पापा ने एक गम्भीर दृष्टि जगसिह पर डाली। मोदी ने यह भी कहा था कि बगले के नौकर सब जानते और उसी के अनुसार सधे-सधाए कार्य करते है।

पापा 'प्रिमरोज' को जाने वाले राह पर, मोदी को साथ लिए, बढ गए।

और आज फिर मिलन-बेला आई थी। आज फिर दिशाये गूंज रही थीं। आज फिर मधुरिम पवन, सुवास लिए डोल रहा था। सौभाग्य

था कि चादनी भी बिखर कर 'प्रिमरोज' मे आ विराजी थी। जयन्त पहले से 'प्रिमरोज' आ गया था। आकर उसने प्रथम-मिलन के पवित्र स्थान की रज को चूमा। इधर-उधर टहल कर मीठी स्मृतियो को जगाया। पलक मूँद कर वह वातावरण मे वही निमग्न हो गया।

ग्रे कलर का सूट और उस पर लाल चित्तीदार टाई पहने जयन्त प्रतीक्षा मे पगडंडी की ओर आँखे बिछाए लान की रेलिग पर टिका खडा रहा। तभी सामने साडी का पल्लु लहरा गया। वह आन्दोलित हो उठा।

जयन्त और निवेदिता—निवेदिता और जयन्त, इस क्षण एक दूसरे के सामने, एक दूसरे के निकटतम थे। कोई सम्भाषण न हुआ। बस, वहा था एक गूढालिगन, एकात्म। मिलन की सान्ध्य बेला मे अमरत्व की अथक प्यास, अतृप्ति की हुकार मे तृप्ति की खोज। कुलबुलाहट में मौन जागरण।

निवेदिता अधिकतर साडी ही पहना करती। किन्तु आज उसने अपनी वेशभूषा मे विचित्र परिवर्तन किया था। आज देहली मे प्रचलित सलवार और कमीज मे वह विशेष निखरी दिख रही थी। रेशमी सफेद सलवार पर उसी कपडे की लम्बी कुर्ती के अन्दर से नीले रंग का अन्डरवीयर और बाडिस झाक रही थी। ऊपर से पिक कलर की चुन्नी सर पर जूडे के पास से उसने अटका रक्खी थी। चुन्नी के किनारे पर जरी का काम था। मन की भाति चुन्नी भी हवा मे लहरे ले रही थी। अपनी वेणी को उसने विशेष आकर्षण से सजा रक्खा था। जयन्त की भेट वह जूडा अब अनेक बार उसके काले केशो को चूमा करता था।

रात्रि होने के कारण जयन्त का साहस लान की गहराई मे जाने का नही था। कल रात पानी गिरा था जो दिनभर की धूप के पश्चात् भी भूमि को नम किए था। चट्टाने, तेज पानी मे धुलकर और निखर आई थी। अन्दर लान मे पेड़ो से गिरी पत्तियो और दलदल से बगीचा गन्दा भी हो रहा था। अतः जयन्त एक चट्टान का सहारा लेकर

'बाउन्डरी-वाल' के निकट ही खडा था।

निवेदिता आई। चुपचाप मुसकराकर खडी हो गई। बिना बोले ही आलिगन और मूक चुम्बनो की क्रिया प्रारम्भ होते देर न लगी और, और वही था इस बीच के समय के विश्राम का समाधान।

और जयन्त ने धीरे से कहा, "निवे, कैसे बुरे दिन व घंटे कटे हैं, इतने......और निवे तुमसे बहुत सारी बाते करनी है। तुम्हारा मन... मीठा करना है......।"

छोड़िए, उस बात को। मैंने उस सम्बन्ध मे सोचना बन्द कर दिया है। कभी सोचूँगी भी नही। हॉ, आप मेरे निकट बने रहिए, इसी भाति......। और आज एक जरूरी काम से बुलाया है मैने आपको। सुनिए, पापा देहली से लौट आए है और साथ मे लाए हैं एक लम्बा कागजो का पुलन्दा, लगभग ३० लाख रुपये की स्टेट मेरे नाम लिख लाए है .....। कैसे कहूँ कि मन के साथ अर्पित कर चुकी हूँ वह सब भी आप को ही। हॉ, तो मुझे जल्दी ही देहली जाना पडेगा। प्रतिवर्ष अब तक हम लोग नीचे उतर भी जाया करते है .....।"

"निवे, तब, तब तुम कब और कहा.... मिलोगी? निवे, तुम मत जाओ, मत जाओ ।"

"क्यो? ऐसा नही। मुझे जाना ही पडेगा। पापा को क्या बार-बार भूल जाते हो . लेकिन ऐसा कैसे होगा। हम मिलेगे। तुम देहली चलो । तुम्हे देहली चलना ही होगा। मेरे साथ चलो .. ..।"

"तुम्हारे साथ . . पापा के डडे के साथ...क्यो, क्या अब भी नाराज हो. .।"

खिलखिला कर हँसते हुए निवेदिता मुँह मे रुमाल दाबती हुई बोली, "अच्छा, अच्छा, बाद मे आ जाना। मै अपने पते का कार्ड साथ लाई हूँ ।" और निवेदिता ने ब्लाउज मे अटके पेन के साथ चिपका कार्ड निकाल कर जयन्त की ओर बढा दिया।

एकाएक निवेदिता की दृष्टि सामने नीचे की पगडंडी की ओर

पडी। चादनी मे स्पष्ट उसने पहचाना कि मोदी और पापा आगे बढ रहे हैं। 'प्रिमरोज' की पगडडी से वे अभी वैसे दूर थे।

निवेदिता को घबराहट मे देखकर जयन्त ने प्रश्न किया, "क्यो, क्या जल्दी मे हो ?"

"क्या बताऊँ, एक धूर्त आजकल मेरे बगले मे टिका हुआ है। अपनी धूर्तता के फलस्वरूप मेरी डाट से वह तिलमिलाया हुआ है, इसीलिए पापा का 'ब्रेन' वह खराब करता रहता है। स्टेट के मैनेजर के रूप में वह हमारा कामधाम देखता है। मालूम देता है किसी बदमाशी से वह सामने पापा को लिए चला आ रहा है ..।" हाथ के सकेत से निवेदिता ने सामने जयन्त को दिखलाया।

जयन्त भी कुछ विचलित हो उठा। इस प्रकार के एकान्त-मिलन मे कौन व्याघात चाहेगा ? कोई चाहता भी नही कि दो जीवो के अतिरिक्त कोई तीसरा उसकी गन्ध भी पावे। तभी एक आशका, एक डर निरन्तर बना ही रहता है। समाज ने इस प्रकार के मिलन को न जाने क्यो अवैध घोषित कर रक्खा है ? जयन्त को वह सब अखर रहा था।

"तो क्या तुमको आते उसने देखा था. ।" जयन्त ने सामने ही देखते-देखते प्रश्न किया।

"वह बहुत बदमाश है . । और पापा को तो मैं निद्रा-निमग्न छोड़ आई थी। इसी दुष्ट ने उन्हे जगा कर तग किया है। बेचारे बुड्ढे आदमी को तग करता है नालायक...और आज पापा से भी मै खुल कर बाते करूँगी...।"

"व्यर्थ घबरा रही हो। न जाने वे कहाँ जा रहे है ?"

"भोले देव, मै जानती हूँ। वे मेरी खोज मे ही आगे बढ रहे है।"

और देखते-देखते पापा व मोदी 'प्रिमरोज' की पगडडी के मोड पर थे। निवेदिता ने देखा मोदी संकेत से पापा को ऊपर की ओर दिखाकर कुछ कह रहा है।

"कितने 'वीक' है पापा। पाजी उन्हे यहाँ तक ले आया ..।

और देखो वे, इधर ही की ओर अग्रसर होते दिख रहे है। अब,अब !"

जयन्त भी परेशान था। निवेदिता सोच रही थी, पापा चाहे जितना थक जावे, चाहे जितना परेशान हो जावे, किन्तु मोदी ने यदि उनको कुछ सुझा दिया होगा तो वे अपनी प्रकृति के अनुसार किसी बात की तह तक पहुँचने मे बडे दृढ़ होने के कारण निश्चित आगे आवेगे। तब उसने यह भी ध्यान किया कि अनुमानतः प्रिमरोज से निकल जाने का दूसरा मार्ग भी नहीं है। तीन ओर तो गहरी ढलवॉ चट्टाने ही है। तभी उसने जयन्त से कहा, "बोलिए, अब क्या किया जावे ? यहॉ से जाने का कोई अन्य मार्ग भी नही।"

जयन्त विचारो मे उलझा हुआ था। मिलन मे इस व्याघात से वह बडा क्षुभित हो रहा था। इतने समय के पश्चात्, ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने के अनन्तर वह यों मिल सका था। किन्तु इस समय परिस्थिति को तो संभालना ही था। उसे ध्यान आया दाहिनी ओर से ऊंची-नीची चट्टानो को कुचल कर वह किसी प्रकार नीचे उतर सकता है। निवेदिता से उसने कहा, "निवे, कितना क्लेश हो रहा है मुझे इस समय। खैर, अब तो यहॉ से चलना ही उपयुक्त है। फिर जरा तुम उन धूर्त महाशय को मुझे बताना।"

"किन्तु वह सब ठीक है, इस समय तो वे सामने है। मार्ग भी एक ही है। यदि वे लोग ऊपर आए तो .तो क्या होगा ?" घबराहट मे निवेदिता सामने देखते हुए कहे जा रही थी। मोदी को निवेदिता इस समय कच्चा चबा जाना चाहती थी।

तभी जयन्त ने निवेदिता से कहा, "रुको मै देखता हूँ।" और जयन्त पीछे की ओर रास्ते को देखने गया।

निवेदिता अकेली रह गई। एक ओर जयन्त अन्य मार्ग की खोज मे गया था और दूसरी ओर प्रिमरोज की पगडंडी पर दस-पाच पग पापा ऊपर चढ आए थे। निवेदिता काप रही थी। पापा निश्चित उसकी खोज मे, ऊपर आ रहे थे। यह उसके अपने जीवन की एक अनहोनी घटना

था। जीवन मे, पापा द्वारा उसकी गतिविधियों की ऐसी छानबीन होगी, इसका, उसे स्वप्न मे भी ध्यान न था। और पापा को निवेदिता के क्रिया-कलापो का यो पता लगाते घूमना पड़ेगा इसका पापा ने भी स्वप्न में कभी अनुमान नही लगाया था। कोई भी अविभावक, जिस पर एक अनन्य सुन्दरी, अनन्त यौवन मे चूर नवबाला के संरक्षण का भार होगा निश्चित ही वह उसको पूर्णतः सजग प्रहरी की भाति संभाल कर रखने के लिए सचेष्ट रहेगा ही। इसमे पापा का क्या दोष ? और, और निवेदिता का भी क्या दोष ? यौवन की अंगडाइयो मे अठखेलियाँ, अनुराग, प्यार, दुलार होना ही जो स्वाभाविक है, जो प्राकृतिक है।

"मोदी, यू नानसेन्स, बेमतलब हर वक्त निवेदिता के पीछे पडा रहता है। मै जानता हूँ वहाँ ऊपर एक सुनसान लान है। वहा इस रात के वक्त कौन जाएगा...बेकार मुझको परेशान कर रहा है.. और मै भी कितना बेवकूफ हूँ कि तेरे कहने पर यो चला आया...मै सोच रहा हूँ, निवेदिता को जब यह बात मालूम होगी तो वह मुझ पर कितनी बिगडेगी...तीन दिन खाना नहीं खावेगी। फिर भी मै चला आया। कितनी बुरी बात होगी.. ।" प्रिमरोज की पगडंडी पर दस-बीस पग चढ़ते हुए बिगड कर पापा ने कहा।

मोदी चुप था। उसको पूर्ण विश्वास था कि वह यही मिलेगी। उसने अपनी आँखो से उसे ऊपर जाते देखा था।

"यहाँ, नीतू क्या करने आवेगी...और तू कहता है, एब्सर्ड, उस का किसी से.. एब्सर्ड।" पापा पुनः बिगडे।

मोदी चुप। किन्तु न पापा लौट रहे थे और न मोदी। दोनो और पाच-दस पग आगे बढ़े।

कभी पहाडो पर घूमते और टक्करे मारते जयन्त ने देखा था कि प्रिमरोज को जाने वाली पगडंडी के अतिरिक्त पीछे की ओर एक ढलवा

मार्ग, पीछे पहाड़ो पर उतरता था। मार्ग तो था किन्तु इतना असमंजस था कि उसके द्वारा न मालूम कहाँ पहुँचा जावेगा और न मालूम घूम-फिर कर घर पहुँचने मे कितना विलम्ब होगा ? किन्तु फिर भी उस समय बचाव का कोई अन्य मार्ग नहीं था।

कभी अनचाहा अवलम्ब विवशता को दबा देता है।

वह दूर जाकर उस मार्ग को देख आया। लहराता चला जाता वह मार्ग आगे जाकर अनन्त मे विलीन हो गया था। और जयन्त भी चाहता था सबसे दूर भाग कर निवेदिता को साथ ले कर ऐसे मार्ग को बढ जावे जो उन्हे अनन्त तक पहुँचा दे। जयन्त लौट आया और निवेदिता के निकट आकर हँसी के ध्यान मे बोला, "निवे, आज तो बुरे फसे। कोई बचाव कही नही दिखता .।"

"कुछ भी हो। कही छिपिए या कही आगे बढिए, अन्यथा मै इसी क्षण इस चट्टान से कूदती हूँ।"

जयन्त सहम गया। मनचाही ऐसी प्रिय-निधि के सम्बन्ध मे इतने सोचने मात्र से दिल दहल उठता है। तत्क्षण अत्यन्त शान्त, सरल और धीमे स्वर मे उसने कहा, "इतनी घबराहट की कोई आवश्यकता नही। चलो पीछे चल रहे है ।" रुककर, "और सुनो, अब तो कभी नहीं कहोगी, कभी नही सोचोगी, ऐसी भयावह बात।" जयन्त खिन्न मन आगे बढते हुए कह गया।

निवेदिता मुसकराई। जयन्त के निकट सिमटते हुए वह बोली, "क्या सचमुच सहम गए ? ट्रैजडी से इतना डर .।" और वह एकाएक आगे की ओर देख कर रुकते हुए बोली, "किन्तु इधर हम जा कहाँ रहे है ?"

"सबसे दूर। दुनिया की खोज से भी दूर . ।"

"हर समय की भावुकता अच्छी नहीं। यह बताओ, किधर जाएँगे, किधर निकलेंगे ? पापा से पहले हम बगले कैसे पहुँचेंगे ?"

"इस समय तुम मेरे साथ हो... ..।"

"जी हा, नहीं। परिस्थिति की गम्भीरता मे सोच कर पग बढाने

लिए मुझे भी मस्तिष्क मिला हुआ है...बोलो, किधर से चल रहे हो।"

"इधर से घूम-फिर कर जल्दी पहुँचने का प्रयत्न किया जाएगा और यह तो मुझे भी नही मालूम कि यह मार्ग हमे कहाँ पहुँचाएगा?"

"यह भी खूब है। जिस मार्ग मे चल रहे हैं उसके सम्बन्ध मे स्वय ही कुछ ज्ञात नही?"

"बहुधा ऐसा होता है।"

"किन्तु यह परिस्थिति डेन्जरस है, मोस्ट खतरनाक!"

"मोस्ट खतरनाक ..!" जयन्त ने दोहराया। और निवेदिता तथा जयन्त दोनो ही हँस दिए।

अब तक वे बहुत नीचे उतर आए थे। सौभाग्य से वह मार्ग मुडता था उस दिशा की ओर जिस दिशा मे जयन्त अथवा निवेदिता के बगले स्थित थे। जयन्त ने अनुमान लगाया, निश्चित ही यह मार्ग वही कही पहुँचाएगा। तभी निवेदिता ने कहा, "कैसी बुरी बात है। पापा को उस पाजी ने कितना परेशान किया होगा। पापा ऊपर तक...।"

"और कम्बख्त ने हमे कम खिझाया है, क्या?"

"अभी क्या है? जब मै ठीक से अपने बगले पहुँच जाऊँगी तब जी मे जी आएगा। सोचती हूँ, ऐसे बंगले के बाहर नही जाना चाहिए ...किन्तु " और वह जयन्त की ओर देखकर मुसकरा दी।

आगे जाकर वह मार्ग कही अन्यत्र जाने के स्थान पर एक-दूसरे पहाड पर चढता जा रहा था। अब निवेदिता घबराई। उसने कहा, "यो, कहाँ तक, चढाई-उतराई करते रहेगे।"

जयन्त ने मुसकरा कर निवेदिता के फूलते नासापुटो को देखा और आगे बढता गया। जयन्त व निवेदिता अब तक उस दूसरे पहाड की चोटी से थोड़ा नीचे पहुँच गए थे। उन्होने देखा उनके बगले सामने स्पष्ट दिख रहे है किन्तु उन तक जाने के लिए कोई पगडंडी नही है। जिस पहाड पर वे खडे थे वह एक ठूँठ-सा अलग ही दूर खडा था। उसके ढाल पर पेड-पत्तिया भी न थीं। ऊँची-नीची नोको और चट्टानो से

तार चढ़ाव बनाता पहाड नीचे को उतर गया था और उस उतार तक जा कर ही सुगमता से बगले जाया जा सकता था।

किसी प्रकार ऊबड-खाबड स्थानो को पार करके जयन्त व निवेदिता पगडडी के निकट निकल आए।

"अच्छा तो, जाओ और मोर्चा संभालो.. ।" मुस्करा कर जयन्त ने निवेदिता को नमस्कार किया और मुड कर चलने को उद्यत हुआ ।

"वह तो है ही, तुम पुरुषों की कोई यह नई बात नही। अनेक मोर्चों पर हाथ-पैर झाड कर तुम लोग यो ही खडे हो जाते हो। जो कुछ है देखूँगी ही। हाँ, जगसिंह के हाथ सुबह स्लिप लिख कर भेजूँगी।" निवेदिता मुस्कराई और अपने बंगले की ओर चल दी।

पापा अभी बगले नही पहुँचे थे। निवेदिता चुप-चाप अपने कमरे मे जाकर लेट गई।

जगसिंह ने सूचना दी, "साहब और मनेजर बाबू, आपको देखने गिया है, बाहर। आया नेई। हमसे पूछा तो हम बोल दिया कही घूमने गिया है, मिस साब. ।"

और पापा ने अपने थके हुए धड को धम्म से लाकर इसी समय सोफे पर ला पटका। सास ले लेने पर उन्होने कर्कश स्वर मे पुकारा, "आया .।"

शीघ्रता मे आया को आता देखकर पापा ने उसी चीखती आवाज़ मे उससे पूछा, "नीतू अभी नही आई.. ।"

डर और सकोच की मुद्रा मे आया ने दबे शब्दो मे कहा, "साहब, वो तो देर से अपने कमरे मे हैं. ।"

"ओ.. " और एक तीक्ष्ण दृष्टिपात उन्होने सामने की कुर्सी पर बैठे मोदी की ओर किया।

मन ही मन कुढते हुए और एक दूसरा दाव खाकर हारे हुए मोदी

ने अपनी तीखी दृष्टि से पापा के रोष को देखते हुए चुपचाप पी लिया...।

"डेविल, नानसेन्स...।" कहते हुए पापा ने मोदी से फटे हुए स्वर में कहा, "गो टु योर रूम ..।"

क्रोधित पापा चुपचाप अपने कमरे मे पडे पलग पर आकर उढक गए।

अन्दर मन ही मन निवेदिता मुस्करा रही थी।

: ३२ :

प्रमोद और कीर्ति आज प्रातःकाल ढाल की ओर घूमने निकल गए। बाजार पार करके ढाल की ओर मुडते ही उन्होंने देखा कि बहुत से डोटियाल जत्थो मे और अलग-अलग भी सैनेटोरियम की ओर बढ़ते चले जा रहे है। किसी के हाथ मे लोहे का फावडा था तो किसी के हाथ मे लोहे का खन्ता और किसी के हाथ मे डलिया। बहुत से लोग बास और बल्लियो के टुकडे ही लिए भागे चले जा रहे थे। सभी की आकृतियो मे उलझन और शीघ्रता थी। कीर्ति से न रहा गया। इस प्रकार की भाग-दौड देखकर उसने एक व्यक्ति से पूछा, "क्या बात है...? सब लोग यो किधर जा रहे है ?"

"अभी थोडी देर पहले मुसाफिरो से भरी बस सैनेटोरियम से लगभग एक मील आगे खड्ड मे जा गिरी है। न जाने कितने आदमी मरे है। कैसे क्या हुआ कुछ पता नही।"—प्रश्न का उत्तर था।

प्रमोद और कीर्ति दोनो ही सिहर गए। बस के खड्ड मे गिरने का काल्पनिक चित्र उनके नेत्रो मे घूम गया।

"कीर्ति, पहाडो पर यह भी कितना बडा खतरा है। चालक की तनिक-सी असावधानी अथवा मशीन की जरा सी गडबडी से अनेकों की जान चली जाती है। न मालूम कितनो का जीवन क्षण भर मे अनन्त मे विलीन हो जाता है। सोचो, तारकोल की सडक पर से विचलित होकर सैकडो फीट नीचे खड्ड मे गिरती हुई, बस। और उसकी टीन के

साथ-साथ छितरे पडे यत्र-तत्र शव और मानव के अंग-प्रत्यंग, कितना वीभत्स, कितना भयानक ! साथ के निरीह बालको के नन्हे-नन्हे मृत शरीर, स्त्रियो और पुरुषो का मृत्यु की विभीषिका मे लिपटा लहूलुहान तन.. ।" अत्यन्त कारुणिक और गम्भीर मुद्रा मे प्रमोद ने अपने मन की पीडा को व्यक्त किया ।

"सचमुच, बस के गिरने के समाचार को सुनकर इस क्षण मुझे भी बडा क्षोभ हो रहा है । कल ही तो हीरालाल साह सुना रहे थे, कुछ दिवस पूर्व हुई इसी प्रकार की घटना का विवरण । और आज यह समाचार सुनाई पड गया । कितनी कारुणिक थी वह भी घटना । केवल पचीस फीट नीचे गिरने पर दस आदमी और छः बच्चे तडप-तड़प कर काल कवलित हो गए । सड़क के किनारे बनी कगार कही दौडती बस के फोर्स को रोक सकती है, भला ?" कीर्ति बडे रोमाच के स्वर मे कह गया ।

पीडित मन किसी का कष्ट, तनिक-सी वेदना, कोई भी रंजित घटना न देख सकता है, न सुन सकता है । प्रमोद इस समय आवश्यकता से अधिक उद्वेलित था । क्षीण मुद्रा मे आगे बढते-बढते प्रमोद कहने लगा, "समूह मे कराल काल की कैसी तृप्ति होती है । उसके अहर्निशि किटकिटाने वाले विषदंश, राक्षसी-शृ ग, संहारक-नख, उसकी कल्पित, अकल्पित, भयानक...रक्त-रंजित मुद्रा का हहर-हहर करता हुआ चीत्कार कब रुक सकेगा...कब रुकता है ।"

जैसे प्रातःकालीन सुखद वायुमण्डल, मन्द सुरभित पराग, मलय, इस सबमे आज इस प्रभातबेला मे बाल-सूर्य की ओर से बढता फैलता चला आता प्रकाश, सब कुछ विषम हो गया, इस मृत्यु की व्यापकता के समाचार के पश्चात् । और वे उच्च पर्वत-शृ ंग, जैसे द्रवित किन्तु स्थिर प्रतीत हो रहे थे । वे सब मिल कर जैसे सोच रहे थे कि यही कहीं, आगे कही उन्ही के घेरे मे, देखते-देखते उनके समक्ष मृत्यु ने अपना हाहाकारी गान सुनाया है, मृत्यु ही तो अभी खेल गई है, यहा चारो

ओर, उसने ही तो अभी-अभी अपना ताण्डव दिखाया है, उनके समाज, उनके परिवार वालो को, वृद्ध, युवक अथवा बालक शिला-खण्डो को।

इन चट्टानों का भी अपना इतिहास है, अपनी संस्कृति है, अपना समाज है। वह सामने एक वृद्ध, उन्ही मे का एक, बडे ऊँचे से खडा मुस्करा रहा है . ...सामने उसके नाती, पोते, बडे-छोटे सभी लोट-पोट रहे है, आनन्द मना रहे हैं। निश्चिन्त, निर्विकार, निरश्रु, निर्द्वन्द्व। हम सबसे तो ये भले, हमारी समाज से तो यहाॅ सन्तोष है, इन बावली चट्टानो मे...जो बोलना जानती ही नही, कुछ पूछने पर केवल अट्टहास कर उठती है। और मस्तिष्क लिए समझते हैं, मानव-समाज वाले, कि वे ही अपने मे पूर्ण हैं।

उनके मध्य का मुक्त संगीत, उनके बीच का प्रलयंकारी कठोर गर्जन, उनके बीच का वसन्त, मलयज समीर, भयकर उत्ताप प्रेमी से भी अधिक डरावना, ग्रीष्म की जलन, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, प्रकृति के साथ-साथ उनकी सुन्दर सामाजिक व्यवस्था, आपस मे हेल-मेल, सब अनुकरणीय है। हम पत्थरो से ही कुछ जान-सीख सके यदि।

और प्रमोद तथा कीर्ति आगे बढ गए। आगे चलकर एक स्थान पर सडक कुछ फैल गई थी। वही किनारे की कगार और स्थानो से कुछ अधिक ऊँची थी। दाहिनी ओर के विस्तृत शिलाखण्डो के मध्य से एक झरना लहराता, बल खाता उस स्थान से नीचे की ओर से होकर बाई ओर तक बह कर एक नीचे से खड्ड मे पुनः झर-झर करके गिर रहा था। अन्य स्थानो की अपेक्षा यहा आकर पर्वत अधिक ऊँचे उठे हुए हैं। यहा ऊँचे पर्वतो के कारण छाया छितरी पडी रहती है। चारो ओर से घिरे पर्वतो के मध्य लहरिया लिए चलती हुई तारकोल की सडक आगे बढती चली जाती है, सैकडो मील।

कीर्ति बोला, "अग्रेजो तुम धन्य हो, अपने मस्तिष्क व गति को लेकर कितने, कैसे स्मरणीय स्थान बना डाले तुमने इन पार्वतीय प्रदेशो मे। भले ही वे तुम्हारे सुख-समृद्धि व ऐश्वर्य के लिऐ बने थे किन्तु आज

हम भी तो उसका उपभोग कर ही रहे है।"

यह स्थान प्रमोद को विशेष रूप से प्रिय था। घंटो, प्रकृति के इस दर्शनीय निर्जन स्थान पर बैठ कर वह आत्मविस्मृत बना रहा है। कगार पर बैठकर उसने आत्म का तादात्म्य किसी प्रेरक शक्ति से अनवरत मिलाया है। चतुर्दिक घने पेडो से छाए इस स्थान ने प्रमोद को मन के ताप मे भी स्वान्तःसुखाय शीतल बनाया है। प्रकाश, यहा छन-छन कर, धुल-धुल कर आता था। धूप की तपिस यहाँ से हटकर, थोड़ा ऊपर ही, चचल यौवन की भाति अस्थिर ऊपर ही ऊपर घूम-फिर कर चली जाती थी। पास मे ही सम्भवतः दाई ओर किन्ही कगूरेदार चट्टानो पर कुछ अनदेखे वृक्ष लगे है जिनकी भीनी सुवास वातावरण और विरही मन को आन्दोलित कर रही थी।

आज भी प्रमोद कीर्ति के साथ यहाँ आ बैठा। मन ही मन प्रमोद आज उस स्थान से विदा मागने आया था। उसका मन भर आया। उसके नेत्र सजल हो आए। इतने दिनो का नाता टूटने पर मन का भर आना स्वाभाविक था। मादक छटाओ से घिरे उस निर्जन प्राकृतिक स्थान से विदा लेने के क्षणो मे प्रमोद के व्रण मे एक टीस, एक चुभन-सी होने लगी।

प्रकृति से तादात्म्य की इस स्थिति मे आराध्य की सजीव स्मृति प्रमोद के हृदय-मन्दिर मे आ विराजी।

कीर्ति ने समझा कि प्रमोद अर्धसुप्तावस्था मे कही लहरो के पार डोल रहा है।

तभी निकट से एक रक्तवर्ण सर्प लहराता हुआ सामने आया और घूम कर ऊपर पहाड पर चढ गया।

कीर्ति इस समय प्रमोद को छेडने के मूड मे स्वय भी न था। इन्ही किन्ही पहाडो पर, आगे, बस, उसके खण्ड-खण्ड, छितरे पडे टुकडे, वही उनमे मिले स्त्री-पुरुषो के कटे पडे अगप्रत्यंग..... कही हाथ, पैर...... धड़......अन्तिम श्वास लेता किसी भारी पदार्थ के नीचे दबा-ढका

किसी का तन, निरीह बालको के भी इधर-उधर मृत पडे मासूम चेहरे ! कीर्ति के शरीर मे एक सिहरन दौड गई। वह आन्दोलित हो उठा। करुणा से उसका मन अनायास रो उठा।

और प्रमोद देख रहा था एक स्वप्न। पहाडो से उसका प्रस्थान, सुदूर दक्षिण.... . सुदूर पश्चिम, उसका धू-धू करता तैरता बढता जलपोत, डेक पर वह . चट्टानी लहरो की भाति डूबते-उतराते उसके विचार, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी का लान, उसकी फैली हुई बिल्डिग, वही उसकी .... प्र . .वही वह। किन्तु वहाॅ वह जाएगा क्यो ? वहा वह मिलेगी क्यो ?

सामने से तीन पहाडी अपनी भाषा मे कुछ गाते चले आ रहे थे। उनके हाथ मे वे ही फावडे व कुदाल थे।

निकट आने पर कीर्ति ने बडे कौतूहल से पूछा, "क्या हुआ ? बस के आदमी सब निकल आए। बहुत आदमी मरे ।"

दो व्यक्ति उनमे ठेठ पहाडो थे। वे कीर्ति की कोई बात न समझ पाए और चुपचाप खडे रहे। हाॅ, तीसरे व्यक्ति ने स्फुट भाषा मे हाथ घुमा-घुमा कर उत्तर दिया, "हमको खबर मिल गिया। हाम लौट आया हेई। वहाॅ आगिया है, क्रीन बोलता, ना जानी किया बोलता.... " और उसने हाथ के सकेत से बताया कि क्रेन कैसी होती है और कैसे वह ऊपर को घसीटती है।

दोपहर बाद हीरालाल साह से ज्ञात हुआ कि २८ जाने गई हैं। लगभग ६ व्यक्ति मरणासन्न है। उन्होने बताया कि क्रेन या अन्य इस प्रकार के उपकरण व्यर्थ सिद्ध हुए। रस्से बाध-बाध कर पहाडी लोग नीचे लटकाए गए तब टीन, लकडी व त्थरो मे दबे-पिसे आहत व्यक्ति निकाले गए, लाशे खीची गई ।

साहजी बोले कि उन्होने स्वयं जाकर वह वीभत्स दृश्य देखा था।

"प्रमोद, कुछ भी होता, हमे वहाँ जाना चाहिए था। दृश्य देखने लायक था...।"

"देखने लायक क्या नही है कीर्ति? कब क्या द्रष्टव्य नही है कीर्ति? प्राणी और प्रकृति के किस स्वरूप मे करुणा नही खेलती ..यह जीवन स्वयं एक वीभत्स प्रयोग है।" और प्रमोद अन्दर चला गया।

हीरालाल साह ने बताया, "बडे ताज्जुब की बात है, बाबू साहब, ड्राइवर मरा हुआ तो निकला किन्तु उसके कही भी चोट नही थी। हाँ, एक दूसरा आदमी ड्राइवर की जगह पर मिला था जिसकी मौत बड़ी भयानक हुई थी। हैन्डल का राड उसके पेट मे आरपार घुस गया था। एक खिडकी के बाहर उसका सर व एक हाथ लटक रहा था। उसकी एक आँख बाहर निकल आई थी। उसके न जाने कितने छोटे-बड़े घाव शीशे के घुस जाने से मुँह व शरीर मे हो गए थे। एक बडा-सा शीशे का टुकडा आँख के पास घुसा हुआ था, जिससे उसकी आँख बाहर निकल आई थी। जैसे लकडी के टुकडे उठा-उठा कर रक्खे जाते है इस तरह मरने वालो के हाथ-पैर इकट्ठा किए गए थे। एक गोद का बच्चा अपनी मा की छाती से चिपटा-चिपटा, वैसे ही लोप हो गया। उसकी मा के दाहिने हाथ और बाये पैर का पता ही नही था। कुछ रुक कर वे बोले, देखिये, भगवान् की लीला, बच्चा कैसे वैसा ही चिपटा रह गया। उस बच्चे के कही चोट नही थी। बच्चा इतना छोटा था कि मारे डर के उसका अन्त हो गया दिखता है।

"घटना कैसे हुई, इसका कुछ पता नही चला। एक भी ऐसा व्यक्ति नही मिला जिसने मुँह खोल कर एक शब्द कहा हो। वहाँ तो एक मेला लगा था। अब तो भीड नही है। नैनीताल से कई डाक्टर, मोटरे, क्रेन, एम्बुलेस, और आदमी आ गए है। चार आदमी नीचे उतारे गए थे। ३०० फीट नीचे गिरी होगी, बस। जब कोई लाश या आदमी ऊपर घसीटा जाता तो भीड के लोग कितनी बुरी तरह से चिल्लाते थे। बड़ा डरावना दृश्य था। दो-तीन तो देखने वाले वही

बेहोश हो गए। बोलो, वहाँ आए क्यो थे ? किसने बुलाया था ?

"और बाबू साहब, कभी ऐसे मौके आ ही जाते है। साल में कभी एक-दो बार। तब, पहाडी लोगो को ही जान पर खेल कर काम करना पडता है। क्रेन, मशीन कुछ काम नही आती।"

"ओफ, कितना भयानक, कितना वीभत्स, मृत्यु, मृत्यु!" कीर्ति ने आँख बन्द करते हुए कहा।

प्रमोद कोहनी टेके मेज के सहारे मौन बैठा रहा।

दूसरे दिन ज्ञात हुआ कि जीवन भी उसी बस से जाने को थे किन्तु किसी कारणवश अपनी यात्रा स्थगित कर दी। वह भी उसी क्षण किशोर महोदय की हालत बहुत बिगड गई, और जीवन रुक गए। उनकी मृत्यु टल गई।

●

: ३३ :

किशोर महोदय का सारा शरीर जैसे निचुड गया हो। सारा रक्त जैसे सूख गया हो। मास मे जैसे मरोड-मरोड कर किसी ने सरवटे डाल दी हो। हाँ, केवल दिख रहा था उन्नत ललाट, भरा-भरा, बड़ी-बडी आँखे सूखी हुई परन्तु ऐसी जैसे उनमे कभी रस ही रस भरा रहा हो...

और . और सारे शरीर की उत्तु ग अस्थियाँ, जिनकी नोके स्वतः उसको गड़ रही थी जिसके शरीर मे वे उभरी हुई थी. ऐसा-सा शरीर लिपटा पड़ा था उन बहुमूल्य कपडो व बिछौनो मे, वातावरण, वस्तुये, वह स्वय भव्यता व शालीनता के स्पष्ट द्योतक थे किन्तु विषमता व नैराश्य मे डूबे हुए।

प्रमोद व कीर्ति ने किशोर महोदय को नमस्कार किया और निकट ही कुर्सी पर बैठ गए। वातावरण मे एक अप्रत्याशित डरावनापन-सा लग रहा था। वैषम्य, आते-जाते कुछ चिह्न देता है।

"मै.. मै...एक उच्च आफिसर रहा हूँ हजारो लोगो से काम... पडता रहा है। मनुष्याकृति ..मनुष्य को पढने का मुझे शौक रहा है... इसमे निकटता की कोई बात नही। मैने . आप मे कुछ समझा .. कुछ पाया...इस युवावस्था मे ..अपने रोगीले शरीर मे भी...आप मे...सात्विक, सरल ..विवेकपूर्ण व्यक्तित्व पाकर...एक भार सौ... पा है। मै, जा रहा हूँ...प्रमोद.. बा...बू ..जा रहा हूँ। शी..।

डाक्टर ने आ कर एक सूई बिना कहे हाथ के पुट्ठे मे खोस दी और चला गया।

"मेरी...कहानी मेरे बाद सुनिएगा...। किशोर महोदय बोल• रहे थे। एकाएक स्तब्धता छा गई।

"और कहा. .नी भी क्या'.." केवल मूर्खता के प्रायश्चित्त का एक निर्जीव उदाहरण...ए क्रूड लाइफ ..एन्ड ए डिफीटेड सोल... एक दम्भपूर्ण आफीसर .एक असमर्थ अविवेकी पिता. .विश्वास का शिकार. .अवि ..का शिकार . नई सभ्यता का. शिकार।" और एक हुचकी आई।

वे चित हो गए। घंटी बजी, पुनः जीवन, थर्मस, तरलता, ५ बूँद दवा.. किन्तु उन्होने पी नही।

नर्स ने आकर कलाई के पास की उभरी नस पर हाथ रक्खा। तिलमिलाई और शीघ्रता मे उसने जीवन को किनारे ले जाकर कुछ कहा।

जीवन ने प्रमोद को बुलाया। कुछ कहा।

प्रमोद उठकर बाहर आने को हुआ. किन्तु सकेत से किशोर महोदय ने रोका।

"जीवन मेरा पी . ए बीस वर्ष से छाया की तरह मेरे साथ रहा है .और अब...जैसे वालिटियर. .जैसे वह हो गया एक मामूली नौकर...कहाँ, किसको मिलेगा मेरा जीवन ।

पास खडा जीवन भूमि मे डूबा जा रहा था।

दो-तीन डाक्टर एक साथ अन्दर आए। आते ही उन्होने प्रमोद की ओर संकेत करते हुए कहा, "आप लोग बाहर जाइए...इनसे बात मत कीजिए .अब .।"

उन्होने देखा और मुँह लटका कर चले गए।

प्रमोद बाहर जाने लगा। किशोर महोदय ने पुनः रोका।

बहुत आवेश मे तथा परिश्रम से क्षीण स्वर मे वे बोले, "मेरी

पत्नी...निकट के कमरे मे है...दो वर्ष से मैंने उसको नही देखा... क्यो...ठीक है . कुछ नही.. बी. ए. है . पढ-लिख कर अकल आती है...कम ! औरते...पढी हो चाहे अपढ ..उनकी प्रकृति को कौन... कहा से जावेगा. .उनकी...उनको . . ...उनकी दुनियाँ .अलग बसनी चाहिए .. दूर.. " उनका स्वर क्षीण होता जा रहा था। चाह कर भी प्रमोद न उठा।

"बेवकूफी का . . .सीधा असर उनकी औलाद पर .....प्यार मे...उनके जीवन का हनन ..कर डालती है..... ।

आज, इस क्षण, प्रथम बार प्रमोद ने किशोर महोदय के सूखे नेत्रो मे दो आँसू ढुलकते देखे। जैसे उनको आत्मिक वेदना हो रही हो।

"मेरी लडकी . .मर गई ।"

और उनका सर एक ओर को ढुलक गया।

दो घंटे पश्चात् सूचना पाकर प्रमोद व कीर्ति जब सैनेटोरियम पहुँचे तो ब्लड ट्रान्स्फयूजन, ग्लूकोज और आक्सीजन के पृथक्-पृथक् ट्यूब उनके मरणासन्न शरीर मे प्रविष्ट थे। प्रमोद ने देखा, मानव का निकट अन्त...इस अनुसन्धान व आविष्कार के युग की मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की अनधिकार चेष्टाओ का अन्तिम स्वरूप . रबर की ट्यूबो से होकर दौडते-भागते।

आक्सीजन का सिलैंडर किशोर महोदय के सरहाने भूमि पर लोट रहा था। उसका ट्यूब आया था नाक के पास तक और तब फैल कर वह एक गोल टोपी के रूप मे छाया हुआ था। अन्दर ही अन्दर आ रही थी अप्राकृतिक प्राणवायु, जीवन देने, जीवन जाने के क्षणो मे श्वास रुकेगी अथवा श्वासावरोध . . . ..आपरेटर नही जानता।

एक स्वर इसी क्षण चीख गया .एक कोमल किन्तु भर्राये गले

की आवाज..... दादा. ....ओ दादा...सुनबे तो, आमार दोष सुनो.... .सुनिए जाइयो दादा......ओ दादा सुनबे तो, आमार दोष सुनो... ..और रुदन का हास कमरे मे गूज गया।

अनुपम रूप लिए एक नवयौवना दौडते हुए आकर किशोर महोदय के मृतप्राय शरीर से चिपट गई।

कीर्ति की दृष्टि प्रमोद के नेत्रो मे नाच गई।

तभी रूप की निर्झरणी लिए वह नवागन्तुका देर तक किशोर महोदय मे समाई एकाएक बिलख कर रोते हुए, सिसकी छोड कर उनसे अलग हो गई।

कई डाक्टर एक साथ आए और काम मे लग गए। दो नर्सें भी इधर-उधर व्यस्त थी।

अधिक परिमाण मे ग्लूकोश नसो द्वारा किशोर महोदय के शरीर मे चढाया जा रहा था। किन्तु सब व्यर्थ था। कोई प्रभाव प्रकट न हुआ। सिरिन्ज के लीक्यूड को समाप्त करके डाक्टर ने नाडी देखी। उछलती, रुकती, तीव्र, फिर मन्द। अन्त समय मे नाडी की अव्यवस्था देख कर और क्या सम्भव था? वे चुपचाप उठे। अपना स्थेटेसकोप उठाया और बाहर जाने लगे।

जाने के पूर्व नर्सो को कुछ आदेश उन्होने दिए।

तुरन्त ब्लड वाला ट्यूब नर्स ने हटा लिया। सम्भवतः वही आदेश डाक्टर का उस समय सामने था।

उदास मुख लिए युवती पलग के सरहाने खडी की खडी रह गई। जैसे नेत्रो मे छिपे मेघ लिए बादलो ने रूप की तेजस्वी धूप मे एक पल को छाव कर दी हो और एक उछलता अन्धेरा सामने नाच गया हो, नाच रहा हो। उदास मुख पर फैलती करुणा ने वातावरण की मलिनता को पूर्ण प्रकट कर रक्खा था।

कीर्ति व प्रमोद के सामने प्रश्नबोधक चिन्ह '?' आ-आकर उड़ जाते थे।

आक्सीजन देने वाला आरिटर अपने काम मे व्यस्त था। रह-रह कर वह ट्यूब की गतिविधि को झाक लेता था।

पलग पर वैसा ही अगति, निस्तेज, सौम्य शरीर पड़ा हुआ था, अन्त के छोर।

कमरे के एक कोने मे जीवन और शोफर मुँह लटकाए पलग के पाए की ओर निहार रहे थे।

बाहर से 'दो' और आँखे भी निरन्तर कमरे को झाक रही थी।

"ओफ, मै पागल हो जाऊँगा।" प्रमोद सोच गया। वह काप रहा था। सैनेटोरियम मे कुछ काल पूर्व की अपनी घबराई दशा उसे धीरे-धीरे दबोच रही थी।

इसी क्षण कई यन्त्रो को लिए दो कम्पाउन्डरो ने प्रवेश किया। उनके साथ था गौरवर्ण एक हृष्ट-पुष्ट पहाडी। केवल बनयान व नेकर पहने।

देखते-देखते डाक्टर महोदय ने आते ही तत्परता से उसके दाहिने हाथ मे स्पिरिट मल दी। नर्स ने आगे बढकर एक मोटी सिरिन्ज उन्हे दी जिसे उन्होने ठीक करके उसके हाथ मे प्रविष्ट कर दिया। उचित मात्रा मे उसका रक्त उन्होने उससे खीचा और किशोर महोदय की नीली रंगो मे चढा दिया।

नर्स के आदेशानुसार जीवन ने पहाडी को ५-५ के पाच नोट आगे बढ़ा दिए।

प्रमोद देख रहा था उस रक्त बेचने वाले को। मरणासन्न प्राणी को जीवनदान देने की साध लिए वह गोरा सुन्दर युवक, उन २५ रुपयो से अपने जीवन रक्त का दान भी प्राप्त कर रहा था।

और कितना प्रसन्न था वह! कितनी स्फूर्ति थी उसमे! घुटनो के बल यो ही भूमि पर तत्परता से बैठना और डाक्टर का रक्त खीचना। और चट से उसी क्षण खडे हो जाना। जैसे उसे कुछ मालूम ही न हुआ। नर्स ने आगे बढकर पहले से मौसुमी के कटे रक्खे ४६ टुकडे

उसके आगे बढाए और वह उन्हे चूसता हुआ बाहर हो गया। वाह दानी! और तुम्हारा धन-प्राप्ति का वह अनोखा रूप। संसार मे अनगिन प्रयोगो द्वारा धन-प्राप्ति के पश्चात् यह अच्छा प्रयोग है। किन्तु इसका स्वरूप विचित्र होने के साथ-साथ उपयोगी भी कितना है।

जीवन बाहर गया और उन दो झाकती आखो के रूप मे किशोर महोदय की पत्नी को कमरे मे ले आया...सोचकर कि अन्तिम दर्शन की अथक चाह, उनकी क्यो शेष रह जाए।

वे आकर उनके पलग के निकट टिक गई। और क्षण-भर में पूर्व-स्थित तरुणी ने पुनः किशोर महोदय की आकृति मे अपने सलोने नेत्र गडाये हुए एक चीत्कार करते हुए कहा, "दादा, दादा, आमार दोष, आमार दोष सुनिए जाइयो.. सुनिए जाइयो, दादा मै निर्दोष हूँ, दादा मै आ गई...दादा देखो, दादा देखबे न दादा आई वाज विद मोनी, दादा, आई वाज विद मोनी.... "

किशोर महोदय ने अपने नेत्र खोले। सामने उन्होने एक दृष्टि पसारी। सामने अपनी पत्नी व लडकी को देखकर उन्होने एक क्षण अपनी पलके मूँदी।

"दादा, आइम हियर दादा, आइम हियर, बिसाइड यू। आई वाज विद मोनी दादा ।"

और कमरे मे एक मौन घिर आया।

आगे बढकर उनकी लडकी पुनः उनसे चिपट गई। एक अज्ञात शक्ति के प्रभाव से किशोर महोदय ने स्फूर्ति-पूर्वक अपना हाथ ऊपर उठाया। और लडकी की पीठ तक लाते-लाते उनका सर पलंग पर एक ओर लुढक गया।

"फिनिश..."कहकर नर्स अपनी सहयोगिनी को लेकर बाहर निकल गई। आपरेटर ने आक्सीजन की कैप हटा ली।

प्रमोद ने दौडती दृष्टि से देखा श्रीमती मजूमदार का अवश मूक रुदन, उनका लुटता सुहाग. .।

वह बाहर निकल आया। कीर्ति भी पीछे-पीछे उच्छ्वास गिराता आ रहा था।

बाहर आकर जीवन ने अपनी दाहिनी मुट्ठी को बाईं हथेली पर मारते हुए कहा, "मिस्टर प्रमोद, दिस इज़ द एन्ड आफ ए माइटी सोल..." और वह बिलख पडा।

अन्दर से चीत्कार की ध्वनि आ रही थी।

"आमाके एकेला छाडिये कोताय जाइते छ, दादा......"

सारा वातावरण उदास था। सैनेटोरियम की इमारतें रोने को उतावली हो रही थी। हवा मे उदासी थी, श्वास उदास चल रही थी।

"दादा...दादा।" की चीत्कार कभी तीर की भाति मन मे पैठ जाती।

कोई गया। कोई चला गया। एक जीवन-दीप बुझ गया। एक सुहाग लुट गया। एक सन्तान पितृ-हीन हो गई। एक स्वामी चला गया। एक मित्र गया। एक उच्च आफीसर, एक धनवान, नही नही ..एक मनुष्य, केवल एक व्यथित प्राणी, वह भी नही केवल मात्र टी. बी. का रोगी डाक्टर को असफल करके, उनकी औषधिया, उनके दम्भपूर्ण उपकरणो, आविष्कारो और अवयवो को तोड़-मरोडकर...कही दूर देश, दूर दिशा को चला गया।

श्रीमती मजूमदार पर वैधव्य भूल गया। वे निःशब्द रुदन मे शव से लिपट गई।

शोर शान्त था। सिसकिया बन्द थी। रुदन मौन था। मृत्यु मौन थी।

गत रात्रि मे कोई संस्कार न हो सका। प्रमोद व कीर्ति भी घर चले गए।

अनेक प्रान्तो, नगरो और ग्रामो से प्रतिवर्ष सैकड़ो यात्री अथवा

रोगी पहाड़ो पर आते हैं। उन पहाड़ो पर नित्यप्रति इस प्रकार की मृत्युएँ भी सुनाई और दिखाई पड़ती हैं । वहा के निवासियो को वह कोई नई बात नही। परदेशी से क्या मोह? जितना जो प्रचलित है वे व्यवहार निभाते रहते हैं। यही बड़ी बात है। व्यवहार निभ जाए, लोग अपनी गति, अपनी राह, अपनी चाल...बने रहे बड़ी बात है। किन्तु आज उससे बड़ी बात थी। प्रातःकाल ही सर्वत्र शोक छा गया। वहा के निवासियो ने अनुभव किया कि आज उनका अपना कोई निकटतम ही विलीन हो गया है। शोकमग्न व्यक्तियो का समूह सैनेटोरियम की ओर बढने लगा।

आज वहा का समस्त कार्य-व्यापार बन्द था। किसी की मृत्यु पर उस स्थान के इतिहास मे इतनी भीड एकत्र नही हुई थी जितनी आज किशोर मजूमदार की शव-यात्रा के साथ थी। उनके प्रति श्रद्धान्जलि अर्पित करने को प्रत्येक कोने से लोग एकत्र हो गए।

प्रमोद व कीर्ति जब सैनेटोरियम पहुँचे तो उन्होने देखा वहाँ किसी कार्य को करने का अवसर ही नही है। एक व्यक्ति जो था। उसने वहाँ का समस्त कार्य अकेले निबटा रक्खा था, जीवन।

जीवन भी न मालूम किस धातु का बना व्यक्ति था। थकना तो जैसे वह जानता ही न था। कितनी फुर्ती से वह समस्त कार्य सम्पन्न करता था कि कभी-कभी देखकर आश्चर्य हो जाता था। वह महान् था, गुणी था, परिश्रमी था, निपुण था और सर्वाधिक वह था सहानुभूतिपूर्ण। बिना जाने, बिना पहचाने उसके कार्य सम्पन्न होते रहते थे।

और जीवन कितना बडा सेवक था, कितना मित्र व सहायक था, यह जानने वाला आज इस ससार से जा चुका था।

और उसने वही शव का शृंगार, कफन, उसकी शोभा कुछ ताजे फूल, उसका सिंहासन बास की टिक्टी, जैसा जो कुछ वहा, उस पर्वतीय प्रदेश मे, वहा के रीति-रिवाजो के अनुसार मिल सका, जुटा लिया।

मान्यताओं, संस्कारो या रीतियो के पूर्व 'कु' जोड़ा जावे अथवा

'सु', सामाजिक मनुष्य इनका क्रीतदास है। तभी मृत्यु मे भी वह इनका नाता जोड़ना चाहता है। इनकी जकडन मे वह मृत अथवा उसके शव को भी बाधे रखना चाहता है। किन्तु आत्मा, क्या वह किसी रूप मे बँधी ? मैन इज ए शोसन एनीमल ..यट अनसिवलाइज्ड.

मरने वाला खाट या पलंग पर न मरे। यह भी अपशकुन है। मृत और उसके बाद वालो के लिए, मृत के लिए सचमुच है। वह भूमि पर जन्मा है वही मरे, ठीक है। किन्तु जो पलग पर प्राण त्याग दे, तो प्रायश्चित . क्या होगा ? क्या कोई आर्डिनेन्स या लॉ, यहॉ भी लागू होता है। पति की मृत्यु से भी बडा अपशकुन है क्या पलग पर प्राण त्याग और श्रीमती मजूमदार का वैधव्य, इससे भी कम कठिन है क्या कि किशोर महोदय का मृत शरीर १६ घन्टे तक पलग पर ही पडा रहा और वे उसी मे चिपटी समाई रही।

प्रमोद ने कमरे मे प्रवेश किया। सामने ही श्रीमती मजूमदार और उनकी पुत्री मौन, निरश्रु। दोनो ओर से पृथक् पृथक् किशोर महोदय के वक्ष पर सर टिकाए बैठी दीख पडी। प्रमोद इस मूक रुदन मे मृत्यु-काल मे उस हाय-तोबा वाले रुदन से सामन्जस्य स्थापित करना चाह रहा था। कितना अन्तर था, कितना मार्मिक था वह शान्त शोक। उसने देखा था, अपने पास-पडोस, बडी-बूढियो के डर से इस अवसर पर दहाड कर चीखने वाली कोमल नारियो को जो मृत्यु की विभीषिका मे विवश होकर व्यवहार निभाने पर दहल उठती है, ऐसे अवसर पर जब वे चीखना नही चाहती, चिल्लाना नहीं चाहती, केवल, केवल अपने प्रिय के वियोग मे ऑखे फाड-फाड कर देखना और नियति पर हॅसना चाहती हैं, ऐसे समय मे।

जयन्त भी समाचार पाकर सैनेटोरियम आया।

एक भीड एकत्र थी सैनेटोरियम के बाहर। मुक्ति साह, बस्ती के कुछ प्रमुख व्यक्ति, दुकानदार, कुछ जाने-पहचाने यात्री भी एकत्र थे। जनसमूह उमडा पड़ रहा था। कोई सड़क के किनारे की कगार पर बैठा

था। कोई ऊपर की छोटी चट्टान से झाँक रहा था।

और सब मिलकर ले आए सैनेटोरियम के बाहर चिर-निद्रित शव।

श्रीमती मजूमदार व उनकी पुत्री साथ-साथ शव के पीछे थी। श्वेत वसनो मे लिपटी वे दोनो जैसे त्रास के ग्रास मे पीली पड गई हो। पुत्री की आकृति मे छाई रगीनी जैसे दूर क्षितिज मे छाए धूमिल अन्धियारे को पाकर मिटी जा रही हो।

कुछ ही काल मे वह यात्रा वहाँ की श्मशान भूमि मे आकर समाप्त हो गई।

जीवन ने जीवनान्त तक सहयोग देते हुए अपने स्वामी का दाह-सस्कार भी सम्पन्न किया।

मौन और स्थिर, निर्निमेष दृष्टि से श्रीमती मजूमदार व उनकी पुत्री एक स्थान से सब कुछ देख कर पीती रही।

एक धुन्ध, अग्नि की लपटो से निकलती चिडचिडी पीली लाली वायु को आत्मसात् करने लगी।

भस्म—सब समाप्त।

तितर-बितर।

●

: ३४ :

तभी कीर्ति ने ताशो मे सीमित वातावरण को छेड़ते हुए कहा, "तो उस काटेज के एकान्त कमरे की दीवारो से टक्कर खाने वाले किशोर मजूमदार के मनोभावो का गर्जन, उनकी मानसिक घुमेड के नीचे छिपा भारी खड्ड, उनके नेत्रो के सामने आ-आकर नाच-नाच कर लुप्त होने वाली काली-सी मूर्ति, उनके शरीर के रक्त को जोक की भाति चिपट कर चूसने वाली प्रतिमूर्ति के रूप मे उनकी आत्मजा, उनकी मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व यो प्रकट हुई मि० जीवन...।"

वार्तालाप की इस प्रतिक्रिया से मानो एक पहाडी शिलाखण्ड टूट कर उस मेज पर आ गिरा हो, जहाँ ताश के पत्ते छाए हुए थे। और जैसे उसके छिटकते पत्थरो ने स्पिलन्टर्स के रूप मे मेज के चारो ओर फैले बैठे प्रमोद, जीवन व उसे स्वयं भी चोट कर-करके चुपचाप बैठ कर खेलने के मूड को टूक-टूक कर दिया। जैसे उनके अन्तर्मन मे बबूले उठने लगे, कीर्ति की इस फूंक से।

प्रमोद ने पहले कीर्ति तत्पश्चात् जीवन की ओर अनमनी दृष्टि से देखा। उसका विचार था, जीवन को यह व्यंग्य अथवा कटु सत्य अरुचिकर प्रतीत हुआ हो।

जीवन ने अपने हाथ के पत्ते समेट कर गड्डी बनाते हुए एक ओर सरका दिए और उसी प्रकार शान्त भाव से उसने उत्तर दिया, "आप ठीक कह रहे हैं, मि० कीर्ति, उर्मि के 'आउट' होने के साथ-साथ मेरे

साहब की अधूरी कहानी भी आउट हो गई है । लेकिन साहब 'एस्टा-निसिंग, एस्टानिसिग ..।"

प्रमोद व कीर्ति दोनो ही इस क्षण मौन बैठे थे। तभी पुनः बात को आगे बढाते हुए जीवन ने कहा, "कितना बडा धोखा है, कितना बडा 'मिसचिफ' अपने किशोर मजूमदार ऐसे पिता के साथ... विश्वासघात . और पिता की लाज ..अपमान उसका क्या, पिता की मृत्यु .कुछ नहीं, आज की यही पुकार है । आज वैसा विश्वास और मोह है किधर ?"

"तो यह सब था क्या, मि० जीवन.. " प्रमोद ने कौतूहल से प्रश्न किया ।

एक क्षण रुक कर एक पेपर की कटिग अपने पर्स से निकाल कर जीवन ने आगे बढा दी।

प्रमोद ने पढा ।

"जोर से पढिये प्रमोद जी ।" जीवन ने अनुरोध किया ।

कुछ मोटा हैडिग". आई. सी. एस. आफीसर्स गर्ल मिसिग ।" तब था. "लखनाऊ, १७ दिसम्बर, ए गर्ल स्टूडेन्ट, एल्योरिंग एण्ड मोस्ट ब्यूटीफुल, एज नोन, इज मिसिग सिन्स यस्टर्डे नाइट फ्राम ए लोकल इन्सटीट्यूट ।' एज सेड, शी इज द डाटर आफ ए हाई आफीसर आफ यू. पी. गवर्नमेन्ट, डेपूटेड समव्हेयर इन ईस्टर्न डिस्ट्रिक्ट । सम लव स्टोरी इज बिहाइड इट । पोलिस इज इन्वेस्टीगेटिग ।"

"मि० कीर्ति, यहीं से प्रारम्भ होती है साहब के पागलपन की कहानी, उनकी मृत्यु की कहानी ।"

"ओ.. ।" प्रमोद से अनायास निकल गया ।

जीवन ने आगे कहा, "बीग ए कलक्टर, मि० मजूमदार नगर की किसी समस्या पर विचार करते हुए कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो के साथ उस दिन अपने ड्राइंग-रूम मे बैठे थे । शाम को लगभग ५ बजे होंगे । दूर मेज पर बैठा मैं, कुछ चिट्ठिया व्यवस्थित कर रहा था तथा कुछ सर्कुलर्स

फाइल कर रहा था कि बाहर से आकर चपरासी ने एक तार साहब को लाकर दिया । उस क्षण तार को पढते ही जैसे वह सोफे पर अचेत हो गए। ठीक उसी प्रकार की तिलमिलाहट उस समय मैने देखी, जैसे उनके अन्तिम क्षण तक आप लोग देखते रहे।"

"तब...?" उत्सुकता से कीर्ति ने प्रश्न किया।

"लीव द मैटर।" कह कर साहब उठे और अपने सोने के कमरे मे चले गए। सब लोगो को विदा करके मैने पलग पर अर्धविक्षिप्त की मुद्रा मे लेटे साहब के हाथ-से धीरे से तार लिया और पढा। "उर्मि डाइड आफ हार्ट फेल्योर . ।" नीचे नाम के स्थान पर था—"ए को स्टूडेण्ड।"

"अजीब बात थी. ।" प्रमोद ने आखे गडाते हुए जीवन से कहा।

"मि० प्रमोद, मृत्यु के वातावरण मे एक शून्यता, एक शोक, एक वीभत्सता, एक दैन्यता नाच जाती है सर्वत्र। मैने अपने मन से वहा वह सब न पाया । न मालूम क्यो, मुझे उस तार पर विश्वास ही न हुआ। किन्तु समाचार ऐसा था कि मै अपने मन के भाव व्यक्त न कर सका उस समय । श्रीमती मजूमदार भी हत्चेत होकर विराम-सी लेट रही। उनका वाक्य था 'दिस वाज एक्सपेक्टेड .।' भावावेश मे वे उस क्षण कह तो गई किन्तु तुरन्त सभल कर उन्होने एक सशकित दृष्टिपात साहब की ओर डाला । उनकी दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलाते हुए साहब बोल उठे, 'व्हाट .।' साहब का स्वर शून्य मे विलीन हो गया और उसका उत्तर था श्रीमती मजूमदार का विलाप और झर-झर कर गिरने वाले आँसू।

"उसी रात को साहब, श्रीमती मजूमदार और मै कार से लखनऊ गए । सुबह होते-होते हम लोग गर्ल्स होस्टल पहुँचे और सचमुच साहब की हालत उस समय कितनी दयनीय थी, जब उन्होने उस अधेड वार्डेन के मुँह से सुना, "व्हाट डाइड, नो, नो, मिसिंग, मिसिंग, फार द लास्ट थ्री डेज .।" मि० मजूमदार एक शब्द बिना बोले अथवा क्रास एगजामिनेशन किये हुए कार मे आ बैठे । श्रीमती मजूमदार की

बदलती तस्वीर को मैं निरन्तर पढ रहा था।

"मै उनका स्टेनो होने के साथ-साथ उनका निजी सहायक था। ऊपर से नहीं, अन्दर से भी। मै छाया की तरह उनके साथ लगभग बीस वर्ष तक रहा। उनका मुझ पर अटूट विश्वास हो गया था। सचमुच मै उनका आत्मीय था, जैसे उनका लाडला बेटा।" कहते-कहते जीवन के नेत्र भर आए।

एक मौन छा गया।

पुनः जीवन ने प्रारम्भ किया, "तब आगे का कार्यक्रम लुप्त था। वार्डेन के बंगले से कार घूमी और सोफर ने आदेश पाने के विचार से पीछे की ओर देखा।

"एक भर्राई आवाज कार मे गूँज गई, 'जौनपुर . ।'

"ड्राइवर ने क्लच दबा दिया। बगले की बाउंडरी के बाहर आते ही सामने एक लडकी दिखाई दी जिसने अन्दर बैठी श्रीमती मजूमदार को पहचानते हुए पुकारा, 'माता जी।' कार रुकी और श्रीमती मजूमदार नीचे उतरी। साहब अपना सर पीछे की ओर डाले बैठे थे। मै भी श्रीमती मजूमदार के साथ नीचे उतरा। उस लडकी ने उनके कान मे कुछ कहा और अपने हाथ का पेपर उसने उनके सामने कर दिया। श्रीमती मजूमदार ने उसे पढा। मैने भी उसको उनके हाथ से लेकर पढा। और यही वह कटिग है जो उस समय न्यूजपेपर के रूप मे हमारे सामने थी। श्रीमती मजूमदार ने उस लडकी को लाकर कार मे बैठाल कर उससे वृत्तान्त जानना चाहा। तब वह निडर होकर बताने लगी, 'माताजी, क्या बताऊँ, उधर इस सेशन के खुलने के बाद से ही उर्मि का रंग-ढग हम लोगों ने गडबड़ देखा था। एक नवजवान, आफीसर-सा, मिलिट्री ड्रेस मे करीब-करीब रोज आता था और उर्मि उसके साथ निकल जाती थी। हमारी तो वह कितनी साथ की थी! हम सब आपस मे कितना प्यार करते थे! अनेक कारणो से उर्मि को सब चाहते थे। उसका गाना सब सुनते थे, उसका डान्स सब को मोहता था ..किन्तु, किन्तु।' और

मि० प्रमोद, क्लेश से जैसे उस लड़की का गला भी भर आया। तभी वह कहती गई, 'माताजी, हम फ्रेन्ड्स ने एक-दो क्या बीसो बार छेड़ा, छींटा फेंका तो उसने कह दिया, 'फादर ने मैरिज उसके साथ सेटिल की है।' हम लोग चुप हो जाते.. और अब सब ओर तहलका मचा हुआ है।'

"साहब, सब सुन रहे थे। मै आगे की सीट पर बैठा-बैठा उबल रहा था। मै डर भी रहा था। तभी साहब ने अपनी श्रीमती जी के हाथ से वह पेपर लेकर पढा। पढ़ते ही जैसे उन्हे मूर्छा आ गई हो। मि० प्रमोद, उस समय मै कितना डर रहा था, आप से किस प्रकार व्यक्त करूँ? मै सोच रहा था, जो अनर्थ न हो जाए थोडा है। एक इतने बडे आफीसर के जीवन की इतनी भयानक घटना, और वह न्यूज आइटम, उसकी तह मे छिपा मि० मजूमदार आई० सी० एस० का नाम। मैंने उस क्षण पीछे घूमकर देखा। साहब का रिवाल्वर मुझे मालूम था उनकी जेब मे ही पडा था। और मि० प्रमोद, वह लड़की साहब के सामने होने के कारण सकोचवश बहुत कुछ कहना चाह कर भी डरते-डरते कुछ बता न सकी। ऐसा स्पष्ट दिख रहा था।

"और किस गहराई से साहब ने उस क्षण अपनी उत्तेजना को यह कहकर दाबा, 'ओ, तो तुम जानती थी।' और यह बात सामने आई जब उस लडकी ने कार से उतरते-उतरते कहा, 'माताजी, मैंने तो आपको लिखा था। आपने उर्मि को नही मुझे ही उत्तर दिया था और लिखा था कि प्रबन्ध करूँगी।' और मि० प्रमोद, उस क्षण के पश्चात् मृत्यु-पर्यन्त मि० मजूमदार अपनी श्रीमती जी से न बोल सके। हम लोग लौट आए किन्तु तब से फिर साहब ने ड्यूटी नही की। तब से निरंतर अन्धकार बना रहा। साहब ने किसी से कोई चर्चा नही की। उर्मि की उन्होंने एक पल के लिये तलाश करने की भी चेष्टा नही की। तीन-तीन और छः-छः महीने की छुट्टिया साहब बराबर लेते रहे। मै उनके साथ रहा। कुछ काल तक तो वे जौनपुर मे ही रहे किन्तु धीरे-धीरे सर्वत्र बात

फैल गई और साहब मन का पत्थर दाबे बहुत समय तक एक निर्जन ग्राम मे बने रहे। उर्मि स्वयं इतनी सोशल-मिक्स-अप की लडकी थी कि बात जोरो से गरम हो गई। मै व उनकी पत्नी भी, किन्तु वे दूर से ही, बराबर उनके साथ रहे।

"तो वह तार किसका था...?" कीर्ति ने ताश के पैकेट को बन्द करते-करते प्रश्न किया।

"अब क्या बताऊँ। वह तो अब पता चला है। उर्मि ने आकर ही तो बताया है। तार की बाबत तो उसने नही बताया किन्तु मेरा अनुमान है कि किसी रकीब ने दिया था। चक्कर तो उर्मि के साथ एक के अतिरिक्त और भी था। किन्तु एक बाजी मार ले गया और जो टापते रह गए, उन्ही के जाने वह मर गई और वह सूचना उन्ही की थी।"

"ओहो, हो, अब समझा। अरे प्रमोद, वही हेमेन्द्र। अरे ठीक-ठीक, तो वह लडकी तो यहाँ थी नही। वह तो हेमेन्द्र बता रहा था, विदेश चली गई थी।" कीर्ति ने जीवन से अपनी लडी जोडते हुए व्यक्त किया।

"ठीक है, ठीक है, आपकी सूचना ठीक है, वे श्रीमान् जी अभी भी वाशिंगटन मे है। और आपके हेमेन्द्र साहब ने ही केबिल द्वारा उर्मि को सूचना दी थी कि उसके फादर डेथबेड पर है और तभी उर्मि आज छः दिन हुए बम्बई उतरी थी। अरे, क्या सुनिएगा कीर्ति बाबू, मि० हेमेन्द्र भी साथ आए हुए है ..।"

"कहा, कहा. .?" कीर्ति उछल पडा। यहा नहीं नैनीताल हैं। आश्चर्य है, आपके परिचित हैं वे और परसो शवयात्रा मे कही उन्हे न देख सके आप। साथ ही तो थे आपके हेमेन्द्र।"

"ओ, तो हेमेन्द्र का अब कैसा साथ? और उनके रकीब मिया...।" कीर्ति ने प्रश्न से बात और स्पष्ट करनी चाही।

यह सब तो चलता है। आजकल का प्रेम और उसकी परिभाषा में 'एक' का महत्व हो, यह मूर्खों का सिद्धान्त है। माडर्न-ट्रेण्ड ऐसा ही

है। वहा वाशिंगटन में मोनीन्द्र दे और यहा के लिए भी तो कोई चाहिए। बात असल मे ,यह है कि सिलसिला इधर से भी टूटा नही है। गायब होने के बाद भी किसी प्रकार लिंक मिला रहा।"

"ओ...।" और कीर्ति मौन हो गया।

"तो वे सज्जन कौन और क्या थे?" प्रमोद ने जीवन से प्रश्न किया।

"हा, ये परीजाद उड़ किसके साथ गई थी?"

"उडी तो बाद मे। पहले तो यही जमी रही। छाती पर। लखनऊ मे ही।"

"लखनऊ मे ही ..कैसे, कैसे, और पता नही चल पाया।" कीर्ति ने आश्चर्य प्रकट किया।

"जी, सुनिए। साहब के एक सजातीय पी. सी. एस. आफीसर थे मि० मोनीन्द्र दे। वे भी डिप्टी-कलेक्टर थे और उर्मि से साहब ने उनका सम्बन्ध भी पक्का कर दिया था, कुछ समय पहले। उर्मि ऐसी 'सेक्सुअल लड़की', उनसे गहराई तक पैठ गई। बात करते-करते, कही दूर, वह 'एप्वाइन्टेड था' किन्तु महीने मे दो-चार बार, कई सौ मील पार करके वह कार अथवा स्टाफ-कार मे साहब और उनकी लडकी से मिलने आता था। साहब उन दिनो लखनऊ थे। तब साहब का तबादला जौनपुर हो गया। उर्मि लखनऊ मे ही पढ़ती रह गई। और कीर्ति बाबू, वह बात मुझे भी पता नही चल पाई। न मालूम कैसे अनायास साहब मोनीन्द्र पर आवश्यकता से अधिक नाराज हो गए। उर्मि स्वय उन दिनो उससे ऐठ गई थी। किन्तु बाद मे साहब के पास तो उसका आना-जाना बन्द हो गया। उर्मि में वह जमा रहा और अपनी फिक्सिग भी उसने लखनऊ करा ली। वहा हेमेन्द्र साहब भी चिपके थे। उनको इन्होंने उखाडा। उर्मि इनसे चिपक गई। उससे भी रही, पर दूर-दूर। हेमेन्द्र साहब, मोनीन्द्र के रोब-दाब से दब गए। अब मुझे मालूम नही वे क्या हैं?"

"अरे, वह भी एक डिप्टी कलेक्टर का भाई है।" कीर्ति ने तपाक से कहा।

"ठीक है, डिप्टी कलेक्टर और भाई मे इतना अन्तर आ जाना ही चाहिये था।" प्रमोद कहकर हँस दिया।

"पद के प्रभाव का तो सब खेल ही है। अच्छा हॉ, मि० जीवन, तो कुछ पता चला, ये नई रोशनी के नए सितारे रहे कहॉ?" कीर्ति मुस्करा कर कुर्सी पर सीधे होकर बैठते हुए कह गया।

"मि० कीर्ति, सब काम सीधा और ठीक ही है। अगले ही दिन, मेरा मतलब, कालेज से लोप होने के दूसरे दिन ही मोनीन्द्र ने उर्मि के साथ एक एकान्त बगले मे...... "

"वह तो कोई कहने की बात नही..." कीर्ति ने प्रमोद के चुटकी काटते हुए कहा।

"नहीं, मि० कीर्ति, मै कह रहा हूँ, उन्होने शादी कर ली। और, और आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वे बहुत दिन लखनऊ ही बने रहे।"

"लखनऊ बने रहे! लखनऊ कैसे, और किसी को पता नही?" कीर्ति ने आश्चर्य की मुद्रा मे प्रश्न किया।

"सचमुच पता नही ही चला। साहब अपनी उलझने मोल ले बैठे। उनका उठना-बैठना कष्टप्रद हो गया। इसी बीच उनके पिता का, जो वर्दमान के एक लक्षाधीश थे, देहावसान हो गया। साहब उनके एकमात्र पुत्र थे। किन्तु साहब न अपने पिता की अस्वस्थता मे, न उनकी मृत्यु मे ही उनके निकट गए। लोगो से, सम्बन्धियो से मिलना-जुलना क्या अपनी सूचना देना भी उन्होने बन्द कर दिया था। तब मुझे ही वर्दमान जाना पडा था। वहॉ, एक मन्त्रिमण्डल समझिये, किशोर महोदय की स्टेट के व्यवस्थापको का, आठ आदमी हैं जो उसकी देखभाल करते हैं। साहब के पिता बहुत बडे जमीदार और स्वयं भी भारी काश्तकार थे.. ।"

तभी प्रमोद ने दलसिह को पुकार कर चाय लाने का आदेश दिया।

प्रमोद के ताश मेज पर फैले पडे थे। कुछ पत्ते इधर-उधर अस्त-व्यस्त लेटे हुए थे। पास ही दो खाली डब्बे टिके हुए थे। ऐसा लग रहा था मानो डब्बो की प्रेयसी कही मनोरंजनार्थ गई हुई थी और अब मि० डब्बे किवाड खोले उनके लौटने की प्रतीक्षा मे आँखे गडाए बैठे थे। प्रमोद ने सारे ताश एकत्र करके दो डब्बो मे भर दिए और तब जैसे दोनो डब्बे सन्तोष की साँस लिये अपनी प्रेयसियो को अपने मे समेटे किनारा कसे बैठे थे। किशोर मजूमदार का जीवन भी सिमट कर वैसे ही बन्द हो गया, जैसे ताशो का वह खेल..

प्रमोद ने एकाएक अपना मत व्यक्त करते हुए कह डाला, "मैं पूछता हूँ, उर्मि ने कौन-सा पाप, कौन-सा ऐसा अपराध कर डाला, जिसकी भयकरता इतनी प्रबल थी कि किशोर मजूमदार की मृत्यु का कारण बन गई .?"

"ओ, यह मि० प्रमोद कह रहे है। मन मे पैठा तनिक-सा उद्रेक किस प्रकार तन-मन को जप लेता है, सेन्सिटिवनेस का प्रभाव कैसा है ? यह जानकार भी श्रीमान् जी कुछ कहने का साहस कर रहे है। दोष, पाप, अपराध...यह संज्ञा, यह लाछन क्यो दिया जाए ? सचमुच उर्मि का क्या दोष, उसका घटना से ऐसा कोई मार्मिक सम्बन्ध भी नही .।" और सीधे बैठकर जैसे उबलते हुए वह पुनः बोल पडा, "आपको ऐसी दुष्टा के प्रति सहानुभूति रखते हुए लज्जा नहा आती मि० प्रमोद। क्या इससे भी भयावह अपराध किसी पिता की सन्तान से हो सकना अनुमानित है। वाह, वाह री उदारता, क्या सन्तोष और मिथ्याचार है। और ठीक ही है, पाप उर्मि ने नही किया। पाप का कोई कारण नही। पाप तो है उस अधकचरी शिक्षा के नग्नरूप का जो समय-समय पर हमारे बीच इसी सात्विक रूप से उपस्थित होता है। कितना कलुष, दूषित मनोविकारो की कितनी वीभत्स नाट्यशाला बन गया है आज का हमारा जीवन। पश्चिम की दुम बने घूमते है। वहाँ न ऐसा भगोडापन है न उसकी ऐसी प्रतिक्रिया। समाज की भिन्नता के साथ ही मान्यताओ की

लीक मे अन्तर स्वाभाविक है। किन्तु अनुरूपता के आवरण मे ढकी यह कामान्धता किशोर मजूमदार की मृत्यु सदृश अनेक इतियो को जन्म देती है...मै...।"

"ठडा पानी ." कह कर प्रमोद ने गिलास का पानी कीर्ति के आगे बढा दिया।

"प्रमोद, मै कह रहा हूँ, तुमको शर्म नही मालूम देती, कहते हो उस छोकरी का क्या पाप। पता नही उसका पाप पेट के बाहर आया कि अभी नही। वहाँ उसका जीता-जागता प्रमाण ।"

"किन्तु अब तो शादी हो चुकी है, मि० कीर्ति। आप भूल गए, मैंने अभी बताया था आपको।" जीवन ने पेपर की कटिंग को अपने पर्स मे सरकाते हुए कहा।

"जी हाँ, यह भारत धर्म महामण्डल नही, यह मानव धर्म महामण्डल है। जिस पर टिकी है हमारे जीवन की समर्थता। प्राकृतिक रूप के प्रति अत्याचार ही हमे मानसिक उद्वेलन दे डालता है। यहाँ का मानव, अथवा पश्चिम का मानव, दोनो ही पूछ घिस चुके है। अन्तर इतना है कि यहाँ पूँछ की याद बनी है और वे भुला चुके।" प्रमोद ने जैसे कीर्ति के माथे पर एक और मरोड दे डाली।

"पूँछ दोनो भूल गए है। हाँ एक के मुँह आज तक लाल है और दूसरे अपनी समान स्थिति मे चिरकाल से है।" कीर्ति ने जैसे पैर जमा कर पग टेका हो।

"हाँ, दूसरे अपने वातावरण और अपने को देख-देखकर क्षण प्रति क्षण मुँह लाल-लाल बनाने की अप्राकृतिक चेष्टाएँ करते है।" प्रमोद चाय के प्याले मेज पर फैलाते हुए कीर्ति की ओर देखकर मुसकरा दिया।

"दे हैव नो करेज आर रादर से नो विजडम टु थिंक एज टु हाऊ दे रुइन देयर बाडिली एन्ड मारल स्टरेन्थ बाई हैविंग सच सीक्रेट इन्टरकोर्सेज और, और दे डोन्ट सी दा थन्डर एन्ड रिवोल्ट एबाउट

सेक्स अन्डर दा फाइन रेपर्स आफ कल्चर एन्ड टुडेज एजूकेशन...ओफ, किशोर महोदय राम-नाम की तरह जपते चले गए हैं ये वाक्य ! अन्तिम क्षण भी उनके मस्तिष्क मे सोसाइटी की नगी तस्वीर, बिना कपडो की अथवा लाल-पीले रिबन लगी परिया देवलोक से आती-जाती रही होगी। और दीज कर्सेज आफ सोसाइटी, दिस लव स्टुपिडिटी...किशोर महोदय ने तुमसे ही कहा था प्रमोद, मुझसे नही ! एक तुम्हे तो याद है और दुनिया भूली हुई ।"

"क्या मि० कीर्ति, क्या ? क्या साहब ने ऐसा कुछ कभी कहा था ?" जीवन उत्कठित होकर पूछता रहा।

"मुझसे नही, आपसे। एक इग्लैंड की याद है जागी हुई ।" और कनखियो से कीर्ति, प्रमोद की भाव-भंगिमा पर लहराते हुए परिवर्तन मे कुछ खोजने लगा।

"कदापि नही, मै नही मानता यह सारा दोष युवक समुदाय का है। कीर्ति साहब आप कहिए, कहिए प्रेम-सम्प्रदाय का है। कुछ नही। यह दोष केवल एडजस्टमेट का है। इसमे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कुछ, कोई लो, कोई सोसियोलाजी, कोई कानून काम नही देगा। और आप क्या सनझते हैं, एडजस्टमेन्ट्स के तूफान पश्चिम मे, उस समाज मे नही होते ? यह कर्तव्याकर्तव्य की वह शिला है, जिससे टकरा-टकराकर युवको के मन व विचार भी चूर-चूर होते हैं और प्रौढता का अधिकारयुक्त अकुश भी धार का पैनापन खो देता है। और इस विचार-वैषम्य के युद्धस्थल मे कभी एक और कभी दूसरे पक्ष की हार होती ही है।

"मि० कीर्ति, आप हर बात मे ऐठते क्यो हैं ? बेकार बैठे-बैठे बिगडते है। दीजिए उत्तर, उर्मि का क्या दोष है ? मै पूछता हूँ, किसी कारणवश उन डिप्टी कलेक्टर महोदय का साम्य हो गया, किशोर महोदय से। तब परिस्थिति क्यो बदले ? दो, उन दो प्राणियो, उर्मि और डिप्टी कलेक्टर महोदय मे तो कोई अलगाव आया नही। उनके

अपने मन तो उसी भाति ललकते रहे। मिलन-क्षण, भावी सुखस्वप्नो के बने जाने-माने चित्र तो जो एक बार नाचे, नाचते ही रहे। और पहले तो वहाँ बढावा मिला किशोर महोदय से ही, फिर-फिर उन्होने अपने मन के साथ उर्मि को भी डुबोना चाहा। वह न डूब सकी। मेरे कानो मे इस क्षण भी गूज रहे है उर्मि के वे शब्द, "दादा, मै निर्दोष हूँ। मैने आपकी मर्यादा, अपनी लाज, और, और अपने दादा के निश्चयो से कभी खिलवाड करने की नहीं सोची थी। मेरा दुर्भाग्य था, मेरा सन्तोष भी था कि मैने उसी को समर्पण दे डाला, दादा, जिसे तुमने मेरे लिए चुना था, मै आई, मै आने को थी, तुमने नही आने दिया, अन्त तक नहीं आने दिया, मै तडप कर रह गई हूँ, अब, मोनी को तुम्ही ने तो दिया था, दादा, उससे रूठ कर अपने से भी रूठना, ऐसा क्यो किया, दादा .दा दा, बोलिए-बोलिए।" उसकी निष्ठा किसी एक पौराणिक नारी से कम है, जिसकी धुरी पर आज बीसवी शताब्दी मे भी मि० कीर्ति ऐसे नए पखो वाले पक्षी टिके रहना चाहते है।" प्रमोद के स्वर मे कुछ आवेश था।

कीर्ति कुछ कहे, उसके पूर्व ही जीवन ने बीच मे कह डाला, "और प्रमोद जी यदि मै कुछ कहूँ ..।"

"हा, हा .आप कहिए।" प्रमोद ने कीर्ति पर एक उडती दृष्टि दौडाते हुए अनुरोध किया।

"यह वही सेक्सुअल लस्ट है जिसने कालेज छोडने के पूर्व उर्मि को अपनी बात साहब से कहने का साहस नही दिया। इस मासलता के खिलवाड ने अन्धा बना कर जो अनाचार किया है, उसमे यदि अपने जन्मदाता का लेश भी मोह होता तो इतनी बडी ट्रेजडी होने से बच जाती। और यह छिपाव ही पाप, अनाचार, अत्याचार, अनैतिकता... और विश्वासघात, भयंकर, महाभयकर है।" जीवन ने गम्भीर मुद्रा मे अपने तिरस्कार और प्रतिक्रिया को व्यक्त किया। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह बात एक काल से उसके मन मे बन्द ज्वालामुखी की भाति दबी

पड़ी रही और अब शोले उगलने को तिलमिला उठी।

प्रमोद ने शान्त भाव से जीवन को सन्तोष देने की चेष्टा मे कहा, "यही है, एडजस्टमेन्टस् की बात, पिता-माता के समक्ष उनकी सन्तान की विचित्र-सी तुच्छता की स्थिति। अधिकारो और गर्व के रूप मे बजने वाले प्रिय-अप्रिय डंको के हाहाकारी उच्चारण शब्द। और किशोर महोदय कब अलग थे उस मानव प्रकृति से। किशोर मजूमदार आई० सी० एस० के सामने भी वैसा एडजस्टमेन्ट, अपनी भव्यता और स्थिर मत के समक्ष किसी बात से मुडना उनके लिये असम्भव था, असम्भव रहा भी। एक पक्ष की बलि होती ही। तब उर्मि की बलि निश्चित थी। अब दूसरा पक्ष हार गया। एडजस्टमेन्ट मे यदि बीच का मार्ग अपना लिया जाता तो परिस्थिति निश्चित कल्याणकर होती।"

"और वह शर्मनाक नक्कारा, वह तमाशा, वह फूला हुआ सीना, यही तो था जो पेपर कटिंग के रूप मे जीवन साहब ने अभी-अभी हमे और आप को दिखलाया था। क्या यही सन्तान, पिता-पुत्र, सम्बन्धो की एडजस्टमेन्ट्स और मान्यताओ की प्यारी लडी है जो समाज, सभ्यता संस्कृति की जडे न जाने कितने अन्धडो, इतिहासो और उथल-पुथल के बाद आज भी उखड जाने से रोके रही।" कर्ति बीच ही मे उबल पडा।

"कदापि नही, वह तो यही है वह घिसी-पिटी, संस्कारो, मान्यताओं की थोथी पोथी जो सभ्यता, सस्कृति और इतिहास की जिल्द मे बन्द है, जिसे पढ-पढ़ कर हम और हमारे बडे दोनो, दात पीस-पीस कर, एक दूसरे पर सम्बन्धो की दुहाई दे-दे कर, अकाट्य मतो के पैने वार कर करके अपने-अपने मतो की पुष्टि मे एक दूसरे को दबोचते खसोटते और मसलते हैं। तब स्नेह, आत्मा की बात, मन को बात सब लुप्त हो जाती है। शत्रुता मे विपरीत वार होने का डर होता है। किन्तु तब ऐसी लड़ाई निडर हो उठती है। तब, एक कुचल ही जाता है। दादा, यहा मिट गए। कही दादा ने किसी को मेटा भी है। क्यो, इसे आप क्यों

सोचने में लज्जा का अनुभव करते हैं। इसलिए कि उन्होंने पैदा किया है और वह पैदा हुआ है।"

आज प्रमोद को इतनी भयंकरता से वादविवाद करते देख कर कीर्ति को एक नएपन, एक अनहोनी-सी बात का अनुभव हो रहा था। प्रमोद कम बोलता था। कीर्ति ने उसे इतनी जोरदारी से भिडते केवल राजनैतिक विषयों मे, लखनऊ मे देखा था। और कीर्ति कुछ सोचते हुए एक क्षण फडफडा कर रह गया।

"और उर्मि के चले जाने के बाद द्वेष और तिरस्कार मे क्या वह अहमन्यता नहीं थी, जिसके प्रमाण हम अन्यत्र ही नहीं किशोर महोदय मे भी देख पाए। ओह, सन्तान के मोह की वह पुकार, एक क्षण दृष्टि से ओझल न करने देने की अव्यावहारिक गूंज कहाँ विलीन हो गई जिससे किशोर महोदय ने उर्मि की खोज करना भी अनुचित समझा। क्या उसकी खोज भी अप्रासगिक थी? क्या केवल घटना का विवरण सुनने मात्र से उस वार्डेन के लान मे यही निष्कर्ष निकल सकता था कि 'सेक्सुअल लस्ट' ही एकमात्र कारण हो सकता था। और कुछ होना सम्भव ही नहीं।"

"क्या बात है, आज तो जम रहे है हमारे भाई साहब। अच्छा तर्क है। हम भाग जाएँ और आप से कहे आओ ढूंढो, देखो, हमारे कर्म तो देख जाओ...।" कीर्ति ने रूमाल से नाक साफ करते हुए कहा।

"तुम तो हो, वही। प्रो० जैतली की बात भूल गये। सुनिए मि० जीवन। हमारे यहाँ एक मि० जैतली थे। उनकी एक लडकी कालेज मे पढती थी। शादी की बात चल रही थी। उसको देने-लेने के लिए प्रोफेसर साहब ने कीमती जेवर बनवाए। कुछ दिन वह उन्हें पहन कर कालेज भी जाती रही। दिखाने का चाव, एकाएक उसके गायब होने की सूचना घूम गई। गोमती से, तीन दिन बाद लाश निकली। प्रोफेसर साहब, चार दिन मे ही टी-बी के रोगी बन गए। जो हो, वे तो चुप होकर बैठ गए। समाज मे आँख...मुँह दिखाने की बात सामने जो

थी। किन्तु उस लड़की के चाचा ने खोजबीन जारी रक्खी। लड़की, जैसे हजारो मे एक। मि० कीर्ति भी सूँघते घूमते थे कभी कभी...।"
कीर्ति सामने बैठा हँस रहा था।

"हाँ तो..." प्रमोद ने कहना जारी रक्खा, "कई अंगूठियाँ, हार, आर्मलेट, टाप्स इत्यादि जो हजारो रुपये मूल्य के थे, उसके शरीर से गायब थे। लड़का, जिसके सम्बन्ध मे सोचा गया था कि उसके साथ वह कही निकल गई, पाच दिन पूर्व से ही, हास्पिटल मे 'एपेन्डिक्स' दाबे पडा था। तब, क्या हुआ ? आज तक पता नही। वैसे निश्चित ही वह घटना जेवर से सम्बन्धित प्रतीत होती है। किन्तु प्रोफेसर साहब केवल यही सोचकर कमरे मे ढक कर रह गए कि उनके पडोस का लडका कई दिन से नही दिख रहा था। कहिए !"

"अरे, वह तो सब पता चल गया है। दो बदमाशो मे से अब तो एक ने कह भी दिया है कि अन्य घटनाओ के साथ उस घटना मे भी उनका ही हाथ था। प्रमोद, तुम्हारे आने के बाद नख्खास मे एक दिन दो बदमाश एक साथ पकडे गए। जिनके मकानो मे न जाने कितना धन और हथियार मिले। अनेक घटनाओ से सम्बन्ध मिलने पर उस घटना को भी उन्होने कबूल दिया ।" कीर्ति ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा।

"लीजिए, तो यहा क्या असम्भव है। पग-पग पर मनुष्य घटनाओ से घिरा है। और न सही, जाने दीजिए किन्तु हम दम्भ और अपमान मे यो डूब कर सत्यासत्य के औचित्य को भी भूल जाएँ यह कहा की बुद्धिमानी है .। मै कहता हूँ, पता लगाने पर इस भयकर स्थिति आने के पूर्व ही यह पता चल जाता कि उर्मि ने उसी का दामन थामा है, जिसके प्रति पात्र की आस्था कुछ काल पूर्व स्वय मजूमदार महोदय ने मानी थी और आप समझिए बाद की मान्यता पहले से भी अधिक प्रिय प्रसंग बन कर रह जाती।"

जीवन और कीर्ति दोनो चुप थे।

तभी कीर्ति ने जीवन से प्रश्न कर डाला, "तो उर्मि के पतिदेव अब कहाँ शासन-भार सभाले हुए है ?"

' घटना के दिन से आज तक वे श्रीमान्‌जी लखनऊ मे ही नियुक्त है। और किसी को पता तक नहीं चला।" जीवन ने आश्चर्य की मुद्रा मे कहा।

"मजा खिलाडी है।" कीर्ति ने जीवन के भाव को पूरा कर दिया।

"यह कहना अनुचित है। मैं यह नही मानता। अपने हित मे उन्होंने यह बात प्रकट न की, न होने दी यह दूसरी बात है किन्तु किसी ने उस रूप से जानने की चेष्टा ही कब की ? अपने ही से अपने रहस्य की बात प्रकट करने से अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है ?" प्रमोद ने चाय को प्यालो मे ढालते हुए कहा।

"ठीक ही है। इस प्रेम मे नीति, अनीति, त्याग, वासना, यह सब बहस की बाते हैं। इन सबका कब कितना महत्व है, है भी अथवा नही, इसमे सर खपाना अनुचित है। और, और कोई भी लड़की चाहे जब अपनी इच्छानुसार नमस्कार करके घर से प्रस्थान कर दे। सब ठीक है। यह सब आज के युग मे होना ही चाहिए।" कीर्ति ने माथे पर बल चढाते हुए कहा।

"यही अर्थ का अनर्थ है। एडजस्टमेन्ट की कमी ही ऐसे विद्रोह को जन्म देती है, भाई जी। और आप समझते तो 'शार्पेएड-ब्रेन' से हो. ." प्रमोद ने अपना वाक्य मुस्कराते हुए समाप्त किया।

प्रमोद व कीर्ति अपने कालेज के पुराने प्रोफेसर के इस प्रचलित व्यग्य-प्रयोग का स्मरण कर सहसा ठहाका मार कर हँस दिए।

"क्यो मि० कीर्ति, ऋषियो द्वारा सस्थापित गन्धर्वशैली के विवाह से क्या आपको कुछ मतभेद है...?" प्रमोद आज विचित्र विवाद की मुद्रा मे था।

"सो कैसे, आजकल तो उसका और भी निखरा रूप सामने है।"

कीर्ति ने अपने कोट की बाह मे लगी तनिक-सी धूल को हाथ से साफ करते हुए कहा ।

कुछ रुक कर उसने जीवन को सम्बोधित करके कहा, "हा, तो यह पिता का मोह अन्त मे, मृत्यु के क्षणो मे कैसे जग गया मि० जीवन।"

"मैंने आपसे कहा न कि मि० हेमेन्द्र का केबिल पहुँचा। सम्भव है ऐसी अवस्था मे मोनीन्द्र ने अनुमति दे दी अन्यथा उसने तो यहा लखनऊ मे ऐसा 'आयरन कर्टेन' लगा रक्खा था कि आज तक अपने से वहा की बात प्रकट नही हुई । उसने उर्मि को जैसे नजरबन्द रख छोडा था। एकमात्र नौकरानी, पहरेदारी और कामकाज भी करती थी, उस बगले मे। बाहर के नौकर बरामदे तक सीमित थे। एक ऐसा चक्रव्यूह बनाया था मोनीन्द्र ने कि कोई यही न जान सका कि बगले मे स्त्री-जाति का कोई पक्षी भी रहता था, उस घेरे मे । और पूर्णापर्ण की स्थिति मे स्त्रियो को भी दीन-दुनिया की एक काल तक कोई सुधि नही रहती। और मोनीन्द्र ने हमारे एक-एक क्षण के कार्यक्रम को जाना था और अपनी गतिविधियो को उनके अनुरूप ही वह रखता चला गया। तत्पश्चात् वह चल दिया विदेश यात्रा को। अब मृत्यु के क्षणो मे उर्मि ने आकर और कष्टकर बना दिया है वातावरण को। विशेप कर उनकी मा तो अत्यधिक शोकाकुल हो उठी है.. मुझसे तो उनका क्लेश नही देखा जाता। साहब के जीवन-काल के अन्तिम क्षणो मे उन्हे यो वियोग सहना पडा और अब वैधव्य की विषम कालिमा...।"

"निर्मम...भयंकर...अक्षम्य।" कीर्ति ने तीव्र स्वर मे पुकारा।

●

: ३५ :

आज प्रमोद के इंगलैंड जाने की तैयारी थी। वह कितना प्रसन्न, कितना सुखी और कितना स्वस्थ था, इसका अनुमान कीर्ति भली प्रकार पा रहा था। कीर्ति 'वानवायेज' की पार्टी के प्रवन्ध के हेतु जब भी ड्राइग-रूम मे अपने मित्रो से घिरे बैठे प्रमोद के निकट जाता तो कमरा अट्टहास से गुजरित पाता। स्वयं भी वह अपने कटाक्षो से वातावरण को और मुखरित कर देता।

"हैपी वायेज प्लस जर्नी अप टु द मीटिग प्लेस......।" कह कर कीर्ति ने सोफे पर बैठे प्रमोद को गुदगुदा दिया।

"क्या भाई, यह क्या. . . ?" मित्रो के कई स्वर एक साथ बाहर आकर प्रमोद और कीर्ति के ओंठो पर टकरा गए।

"फिर कभी .।" कह कर कीर्ति ड्राइग-रूम के बाहर हो गया।

प्रमोद की लडखडाती दृष्टि कीर्ति पर जम कर रह गई और तब हॅसते हुए सामने बैठे हेमेन्द्र से वह विशेष आकर्षण से वार्तालाप करने लगा।

बाहर लान मे पार्टी का प्रवन्ध व्यवस्थित रूप से पूर्ण हो रहा था।

प्रमोद अभी दो घटे पूर्व ही कानपुर से लौटा था। वहा से यात्रा-सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री वह जुटा लाया था। उसमे विशेष रूप से चमडे का सामान—एक किडबैग, एक नई अटैची, चमडे का

सूटकेस और एक शेविंग अटैची भी थी। सचमुच प्रमोद आज अत्यधिक आनन्दित था।

स्वास्थ्य और विदेश-यात्रा के सुख-स्वप्नो मे जिस भाति वह आज हिलोरे ले रहा था, उसी भाति उसके पिता भी मुग्ध-मन, सन्तोष-मुद्रा मे इधर-उधर सरस वार्ता करते घूम रहे थे।

प्रमोद की मा को भी आज अपने परिश्रम और सलग्नता का प्रतिफल सुखद वातावरण मे सुहाना लग रहा था।

कीर्ति ने विदाई मे एक भव्य जलपान-गोष्ठी का उद्यान मे प्रबन्ध किया था। नगर के सभी श्रेणी के सम्भ्रान्त नागरिक, जिनमे अधिकारी, पत्रकार, कालेज के कुछ प्रोफेसर, कुछ निकटतम सहपाठी, कुछेक हँसोड मित्र समारोह मे सम्मिलित हुए। लगभग दो सौ व्यक्तियो और महिलाओ के इस उत्सव मे विदेश की सफल और सरस यात्रा की कामना की गई। प्रमोद ने समुदाय से पुष्पाच्छादित होकर मौन-भाव से सभी के प्रति सम्मान और स्वीकृति व्यक्त की।

दूसरे दिन झासी मेल से प्रमोद ने बम्बई के लिए प्रस्थान किया।

बम्बई मे प्रतिमा के पिता से प्रमोद ने विशेप रूप से भेट की।

प्रमोद के पिता से अच्छा परिचय होने के कारण और प्रतिमा के कुछ दिन पूर्व आए हुए पत्र का विचार कर—जिसमे उसने विचित्र प्रकार से उस विशेष व्यक्ति का परिचय दिया था और लिखा था, "उस व्यक्ति की स्वस्थता, अस्वस्थता का कारण, मूल रूप से उसका अपना सम्बन्ध, अब समय-समय पर उसके मन मे उठने वाली स्वास्थ्य-कामना की हुँकार, आदि अनेक बातो ने उसे आन्दोलित कर दिया है।" और आज उस व्यक्ति की सौम्य और भावमयी मूर्ति को सामने पाकर जस्टिस मानसिह ने प्रमोद का भव्य सत्कार किया।

प्रमोद का जलपोत जिससे उसकी यात्रा निश्चित थी, दो दिन बाद जाने को था। अतः उसने अपने को एक अच्छे होटल मे स्थापित किया। किन्तु जस्टिस मानसिंह ने विशेष आग्रह करके और स्वय कार मे जाकर उसका सामान अपने बगले पहुँचवा दिया। प्रमोद के स्वास्थ्य-लाभ के अनन्तर उच्च शिक्षार्थ इंग्लैंड-यात्रा की बात से तो जस्टिस महोदय बडे हर्षित थे। वैसे भी उन्हे इंग्लैंड और उच्च शिक्षा से मानो विशेष आकर्षण हो और था।

प्रमोद एक विचित्रता का अनुभव कर रहा था। उसे स्वप्न मे भी यह आशा न थी कि कभी जस्टिस मानसिंह के आतिथ्य का भी उसे अवसर प्राप्त होगा। उसका संकोच उसे उन तक जाने मे उतनी ही दूरी का अनुभव देता था, जितना बम्बई से लन्दन। पिता जी के विशेष अनुरोध पर ही वह जस्टिस महोदय के यहा जाने को तैयार हुआ था और अब जब उनसे उसे इतना मान-सम्मान प्राप्त हुआ तो वह सकोच को तो न उतार सका किन्तु हा, दो दिन मे होने वाली अनेक अवसरो पर वार्ता अथवा स्फुट वाद-विवाद मे वह अपनी शक्ति से जस्टिस महोदय को प्रभावित करता रहा।

उधर जस्टिस मानसिंह भी प्रमोद मे कुछ टटोल रहे थे। प्रथम भेट मे ही उसके व्यक्तित्व और शैली से उन पर एक गहन प्रभाव पड़ा था। सौन्दर्य और तेजस्विता के निखार मे आधुनिक वेशभूषा से वेष्टित उस शान्तमुद्रा से आप्लावित युवक मे जस्टिस मानसिंह ने मन-भावन आकर्षण पाया। उस पर विदेश-यात्रा और उच्च शिक्षा मे केन्द्रित उन के मन की विशेष प्रीति ने और अधिक सन्तोष की भावना का प्रस्फुटन किया और प्रतिमा का वह लेख—एक अपरिचित का मुझ मे अनुराग हो गया है, मैं जानती नहीं, पहचानती नहीं, और अनुराग ने प्रेम तथा विरह की सीढी छू ली है, इतना ही नहीं वह अपरिचित मन दाबे अस्वास्थ्य के साम्य से अन्तरिक्ष की हिलोरे लेने को आतुर हो उठा है, किसी उच्च शिला पर बैठा वह सागर की गहराई को झाकना चाह

रहा है। पिता जी, लिखिए वे कौन लोग है, क्या है, मुझे क्या करना है, कैसी विचित्र परिस्थिति है। वे लोग लखनऊ के हैं, और, और उन वकील साहब को...आप भी थोड़ा.. जानते... और जस्टिस मानसिह सामने उसी युवक को मुखर व्यक्तित्व मे देख रहे थे।

प्रमोद के उस प्रवास मे जस्टिस महोदय निरन्तर उसको पढते रहे। उसके मूल्याकन का उन्हे सुअवसर प्राप्त हुआ था। उसी प्रवाह में आज प्रथम बार उन्होने अपनी श्रेष्ठ पुत्री के लिए एक पात्र की चाह को अन्तर्मन मे टटोला। दो दिन अपने निकट रख कर वह प्रमोद के सम्बन्ध मे सब कुछ, बहुत कुछ जानना चाहते थे। प्रतिमा के पत्र का उन पर अत्यधिक प्रभाव था। तभी उन्होने अपने कल्पना-लोक मे प्रमोद की अस्वस्थता और एकाग्रता मे प्रतिमा के प्रति विचित्र परिस्थितियो मे एकनिष्ठा का चित्र अकित किया। इस विचार से उन मे एक हलचल, एक अटपटापन-सा उनके मन मे उत्पन्न हुआ। तभी उन्होने सामने बैठे प्रमोद से प्रश्न किया, "प्रतिमा को कब से जानते है मि० प्रमोद .....।"

ओह, जैसे मस्तिष्क तक छूने वाले जितने भी ज्ञानतन्तु व शिराएँ थी, सब सजग हो गई, सबकी गति तीव्र हो गई। जैसे प्रमोद की हृद्तन्त्री के तार अनायास झन्न्‌झन्‌ करके काप उठे। जैसे उसकी वाक्‌शक्ति लुप्त होते-होते सहम कर रह गई। तभी रुक कर भी रुकने को अप्रासगिक जानकर प्रमोद क्षीण स्वर मे कह उठा, "जानता नही, हाँ कुछ दिनो से पहचानता हूँ।"

"ओ.. ।" कहकर जस्टिस मानसिह ने गम्भीर मुद्रा बनाई। किन्तु मन की मुस्कराहट ओठो पर बिना आए न रह सकी।

कुछ देर तक वहाँ यो ही मौन वातावरण बना रहा। तभी जस्टिस महोदय ने प्रमोद से कहा, "मैंने अभी फोन किया था। पोर्ट आफिसर ने बताया है कि 'शिप' कल आठ बजे मूव करेगा।"

"जी. ।" कहकर प्रमोद शान्त हो गया। प्रतिमा को कब से जानते है मि० प्रमोद, प्रतिमा, पिता जस्टिस मानसिह, उसका बंगला, यही कही घूमती हुई उसकी कचन काया, और आज वह अतिथि...यही सब प्रमोद सोच कर शान्त हो लेता और तब स्तब्धता छा जाती।

"देखिए मि० प्रमोद, मुझे एक आवश्यक कार्य से थोडी देर के लिए बाहर जाना है। आप यही आराम कीजिएगा।" कहकर जस्टिस मानसिह ने अपनी कलाई की सुनहली रिस्टवाच संभाली और सोफे से उठ खडे हुए।

कल से प्रमोद निरन्तर जस्टिस महोदय के साथ रहा। संकोच और शील मे डूबने-उतराते रह कर छिटकती दृष्टि से उसने बगले की भव्यता और शालीनता को देखा। चाह कर भी वह ड्राइगरूम, बेडरूम, लान छोडकर कुछ और न देख सका। मन की इच्छा वह मन ही मे दाबे रहा कि उस बगले की एक-एक वस्तु को देख कर, छू कर समझे और सन्तोष करे। वह, वह प्रतिमा का बंगला था। वह, वह उसकी प्रतिमा का मन्दिर था। वह, वह उसके कल्पनालोक मे उभरा-ढका तीर्थस्थान था। वह वह उसके मन का कैलाश था और सचमुच बाहर गेट पर एक सगमरमर का टुकडा सीमेन्टेड था जिस पर अकित था "कैलाश।"

जस्टिस मानसिह की अनुपस्थिति मे अवसर की अनुरूपता पाकर उसने बगले के एक नौकर को जो चाय इत्यादि लाता था पुकारा और उससे कहा 'गॅजू, चलो जरा हमे अपना बगला तो दिखाओ ."

और प्रसन्न हो कर गॅजू, जो सचमुच गॅजू था और जस्टिस महोदय उसे इसी नाम से पुकारते थे, बोला, "चलिए।"

एक-एक करके उसने प्रमोद को अनेक कमरे दिखा दिए। सभी कमरो मे आधुनिक रख-रखाव व सजाव-शृ गार था। तभी गॅजू ने धीरे से एक कमरे के द्वार को खोलते हुए कहा, "बाबू जी, प्रतिमा बीबी का कमरा है . । बीबी विलायत गई हैं।" तत्क्षण माली की पुकार सुनकर, "अभी आया ..।" कहकर गॅजू कमरे के बाहर हो गया।

और प्रमोद था। चतुर्दिक निर्जन था। शान्त निस्तब्ध वातावरण था और समस्त प्रतिमा का शयनागार ओफ, कैसा सुखद, कितना मीठा, कैसा मुग्धक सुवास नासापुटो के द्वारा प्रमोद के मस्तिष्क मे पहुँच रहा था। प्रमोद ने एक क्षण अपने पलक ढाप लिए। पुनः ध्यान करके कि कही जस्टिस साहब न लौट आएँ शीघ्रता से वह वहाँ का सब कुछ देखने लगा। विस्तृत कमरे मे वह रुके, बैठे, कही टिके, एक क्षण तो वह उस मधुरिमा को पी ले, उसे आत्मसात् कर ले, उसमे डूब जाए। वह करे क्या ? देखे क्या ? वह प्रतिमा का कमरा था। प्रतिमा की अनुपस्थिति मे वहा का सब कुछ, वहा की प्रत्येक वस्तु प्रतिमा की झाकी थी, प्रतिमा की स्मृति थी, प्रतिमा की प्रतिमूर्ति थी। तब उसने एक ओर से कमरे मे पग बढाना प्रारम्भ किया। दाहिनी ओर एक ड्रेसिग टेबिल रक्खा था, आदमी से भी ऊँचा। निकिल पालिश से भी अधिक चमक उसकी स्प्रिट पालिश मे थी। उसका बनाव प्रमोद के लिए एक नई वस्तु थी। उस पर कही कुछ नही था। हा, एक ओर एक कघा रक्खा था। ऐसा लगा मानो प्रतिमा ने उससे अपने सुनहले केशो को सवार कर उसे वही रख दिया था और तुरन्त ही कार से वह चली गई थी, आगे, बहुत आगे, तब जहाज और इग्लैण्ड। प्रमोद ने कघे को उठा कर चूम लिया। चाहा, उसे ले ले। थाती की तरह अपने पास रक्खे। किन्तु नही, यो नहीं। पूछ कर लेना चाहिए। तब, क्या जस्टिस महोदय से पूछना उपयुक्त होगा। ओ, वे क्या सोचेंगे। और प्रमोद आगे बढ़ गया। उसने पुनः एक दृष्टि चारो ओर फेकी। सामने की ओर बडी-बड़ी खिडकिया थीं जो अपने मे बडे-बडे शीशे सभाले उस क्षण मौन टिकी खडी थी। प्रमोद शीघ्रता मे पग बढ़ा कर उस ओर आ गया। उन पर पडे एक पर्दे के रेशम को उसने छुआ। पीला रंग जैसे उसके हाथो मे लग गया हो। बाहर क्या है, सोच कर उसने पर्दे को तनिक ओट मे किया। किन्तु प्रकाश के अतिरिक्त उसके समक्ष कुछ न आया। शीशो का क्रीम रंग चमक कर

रह गया। पारदर्शिता उनका कार्य न था। तब प्रमोद ने पीतल की चटकनी खोल कर बाहर झाकना चाहा। चटकनी पर हाथ लगाते ही वह सिहर गया, ओ, इस पर प्रतिमा की कोमल उंगली का चिन्ह जो अकित था। वह रुका। मौन उस चटकनी को एक पल देखता रहा और तब साहस करके उसने चमकते शीशम का द्वार खोल दिया। बाहर फूलों से सजा हरा-भरा लान दूर तक फैला था। यह बगले के पीछे की ओर का बगीचा था। लान पर किसी पौदे के सहारे टिके प्रतिमा को वह देख भर सका और शीघ्रता मे उसने द्वार बन्द कर दिया। पर्दे को यथावत् ढक दिया। एक बार और उसको संभाला जैसे प्रतिमा के चित्र पर झीनी पीली जाली ढक रहा हो।

और तब घूम कर उसने एक बार कमरे पर दृष्टि फेंकी। दीवारों पर क्रिमजन कलर का आयल पेन्ट हो रहा था। बहुत हलका-हलका। कही कोई चित्र न था। जैसे चित्रो से नही, यथार्थ से ही उसे मोह हो।

पश्चिम की ओर की दीवार मे बीचो-बीच हीटिंग फर्नेस की जाली नीचे झाक रही थी। उसके ऊपर दीवार मे बडा मोहक सीमेंट का शृ गारदान बना था। उस पर दो फूलदान सजे रक्खे थे। उनके बीच मे, ओह, एक चित्र था प्रतिमा की छाया, नही प्रतिमा की प्रतिमा। प्रमोद बढा। उसने फ्रेम की सुन्दरता मे बन्द चमकदार कागज में समाई मूर्ति को चूम ही तो लिया। उसे लगा जैसे जस्टिस मानसिह पीछे आ खडे हुए हैं और उसने शीघ्र ही चित्र को यथावत् टिका दिया। अपने को संभाला।

और इससे तनिक हट कर व्यवस्थित सज्जा। प्रमोद वहीं था। मन वही था। पलग पर धुली चादर छाई हुई थी। उसकी खुली तह की धारिया स्पष्ट उभर रही थी। मानो, प्रयोग की निर्मलता की साक्षी हो। मानो, धवलता अछूती हो। मानो, इसका व्यवहारी इसी स्वच्छता का उपासक हो। प्रमोद ने चाहा दो पल उस पर बैठे। पर, नहीं, उस पर सरवटे पड़ जाएँगी। पर, नही, मन न माना और हठात् वह उस

पर बैठ गया, लेट गया। पलक मूदे, मन मूदे। किन्तु उसे आज हो क्या रहा है ? वह इतना अव्यवस्थित कैसे ? यह तो उसकी प्रकृति का परिवर्तन है। किन्तु यह सम्भव है। वह आज प्रतिमा मे बसी वस्तुओं की ही गन्ध लूट ले, उस मधुरिम आनन्द को घूट दो घूट ही सही, पी ले। पीने की उसकी बान नही किन्तु जिस घूट को पीने का वह आदी रहा है, वही तो वह यहा भी पी रहा है, स्मृति की हाला, समर्पण की हाला, आत्मानन्द की हाला, वह भी केवल अपनी विस्मृति के लिए। दूसरे न जाने कि नशा कैसा है ?

तब वह अचकचा कर पलंग से उठा। उसने वहा कुछ सूना-सूना पाया। रुनझुन उसके मन और मस्तिष्क मे अवश्य स्वरित थी किन्तु आज वह उस स्थान पर किसी साकार प्रतिमा के लिए आतुर हो उठा। काश, वह उस सज्जा पर, साथ .....और उसने घूम कर निर्निमेष पलग को कुछ क्षण तक देखा, तब झूमता हुआ आगे बढ गया।

कमरे की उत्तरी दीवार के सहारे दूर तक फैली एक आल्मारी थी, जिसमे चुनी-सजी पुस्तके कई खानो मे लगी थी। आल्मारी के बीचोबीच ऊपर की कगार पर एक प्लेट लगी थी जिसके काले मेटल पर सफेद अक्षरो मे अंकित था 'प्राइवेट'। देख कर प्रमोद एक क्षण रुका। प्राइवेट पर उसे कौतुक हुआ। हाँ, वैसे बाहर दूसरे एक कमरे मे एक बडी-सी लायब्रेरी थी। सम्भव है यह प्राइवेट लायब्रेरी ही हो। किन्तु इसमे है क्या ? क्या कुछ सेक्सुअल लिटरेचर, कुछ .. .किन्तु नहीं यह वह सोच क्या रहा है ? तब क्या ? तो क्या उस प्लेट को पढ लेने के पश्चात् भी वह उन किताबो पर सामने से अकित कुछ सुनहले, कुछ लाल, कुछ काले-काले शब्दो को पढ़े ? पर नही। पर मन न माना। वह आगे बढा।

और सचमुच पूरी आल्मारी मे कम से कम दो सौ, सम्भव है अधिक पुस्तके हो सेक्सोलाजी पर फ्रायड, हैवलाक रेलिस, शेपेजी, आदि विश्व के विख्यात लेखको की कृतिया व्यवस्थित रूप मे चुनी लगी थी। तो

यह सेक्शन प्रतिमा ने पृथक् ही रक्खा है। प्रमोद सोच रहा था, वैसे फिलासफी, सोशियोलाजी, हिस्ट्री, पालटिक्स, रैलीजन, पाश्चात्य और प्राच्य साहित्य, कला और संस्कृति, विज्ञान, ओल्ड मेडीवल एण्ड माडर्न इगलिश और इण्डियन पोयटरी आदि अनेक विषयो पर एक सुव्यवस्थित और सुसज्जित लायब्रेरी के दर्शन उसने प्रातःकाल ही जस्टिस मानसिंह के निर्देश पर किए थे। बहुत समय वह एक पुस्तक की खोज मे था। अनेक स्थानो पर उसने ढूढा था। अनेक बुकस्टाल्स को उसने लिखा था किन्तु वह उसे न पा सका। उसे विशेष प्रसन्नता के साथ आश्चर्य भी हुआ। जब वह पुस्तक उसे आज वहाँ दिख गई। 'द क्रियेटर, प्योट नाट गाड'। और उसने समझा कि प्रतिमा की लायब्रेरी अपने मे कितनी पूर्ण है। वह स्वय गर्वित था।

तब वह देर तक, इधर से उधर उस 'प्राइवेट' को झाक गया। तब इस विषय पर भी इतना अध्ययन, इतना आकर्षण, नहीं इतना महत्व। और प्रमोद सहसा आगे बढ गया।

इस आल्मारी से हट कर एक ऊँचा-सा वारड्रोब लगा था। उसकी नक्काशीदार ऊँची कार्निस। उसके बाहर आदमकद दो शीशे। चमकता हैंडिल जैसे उस पर कोहनूर जडा हो। प्रमोद ने चाहा उसे खोल कर देखे। किन्तु वह सोचने लगा यह सब कितना अनधिकृत है, किसी की अनुपस्थिति मे किसी के सामान, किसी के स्थान की यो 'सर्च', पर हा, वह प्रतिमा का मन्दिर था। पुजारी को दर्शक से कुछ विशेष अधिकार क्या प्राप्त नही। और उसने धीरे से आल्मारी खोली। ऊपर से नीचे तक सारे खाने साडियो और ब्लाउजो की रगीनियो मे इन्द्रधनुषी वृत्त बना कर सामने नाच गए। एक ओर हैंगर्स पर कुछ ब्रैसियर्स टगे दिख गए और प्रमोद ने आल्मारी चुपचाप बन्द कर दी।

तब वह कमरो के बीचोबीच आ खडा हुआ। पलग के पाये से छूता हुआ एक लम्बे भाग मे फैला हुआ इजिप्सियन कालीन दाबता हुआ प्रमोद उस पर पडे एक सोफे पर बैठ गया। माथे पर उसने अपना पूरा

हाथ फेरा जैसे वह सब पीते-पीते, देखते-देखते अनायास थकन का अनुभव कर रहा हो, नही जैसे अतिरेक मे वह और अधिक निमग्न हो लेने को तत्पर होने के लिये मस्तिष्क मे स्थान बना रहा हो और उसने सामने देखा, उभरे अक्षरो मे कालीन पर अंकित 'पी आर ए टी आई एम ए' और वह उछल कर कालीन पर बैठ गया । अपनी ठोढी पर हाथ टिकाए पल्थी जमा कर । क्या बेहूदगी है ? यह नाम पैरो से दाबने के लिये, कभी नही, कदापि नही । और वह बैठा रहा ।

बाहर जस्टिस महोदय का स्वर गूँज गया। प्रमोद पलक मारते कमरे के बाहर हो गया किन्तु सामने ही जस्टिस महोदय ने आ घेरा और प्रमोद को प्रतिमा के कमरे से बाहर आते हुए देख कर सरल भाव से कहने लगे, "प्रतिमा का कमरा है.. । कहो, मेरी एब्सेन्स मे इस एकान्त बगले में तो जी बडा घुटा होगा ..।"

प्रमोद ने कोई उत्तर न दिया । 'प्रतिमा का कमरा है । जस्टिस मानसिह ने उसे कमरे से बाहर निकलते देख लिया । और प्रमोद बडा खिन्न हो उठा । जैसे सोते से जाग कर उसने जस्टिस महोदय के प्रश्न का उत्तर सूक्ष्म मे दे दिया, "मै बहुत ठीक रहा । लायब्रेरी मे बैठा पढता रहा ।"

बीच के हाल मे सोफे पर जस्टिस महोदय बैठे थे। उनके सामने ही दूरी पर प्रमोद, बीच मे पर्सियन कालीन की भव्यता पर टिकी बीच की गोल मेज और छोटी-छोटी उसकी अन्य सहकारी मेजे किसी भी क्रिया के लिये तत्पर प्रतीत हो रही थी । तभी गजू ने चाय की ट्रे लाकर उसकी सामग्री छोटी-बडी मेजो पर सजा दी । एक छोटी मेज उसने जस्टिस महोदय के सामने और एक प्रमोद के सामने बढा दी ।

"मि० प्रमोद, ईवनिग शो मे दो सीटे मैने फोन से बुक करा दी है। आपको चलना है.. ।"

"जी हा. ।" कह कर प्रमोद मौन हो गया ।

चाय की चुसकिया लेते-लेते जस्टिस मानसिह सोच रहे थे, प्रतिमा

और प्रमोद की इगलैण्ड मे भावी भेट की बात, तो प्रमोद की अनुरूपता, अपने अनुभवो की गहनता मे इस क्षण वे प्रमोद की आकृति मे कनखियो से कुछ पढ रहे थे । उनके अकन मे वह पर्याप्त मात्रा मे अनुकूल दिख चुका था । उसका व्यक्तित्व, स्वभाव, युग के जीवन-दर्शन पर उसके गम्भीर मत, अनेकानेक विषयो पर विवेचनात्मक अध्ययन, उसकी कलात्मक प्रवृत्ति, उसकी स्थिर भावनाएँ उन्होने अनेक प्रकार से समझी और मनन की। वे उस पर एक प्रकार से मुग्ध हो रहे थे। और, और आज तक उन्होने प्रतिमा के वैवाहिक प्रसग पर एक पल के लिए भी इससे पूर्व सोचा तक न था । आज उन्होने उसको गहरे तक विचारना चाहा। तो क्या प्रमोद ही प्रथम या अन्तिम पात्र सम्भव है .उनका मन उत्तर दे रहा था।

प्रमोद अपने सोफे की सामने की दीवार पर जस्टिस मानसिंह और प्रतिमा के साथ के एक भव्य 'एन्लार्जमेन्ट' को देख कर नीची दृष्टि किये उसी के भावो मे लीन था । कल ८ बजे तक का समय उसे उसी वातावरण मे व्यतीत करना था । वह वहा रुकना चाहता था । वह इग्लैण्ड जाना चाहता था । वह जस्टिस महोदय से वार्तालाप करना चाहता था। वह सामने लगे चित्र को ही प्रतिक्षण देखते रहना चाहता था। तभी उसने उठ कर बीच की मेज पर से प्रातः काल का देखा हुआ समाचार-पत्र पुनः उठा लिया। सोफे पर बैठते-बैठते उसकी दृष्टि पत्र के अन्तिम पृष्ठ के नीचे के कालमो मे जा टिकी। हैडिग था—

'ड्राइवर गेट्स एन हार्ट अटैक व्हाइल एट स्टियरिंग व्हील...।'

और प्रमोद ने कौतूहल से समाचार पढा । कमायू बस एक्सीडेंट इन्क्वायरी फाइडिग्स । फ्राम अवर करेसपान्डेन्ट । कमाऊँ मोटर बस एक्सीडेन्ट लास्ट मन्थ इन व्हिच ३० आउट आफ ३२ पैसेंजर्स वर किल्ड वाज ड्यू टु द डेथ आफ द डाइवर, फालोइग ए हार्ट अटेक, व्हाइल एट द स्टियरिग व्हील । सबमिटिग दीज फाइन्डिग्स टु द रीजनल ट्रान्सपोर्ट आफीसर आफ द कमाऊं डिवीजन मि० वर्थवाल हू कन्डक्टेड

एन इन्क्वायरी इन्टु द एक्सीटेन्ट हैज सजेस्टेड देट टु मिनिमाइज द चान्सेज आफ एन एक्सीडेन्ट आफ सच नेचर आल ड्राइवर्स आफ पब्लिक वेहिकल्स शुड बी गिवेन ए पीरिआडिकल मेडिकल चेक-अप।

मि० वर्थवाल इन हिज रिपोर्ट स्टेटेट दैट ही इक्जामिन्ड फोर पासिबल काजेज आफ द एक्सीडेन्ट : मेकेनिकल ब्रेकडाउन, इफ एनी; द ड्राइवर वाज ड्रंक, डिफेक्ट इन द रोड; एन्ड एनी अदर रीजन। ही स्टेटेड दैट नीदर द फूट ब्रेक्स नार हैन्ड-ब्रेक वर एप्लाइड बाई द ड्राइवर बिफोर द एक्सीडेन्ट आकर्ड। एन्ड दिस शोड देट दि स्टियरिंग वाज इन हिज पर्फैक्ट कन्ट्रोल। द पुल एन्ड पुश राड वाज आल्सो नाट आउट आफ आर्डर, नार द टिराड एन्ड वाज जाम्ड आर ब्रोकेन, फार इन ईदर केस, द ड्राइवर कुड हैव ब्राट द बस टु ए क्विक हाल्ट बाई टेकिंग हिज फूट आफ द थ्राटल आर बाई यूजिंग द ब्रेक्स एज इट वाज द अपहिल जर्नी।

द बस एकार्डिंग टु द फाइन्डिंग्स वाज रनिंग इन द थर्ड गीयर एट द टाइम आफ द एक्सीडेन्ट एन्ड एज सच इट्स स्पीड कुड नाट हैव बीन मोर दैन एट टु टेन माइलस् एन अवर। द बेन्ड आफ द रोड एट द प्लेस आफ द एक्सीडेन्ट बाज आल्सो सफीसिएन्टली वाइड विद प्रापर स्लोप्स टुवर्ड्स द हिल साइड। दिस उड इन्डीकेट दैट देयर वर मोर चान्सेज आफ द बस रोलिंग टुवर्ड्स द हिल-साइड दैन गोइंग स्ट्रेट एन्ड देन फालिंग डाउन। एट द सेम टाइम, द ड्राइवर, हू वाज द यंग मैन, बिलाग्ड टु ए क्लास आफ पीपुल व्हिच डिड नाट टेक लिकर एन्ड मि० वर्थवाल सेड देट ही कुड नाट फाइन्ड नो रीजन टु सस्पेक्ट दैट ही बाज अन्डर द इन्फ्लुएन्स आफ लिकर।

अन्डर द सर्कम्स्टैन्सेज मि० वर्थवाल सेड, देयर कुड बी नो अदर रीजन दैन दैट बिफोर द एक्सीडेन्ट आकर्ड द ड्राइवर गाट ए हार्ट अटैक एन्ड डाइड, आर, एटलीस्ट बिकेम अनकान्सस, एन्ड द बस प्रोसीडेड स्ट्रेट फार एबाउट थर्टीन फीट बिफोर फालिंग डाउन द हिल।"

"ओफ ..।" कहकर प्रमोद सोफे पर सभल कर बैठ गया।

"क्यो मि० प्रमोद, क्या कोई न्यूज आइटम है?" जस्टिस महोदय ने केक का बटर पेपर खोलते हुए प्रश्न किया।

"जी हा, मै जब पहाड पर था, तब एक भयानक बस एक्सीडेन्ट हुआ था। उस पर सम्भवतः इन्क्वायरी बैठी थी और उसकी रिपोर्ट छपी है। कितने आश्चर्य की बात है, सुनिये।" और प्रमोद ने उस समाचार को पूरा का पूरा जस्टिस महोदय को सुना दिया।

'द ड्राइवर, ए यग मैन, विलाग्ड टु ..यस व्हाट मि० प्रमोद।"

'ए क्लास आफ पीपुल व्हिच डिड नाट टेक लिकर ..।" प्रमोद ने वह वाक्य पुनः पटा।

"एन्ड ड्राइवर गेट्स एन हार्ट अटैक व्हाइल एट स्टीयरिंग व्हील... ड्राइवर, ए यग मैन, एन्ड हार्ट अटैक. एव्सर्ड, एव्सर्ड। सच एव्सर्डिटी टुक द लाइफ आफ थर्टी। जस्टिस महोदय तमतमा उठे।

प्रमोद भी शान्त था।

'घटना होते देर नही लगती।" प्रमोद ने धीमे स्वर मे फुसफुसाया।

"आपका शिप बिलकुल नया है। सेकण्ड ट्रिप ले रहा है, इस बार।" जस्टिस महोदय ने प्रमोद से अनायास कहा।

दो दिन तक जस्टिस मानसिह के बंगले पर आतिथ्य पाने के बाद ड्राइंग-रूम, टी टेबल, कार, सिनेमा आदि के समय और रात्रि के साढ़े ग्यारह-ग्यारह बजे तक अनेक विषयो पर विचार-विनिमय, वादविवाद इत्यादि मे जम कर भाग लेने के पश्चात् प्रमोद ने जस्टिस महोदय पर अपने व्यक्तित्व की एक गहरी छाप छोडी और अपनत्व के नवीन वातावरण मे इंग्लैण्ड को प्रस्थान किया।

जस्टिस मानसिह स्वयं उसे डेक तक छोडने गये। जबकि वे इतने गम्भीर और कम मिलने-जुलने वाले व्यक्ति थे कि उनके सम्बन्ध मे यह

बात प्रचलित थी कि वे मनुष्य की छाया से भी कभी-कभी क्या सदैव घृणा करते है। बड़ा-छोटा वह किसी से बात ही नही करते। जस्टिस काल मे उनकी यह प्रकृति बन जाना स्वाभाविक ही था।

लौट कर जस्टिस मानसिंह ने स्वयं प्रमोद के पिता को सूचना दी कि आज आठ बजे प्रमोद ने सानन्द 'जलविहार' द्वारा इग्लैण्ड को प्रस्थान कर दिया है। बधाई।

: ३६ :

'जल-विहार' सन् सन्, धू-धू, हहर-हहर करता, सागर की उत्तुंग लहरो के साथ हिलोरे लेता, आगे बढने लगा।

'जल-विहार' आधुनिकतम सुविधाओ से पूर्णतः सज्जित, अपने गर्भ मे एक प्रकार से एक आधुनिक नगर बसाए, आग-पानी का खेल खेलता, हिन्दसागर की छाती चीरता, छप-छप शब्दोच्चारण करके आगे बढ़ रहा था।

प्रभात बेला के प्रयाण मे नवरश्मियो की भॉति 'जल-विहार' नव सदेश लिये अपने मे बहुसंख्य नर-नारियो को हृदयगम किए श्वेत सारस की भॉति गर्दन घुमाता, ठुमकता, इठलाता, मन्थर गति से आगे बढता चला जा रहा था। कई मजिल ऊँचा वह विशाल जलयान बाहर से सफेद इनेमिल से रगा था। उसका निचला भाग सिलवर कलर से रगा हुआ था। उस सिलवर पर छपाका दे देकर, ऊँची लहरे जब उस तक आती तो उस क्षण उठता फेनिल और छिटकती जलबूँदे, उस प्रभात के सूर्य की किरणो का सहारा पाकर उस क्षण सागर के मोतियो से भी अधिक सुहावनी प्रतीत होती थी।

'जल-विहार' का अन्तर्भाग स्लेटी रंग से रगा हुआ था। अनेक चेम्बर, केबिन, लाउज, डेक, छोटे-बडे हाल, खेल के लिये बने विभिन्न स्थल, डेक पर और इधर-उधर दौडती रेलिग सब कुछ एकरूपता लिए,

एक रंग से रंगी बड़ी भली प्रतीत होती थी। रंग की सादृश्यता ने प्रिय दृश्य उपस्थित कर रक्खा था।

स्थल-स्थल पर जलयान के कर्मचारी, उसके छोटे-बडे अधिकारी अपनी स्वच्छ एवं समान वेशभूषा मे निरन्तर कार्य रत थे। कुछ आदेश देने वाले और कुछ आदेश पाने वाले अपनी मक्खन की सी सफ़ेद पेन्ट और बुशर्ट के ऊपर नीले रंग की नावदार टेढी टोपी पहने, इधर-उधर, ऊपर-नीचे, छोटी-बड़ी लोहे की पतली सीढियो पर चढते-उतरते, डेक, लाउंज और केबिनो पर घूमते-फिरते बडे भले प्रतीत हो रहे थे।

प्रमोद एक साथ सब कुछ जानना और देखना चाहता था। जीवन में प्रथम बार वह किसी जलपोत पर आया था।

तीर पर कैसे रुकूँ मै, आज लहरो मे निमन्त्रण।

गुनगुनाता हुआ प्रमोद अपने केबिन की एक दृष्टि से चतुर्दिक देख गया। उसका केबिन दो व्यक्तियो का था। किन्तु वह था अकेला। सौभाग्य से दूसरे सज्जन जिनकी सीट उस केबिन मे रिजर्व थी, यात्रा नही कर रहे थे। सामने ही एग्जास्ट पाइप अपना कार्य कर रहे थे और ठंडी हवा का झोका अन्दर दे रहे थे। उसको देखकर प्रमोद अनायास मुस्करा दिया। जैसे उसे वहाँ बड़ा पुलक प्राप्त हो रहा हो। प्रत्येक वस्तु उसे भली प्रतीत हो रही थी।

दो ओर से दो रोटेटिंग टेबिल फैन घूम-घूमकर 'सी इसी' का स्वर निकाल रहे थे। प्रमोद ने आगे बढ़कर एक का स्विच आफ कर दिया। एक ओर छोटी-सी राइटिंग टेबिल रक्खी थी, जिसके दो ओर हरे रंग की छोटी-छोटी सुन्दर कुर्सियाँ रक्खी हुई थी। प्रमोद आगे बढा और एक कुर्सी पर आकर चुपचाप बैठ गया। आगे की ओर पडे कार्पेट पर उसने अपने पैर टेक लिए।

लहरो की भाँति हिलोरे लेता प्रमोद कुछ क्षण उस एकान्त केबिन मे मौन बैठा रहा। उसकी कुर्सी के बहुत नीचे तल भाग मे सागर की लहरें उमड़-घुमडकर उठ और मिट रही थी। उसी भाँति प्रमोद के बाईं

ओर धक्-धक् करने वाले उस छोटे से विशाल रक्तसागर मे भी बडी-छोटी लहरे उठती और मिटती थी। एक लहर आकर ऊँची, बहुत ऊँची उठी और कुमायू के शिलाखण्डो तक जाकर टक्कर मार आई, तब उतरते-उतरते, थमते-थमते धीरे-धीरे सागर-तल पर आकर वह फैल गई और बढकर पिकाडेली, आक्सफोर्ड, यूनीवर्सिटी लान होस्टल, एक लक्ष्य बिन्दु, एक स्मृति, एक आकृति प्रतिमा मे लीन हो गई।

और तभी सागर की लहरो के थपेडो की भाति नींद के थपेडो ने उसे थका दिया और वह उठकर अपनी सीट पर पडे श्वेत फेनिक सदृश धवल चादर पर आ बैठा।

तब दोनो पैरो को आगे फेकता हुआ वह उठा और उसने अपने सूटकेस व अन्य सामान को व्यवस्थित किया। और आकर सीट पर लेट गया।

'जल-विहार' गतिमान था। मनन शक्ति की थकन ने एक झपकी दी। वह सो गया।

आध घटे मे ही उसकी नींद टूटी और उसने सामने देखा एक स्टुवर्ट खडा है। उसने उसे पानी लाने का आदेश दिया। काच के गिलास मे शीतल जल की तरलता को पीकर वह कुछ सचेष्ट हुआ और उसने स्टुवर्ट से कहा कि वह उसे केबिन की प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करा दे।

स्टुवर्ट ने सर्वप्रथम सामने लाल हरे दो स्विच दिखाए। और बताया कि एक स्विच को दबाने से उसके समक्ष मेलस्टुवर्ट और दूसरे के दबाने से फीमेल स्टुवर्ट आएगा। प्रमोद फीमेल स्टुवर्ट के आने की बात जानकर मन ही मन मुस्करा दिया। किन्तु एकाएक उसने स्मरण किया, उसके साथ यदि जयन्त होता अथवा कीर्ति तो फीमेल स्टुवर्ट का ही एक तमाशा रहता। काल-बेल देखकर प्रमोद बडा प्रसन्न हो रहा था। सामने ही बडे-बडे दो शीशे इधर-उधर देखकर उसने एक मे अपना स्वयं निरीक्षण किया। अपने मुख की आभा से उसे तनिक सतोष हुआ।

स्टुवर्ट ने बताया कि प्रमोद को चार काच के गिलास, चार तौलिये, चार साबुन, दो थर्मस इत्यादि व्यवहार की वस्तुएँ मिली हुई हैं। थर्मस की सुन्दरता और तौलियों की रंगीन धारियों को देखकर वह हँस दिया।

"शाम को आपको डेक पर ले चलूँगा।" कहकर स्टुवर्ट चला गया।

प्रमोद पुनः एकान्त केबिन का आनन्द लेने लगा। वह अपनी सीट पर आकर लेट गया और अपनी अटैची से निकाल कर रक्खी टाल्सटाय की 'अन्ना कैरेनिना' को खोल कर पढने लगा। तब पढते-पढते वह उठा और अपने केबिन के बाहर जाकर उत्सुकतावश दूर तक अपनी ही मंजिल का निरीक्षण करके लौट आया।

आसपास दूर तक केबिनों मे यात्री भरे थे। किसी चेम्बर से तीव्र अट्टहास, किसी चेम्बर से वाद-विवाद का स्वर और किसी केबिन से बाहर झाकती किसी रमणी का कोमल हास सुनकर वह अपनी ही सीट पर पुनः आ विराजा।

यों ही बिना आवश्यकता के उसने सरहाने रक्खी अटैची से दो लेमनड्राप निकाल कर मुँह मे डाल लिए और मुँह घुमाता हुआ वह बिस्तर पर लेट गया। अन्ना कैरेनिना और काउन्ट व्रान्सकी के रोमान्स के कथानक को हृदयंगम करता हुआ वह दो-चार पेज पढ पाया और धीरे से पुस्तक उसने तकिए के नीचे दाब दी।

मन उचट रहा था। एकाएक उसे जस्टिस मानसिह का स्मरण हो आया। उनकी इतनी खातिरदारी से वह अपने मे गर्व का अनुभव कर रहा था और यह सोच कर मुग्ध हो रहा था कि किस प्रकार सयोग आ-आकर उसे खिलखिला-खिलखिला कर हँस लेने का अवसर दे रहे है। जस्टिस मानसिह की छाया भी किसी समय उससे आकाश की तरह दूर थी। और उनकी प्रतिमा ....उसने सोचा, भावी सतोष ही उस सब सत्कार की एक पृष्ठभूमि है। वह आँखे मूँद कर लेट गया।

पुनः उठकर जस्टिस मानसिह द्वारा दिए गए प्रतिमा के हेतु पैकेट को उसने बर्थ के नीचे से उठाया। उसे इधर-उधर करके देखा और

यथास्थान रख कर पुनः बिस्तर पर लेट गया।

तभी भो ओ भो ओ का एक तीव्र व कर्कश स्वर सुनाई दिया जो जहाज की पुकार थी। यों ही प्रमोद उठा और अपने केबिन मे लगी एक बहुत छोटी गोल खिडकी के द्वारा कुछ उचक कर बाहर समुद्र का दृश्य देखने लगा। नीला-नीला, अथाह असीम सागर और तब उसे ध्यान आया, यही कही बहुत नीचे किसी बडे मोती को छिपाए सीप पडी होगी, जैसे उसके मन रूपी सीप मे भी एक चमकदार मोती, प्रतिमा की एक स्पष्ट आभा छिपी पडी है।

जलयान के नियमादि जानने के लिए वह उत्सुक था। तभी वह कपडे बदल कर केबिन के बाहर आने को उद्यत हुआ। इतने मे ही स्टुवर्ट ने आकर पूछा कि आप भोजन पहली सीटिग मे करेगे अथवा दूसरी। और अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए स्टुवर्ट ने बताया कि भोजन का समय १२ बजे है। उसके एक घटे बाद दूसरी बैठक होगी। लगभग आधे लोग पहली और आधे दूसरी सिटिग मे भोजन करेगे। जिस सिटिग मे भी आपकी इच्छा हो उसके लिए पहले से नाम दे देना होगा, यही क्रम चाय, नाश्ता व शाम के भोजन का भी है।

प्रमोद ने दूसरी सिटिग के लिए अपना नाम दे दिया।

पहला दिन था अतः स्टुवर्ट विशेष सहानुभूति व सरलता से प्रमोद को समय-समय पर नियमादि की सूचना दे जाता था। खाने के समय के थोडी देर पूर्व आकर स्टुवर्ट प्रमोद को डाइनिग हाल की ओर ले गया। वहा पहुँचते-पहुँचते दूसरी सिटिग की घटी बजी और प्रमोद अन्दर जाकर एक किनारे की मेज पर टिक गया। बहुत ही अच्छा निरामिष भोजन समाप्त कर लेने के पश्चात् प्रमोद कामन-रूम मे आ बैठा।

लौट आकर वह अपने बिस्तर पर जम कर सोया, यहा तक कि मध्याह्न की चाय का समय भी उसका निद्रा मे ही पार हो गया।

शाम को वह जब उठा तो डेक पर जाने का समय हो गया और उसने देखा कि उसके केबिन के सामने से अनेक लोग जा रहे है।

उसने अनुमान लगाया, सम्भवतः वे डेक पर ही जा रहे होगे।

डेक पर जाने के लिए प्रमोद विशेष लालायित था। डेक पर से खुले समुद्र और उस पर रौदता-बढता जलपोत देखने की उसकी चाह बढ गई और वह शीघ्र ही कपडे बदल कर धीरे से डेक पर आ गया।

यात्रियो मे गम्भीर व्यक्तियो का होना स्वाभाविक था जो यात्रा मे किसी से मिलना-जुलना अथवा वार्तालाप करना पसन्द न करे। कुछ चचल अथवा सरस भी हो सकते थे जो घूमने-फिरने, आनन्द लेने, पढने-पढाने की उधेड-बुन मे विदेश जा रहे थे। ऐसो मे कुछ उत्सुकतावश मन मे यह विचार लेकर कि बिना मिले-जुले अथवा परिचय बनाए यह लम्बी यात्रा और पहाड से दिन कटेगे किस प्रकार, डेक पर आए थे।

प्रमोद रेलिग के सहारे जा लगा और नीलिमा-युक्त सागर और आकाश के मध्य इठलाते जलपोत की गतियो को देखने लगा। तभी उसके निकट तीन विद्यार्थियो का एक दल आ पहुँचा। प्रारम्भिक नमस्कार-प्रतिनमस्कार के उपरान्त परिचय के समय प्रमोद ने जाना कि तीनो विद्यार्थी बम्बई के गुजराती परिवारो के होनहार हैं और इजीनियरिंग की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के हेतु विदेश जा रहे है। प्रमोद ने भी अपना सूक्ष्म परिचय दे डाला और एक प्रश्न के उत्तर मे कहा, "ढ एण्ड बार-एटला आफ्टर माई नेम.. ।" और सब लोग हँस दिए।

थोडी ही देर मे यह ऊपर वाला मुख्य डेक अति-रजित हो गया। नाना वेशधारी और विभिन्न मुखाकृतिया लिए दो और तीन की सख्या मे यात्री आ आकर इधर-उधर रेलिंग के सहारे टिके अथवा बीच मे पडी कुर्सियो पर बैठने लगे। यात्रा का प्रथम दिवस था अतः सभी एक-दूसरे की ओर भर्राई दृष्टि से निहार रहे थे। स्त्रिया एक-दूसरे के वेश-विन्यास को देखकर कुढ अथवा मगन हो रही थी।

नेवी—जलसेना—की एक टुकड़ी जिसमे सभी आफीसर थे, विदेश मे

सेना-सम्बन्धी विशेष शिक्षा के हेतु जा रही थी। यत्र-तत्र ये लोग विशेष रूप से एक ही पोशाक मे दिख जाते जो बडे भले लगते थे।

इसी क्षण एक युगल-दम्पति प्रमोद के निकट ही आकर रेलिग के सहारे टिक गए और दूर क्षितिज की ओर अपनी दृष्टि दौडाने लगी।

और क्षितिज मे अस्ताचल को जाता अरुणाकाश मे टिमटिमाता सूर्यमण्डल। और सूर्यास्त के पश्चात् गगन-मण्डल की निश्चेष्ट ललामी। निरभ्र आकाश और महासागर का क्षितिज के पार वह प्राकृतिक अमर-मिलन, वह नित्य का समागम, कितना प्रिय प्रतीत हो रहा था।

धीरे-धीरे अन्धकार ने वातावरण को घेर लिया। शनैः-शनैः डेक रिक्त होने लगा। 'जलविहार' निरन्तर छप-छप, शी-शी करता आगे बढ रहा था।

रात्रि, भोजन, गप-शप, निद्रा।

इसी प्रकार दूसरा दिन और तीसरा दिन भी आया।

कुछ नित्य के वे ही कार्यक्रम, कुछ नित्य नए बनने वाले कार्यक्रम, नित्य नई भेट, नए व्यक्तियो से परिचय इसी मे प्रमोद आत्मविभोर यात्रा के सुखद काल को व्यतीत करने लगा। अब उसे एकाकीपन भी उतना नही अखरा।

एलेक्ट्रिक से उसके केबिन की सफाई हो जाती थी। उसके तौलिए व चादरे परिवर्तित हो गए थे। जलयान मे सारा कार्य व्यवस्थित और उच्च स्तर पर स्वतः पूर्ण होते रहते थे।

प्रमोद के कानो मे कभी बेंगो, कभी वायोलिन और कभी कोई अन्य अंग्रेजी बाजे की गत अथवा संगीत की स्वर-लहरी गूंज जाती। विशेषकर 'बार' मे बजने वाला प्रातः-सायकालीन संगीत बड़ा रोचक होता।

दूसरे दिन उन गुजराती विद्यार्थियो के समुदाय के साथ प्रमोद 'जलविहार' के बहुत से स्थान देख आया। दूसरी मजिल पर जाते ही

उसे एक ओर डिसपेसरी दिखी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि जहाज पर एक उच्च सर्जन भी सदैव रहता है। सी-सिकनेस—सामुद्रिक यात्रा से उत्पन्न रोग विशेषकर उबकी, मितली इत्यादि की चिकित्सा का वहा निःशुल्क प्रबन्ध था। उन विद्यार्थियो मे से एक ने बताया कि केबिन मे भी किसी भी समय मितली आने पर कालबेल देते ही फीमेल-अटेन्डेन्ट, घाट लेकर आ जाती है।

और वे आगे बढे। सब को विशेष उत्सुकता प्लेरूम—खेल के कमरे मे जाने की थी। एक बडे से हाल मे बीच-बीच मे अनेक छोटी मेजो के चारो ओर कुर्सिया सजी रक्खी थी। पिगपाग, टेबिल-टेनिस, डेक-टेनिस, बिलियर्ड की पृथक्-पृथक् मेजे वही जमी हुई थी। यहा सर्वाधिक चहल-पहल थी। मेजो पर कही लोग ताश बिखेरे बैठे थे और कही शतरंज पर सर खपा रहे थे। कुछ खुले मे छोटे-छोटे बालक भी उछल-कूद रहे थे और रस्सियो के खेलो मे लगे थे।

वार्तालाप मे ज्ञात हुआ कि प्रत्येक दूसरे दिन सिनेमा भी देखने को मिल सकता है। डान्स इत्यादि मे भाग लेना अपनी इच्छा पर आधारित है। गुजराती विद्यार्थी समुदाय तो प्लेरूम मे जम गया और प्रमोद लायब्रेरी मे आकर स्थिर हो गया।

कुछ देर मे लौटते समय जनरल मर्केन्डाइज की दुकान से प्रमोद ने एक-दो पैसिले तथा एक सुन्दर-सा शीशा क्रय किया और अपने केबिन मे आ गया।

इस समय लाउड-स्पीकर पर खबरे आ रही थी, जो रेडियो से ली जा रही थी।

धीरे-धीरे १६६० मील की यात्रा पार करके 'जलबिहार' ने अदन के प्रसिद्ध बन्दरगाह पर अपना लगर डाला।

प्रमोद एक छोटी टोली के साथ हिलती-डुलती सीढियो से उतर कर नाव पर आया और तत्पश्चात् अदन की बस्ती घूमने चल दिया। एक

दो घंटे मे आसपास घूमकर व कुछ स्फुट सामग्री लेकर प्रमोद जहाज पर लौट आया।

निरन्तर कई दिनो तक जहाज पर रहने के पश्चात् का वह परिवर्तन बडा भला प्रतीत हुआ जैसे पुनः फरहरे हो गए हो। जहाज के अधिकाश यात्री इसी प्रकार बाहर घूम-फिर आए।

यात्रियो मे एक मद्रासी दम्पति भी थे। प्रमोद ने देखा, वे पति-पत्नी दोनो ही बडे हँसमुख, उत्साही और घूमने वाले थे। हर स्थान पर हर वस्तु को बडी महीन दृष्टि से देखना उनकी विशेषता थी। उनसे परिचय होने पर प्रमोद ने जाना कि केवल देशाटन के उद्देश्य से वे घूमने निकले हैं।

इसी प्रकार जहाज पर एक बौना आदमी था। चार फीट से अधिक उसकी ऊँचाई न थी। बडे तापक से सूट डाट कर जब वह अपने केबिन से लाउज, लाउज से डेक और डेक से डाइनिग-रूम में इधर-उधर ठुमुक-ठुमुक कर चलते हुए दिखता तो निकटवर्ती लोग एक कुतूहल और हास्य की मुद्रा मे उसे देखते। वह भी उसकी बिना चिन्ता किए हुए अथवा इधर-उधर देखे सीधा आता-जाता।

ताश का वह बडा आकर्षक खिलाडी था। विशेषकर फ्लश मे वह सामने का फड बात की बात मे साफ कर देता था।

बिलियर्ड खेलते समय जब वह अपने मोटे-मोटे छोटे हाथो से स्टिक चलाता या फुदक कर टेबिल के चारो ओर घूमता तो एक तमाशा लग जाता और दर्शक अथवा खिलाडी अनायास ही हँसी मे डूबे रहते।

इधर गुजराती समुदाय से परिचय हो जाने के पश्चात् ताश प्रमोद के केबिन मे भी जमने लगे। कभी अनिच्छा होने पर प्रमोद न खेलता तो भी वे लोग खेला करते और प्रमोद कुछ पढ़ता रहता।

मि० बौना जिनका वास्तविक नाम दाउद जी था, बडे सरस व चंचल थे। इन्होने धीरे से यह विचार कर लिया कि ताश का एक जमाव प्रमोद के केबिन पर लगता है। तब धीरे-धीरे इन्होने घूम-फिर कर प्रमोद

के केबिन के अनेक चक्कर काटे और परिचय कर करा कर तिकडम से ताश के सेट पर आ जमे । अब तो ताश के खेल मे आवश्यकता से अधिक सरसता आ गई ।

उसी प्रकार मि० बौना को ज्ञात हो गया कि मद्रासी दम्पति बडे घूमने वाले है । बस, इन्होने उनसे भी नाता जोड लिया । अदन मे श्रीमान् जी उन्ही के साथ घूमते पाए गए थे । अच्छा त्रिकोण था । मद्रासी दम्पति मे दोनो ही पति-पत्नी काले-काले, लम्बे-लम्बे और मि० दाउद उतने ही ठिगने और उतने ही सफेद । कोई भी इस सेट को देख कर बिना हँसे न रहता था ।

'जलबिहार' मे अधिक संख्या अगरेज व अमेरिकन यात्रियो की भी थी । उनकी स्त्रिया और बच्चे भी साथ थे । ये अलग-अलग परिवारों और अलग-अलग ग्रुपो मे फर्स्ट क्लास अथवा सेकंड क्लास 'डिलक्स केबिनो' मे यात्रा कर रहे थे । इनमे कुछ सचमुच बडे गम्भीर रहते थे । भारतीयो से तो उन्हे अब तक परहेज-सा था । हॉ, कुछ विद्यार्थी या नवयुवक थे । वे भली प्रकार से मिलते-जुलते और व्यवहारो का आदान-प्रदान करते थे । कुछ विदेशी एशिया, भारत अथवा सुदूरपूर्व का भ्रमण करने आए थे और अब अपने देश को लौट रहे थे । स्वदेश लौटने के कारण उन्हे विशेष आनन्द का अनुभव हो रहा था और भ्रमण मे उन्हे जो अनुभव, जो विशेष वस्तुएँ व स्थान देखने का अवसर प्राप्त हुआ था, उससे भी वे बडे आनन्दित थे और वार्तालाप मे चित्रात्मक शैली मे वे अपने विचार व्यक्त करते और आलोचना-प्रत्यालोचना के लिये प्रतिक्षण तत्पर बने रहते । इनमे स्वभावतः सम्पर्क स्थापित करने का चाव था और वे जहाज के अधिकाश यात्रियो के सहज मित्र बन चुके थे ।

जहाज से प्रमोद ने कीर्ति को अब तक दो पत्र, वकील साहब को एक पत्र, जस्टिस मानसिंह को एक पत्र और जयन्त को पहाड के पते पर ही एक पत्र दिया था । कीर्ति के पत्र मे उसने पहाड पर होने वाली

बस की घटना पर बम्बई मे पढी हुई इन्क्वायरी रिपोर्ट का विवरण भी लिखा और आश्च ' प्रकट किया था।

उसने अब तक की यात्रा का भी बडा रोचक वर्णन कोर्ति को लिखा था।

प्रमोद ने कीत को दूसरे पत्र मे लिखा था,"कीर्ति, यह प्रसंग तुम्हारी रुचि का है। मेरे जहाज मे कुछ अग्रेज स्त्रिया और एग्लोइडियन लडकिया अकेले यात्रा कर रही है। इनमे कुछ अधिक उच्छ ंखल एव स्वतन्त्र विचरण की आदी है। तुम तो जानते ही हो, यह एक चलता-फिरता अच्छा भला नगर ही है न, जहाज। यहाँ सभी समर्थ, स्वतन्त्र और निश्चिन्तता के मूड मे भी है। और तुम समझो शाम को लोगो की गहरी छनती भी है। सागर के अथाह जल मे भी वह नशा नही जो यहा एक छोटे गिलाश मे मिल जाता है। औ॰ इस मदमत्त वातावरण मे कुछेक नये गठबन्धन हुए है, ऐसा मैने अपने यहा के ताजे-ताजे मित्रो से सुन पाया है। मिस लिली, मिस आलीवर, मिसेज क्राम्पटन और मिस मोली से यहा के देशी-विदेशी भली प्रकार रस पा रहे है। देशी-विदेशी क्या ? यहा तो सब देशी, सब विदेशी है। मेरा अभिप्राय भारतीय अभारतीय से है। हा, तो जैसी इनकी रूप-राशि प्रखर है, और कीर्ति सचमुच है भी, उसी भाति, उसी प्रकार इनके माधुर्य गुणो की चर्चा यात्रा मे आकर्षण का कारण बनी हुई है। लम्बी यात्रा मे इनका अवलम्ब भी लम्बा होता प्रतीत हो रहा है। अपने साथ इन्होने कुछ नई बछेडिया भी यही तैयार कर ली है और भली प्रकार से मत प्रतिपादन हो रहा है। इनका चतुर्दिक आधिपत्य है और हर समय इनका क्रिया-कलाप गतिशील रहता है। मिस आलीवर और उनकी दो नवीन शिष्याओं ने उस 'नैवी' की टुकडी पर पडाव डाल रक्खा है, जिसका कैप्टेन एक पंजाबी हैं और जिसकी डाट-फटकार का कर्कश स्वर दूर तक केबिनो और लाउंज पर गू ज जाता है। मिस लिली के साथ तीन अमेरिकन और दो भारतीय विद्यार्थियो ने गु ंजन का राग मिला रक्खा है। मिसेज क्राम्पटन का

केन्द्र-स्थल अधेड़ अगरेजो तक सीमित है । हॉं, मिस मोली सुनते हैं किसी रईसजादे के साथ बम्बई से ही चली हैं। कहो कैसा वातावरण है। यहा सचमुच तुम्हारी याद अत्यधिक आ रही है। यदि तुम होते तो इन सबको अपनी पैनी धार से कितनी जल्दी पार उतारते, मै जानता हूँ।

और जयन्त को भी एक पत्र दिया है । पता नही उसकी कहानी कहा, किस स्थिति मे है . ..

अरे हा, और सुनो। हमारे जलयान मे एक अच्छा समुदाय मक्का जाने वाले मिया भाइयो का भी है। लम्बी सफेद दाढियो के नीचे लम्बे सफेद कुर्त्ते, साथ मे लम्बी सफेद बुड्ढिया इनकी विशेषता है । ये सब भी धार्मिकता के अतिरेक मे आकर्षण का विषय बने हुए है। मिस लिली और मिस आलीवार को देख देखकर कभी-कभी इनमे के दो-चार अधिक बुजुर्ग जब अल्ला-ताला को याद करते या अल्ला-तोबा करते-करते अपनी दाढी पर हाथ फेरते अपने चेम्बरो मे घुसते दिखाई देते है तो सामने के कई केबिनो के लोग मुस्करा देते है। तब देर तक ये लोग अपने चेम्बर के बाहर नही निकलते। ये सब एक ही स्थान पर रह कर यात्रा कर रहे हैं। किन्तु जैसा सुना है दो-तीन दिन मे ही ये जहाज छोड देगे।

और सब ठीक ही है। पत्र एक जस्टिस साहब को भी भेजा है। घर पर सब से यथायोग्य कहना। बाबू जी को भी पत्र भेजा है।...

कीर्ति को पत्र लिख कर प्रमोद स्वयं आनन्दित हो रहा था। कीर्ति की मित्रता से उसे कैसा प्यार था।

उधर मि० बौना और हज वाले यात्री हँसी का अच्छा साधन बने हुए थे।

दूसरी ओर मिस-कम्पनी मनचलो का मनोरंजन, आकर्षण और समय व्यतीत करने का अच्छा माध्यम बनी हुई थी

कुछ लोग दिन भर का समय केवल इस प्रतीक्षा मे काट देते थे कि शाम को टेबिल-टेनिस मे अच्छा जमघट रहेगा।

सक्षिप्त समाचारो को लेकर निकलने वाले प्रतिदिन के बुलेटिन

से प्रमोद ऊबता था। उसे उसमे संतोष देने की सामग्री कुछ भी नही मिलती थी। हाँ, कभी-कभी एक-दो आकर्षक समाचार अवश्य दिख जाते। अग्रलेख, केवल जिनके लिए प्रमोद समाचार-पत्रो मे दैनिक व्यय करता था उसका उस बुलेटिन मे क्या काम ?

इसी प्रकार समय व्यतीत करते यात्रियो ने अरब सागर पार करके अदन मे अमन पाया और तब 'जलविहार' सीटियाँ बजाता, धक्-धक, धू-धू करता लाल सागर मे पहुँचा।

जिस दिन जहाज़ अदन से चला था उसी दिन उस पर एक घटना हो गई। एक स्वस्थ व सुन्दर अग्रेज बालक, जिसकी अवस्था लगभग ६-७ वर्ष की होगी किलकारिया भरता प्रसन्न मन सीढियो से डेक पर चढ रहा था। दुर्भाग्यवश सीढी से उसका पैर फिसल गया और वह नीचे आ गिरा। उसके पैर की हड्डी टूट गई तथा सर पर भी अधिक चोट लगी। तुरन्त सर्जन ने उसका उपचार किया। वैसे उसकी अवस्था सन्तोषजनक थी किन्तु घटना से सभी के मन बड़े खिन्न हो गए।

बोतलो और गिलासो की खन-खन से जलपोत का वातावरण रगीन बना रहता था। केबिनो, लाउज, डेक, रिक्रिएशन-हाल, और बार मे तो उसका प्रभाव खुल कर दिखाई देता था। विदेशी यात्री तो स्वभावतः बियर, शैम्पैन, जिन, ब्रान्डी, ह्निस्की आदि के व्यवहारी थे। अग्रेज यात्री व बच्चे तक अल्प मात्रा मे उस पौष्टिक तरलता का व्यवहार करते। यात्रा मे तो वह उनके लिए अत्यावश्यक पेय था। किन्तु वह उनकी जानी-मानी वस्तु थी अतः उसका व्यवहार वह तनिक समझदारी से ही करते थे।

इसके अतिरिक्त भारतीयो ने भी अपने मन और स्वभाव से 'वाइन' का खुलकर मेल कर लिया था और, और...तब उनका वह मस्ताना पैर ढक ढ़प स्वरूप ! देखते ही बनता था।

नैवी के सभी आफीसर शरबती पानी से हवा गर्म रखते थे।

प्रमोद बिना लाभ-हानि से प्रयोजन रक्खे, मान्यताओ मे बधा, अपने अतीत और निकट भविष्य की मधुरिमा मे डूबा यो ही आनन्दित रहता था। उसे इन ऊपरी प्रयोगो की कदापि आवश्यकता न थी।

हॉ, उस दिन वह ग्लानि से भर गया, जब जलपोत के एक कर्मचारी ने कही से चुरा कर पूरी एक बोतल ब्रान्डी चढा ली। अब उसकी दशा गम्भीर हो गई। वह लगा अन्ट-शन्ट बकने और उछल-कूद करने। तब कैप्टेन ने उसे बधवाया फिर मोटे रस्से से।

हुआ यह कि रात्रि मे ८ बजे के लगभग जहाज के तल भाग मे एक कोने मे बड़ा हल्ला सुनाई दिया। अनेक यात्री सशकित होकर उस ओर बढ़े। प्रमोद भी अपने गुजराती दल के साथ उधर गया। उसने देखा कि एक भीमकाय कालेवर्ण का नग-धडग पट्ठा रस्से मे बाधा जा रहा है। उसके साथ के कर्मचारी उसे बाध रहे है और वे मस्तराम अत्यधिक आवेश मे ठहाका मार-मार कर हॅस रहे है। उन्हे अपने उस स्वरूप से कोई खेद ही नही। बंधक भी उसके साथ हॅस रहे थे। एक विचित्र-सा वातावरण बना हुआ था।

वही एक व्यक्ति ने बताया कि 'स्क्वैश' के धोखे मे श्रीमान् पूरी बोतल चढा गए और तमाशा यह था कि आपको नित्य स्क्वैश चुरा कर एक बोतल चढा जाने की आदत थी किन्तु आज हलाहल की बोतल हाथ लग गई।

और मधुशाला मे साकी और शराब के मदमस्त जाम की खनक मे कही कोने-कोने मे दबे-ढके ऐसी घटना का हो जाना भी उतना ही स्वाभाविक है, जितना पी कर झूमना।

●

: ३७ :

लाल सागर मे यात्रा करने के थोडे काल पश्चात् 'जेद्दा' बन्दरगाह पर 'जलविहार' ने लंगर डाला ।

यहा से मक्का शरीफ जाने वाले सभी यात्री और वे लम्बी दाढी और लम्बे कुर्ते वाले सभी मिया भाई अपने साथ लम्बी-लम्बी बुड्ढियों को लिए हुए उतर गए, जिन्हे इंग्लैड के लिली के फूल से बड़ी परेशानी थी ।

प्रमोद जलपोत के तीसरे तल पर था । उसके ऊपर के तल पर डेक था । उसके कमरे के चार कमरो बाद एक लाउ ज था जिस पर यात्री और वह स्वय भी बहुधा जाकर बैठ जाता था । वहाँ पडी छोटी-छोटी मेजो और कुर्सियो व सोफो पर से सागर की उत्तु ग लहरे इठलाती दिखा करती थी । किनारो की ओर बने नहाने के हौजो मे भी दिनभर चहल-पहल बनी रहती थी । कोई न कोई वहाँ स्नानार्थ व्यस्त ही बना रहता था ।

नीचे के तल के यात्रियो के सम्बन्ध मे प्रमोद कुछ अधिक न जान सका था । हाँ, उसे यह ज्ञात हुआ था कि नीचे के किसी केबिन मे एक मारवाडी परिवार यात्रा कर रहा है । यह भी वह इसलिए जान पाया था कि उन होनहार इंजीनियर गुजराती बन्धुओ मे एक सज्जन जिनका नाम शान्तीलाल जीवा भाई था, उनका परिचय किसी प्रकार मारवाडी महोदय की षोडषी सुपुत्री प्रभा से हो गया था ।

प्रमोद का जब प्रथम परिचय जीवाभाई से हुआ था तब वे बड़े रसीले और बड़े भावुक ही दिखे थे। प्रारम्भ मे तो वे ताश मे ही पूर्णतः केन्द्रित होकर समय व्यतीत करते रहे किन्तु अदन से जहाज के छूटने के पश्चात् से ही उनकी गतिविधियो में आवश्यकता से अधिक अन्तर आ गया। प्रमोद के चेम्बर मे वे दिन मे एक बार आते अवश्य थे किन्तु अब न उनकी इच्छा ताश खेलने की ही होती न उनका मन वादविवाद मे ही लगता। उनके साथ के दलसुख भाई और दूसरे मजी भाई भी अब उनकी खिल्ली ही उडाया करते थे। सम्भवतः उन दोनो मित्रो को भी उनके क्रिया-कलापो से असंतोष था। प्रथम तो उनकी आपस की वार्तालाप गुजराती मे होती थी जिसे प्रमोद अनुमान से समझ तो ठीक ही लेता था तदनन्तर एक दिन दलसुख भाई ने प्रमोद को बताया कि मारवाडी सेठ पर अच्छी तरह रग चढाया जा चुका है।

और एक समय एकान्त मे प्रमोद ने जीवाभाई को छेड ही तो दिया, "कहिए जीवा भाई, आजकल सेठ के यहाँ कैसी कट रही है। कुछ किनारा मिला ?"

पहले तो जीवाभाई सकपकाए किन्तु मुस्कराकर वे भी खुल गए। ऐसी बात अपने आप ही मन मे नही रुकती। ऐसा लगता है जैसे कोई अपच हो रहा हो। तो जीवाभाई कहने लगे, "क्या बताऊँ, सेठ तो है निरा...और उसकी लडकी है जो हर समय आसमान छूने को तैयार रहती है। जब उनकी पुत्री से बचता हूँ तो सेठजी से घिर जाता हूँ। पैसा तो उनकी तिजोरी मे जरूर इस समुद्र की तरह भरा होगा किन्तु अकल कही रख कर इस पृथ्वी पर पधारे थे। नागपुर मे उनकी कपड़े की एक मिल है, अकेले मालिक है। अपने काम मे अवश्य तेज है किन्तु पढ़े-लिखे जीरो है। सेठ लन्दन जा रहे है कुछ बिजनेस के चक्कर में। पैसे की बढ़ती मे मिल में आई चार-छः मोटरो मे नित्य घूमने वाली सेठानी को नई हवा लगनी ठहरी। वह भी जबरदस्ती सेठ के मना करने पर जा रही है इग्लैण्ड घूमने।" और जीवाभाई ठहाका मारकर हँसता

रहा। प्रमोद को भी हँसी आ गई।

"हाँ, तो सेठ अंगरेजी जानते नहीं। यहाँ चीफ-स्टुअर्ट क्या, और फूड-स्टुवर्ट क्या, जब ये दनादन अगरेजी झाड़ते है तो सेठ, सेठानी को देखकर शर्माता है और सेठानी सेठ को देखकर लजा जाती है। प्रमोद भाई, कितना मजा आता है उनकी मुद्रा देखते समय, जब उनके सामने कोई अगरेजी का एक शब्द बोल भर देता है। अब वह है परेशान। जैसे उसका दम घुट रहा है। वह ऊब रहा है। अभी सफर मे ही अगरेजी का यह हाल है, तब वह सोचता है ठेठ लन्दन पहुँचने पर तो वह पानी को भी तरस जाएगा। मजा यह है कि उनकी मिस, हा, हा वहा मैट्रिक मे पढती है और सेठानी समझती है उसके साथ वह भी आला अगरेजी पढ गई है। और इग्लैण्ड मे होगा क्या? खाली बाजार मे ही तो घूमना है, जैसे बम्बई मे घूमे वैसे ही लन्दन मे" वह कहती है। और मि० प्रमोद, जब स्टुवर्ट से वह प्रभा देवी अगरेजी मे कहती है, "ऐ, स्टुवर्ड ब्रिंग माईसैल्फ स्क्वैश एण्ड टमाटीर सोस विद वीस्कूट।" तब मुझसे बिना हँसे नहीं रहा जाता। तब सेठ लड़की का मुँह ताकता है और सेठानी उस स्टैन्ड इरेक्ट स्टुवर्ट को देखती है।"

और प्रमोद तथा जीवाभाई ठहाका मार-मार कर देर तक हँसते रहे।

"मि० प्रमोद, मुझे बड़ा हैपी लगता है सेठ को देख कर। सेठ एक, पचास के लगभग हिन्दी की 'मेगजीन' लाया है। वही पढता रहता है दिनभर। साथ मे एक पण्डित है खाना बनाने को और एक काला-सा नौकर। दोनो ही बन्दर बने केबिन मे पडे रहते है और इंग्लैण्ड जाते हुए भी इगलिश को हजार गाली देते है दिनभर।'

"यह सब ऊपरी रंग दे रहे हो जीवाभाई, ठीक बात अभी भी नही बता रहे हो।" प्रमोद ने मुस्कराते हुए कहा।

"हाँ, हाँ ठीक ही है। प्रभा को। ए नाइस चैप।" और जीवाभाई ने एक चटकार ले ली।

प्रमोद कुछ गम्भीर और मौन हो गया।

तब जीवाभाई स्वतः बोलते चले गए। "सेठ को मेरे जैसा एक अगरेजी जानने वाला साथी चाहिए। मै उसके और उसकी लडकी दोनो के मन भा गया हूँ। उसका एक मैनेजर है, मिल का। वह इनको बुद्धू बनाकर प्लेन से, पहले ही इंग्लैण्ड पहुँच गया है। अब उसके मिलने तक इनको मेरी आवश्यकता है और उसके मिलने पर इनकी कठिनाई दूर हो जाएगी। और उसके मिलने तक मै अपनी कठिनाई भी दूर किए लेता हूँ। समझे मि० फ्रेण्ड।

प्रमोद शान्त होकर सुन रहा था। वैसे अब वार्तालाप उसे कुछ अरुचिकर प्रतीत हो रहा था।

"आपने देखा उस मेरी डार्लिंग को?"

"कल डेक पर उसे लिए घूम रहे थे।" मंजीभाई ने सामने से आते हुए बात पूरी कर दी।

और जीवाभाई गर्वोन्मत्त जोर से हँस दिए।

प्रमोद सोच रहा था, किसी की कमजोरी से दूसरा किस भयंकरता से लाभ उठाने की ताक मे है।

जीवाभाई कुछ सावले रंग का छरहरे शरीर का उच्छृखल-सा युवक था। किस प्रकार वह शिक्षा की उस ऊँचाई तक पहुँच कर विदेश जा रहा था, उसे देखकर आश्चर्य-सा होता था। व्यवहार, वेशभूषा, वार्तालाप, गतिविधि किसी भी प्रकार से उसके व्यक्तित्व मे सभ्यता या शिक्षा की अहंमन्यता नही मिलती थी।

थोडी देर जीवाभाई और उनके साथी प्रमोद के केबिन मे बैठे आपस मे वार्तालाप करते रहे। प्रमोद अपनी बर्थ पर बैठा एक अगरेजी की पत्रिका मे उलझा रहा। तत्पश्चात् उठकर सामने लगे वाश-हैन्ड-बेसिन मे उसने मुँह धोया और कुल्ला किया मानो जीवाभाई के उस अशिष्ट वार्तालाप को उसने अन्दर से निकाल दिया और अपनी बर्थ पर आकर लेट रहा। धीरे से उसने पैताने रक्खे कम्बल को ओढते हुए

कहा, "अच्छा, मित्रो अब मै सोता हूँ।"

"हम भी चले।" कह कर दलसुख भाई और उनके दोनो साथी उठकर चल दिए।

तभी लाउडस्पीकर से प्रमोद ने सुना कि स्वेज नहर आने को है।

प्रमोद अपनी बर्थ पर बैठ गया। तत्पश्चात् उठा और केबिन मे दस-पाच पग टहल लिया। तब वह लायब्रेरी की ओर चल दिया।

लायब्रेरी मे कुछ विशेष पुस्तके तो थी नही। किन्तु वहा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कुछ पत्रिकाएँ अवश्य देखने को मिल जाती थी। कुछ कलात्मक चित्रो के एलबम' इत्यादि भी थे।

जाते समय सामने से मिस लिली एक केबिन से निकल कर दूसरी ओर जाती हुई दिख गई। उस समय सामने की गैलरी इधर से उधर तक खाली थी। मिस लिली ने सामने प्रमोद को देखकर इठलाता दृष्टिनिक्षेप अवश्य किया किन्तु प्रत्युत्तर मे नीरस हाव देखकर तिलमिलाई सी वह आगे बढ गई। चमकते आसमानी गाउन के अन्दर अपना चमकता श्वेत सौन्दर्य-भार लिए सैन्डल खट्-खट् करती वे सामने निकल गईं। उनका वर्ण अपने देश के अनुसार आवश्यकता से अधिक श्वेत ही हो, ऐसी बात नही थी। उनका रूप भी सचमुच अनुपम था। शरीर की गठन और रूप-लावण्य के साथ-साथ उनकी सलोनी आँखे उनकी अपनी वस्तु थी। अब वे मीनाक्षी, मृगनयनी, कमलनयनी, या क्या थी यह तो प्रमोद की विचार-शक्ति से कुछ दूर की बात थी। हाँ, उनको देखकर कोई भावना मन मे उठी तो केवल इतनी ही कि उनकी आँखे बडी सुहावनी और उनका सौन्दर्य अद्भुत है। प्रमोद मिस लिली की चर्चा अनेक रूपो और अनेक अवसरो पर सुन चुका था। आज उसने भली प्रकार से उन्हे देख पाया था। और वह उस क्षण सोच गया कि इतना सौन्दर्य पाकर भी नारी उसे सजोकर क्यो नही रख पाती ?

थोडी देर लायब्रेरी मे उलट-पलट करने के पश्चात् प्रमोद दलसुख भाई के केबिन मे चला गया। दोनो, दलसुख और मजी भाई काफी पी रहे थे। प्रमोद को देखते ही उन्होने सामने की बैल दबा दी और स्टुवर्ट के आने पर एक कप काफी और लाने का आदेश दिया।

"कहिये शान्ती भाई, कहो..." और कहकर प्रमोद मुस्करा दिया।

"शाली, त्याज, शेठना माल ऊपर आखो दिवस हाथ साफ़ करे छे।" दलसुख भाई ने उत्तर दिया। शीघ्रता मे उसकी कोहनी उनके ही काफी के प्याले मे छू गई। प्याला खन्न करके फर्श पर आ गिरा और वार्तालाप रुक कर, कार्यक्रम प्याले के टूटे टुकडो को समेटने मे केन्द्रित हो गया।

स्टुवर्ट अब तक प्रमोद के लिये काफी ले आया। सामने मेज पर टूटा प्याला देखकर उसने उसे चुपचाप उठा लिया और उस स्थान को भली प्रकार साफ कर दिया।

'जलविहार' ने इसी समय अपनी सीटियाँ बजाना प्रारम्भ कर दिया। सभी ने अनुमान लगाया कि पोर्ट आ रहा है।

पोर्ट स्वेज पर जलविहार ने विश्राम किया।

दो दिवस पूर्व हृदय की गति रुक जाने के कारण एक भारतीय यात्री की जहाज पर मृत्यु हो गई थी। वही पोर्ट स्वेज पर भारत ले जाने के लिये वह शव उतारा गया।

शव को उतारते समय तथा उसे वहाँ से पोर्ट मे बने एक स्थान-विशेष तक ले जाते समय अधिकाश यात्रियो ने शव-यात्रा मे भाग लिया और अपनी-अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की।

पोर्ट स्वेज पार करके 'जलविहार' मेडीटरेनियन सागर मे पैठा। चीत्कार करता हुआ 'जलविहार' अपनी विशेष गति से मेडीटरेनियन

सागर के अथाह जल को दाबता आगे बढने लगा।

प्रमोद अपने केबिन मे लेटा अपनी रुग्णावस्था के दिनो और पहाड़ी जीवन के क्षणो मे निमग्न हो गया। इस समय उसे एकाएक जयन्त का ध्यान हो आया। पहाड से आने के अनन्तर उसके अथवा उसकी नव-प्रेयसी के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही हुआ था। उसने निश्चय किया कि लन्दन पहुँच कर वह अवश्य जयन्त के प्रणय के निर्णयात्मक स्वरूप के सम्बन्ध मे जानेगा।

तभी लन्दन पहुँचने और प्रतिमा से भेट होने का एक मोहक चित्र उसके मन मे नाच गया। एक सम्भावित स्वरूप, एक निश्चित सुखद अनुभूति के विलोडन मे लिपटा वह निद्रानिमग्न हो गया।

अधिक से अधिक वह दस मिनट ही सो पाया होगा कि एक भयकर कोलाहल से वह जाग गया। उठकर वह अपने केबिन के द्वार पर आया। सामने उसने देखा, सारे यात्री त्रस्त और भयभीत हैं। चारो ओर एक हल्ला-सा मचा हुआ है। प्रमोद कारण जानने को उत्कण्ठित हो गया।

तत्क्षण दलसुख भाई उसके केबिन की ओर बढ़े चले आते दीख पडे। वे भी बेहद हडबडाए हुए थे। आते ही उन्होने कहा, "देखा मि० प्रमोद, यह सी जर्नी भी बडी खतरनाक है। मै तो इतना डर गया कि ..।" और वे हाफने-से लगे।

बात को रोकते हुए उत्सुकता मे प्रमोद ने प्रश्न किया, "मै बडे आश्चर्य मे हूँ। बडा शोर हो रहा था। हुआ क्या?"

"अरे, वा, आप पछते है हुआ क्या? आप थे कहाँ? दलसुख भाई ने अपना दाहिना हाथ हिला-हिलाकर प्रश्नोत्तरी प्रारम्भ कर दी।

"सचमुच, मुझे कुछ ज्ञात नही। मै एक दस मिनट सो अवश्य गया था। इतने ही बीच मे ऐसा क्या गजब हो गया? बताइये तो।" प्रमोद ने आश्चर्य मे कहा।

"लीजिये बताऊँ क्या? आप भी खूब सोते हैं। यहाँ जहाज डूबने-उलटने की नौबत आ गई। ओह हारिबुल ट्रैजडी एवर्टेड।"

अब प्रमोद ने कुछ घबराते हुए पूछा, "हाऊ, हाऊ, कैसे ?"

"अरे, कोई भारी जानवर शिप के ठीक नीचे आ गया। सारा जैहाज एक तरफ झुक गया। कितना भारी जानवर होगा वह ? और इतना भारी जहाज झुका दिया। अरे साहब, एक मिनट साँस नही आई।" दलसुख भाई इस समय भी अत्यधिक घबरा रहे थे। और कुछ क्षण पूर्व की अघटित घटना का विवरण दे रहे थे।

"ओ, रियली स्केण्ड, वी आल।" मजी भाई ने केबिन मे प्रवेश करते हुए कहा।

तभी प्रमोद बीती घटना का एक अनहोना-सा चित्र अपने मन मे उतारने लगा। काश, कोई गडबड हो गई होती। वह थर्रा उठा। दलसुख भाई के कथन की गम्भीरता का अब उसे आभास हो रहा था। और मन का चोर, एक लक्ष्य, एक सकेत, एक महान् आशा, एक निराशा, तब क्या प्रतिमा से बिना साक्षात्कार हुए ही...वह, और वह काँप गया। मन मे डर समाते देर कितनी लगती है। घटनापूर्ण होते, समय कितना लगता है।

"यह मेडेटरेनियन मे घुसते ही गडबडी शुरू। मौसम भी बडा अटपटा-सा हो रहा है।" दलसुल भाई कहकर अपने केबिन की ओर चले गए।

●

: ३८ :

अन्तर्मन में केन्द्रित एक आशा की दीप्ति से प्रमोद में अब वह पीड़ा वह धधक वह चीत्कार, वह औत्सर्गिक कटिबद्धता, वह अस्तित्व की अनास्था, वह सशक्त अशान्ति, विलीन हो गई थी। मिलन के भावी अतिरेक से जलयात्रा का समय कभी सुखद लगता और कभी नीरस।

जलपोत अपनी गति पर था। प्रमोद का मन उसके साथ ही अधिकाधिक बढ़ावा पा रहा था। ज्यों-ज्यों जलयान लक्ष्य के नैकट्य तक जा पहुँचने को उद्विग्न होता हुआ अपनी गति चञ्चल करता, त्यों-त्यों प्रमोद का मन भी सवेग हिल उठता। किन्तु बढ़ने के लिए पग की माप थी, माप में एक दूरी थी, दूरी में एक लक्ष्य निहित था और प्रमोद उसी पग माप के आधार पर जो दूरी पार कर आया है, उससे अब सामीप्य की हिलोर आ रही है, अब लक्ष्य वह समय चाह रहा है जब एक क्षण को गति, गति न रहे, गति रुके, अवश्य रुके तत्क्षण गति तीव्रतर हो किन्तु गति रुके।

यों ही मन में बात आई कि वह वायु का सहारा लेकर क्यों न आया यह जल वैसा गतिमान नहीं जैसी वायु। और प्रमोद को वायु की गति चाहिए, जल की नहीं, कदापि नहीं।

जलपोत का सहारा जल और वायु दोनों ही था। उसी के सहारे उसमें गति है। और उसी के सहारे उसने उस छोर से इस छोर तक

का मार्ग अथक यात्रा के पश्चात् पूरा कर पाया है ।

'जलविहार' मेडेटरेनियन की जलवायु मे कुछ शीत का अनुभव करता बढ चला । वह विचलित न था । उसे अभी अधिक शीत पाने की सम्भावना थी ।

तभी विश्वयुद्धो का केन्द्रस्थल, जलसेना व जलयुद्धो का क्रीडास्थल जिब्राल्टर का इतिहास प्रसिद्ध 'पथविराम' सम्मुख था । जिब्राल्टर पहुँच कर अनायास बडे-बडे इतिहास, बडे-बडे व्यक्तित्व, बडे-बडे नाम सामने घूम गए । वह गढ-गौरव जिब्राल्टर ऐसी नोक पर स्थित है कि उस अपना महत्व पाना ही है । इसमे किसी अन्य को कोई श्रेय नही ।

जिब्राल्टर जिस प्रकार विश्वयुद्धो की दिशाएँ मोड चुका है, उसी प्रकार प्रतिदिन वह जलपोतो की दिशाएँ मोडा करता है ।

जिब्राल्टर से 'जलविहार' की दिशाएँ परिवर्तित हो गईं । जिब्राल्टर से हट कर 'जलविहार' इग्लैण्ड की सम्मुख दिशा की ओर मुड चला ।

इंग्लैण्ड अब भी पर्याप्त दूरी पर था किन्तु जिब्राल्टर छोड देने के पश्चात् जैसे दूरी सिमटने-सी लगी ।

जिब्राल्टर छोडे कठिनाई से तीन घटे बीते होगे की 'जलविहार' पर धाय-धाय का कर्कश स्वर सारे वातावरण मे गूँज गया । चारो ओर एक उथल-पुथल सी मच गई ।

किसी ने अनुमान लगाया डेक पर से किसी ने ऊँचे जानवर पर 'फायर' किया होगा । यह भी सम्भव है, सामने हिलते-डुलते पक्षी के फरफराते पर किसी को अप्रिय प्रतीत हुए हो । किन्तु लोग सन्न रह गए । सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि मिस लिली इज इन प्रिकेरियस कन्डीशन.... और तभी दलसुख भाई फरफर करते प्रमोद के केबिन मे आ धमके । प्रमोद उनको देख कर मुस्करा देता था । उसने सोचा, इन्ही को इस प्रकार के नवीन समाचार सर्वप्रथम प्राप्त होते है और उलझन भी इन्ही को सर्वाधिक होती है । और वही प्रकट भी हुआ ।

दलसुख भाई ने माथे पर बल देते हुए तीव्र श्वास की गति को

तनिक प्रयत्न करके रोकते हुए व्यक्त किया, "मिस लिली को किन्हीं मि० फ्रैंकलिन ने धमक दिया है। तीन फायर किए हैं, डि लाडज पर। हालत सीरियस है।"

"और उनका क्या हुआ?" प्रमोद ने दलसुख भाई से ही पूर्ण सूचना प्राप्त कर लेना स्वाभाविक समझा।

"अन्डर कैप्टेन्स कस्टडी......यस।" कह कर वे चल दिए।

"ओफ...उस कोमलांग पर बुलेट्स ने जब प्रहार किया होगा... प्रमोद सोच कर अनजान सिहर उठा।

और सारे केबिनों में पृथक्-पृथक् प्रकार से भिन्न-भिन्न भाषाओं, संकेतों, शब्दों और सच-झूठ कहानियों का निर्माण कर-करके, गम्भीर विचार-विनिमय अथवा तर्क-वितर्क होने लगा।

प्रमोद भी अपने स्वभाव को रोक कर अनायास अपने निकटवर्ती 'लाउंज' पर आ पहुँचा।

वहीं जीवाभाई, दलसुख भाई और मजी भाई ने प्रमोद के सहयोग से अनेक सहानुभूति सूचक मौखिक प्रस्ताव संशोधित एवं परिवर्धित रूप में अनुमोदित कर लिए। समवेदना की, उस क्षण तक कोई बात नहीं थी क्योंकि अभी मिस लिली की कोमल नीली रगों में रक्त का संचार एवं नलिकाओं में श्वास की गति विद्यमान थी।

और उसी क्षण जलपोत का भयानक सायरन, महाभयंकर कर्कश ध्वनि में बज उठा। सभी ने समझा कि यह कोई संकेत, कोई एलार्म अथवा किसी विशेष स्थिति का द्योतक कोई विचित्र चिह्न है।

और पलक मारते-मारते लाउडस्पीकर से सारे जलपोत में यह समाचार गूँज गया कि वायरलेस से ज्ञात हुआ है कि उत्तर दिशा से एक भयंकर तूफान द्रुतगति से आ रहा है।

और संभलते संभलते वायु का एक भयानक झोंका एक ओर से आकर दूसरी ओर तक छा गया।

'जलविहार' अधिक से अधिक दस मील चल पाया होगा कि

लाउडस्पीकर ने पुनः सूचना दी कि बवंडर जलपोत की सम्मुख दिशा की ओर से बढता आ रहा है।

सामने से एक अन्धकार बढ़ता चला आ रहा था। वायु का वेग तीव्रतर हो चला।

जलपोत की खिडकिया फट-फट करके स्वतः खुलने और बन्द होने लगी।

और देखते-देखते 'जलविहार' एक भयंकर तूफान मे फस गया।

कोहराम, भीषण अन्धकार, भयानक हवा के थपेड़े, तडतडाहट और गडगडाहट के एक साथ आक्रमण से 'जलविहार' थर्रा उठा। उसके कर्मचारी कापते हुए इधर-उधर दौडने-भागने लगे। नेवी के सदस्य सतर्क होकर इधर-उधर व्यवस्था बनाने के लिए सामने आ गए। अधिकारी थर्रा उठे। यात्री काप उठे। मशीन थर्रा उठी! प्रमोद तिलमिला उठा। यह क्या होने को है?

ऐसा लगा मानो 'जलविहार' अपना कर्तव्य व दिशाएँ भूल रहा है।

भावी आशंकाओ से मन व मस्तिष्क विकृत होने लगे। लोग सारी रंगरेलिया भूल कर भाग्य व ईश्वराधना मे रत हो गए।

इस क्षण जहाज के कर्मचारी अत्यधिक गम्भीरता व परिश्रम से कार्य मे सलग्न थे।

चालक से अधिक महत्व का कार्य उस समय वायरलेस आपरेटर का हो गया था। वह इतनी कठिनाई व असहायावस्था मे था कि काप उठा। परिस्थिति की गम्भीरता मे मन का उद्वेग सभालना कठिन हो रहा था।

तूफान अपनी तीव्र गति और भयानक प्रतिफल की घोषणा करते हुए 'जलपोत' को जकडता चला जा रहा था।

वायरलेस आपरेटर साहस बटोरता हुआ एकनिष्ठ होकर कार्यरत था। वह दोबारा कही से भी सम्बन्ध स्थापित करके अपनी भयावह

स्थिति की सूचना देने के लिए सचेष्ट था।

अन्धकार तीव्रतर होता जाता था। जहाज घुमेडे लेने लगा। उसका अपना अस्तित्व चीत्कार कर उठने को था। सी-इ-सी करके हाहाकारी अन्धड घुमाव ले-लेकर जहाज को इतना हिलाने-डुलाने लगा कि किसी भी क्षण जहाज की समाप्ति की आशका प्रकट होने लगी।

यात्री भयभीत होकर असमय मे ही अनचाही चिरनिद्रा के भयानक प्रभाव का अनुभव कर-करके कभी अपने साथ के नन्हे-मुन्ने बालको की सौम्य मुद्रा मे कुछ झाक लेते कभी अपने साथ की सौन्दर्य-मयी मूर्ति नारी-रूप सहयोगिनी के भयाक्रान्त विश्वास को समझ कर तिलमिला उठते। प्रमोद अपनी असहायावस्था मे प्रतिक्षण अपनी आराध्य प्रतिमा का मनन कर शान्तभाव से अपनी बर्थ पर टिका रहा।

मशीन काप रही थी। उसका कार्य मन्द क्या समाप्त-प्राय हो रहा था।

आपरेटर चीख उठा। कही से भी कोई सम्बन्ध मिलना सम्भव नही। ऐसी स्थिति, ससार मे अपने अस्तित्व को सभाले रख कर एक से अनेक बार आती है। किन्तु वैसी परिस्थिति का अवलोकन जीवन मे प्रथम बार हो रहा था और कभी न हो इसका प्रतिक्षण जगन्नियन्ता से अनुरोध था। वायरलेस-आपरेटर पुकार रहा था, "आओ, दौडो, भागो, सारा ससार, ईश्वर, प्रकृति सब भागो, रक्षा करो, एक जलपोत, एक भारी जलयान अपने गर्भ मे सहस्रो नौनिहाल, निरीह, सलोने स्त्री-पुरुषो और बालको के साथ बहुमूल्य सामग्री व खाद्य वस्तुओ को छिपाए महासागर मे चिरनिद्रा की कही तैयारी कर रहा है। स्थान का भान नही हो रहा है। हा, इग्लिश चैनेल के समीप या तनिक दूर ही वह अपनी अन्तिम सासे ले रहा है।"

कुछ लोग डेक पर आ-आकर आखे फाड-फाड कर देखते। दूर-दूर तक काला-काला, डरावना अन्धकार, भयकर अन्धड, कत्थई रग, काले

-रग का रेत और ककड लिए। और अब दृष्टि नही ठहरती थी। किसी ओर भी देख सकना असम्भव था। जल और आकाश की दूरी सिमट कर समाप्त-सी हो रही थी।

कुछ लोग पृथक्-पृथक् 'लाउंजो' पर खडे हो-होकर अन्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। अधिकाश का यह दृढ विश्वास था कि अभी किसी भी क्षण सब शान्त हो जाएगा। अभी नीलाकाश दिखाई देने को है।

कुछ लोग डेक व लाउज तक जाने मे भय का अनुभव कर रहे थे। वे अपने केबिन मे ही कभी बर्थ पर बैठते, कभी पग बढा-बढ़ा कर इधर-उधर घूमते, और वे आगे का कुछ भी निश्चित कर सकने मे सर्वथा असमर्थता का अनुभव करके विलीन के शून्य पर टिक रहे थे। उन्ही मे प्रमोद भी था। उसकी स्थिति केवल आराधक की थी। वह निश्चिन्त होकर केवल अपने अतीत, अपने भविष्य और अपने आराध्य की उपासना मे लीन होता चला जा रहा था।

आपरेटर असफलता मे विजय की खोज लिए कार्यरत था। किन्तु सब व्यर्थ, सब व्यर्थ। अब तक के उसके सारे प्रयत्न विफल हो गए। वह बार-बार अपनी गर्दन डाल कर कह देता, "कही से कोई लाइन नही मिल रही है ..।"

कैप्टेन, वायरलेस आपरेटर के सकेतो को देखकर निराशा आशा के भॅवरो मे डूबता-उतराता चालक के पास दौडा और उसको यथोचित आदेश देकर पुनः वायरलेस आपरेटर के पास चला आया।

अब भी स्थिति वैसी ही बनी हुई थी।

इस क्षण भयकर अन्धड के साथ सागर का जल उछल-उछल कर 'जलविहार' पर थप्पड़ से लगा रहा था। लहरें, लहरो की ऊँचाई भयकर काली चट्टान से भी डरावनी हो रही थी। जलपोत पर चतुर्दिक एक चीत्कार, साहसिक व्यक्तियो को भी आन्दोलित कर देता था।

जलपोत के पचासो कर्मचारियो, छोटे-बडे अधिकारियो और नेवी के सदस्यो के मन मे भयानक आशका के होते हुए भी उनका बाह्यरूप

बडा तटस्थ, बडा कार्यरत और बडा गम्भीर बना हुआ था । समस्त कर्मचारी अधिकाधिक सतर्कता तत्परता, विचार व दूरदर्शिता से अपने-अपने स्थान पर स्थित. कार्य मे सलग्न थे ।

डिस्पेन्सरी मे डाक्टर अब तक तीन केबिनो मे जाकर दो बेहोश स्त्रियो और एक वृद्ध को व्यवस्थित कर चुका था ।

क्षण-क्षण मे लाउडस्पीकर द्वारा कैप्टेन स्वय बोलते और सब को आशान्वित करते हुए सन्तोष देने का प्रयत्न करते । और जलपोत के अन्य कर्मचारी सचमुच उतने उद्विग्न न थे । जैसे वे आदी हो: जैसे उनका तो जीवन ही जल-जीवन है, जैसे जल के गर्भ मे ही वे प्रतिपल पलते हैं । जैसे किसी समय उनका अन्त जल के गर्भ मे ही निहित ही है । जैसे उन्होने सोच लिया है कि किसी भी समय जल मे समा जाने के लिए प्राकृतिक अथवा अधिकारी द्वारा उन्हे आदेश तत्पर ही रहता हैं । वे उस समय भी सोच रहे थे, ठीक है, अदृश्य हाथ उठ रहे है, फैल रहे है, सम्मुख आ रहे है और अपने साथ सहस्रो निरीह प्राणियो, स्त्रियो, नन्हे-नन्हे बच्चो, असहाय यात्रियो को निर्मम पजे मे जकडकर समेट लेने को फडफडा रहे है ।

सागर जैसे क्रुद्ध हो उठा । सागर जैसे अपनी भौहे व आँखे तरेर-तरेर कर देख रहा है शत्रुरूप मे अपने समक्ष वह विशाल जलपोत । इस जलपोत ने उसे कितना कष्ट दिया है । उसके कलेजे को चीरता वह हजारो मील यो ही उसे रौदता चला आया है । क्यो इस जलपोत ने मौन, शान्त, स्थिर सागर को छेडा ? क्यो उसने उसमे हिलोरे उत्पन्न की ? क्यो अपने पचासो डॉडो से उसने उसे चीरते रहकर फेन, बुलबुले, लहरे बनाई और बिगाडी ? वह होता कौन है ? उसका अधिकार क्या है ? और उसके अन्य साथी सदैव उसे यो ही तग करते आए है । 'जलविहार' को क्या अधिकार था कि वह यो उसकी छाती पर पैर रख कर आगे बढता ?

और सागर की जलपोत-परिवार से एक प्राचीन शत्रुता जो ठहरी ।

इस समय उसकी बन आई थी । जैसे लाउडस्पीकर से नही यो ही आकाशवाणी हुई, "जलविहार सावधान, खबरदार, अब एक पग भी आगे चढाया तो, तो । तेरा अन्त अब निकट है । तैयार हो ।"

और सागर अधिकाधिक क्रोधित होता जाता था । उसका साथ उसकी चिरसगिनी वायु दे रही थी । सागर अपनी फुफकारती लहरो के साथ और साय-साय, सी-सी, सूं-सूं, सररर सर सर स ई ची, फच-फच करती धुँधली हवा एक धुंध बखेरती मीलो दूर से बढती चली आ रही हवा के साथ शत्रु पर आक्रमण कर रहा था । चारो ओर अन्धकार, भयानक काला, कत्थई, पीला बवडर । समुद्र तल से अमाप लहरे उठ-उठ कर जलपोत पर आक्रमण करती और अपने स्वामी, सागर को प्रसन्न करती थी । सागर प्रसन्नमुद्रा मे अट्टहास करके अपने ताडव को और गतिशील बना रहा था । मीलो दूर से भागती चली आती वेगवती वायु और पहाड-सी लहरे जहाज को टक्कर देकर उलट देने को बौखला रही थी । लहरे जलपोत की ऊचाई को पार करके एक ओर से दूसरी ओर निकल जाना चाहती थी । लाउजो पर तो उसके थपेडे जोरो से आ रहे थे ।

और आज लोल लहरे कहा थी ? उनकी मीठी मुस्कान कहाँ विलीन हो गई थी ? आज सागर का अमृत, असंख्य रत्न, उसकी चिरपरिचित शान्त मुद्रा, उसका मनहर संगीत किसे प्रिय लग रहा था ? आज मन्द पवन, मलयज पवन, शीतल पवन, जीवनदायिनी वायु, कवित्व की वह सरस अनुभूति आज जीवन के सनातन-सत्य, अन्त, मृत्यु के ताडव मे सन्तोष पा रही थी ।

सारी दूरबीने, आखें फाड-फाड कर देखने पर भी एक वृत्तात्मक अन्धकार के अतिरिक्त कुछ भी देख सकने मे असमर्थ थी ।

सारे यात्री, बस केवल मृत्यु के भीषण सत्यरूप का चित्राकन करते अपने मस्तिष्क को हवा से भर लेते, मन को पानी से भर लेते और कभी उठते, कभी बैठते, कभी उठ कर भागने को उद्यत होते । 'बच्चो की

चीख से प्रत्येक का साहस डोल जाता।

माताएँ अपने निरीह बालकों को छाती से चपटाए बाइबिल, कुरान, गीता, रामायण सब कुछ एक सास मे पढ़ जाना चाहती थी। सभी गहन मुद्रा मे, मस्तक पर अनगिनत सरवटे डाल-डाल कर मरण की प्रतीक्षा में कुछ बोल सकने, कुछ व्यक्त कर सकने मे असमर्थ थे। तभी लाउडस्पीकर चीखा, "मशीन फेलिग बी काशश . आल आफ यू।"

चालक सब कुछ कर-करके हार रहा था। किसी भी ओर जलयान को बढाना, पीछे हटाना, घुमाना असम्भव था। असमर्थता की वह नंगी तस्वीर। चालक सोच रहा था, किसी भी क्षण विना किसी अन्य कठिनाई के आए, जहाज इस प्रकार स्वतः ही कुछ क्षणों मे चक्कर खा-खा कर वहा बैठ जाएगा।

कैप्टेन फर्गुसन के जीवन मे कर्तव्य, विवेक और सहनशीलता के महान् क्षण अन्तिम रूप से सामने आ चुके थे। चालक, तब वायरलेस आपरेटर, पुनः चालक, इसी चिन्ता मे उनके वे डरावने क्षण व्यतीत हो रहे थे। वे निरन्तर उसको आदेश दे देकर निकट आ जाते और तब उसकी असहाय मुद्रा मे स्थिरचित्त हो कर कभी स्वय भी चोंगे को उठा लेते। स्वय भी जब ध्वनियो मे शून्यता पाते तो चोंगे को टेबिल पर पटक देते और कहते, "संसार के किसी भी स्टेशन, किसी भी स्थान, किसी भी व्यक्ति को मिलाकर सिगनल देना ही है कि यो मृत्यु के खिलवाड मे उस 'जलविहार' का अस्तित्व विभीषिका मे परिवर्तित होने को है। सचमुच क्या यह प्रकृति का भी नियम है कि समर्थ के खिलवाड मे निरीह का हनन होगा ही? और, और इस शिप के मृत्यु के छोर पर पहुँचे प्राणियो के अतिरिक्त संसार का कोई या सभी, कम से कम, यह तो जान ले कि किस अवस्था मे प्रकृति-नटी के हाथो भयंकर अट्टहास, भयंकर ताण्डव, वीभत्स गुजन के मध्य एक अशक्त जलपोत और उसमे सिमटे बैठे सहस्रो नर-नारी उसके अलौकिक क्रिया-कलाप मे यो ही विलीन होने को हैं।"

यन्त्र को पुनः कानो पर लगा कर अपने ओठो से कुछ स्फुट शब्द बोलते हुए उन्होने आपरेटर को संकेत से मौन हो जाने को कहा। कैप्टेन को आशा की एक क्षीण रेखा दिखी। सामने खडे वायरलेस आपरेटर, सेना के कुछ अधिकारियो और विशिष्ट यात्रियो के मन एक पल को उछल पडे।

"यस, यस, आपरेटर लाउडर, मोर क्लियर प्लीज, लाउडर, हियरिंग यस, यस, जलविहार, यस, जलविहार अन्डर हैवी गेल्स, थन्डर, सिंकिंग, हेल्प ... ।"

"यस, यस, जलविहार, वर्स्ट गेल्स, स्टार्म थ्रू आउट इंग्लिश एन्ड एराउन्ड कोस्ट, ट्राइंग, ट्राइंग, बी ब्रेव, हैल्प गाड, डोवर... ट्रान्समिटिंग, यस।"

और प्रसन्न मुद्रा मे कैप्टेन ने गर्वोन्नत हो कर चोगा आपरेटर को दे दिया। सभी प्रसन्न हो उठे। कैप्टेन फर्गुसन को उस क्षण देवदूत मान कर सभी उसके प्रति मौन सराहना करने लगे।

भाग्य, भाग्य, ईश्वर, भाग्य, प्रकृति, सागर, तूफानी हवा, धुन्ध बवंडर, अन्धकार, चीत्कार, सब ठीक, सब समाप्त।

माझियो को कैप्टेन ने रस्से फैलाने का आदेश दिया। कैप्टेन इस समय डेक पर स्थिर खडे हो कर अब अपने कार्य पर निराश-आशा लिए सलग्न हो गए। कैप्टेन फर्गुसन को सूचना मिल चुकी थी कि एक ओर से जल भर रहा है, जहाज के पश्चिमी भाग से।

और जीवन-नौका, सिनेमा वाली नही, 'जलविहार' की लाइफ बोट्स डेक पर लाई जाने लगी।

मृत्युशय्या पर पडे मरणासन्न प्राणी की अन्तिम श्वास के क्षण जिस प्रकार 'आक्सीजन सिलेडर' शीघ्रता का चिह्न मान ही लेना श्रेयस्कर है, उसी प्रकार उस स्थिति मे 'लाइफ-बोट्स' का सामने आना स्वयं अन्त की घोषणा दे रहा था।

और प्रमोद जल-समाधि के भावी क्षणो मे निमग्न इस क्षण, और

स्थिरता से अपनी एकमात्र प्रतिमा मे लीन हो रहा था। उसमे स्थिरता थी, उसमे सन्तोष था, उसमे अन्त की प्राप्ति की एक साधना थी, उसमे एक अन्तर्दीप्ति प्रकट हो रही थी। इस क्षण सागर की उत्तु ग लहरों के सामने उसे आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के लान पर चपल साडी का लहराता पल्लू नेत्रो मे लोल लहरें उत्पन्न कर रहा था। वह मस्त था। वह नाच रहा था। उसमे एक विचित्र सन्तोष था, सबसे भिन्न, उस स्थिति से सर्वथा विपरीत। और एक टीस ने उसकी नस-नस को अचेत कर दिया। उसी क्षण उसने सकल्प किया, कामना की कि समाधि के क्षण भी वह उसी चित्र में डूबा-डूबा ही डूब जाए। जस्टिस मानसिह द्वारा दिया हुआ पैकेट उसने अपने और निकट कर लिया।

अपनी सीट से उठने की उसकी तनिक भी इच्छा न थी। कुछ जानने की कोई चाह भी नहीं थी। हा, बस वह इतना जान रहा था कि उसके जलयान पर आवश्यकता से अधिक चहल-पहल है। उसका जल-यान जलसमाधि के लिए कार्य व सामग्री सॅजो रहा है और उसे अपने जीवन-दीप बुझने के क्षणों मे मन का दीपक तो अवश्य ही संजोकर रखना है।

जहाज का एक-एक प्राणी व्यस्त था, विवश था, चिल्ला रहा था, दौड रहा था, प्रार्थना, अर्चना, भूत, भविष्य और वर्तमान की चिन्ताओं, अपने से किए गए अपराधो, पापो के प्रति क्लेश, ग्लानि, क्षमा-याचना मे लीन था। ऐसे ही क्षणो मे मनुष्य की विवेक शक्ति सजग होकर जीवन-दर्शन के सुनहले पटल खोल देती है।

मजीभाई और दलसुख भाई किस स्थिति मे थे? प्रमोद इस चिन्ता से इस क्षण मुक्त था। शान्ति भाई सेठ के चेम्बर मे है अथवा उनकी षोडशी के निकट, दलसुख भाई इस क्षण इस चिन्ता से भी मुक्त थे!

अब तक जहाज की बत्तिया जल रही थीं। मि० दाउद अपने नन्हे पैरो को उठाते धीरे-धीरे प्रमोद के केबिन तक आए। प्रमोद को यों स्थिर बैठा देखकर वे अनायास बिलख कर रो पडे। प्रमोद स्वयं भी

कुछ नही बोला। उसने समझा इस आराधना के क्षण यदि वह एक शब्द भी बोल दिया तो मि० दाउद उसके सर पड जाएँगे। उस समय प्रमोद को सचमुच नीरव, एकान्त की चाह थी। नीरव के स्थान पर तो वहा दूर-दूर तक भयंकर चीत्कार था किन्तु एकान्त वह दूर से ही, बम्बई से ही सौभाग्यवश ले आया था। उसके केबिन की एक बर्थ रिक्त जो थी। और मि० दाउद उलटे पैरो लौट गए।

यात्रियो मे एक प्रीस्ट भी था, अंगरेजी पुजारी। अत्यधिक जीर्ण-शीर्ण वृद्ध तन व मन लिए वह इंजन के सामने वाले चबूतरे पर बैठकर बाइबिल का पाठ कर रहा था।

तभी और वेग से अन्धड़ और चट्टानी लहरो ने पोत पर आक्रमण प्रारम्भ किया। अन्धकार का साम्राज्य था। विनाश का साम्राज्य उपस्थित होने को था। जलपोत उमड-घुमड कर लहरो के साथ हिलोरे लेने लगा। वे हिलोरे नही, अन्त की हिलोरे।

और क्षण भर मे जहाज की सारी बत्तिया बन्द हो गई। प्रकाश अदृश्य हो गया। और अब चीत्कार की चरमसीमा समक्ष थी। रहा-सहा ढाढस भी विलीन हो गया। मानव की शक्ति ही कितनी, वह हिल उठा।

मानव, कमजोर मिट्टी से लिपटा एक खोखला मन लिए, उसी घोंघे का एक बे-सिर-पैर का मस्तिष्क लिए कितने क्षण चलेगा? वह टिक नही सकता, वह चल नही सकता, एक क्षण, एक पल। वह साहस, वह आशा, दो को समेट वह संसार मे डूबता-उतराता, आनन्द उपभोग करता, निराशा के थपेडो से न चाह कर भी पिटता, कष्ट सहता, मरता, कटता, द्वेष, अनाचार, दम्भ, पाखंड, कुकर्मो मे लिपटा, स्वेच्छा, सदाचार, प्रेम, मोह, ईश्वर, प्रकृति, धर्म, मोक्ष के भव्य भवनों और स्वप्नो मे सोता जागता किसी प्रकार अपनी निर्बल काया, मन और प्राण लिए डगमगाता, लडखडाता, कभी स्थिर, कभी अस्थिर, कभी दार्शनिकता के प्रकोप मे यह सब भी भूलकर किसी अन्य प्रकार से सन्तोष

पाता इति तक जा पहुँचता है। तब जीवन के तिक्त और मधुर क्षण लगते सब एक समान।

किन्तु जब साहस और आशा भी डूब जाए, अदृश्य का आवरण जब उस सब को आच्छादित करले तो। उसकी दशा उस क्षण वैसी ही थी जैसी उस जलपोत, असहाय 'जलविहार' की थी, तब वही धुन्ध, अन्धकार, हिलोरे, थपेडे, चीत्कार, धू-धू, सी-सी प्रतिक्षण है, वैसे ही जैसे 'जलविहार' अजान होकर जान वालो को अनुभव करा रहा था।

और इस क्षण वहा प्रत्येक के मन मे वह बात जगी थी, किसी बात को, किसी प्रसग को लेकर, क्या वह सचमुच पाप था, क्या वह सचमुच अनाचार था, क्या वह सचमुच दम्भ मे अत्याचार था, क्या वह सचमुच विश्वासघात ही था, क्या वह सब धन था, हीरे, मोती थे, मिल, मकान और कार ही थी ? क्या वह प्रेम था, वासना नही थी, काम-लिप्सा भी नही थी, क्या वह त्याग था, तपस्या थी, सेवा थी, परोपकार था ?

नही, वह सब कुछ नही था। वह आज है, अब है। जो कुछ है सामने है। तब भी मनुष्य की विवेकशक्ति के वह सब कुछ परे था। आज भी वह उसके परे है।

सेठ का कपडे का मिल जहाज के सामने चक्कर काट रहा था। तेवर के प्रभाव मे अन्तर्देशीय-विदेशीय भावना लिए उन अगरेज महाशय का इग्लैड वही था वही, किन्तु उनकी सीमा के परे। आज उसे वे छू नही सकते। आज जहाज का प्रत्येक यात्री उनके अधिक निकट था, अपेक्षाकृत उनके चर्चिल के।

और मिस लिली की गोली, वह बुलेट पास ही सागर मे दिख रही थी, ऊपर सतह मे तैर रही थी। उसकी अनेक प्रेम-लीलाएँ, उसके अनेक प्रेमी, उसका सदैव का औत्सर्गिक प्रणय, उसकी भरी जाघ, उभरी कोहनी और चमकते सीने के ऊपर गले के घावो की पट्टियो मे बन्द पडा था।

नेवी के सेनानी सशंकित किन्तु इस क्षण भी विकसित मुख लिए विकम्पित अन्तर्मन से जलयान के अन्तर व बहिर्भाग मे सन्तोष एवं व्यवस्था बनाए घूम-फिर रहे थे।

बत्तियो के विलीन हो जाने के पश्चात् की दशा अथाह सागर की ही भाति भयंकर हो उठी थी।

●

: ३९ :

अधिक शान्त, मौन और गम्भीर व्यक्ति की तुलना सागर की गहनता और स्थिरता से दी जाती है। किन्तु सगति का कुफल, वायु के गुणाव-गुण का समावेश पाकर जब सागर गरज-गरज कर चारो ओर से सब कुछ अपने मे ही आत्मसात् करने के लिए बिगड उठा। जल और वायु के ससर्ग मे ही जीवन की स्थिरता, अस्थिरता निहित है। जीवन और मरण शरीर मे व्याप्त जल और वायु के परिवर्तन के फल अथवा कुफल है। और मृत्यु मे ही जीवन का आविर्भाव है। यह केवल सागर की देन नही। यह प्रकृति का स्वरूप है, एक अटल प्रमाण।

उस सर्वव्यापी बवडर ने उस काल एक विभीषिका उत्पन्न कर दी। उत्तर दिशा से उमड-घुमड कर आता महाभयकर अन्धड, सागर को उफानता, उछालता दक्षिण की ओर बढता चला जा रहा था। उसकी लपेट मे जहा जो कुछ भी आया, उसने अपने मे दबोच लिया।

शताब्दियो से ऐसा भयंकर तूफान प्रकट नहीं हुआ था। जीवन और मृत्यु को उछालते उस प्रलयकारी बवंडर ने सामुद्रिक तलो, उसके किनारो, उसमे विचरण करने वाले समस्त बाह्य तत्वो को, जिनमे वह अभागा 'जलविहार' भी था, विध्वस करना प्रारम्भ कर दिया।

ससार की भौगोलिक सीमाओ के अन्तर्गत आने वाले पश्चिमीय देश, इंग्लैण्ड, हालैड, बेल्जियम, आयरलैड और स्पेन आदि मे उस बवडर का प्रकोप था।

सनसनाती हवा, मृत्यु का मार्ग प्रशस्त करती, सागर को अपना सहयोगी बनाकर आगे बढती गई। वेग से—विध्वस, बाढ, सर्वनाश उत्पन्न करती मृत्यु रूप मे उस वायु ने जल को साथ लेकर तोड-फोड करना प्रारम्भ कर दिया।

सागर की लहरे, कगारो को चीरती हुई मीलो तक भूमि मे घुसती चली गई। उन्होने जो कुछ पाया, उसे बहाया, समेटा। अनेक स्थान टापू बनकर रह गए। वहाँ के नर-नारी, उनके झोपडे, महल, उनकी जीवनोपयोगी सामग्री सब विलीन हो गई।

भीषण जलप्लावन, जल-मग्न घटा और सागर; वायुयानो मे बैठे कैमरा-मैनो एवं संसार को क्रीडास्थल बनाए रखने वाले समाचार-पत्रो के आकर्षण का कारण बन गए।

जलप्लावन क्या वैसा ही था जो मनु के काल मे आया था और सहार के पश्चात् सृष्टि का सृजन प्रारम्भ कर गया था? सम्भवतः उससे भी भयकर था।

चतुर्दिक क्रीडारत ५८ जलपोत उस समय जलप्लावन के बवंडर मे फंस कर अपनी अन्तिम घडिया गिन रहे थे। और उन ५८ मे उस 'जलविहार' की दशा सर्वाधिक चिन्त्य थी। वह प्रमोद को साथ लेकर अनन्त मे विलीन होने को उमड पडा था।

सामुद्रिक किनारे क्षत-विक्षत होकर भयावह स्थिति उत्पन्न कर रहे थे। मृत्यु और क्षति का अनुमान लगाना ही एक हास्य का प्रसग था।

आवागमन एव सूचनाओ का आदान-प्रदान सर्वथा समाप्त हो गया था।

और 'जलविहार' की कोई सूचना कही पहुँचना भी असम्भव हो गई। डोवर से सम्बन्ध स्थापित कर लेने के पश्चात् भी कुछ न बन सका। सूचना पहुँचने मे ही इतना विलम्ब हो गया कि 'जलविहार' तक समय पर कोई भी सहायता पहुँचना असम्भव कार्य हो गया। सागर की उस भयावह स्थिति मे किसी सहायक जलपोत अथवा टैकर आदि का सुगमता

से पहुँच जाना अथवा सहायता कार्य करना सर्वथा अनिश्चित था।

उस परिस्थिति मे वायुयान द्वारा भी किसी सहायता की आशा करना व्यर्थ था। उस सर्वत्र फैले हुए अन्धड और काले-पीले बादलो के मध्य वायुयान का विचरण करना ही स्वतः एक विपत्ति का कारण था।

इस असहायावस्था मे 'जलविहार' अपने अन्त की भयावह घडियो के मध्य कुछ काल तक लड़ता रहा।

लगभग सात घटो के सघर्ष के पश्चात् आशा की एक किरण फूटी। आकाश कुछ स्वच्छ होने लगा और चातुर्दिक फैला धुन्ध, अन्धकार और काला-पीला अन्धड कम हुआ।

सब लोग आशान्वित हो उठे। कैप्टेन फर्गुसन वायरलेस आपरेटर को छोड़ कर प्रसन्न-मुद्रा मे मशीनरूम की ओर अग्रसर हुए। उनको इस क्षण ढाढस हो रहा था कि अब अवश्य ही उन तक कोई सहायता पहुँच जाएगी अथवा उनका स्वयं का ही जलपोत विषम स्थिति को पार करके कार्य करने लगेगा।

किन्तु हवा मे उतनी ही तीव्रता थी। सागर अब भी वैसा ही अशान्त था। जल के थपेडे अब भी उसी भाति जलपोत की नस-नस ढीली कर रहे थे।

इस दीर्घकाल मे 'जलविहार' की कैन्टीन व डाइनिग हाल उजड़े पड़े थे। बच्चो तक के भोजन व जल की चिन्ता उनके माता-पिता ने छोड़ दी थी। उस क्षण जीवन-रक्षा का ही निराश सन्तोष लिए सभी का समय व्यतीत हो रहा था।

और दुर्भाग्य .. ..अधिक भयकर आपत्ति ... .।

कैप्टन फर्गुसन देखकर एक क्षण जैसे अचेत हो गए हो . मशीन-रूम तक मे पानी भर आया था। सामुद्रिक जलघोष और उत्तेजना ने तल भाग के सामान लाने-ले जाने वाले एक कपाट को तोड़-

मरोड़ दिया और द्रुतगति से 'जलविहार' मे सामुद्रिक लहरे घुमेडे लेने लगी।

अन्त......निश्चित अन्त.. ... ।

आशा, निराशा, आशा के झोको ने अब निश्चित परिणाम की घोषणा कर दी।

तभी कैप्टन ने लाउड-स्पीकर से—जिसने अब विद्युत के स्थान पर बैटरी से कार्यारम्भ किया था—आदेश किया कि सभी यात्री जहाज को छोड देने के लिए तत्पर हो कर ऊपरी डेक पर पहुँचें, जहा लाइफ-जैकेट और लाइफ-बोट्स का प्रबन्ध हो रहा है।

सर्वत्र एक कोलाहल, भीषण चीत्कार, मृत्यु की सम्मुख विभीषिका, भयानक विषमता छा गई। कौन बच सकेगा, कौन समाप्त होगा, सभी ने अपने सम्बन्ध मे निश्चित-सा ही कर डाला।

और समाप्ति का वैसा भयंकर चित्र... ।

भीड मे उमडते बालक-बालिकाएँ, नारिया और त्रस्त पुरुष ऊपर वाले डेक पर आकर समुद्र और सामने खडी मृत्यु की ओर झाकने लगे। 'लाइफ-बोट्स' उतरनी प्रारम्भ हो गई।

उस भयावह सागर की हहरती लहरो के मध्य उतरी 'लाइफ-बोट्स' डूबने-उतराने लगी। देखते-देखते कई 'लाइफ-बोट्स' नन्हे अनजान बालक की भाति आगे बढी। दो-चार पग सभली और कराल सागर की असीम तह की ओर विलीन हो गई।

उस उमडती भीड मे प्रमोद भी प्रसन्न मुद्रा मे आगे बढा। सम्भवतः उस पूरे समुदाय मे वही एक सर्वथा प्रसन्न-मुद्रा मे सारी क्रियाओ को मूक हास्य लिए निश्चल देख रहा था।

और क्षण भर मे किसी अपरिचित हाथ ने उसके हाथ मे 'लाइफ-बेल्ट' दे दी। उस क्षण भी आशा की एक क्षीण रेखा प्रमोद के शाश्वत मन मे स्थान बनाए थी। सम्भव है वह अब भी बच जाए और अपनी प्रतिमा के दर्शन कर सके। दग्धमन-प्राण लिए उत्साह की हिलोरे

लेता वह उत्तप्त सागर की भयावह लहरो पर उतर जाने को उद्यत हो गया और एक पल मे उसने जैकेट पहन ली।

जीवन के उन विचित्र क्षणो मे उसे स्वदेश, पिता-माता, बन्धु-बान्धव, मित्रमण्डली, कीर्ति. पहाडी उपत्यकाएँ, और उसकी अपनी प्रतिमा, सभी मस्तिष्क मे उमडते सागर की भाति घुमेडे लेने लगे। और भावो की वह शृंखला, उसकी डूबती-उतराती 'लाइफ-बोट' का भावी चित्र, बीती यात्रा, सागर का घोर गर्जन, मृत्यु का भीषण ताण्डव, उसके अपने संकल्प, एक क्षीण किन्तु दृढ आशा कि उसका अपना 'लाइफ-बोट' निश्चित किनारा पाएगा कि पीछे से किसी ने कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "आइए !"

'व्हेन द वैल टाल्स'—अलक्ष्य अपना लक्ष्य बनाए उस समय गतिमान था।

मिट्टी के पुतलो की भाति मानव रस्सो मे बाध-बाध कर नीचे लटकाए जा रहे थे। सर्वत्र भीषण रव और चीत्कार मचा हुआ था। सभी अति शीघ्र अपना सब कुछ छोडकर जीवन की आशा खोकर भी उस क्षण उस जलपोत को किसी भी भाति छोड देना चाह रहे थे। मृत्यु समक्ष थी। सागर भयघोष के साथ फाड खाने को सामने आतुर दिख रहा था किन्तु उस क्षण जलपोत उससे भी अधिक भयावह प्रतीत हो रहा था।

सारा सामान, केबिन, लाउज, डेक, डिलक्स केबिन सभी वीरान दिख रहे थे। जहा किसी समय रगरेलिया मनाई जाती थी, वे रिक्रियेशन-हाल, डासिग-हाल, समाप्ति के अपने विचित्र सगीत की लय मे मौन पडे थे।

जहाज प्रतिपल बैठता चला जा रहा था। मशीन-मैन व अन्य सहायक मशीनरूम छोड कर बाहर आ गए थे। कैप्टन के आदेशानुसार अपने कर्त्तव्य को दृढता से निभाने के हेतु जलपोत का प्रत्येक कर्मचारी सचेष्ट और क्रियाशील होकर मृत्यु का आह्वान करने के लिए तत्पर दिख

रहा था। दनादन रस्से बांध-बाध कर आदमियो को नीचे लटकाने का कार्य हो रहा था। बाधना, लटकाना, जैसे उनके हाथ मशीन की भाति चल रहे हो।

भारतीय यात्रियो की दशा अपेक्षाकृत अधिक शोचनीय थी। उनके डूबते जलपोत पर बने रहने अथवा सागर मे उतरी हुई डूबती-उतराती 'लाइफ-बोटो' से भयावह अनुभव प्राप्त करने मे कोई विशेष अन्तर नही प्रतीत होता था।

भयत्रस्त स्त्रियो व बच्चो को यथाशीघ्र रस्सो मे बॉध-बॉधकर 'लाइफ बोट्स' मे उतारा गया। नेवी का एक नाविक—एक अंग्रेज़ महिला को, जो अपने कुछ मास के शिशु को अपने वक्ष से चिपकाए थी—देखकर रो पड़ा। बच्चा, वह नन्हा बालक मॉ से चिपके-चिपके ही इधर-उधर अपने बडे-बडे सुडौल किन्तु विस्फारित नेत्रो से नाविक को देखता रहा। उसके बिखरे हाथ नाविक को जैसे पुकार रहे हो और वह अपनी मॉ के साथ देखते-देखते रस्से मे बंधकर नीचे उतर गया।

महानिद्रा, जलसमाधि—अनगिनत नावे इधर-उधर बढ चली। कुछ चलते ही समा गईं, कुछ भवरो मे घिर गई।

जलपोत का अधिकाश भाग डूब चुका था। मशीन रूम मे पानी तेज़ी से भर रहा था और लौटते समय अपने साथ वहॉ का तेल, पेट्रोल, मोबिल आयल साथ ले जाता था। इस प्रकार जहाज़ के चारो ओर दूर तक एक घेरा उस तेल, पेट्रोल और मोबिल आयल के मिश्रित पदार्थ से बनकर फैल रहा था। अब इस चमकीले और चपकते पानी मे उतराते तरल पदार्थ पर से होकर जाना अथवा 'लाइफ-बोट्स' का निकलना और भी दुष्कर हो गया। यह सब मिलकर ऐसी दुर्गन्धि उत्पन्न कर रहा था कि सॉस लेना कठिन हो चला। जहाज के चारो ओर बने उस कुण्डलाकार काले घेरे ने अपने मे पचासो यात्रियो को दबोच लिया।

दूर सागर मे कुछ नरमुण्ड दिखाई दे रहे थे। डूबते उतराते अथवा तैराई जानने वाले दस-पॉच व्यक्ति अपने अन्तिम हाथ-पैर पटक रहे थे।

एक निराश आशा, डूबती जीवन-ज्योति के तले। किसी भी नरमुण्ड के विलीन होने पर जहाज मे एक धमाके का शोर होता, "डूब गया, गॉन।"

ऐसे भयावह समय मे भी कर्तव्योन्मुख मानव कार्यरत होकर व्यक्ति-विशेष के जीवन की उपयोगिता को वहाँ सार्थक बना रहा था। कैप्टेन फर्गुसन—कैप्टेन के कर्तव्यो व अधिकारो को उस क्षण अविचल, पूर्ण कर रहे थे। विद्युत की भाँति एक पल मे यहाँ और दूसरे मे अन्य स्थान पर वे दिखाई देते।

वायरलेस आपरेटर अपने चोंगे को अन्तिम बार चूम रहा था। अपने हृदय और मस्तिष्क को समेटे अभी तक वह कार्यरत था। उस क्षण अपने कैप्टेन को सामने पाकर वह आर्द्र हो गया और लडखडाते स्वर मे बोला, "सर, ए सबमैरीन, ए डिस्ट्रायर एन्ड ए टैन्कर हैव स्टार्टेड फार हेल्प, फ्राम, फ्राम द चैनेलकोस्ट ।"

और कैप्टेन ने आपरेटर को छाती से लगा लिया। दूसरे ही क्षण उससे अलग होते हुए वे कह उठे, "ओ, इट्स, टू, टू लेट। दे कुड सी नन .।" कुछ रुक कर, बट, ब्रेवो आपरेटर, आम राइटिंग यू ए मे इट बी पास्थोमस, बट, बट, यू मस्ट रीच द कोस्ट, सर्टीफिकेट, कैन हेल्प यू मच इन योर लाग लाइफ ।"

आपरेटर रो पडा और भावावेश मे उसने अपने प्यारे कैप्टेन का हाथ चूम लिया। वह लगभग ग्यारह वर्षो से कैप्टेन फर्गुसन के साथ कार्य करता रहा था। वह अवरुद्ध कण्ठ से बोला, "नो कैप्टेन, नो, आयम नाट गोइंग टु लीव यू सर, एन्ड, एन्ड यू से लाग लाइफ, इन दिस सिंकिंग शिप .।"

और दोनो ही वायरलेस-रूम से निकल कर सामने के लाउंज से समुद्र की ओर झाँकने लगे। ओह, उसी क्षण सामने एक बोट जल में समा गई। कैप्टेन ने अपने नेत्र मूँद लिये। तभी डेक पर आकर कैप्टेन ने आपरेटर द्वारा प्राप्त समाचार अन्य कर्मचारियो को कह सुनाया।

'सहायता आ रही है'—एक क्षीण आशा ने सब के मन उद्वेलित

कर दिये किन्तु सब अपने-अपने स्थान पर कार्य करते रहे।

और धीरे से किसी ने प्रमोद के कन्धे पर हाथ रख दिया, "आगे बढिये।"

प्रमोद शान्त-मुद्रा मे अभी तक स्थिर खडा सामने के क्रुद्ध सागर मे लीन था। प्रतिमा मे लीन था। अपने आप मे लीन था। उसने समझा, उसे भी रस्से मे बंधकर उतरना है तब क्यो न वह इसी डूबते जलपोत के किसी कोने मे छिप जाए? क्यो न वह इसी के साथ ही शान्त-निन्द्रा ले ले?

किन्तु इतना सोचने का समय भी अब वहाँ शेष न था। और तेजी से दो सेनानियो ने उसे आगे की ओर खीच लिया। हाँ, उसका मन भी खिंच रहा था। वह कब अभी जलपोत का साथ देने को प्रस्तुत था।

जीवन, आशा-निराशा के ऐसे दोधारे पर लटकता रहता है कि मानव उसके बीच मे ही पनपता और प्रसन्न होता है। रोता है, आगे हँसने के लिए। हँसता है, आगे हँसते ही रहने के लिए। न उसके रोने का अन्त है न उसके हँसने का। जीवन-डोर टूटते-टूटते भी वह गाठ बाँधकर आगे बढ जाने की आशा लिए छटपटा कर गतिशील होता है। वह गति उसकी है या अदृश्य की कसौटी—कब वह, कब कौन समझ पाता है।

उस मृत्यु-ताण्डव मे भी शतप्रतिशत व्यक्ति जीवन को ले भागने की टोह मे तडपते-तडपते विलीन होते चले गए। और प्रमोद को जीवन ले भागने की चाह न होते हुए भी विवश होकर सामने आना पडा। रस्से बधे और वह सर्र से एक लाइफ-बोट मे लटका दिया गया।

प्रमोद की नौका बह चली। वह सोच रहा था, यह अन्त या प्रारम्भ।

आकाश बहुत-कुछ स्वच्छ हो चला था किन्तु हवा के झोको के थप्पड़ से लग रहे थे। हवा, वह अन्धड़ नही थी अपितु थी पारदर्शी आन्धी।

कैप्टेन फर्गुसन अपने केबिन मे आए। उन्हे जलपोत के साथ ही

ममाधि लेनी थी। कुछ क्षण का ही विश्राम शेष था। केबिन मे सामने दीवार पर लटकते एक चित्र के समक्ष हाथ बाँध कर, अपलक वे खडे हो गए। सजल नेत्रो से वे उस सुनहले चित्र को देखते रहे। तब उस चित्र को उन्होंने दीवार से उतारा और उसे अपने वक्षस्थल पर समेट लिया; जैसे वे अपनी प्रेयमी को आलिंगन-पाश मे जकड लेना चाहते हो। तब उन्होंने दोनो हाथो से चित्र को सामने किया। अश्रुविगलित नेत्रो सहित उन्होने उसे चूमा और पास ही मेज पर रक्खे रेशमी थैले मे उसे बडे धीमे से रखकर थैले को उन्होने कन्धे पर लटका लिया और अपने केबिन के बाहर हो गए।

बाहर आकर उन्होने दूर खडे होकर अपने केबिन को एक सेल्यूट दी और आगे बढ गए। वे विदा के क्षण थे। कैप्टेन, सेनानी होगा, मनुष्य-जीवन से उसने अनेक बार खिलवाड किए होगे। अनेक वक्ष उसने रौंदे होगे, कुचले होगे, तब एक भावना रही होगी, जीत की भावना, अधिकार की भावना। किन्तु आज, आज हार की बेला थी, विदा की बेला, भावुकता से नाता जुडना ही था, स्मृतियो की घुमेडे आनी ही थीं, और तब कैप्टेन की एक भावुक की-सी गतिविधि होना स्वाभाविक थी। आज अपने मे ही सब कुछ समेटे रह कर अपने अधिकारो को लिए हुए, अपने अतीत को लिए हुए, अपने प्रणय को लिए हुए, अपने सर्वस्व को बटोरे हुए उस जलपोत के साथ डूब जाना था।

उसने अपनी लटकती दूरबीन से देखा, कई नौकाएँ आगे बढ गई थीं। वे मीलो निकल गई थीं।

और तत्क्षण आकाश वायुयानो की गड़गडाहट से आच्छादित हो गया। कैप्टेन ने सर उठाकर ऊपर देखा, उसका मन प्रसन्न था किन्तु सब व्यर्थ था। काल अपना कार्य कर चुका था।

प्रमोद की न का दूर ी किन्तु देख रही थी, कैप्टेन फर्गुसन एक हाथ से रेलिंग पकडे थे और दूसरे हाथ से अन्तिम सेल्यूट दे रहे थे।

'जलविहार' ने पूर्णतः समाधि ले ली।

: ४० :

सारे विश्व मे यह समाचार प्रसारित हो गया कि इग्लिश चैनेल से कुछ दूर 'जलविहार' नामक भारी जलपोत अत्यधिक जीवन समेटे विलीन हो गया और सर्वत्र शोक एव चिन्ता की लहर दौड गई। उन सभी के मन चीख उठे, जिनके अपने, परिचित, अथवा सम्बन्धी उस जलपोत से यात्रा कर रहे थे।

जस्टिस मानसिह सिहर उठे। क्या उसी जलपोत को डूबना था, जिससे उन्होने प्रमोद को विदा किया था ?

लखनऊ मे प्रमोद के घर पर कोहराम मच गया। "आगे के समाचार जानने तक शान्त रहिए।" कहने को तो कीर्ति सब से कह गया किन्तु उसका मन स्वय चीत्कार कर उठा था।

बरफ से कटीले सागर के जल मे आगे बढते किसी ने कहा, "अन्तर्राष्ट्रीय नियमानुसार कैप्टन डूबते जहाज को नही छोड़ सकता। उसे तो उसके साथ विलीन होना ही पडता है।"

"अच्छा नियम है।" अपने साथ के एक छोटे से बंडल को सभालते हुए प्रमोद कह उठा।

और डूबती-उतराती 'लाइफ बोट' कई मील आगे बढ आई थी। हवा की तेजी और सर्दी धारदार तलवार का काम कर रही थी।

और लाइफ बोट, जैसे मौत के कुएँ मे एक चमडे का बड़ा डोल पडा हो, पर वह कुआ कहाँ था, वह तो था सागर, अथाह सागर, जो चाहे तो सारे पृथ्वीतल को अपने मे आत्मसात् कर ले।

प्रमोद की बोट मे कुल सत्रह व्यक्ति थे। प्रतिपल लगता था कि कोई भी उच्छृखल लहर किसी भी क्षण सत्रह जीवन-लीलाएँ पलक मारते समाप्त कर सकती थी। उसमे कई निरीह बालक भी थे और एक दयनीय महिला, जो रह-रह कर अपने पति के शोक मे आखे गीली कर लेती थी।

साथ की अन्य तीन नौकाएँ जिधर चाहा वह चली थीं, जैसे कोई उच्छृखल जीवन नए अनुभव लेने कहीं बहक चला हो।

प्रमोद की बोट मे अधिकाश अग्रेज यात्री ही थे। वे समय-समय पर उत्साह देते जाते थे। विषाद के क्षणो मे सघर्ष को लड कर समाप्त करने का उनमे अदम्य गुण प्रकट हो रहा था। कुछ जानकारी अथवा आभास से वे ही कहते, "हम लोग ठीक दिशा मे, इग्लिश चैनेल की ओर ही जा रहे है।"

प्रमोद का हृदय दूसरी ओर सागर की ही भाति अशान्त व आदोलित हो उठा था। अनायास जलपोत के साथ डूब जाने की चाह की प्रसन्नता अब समाप्त हो गई थी। स्मृतिया उस क्षण उस अनाहूत विपत्ति मे रह-रह कर कष्ट दे रही थीं। स्वजनो व कीर्ति की शंकाएँ उसे अलग ही करोच रही थीं।

और प्रतिमा—एक क्षण मे ध्यान आते ही सामने से शिलाखण्ड की भाति एक भारी लहर हिलोरे लेती सामने बढती दीखी, किन्तु कुछ दूर पर ही विलीन हो गई। बोट के सभी लोग सिहर उठे। लगा, जैसे सब समाप्त होते-होते रह गया। हिल डुल कर बोट फिर कुछ आगे बढ़ सकी।

जीवन-वृत्ति का कौन-सा भाग अभी शेष है? प्रमोद उलझा हुआ था। मन मे उठती-मिटती लहरो की गति सागर से अधिक चंचल हो उठी थी। उस जीवन-मरण के सघर्ष मे उसे पहाड के कुछ दृश्य स्मरण हो

आए । उसी प्रकार वहा भी वह जीवन और मृत्यु से लड कर जीत ही गया और क्या पग-पग पर उसे इसी प्रकार संघर्ष ही करना होगा ?

और प्रमोद को निश्चय हो गया था कि अब तक इस भयंकरता की सूचना सर्वत्र व्याप्त हो चुकी होगी । और यो ही उसके समक्ष एक चित्र-सा अंकित होने लगा : सामने प्रतिमा ने एक समाचार-पत्र देखा । उदासीन भाव से उलट-पलट कर अन्य समाचारो के साथ उसने इस समाचार को भी चलते-चलते पढा और 'समाचार-पत्र' एक ओर फेंक कर वह इठलाती-सी दूसरी ओर को चल दी ।

जैसे प्रमोद उस क्षण के वातावरण को भूल कर दूसरी बाते सोचकर चीखना चाहता हो । तभी वह सभल कर बैठ गया । निकट से पैनी हवा शरीर को काटती हुई निकल गई । हाथ की उंगलिया जैसे सिमटी की सिमटी रह गई हो, पैर अकड कर टेढ़े हो गए हो ।

और तब एक और चेतना मन मे आई । जीवन के सारे सम्बन्धो का अलग करके वही कैसा-सा विचित्र नाता है, जिसकी स्वर्गिक छाया मे उसकी जीवन-गति बढ रही है, पनप रही है, इस क्षण भी, इस उथल-पुथल मे भी । कौटुम्बिक, व्यावहारिक, सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा अन्य सभी नातो से विलग वह कैसा आकर्षण है, जिसको मानकर उसका मन इस क्षण भी सारे ससार से किनारा कसे रहने मे भी सन्तोष का अनुभव कर रहा है । मानव क्या स्नेह मे इतना बिंध जाता है ? और वह स्नेह क्या जीवन मे एक प्रणयी का है, केवल प्रेयसी का है ? ससार का कोई भी बन्धन, कोई भी भौगोलिक सीमा, भयानक से भयानक कठिनाई भी उसे रोक सकने मे असमर्थ है । वह अदृश्य मे बधा चलता चला जा रहा है । माता-पिता का स्नेह भी कितना प्राकृतिक है । उनका स्नेह भी दुर्लभ है । उसे वह अपरिमित प्राप्त भी है, तब क्या उस स्नेह को किसी सीमा तक भी उसने सोचा ? तब इस 'लाइफ-बोट' मे बैठकर किसी भी क्षण भारी लहर मे समा जाने की परिस्थिति मे भी वह केवल एक ही स्मृति,

एक ही कल्पना का दास क्यो है ? क्यो वह उसी रूप मे, माताजी, वकील साहब, कीर्ति तथा अन्य किसी निकटतम स्वजन तक नही पहुँचता ? क्या इसलिए कि वे प्राप्त है और उसे अदृश्य से मोह हो चला है । नहीं, कदापि नहीं। अदृश्य के प्रति इतनी गहनता, यह तो और भी विचित्रता है। नैकट्य अथवा अदृश्यता कोई अन्तर नहीं ला पाती। ऐसा-सा ही अनुभव उसने दूसरो से भी जाना-माना है। क्या यही प्राकृतिक है केवल मात्र, अथवा मन की यह कौन-सी दशा है? क्या यह केवल नारी-रूप यौवन, सौन्दर्य अथवा शारीरिक या मानसिक वासना का प्रलोभन है ? कदापि नहीं ? यह, यह. .अपने आराध्य की उपासना है और, और. . उस तक पहुँचने की दौड, बीहड, कटकाकीर्ण, भयावह अवरोधों पर विजय प्राप्त करते हुए अपनी प्रतिमा के निखरे रूप के भव्य-दर्शन। वह मन की दुर्बलता नहीं, विवशता है, प्राकृतिक, और वैज्ञानिक खिचाव, आध्यात्मिक मान्यता, दार्शनिक सत्य !

इस पर भी प्रमोद का सर भारी-भारी हो रहा था। खुले सागर की ठड और हवा की सिहरन ने उसके सारे शरीर को अस्वस्थ कर दिया था। हाथ-पैर व अन्य शारीरिक अवयव एक प्रकार से गतिहीन हो रहे थे। निराशा, कभी क्षीण आशा, एक विचित्र परिस्थिति मे प्रमोद बह रहा था। उसकी नौका बह रही थी।

उसने अपना सर एक ओर घुमाना चाहा। जैसे उस पर बड़ा भारी शिलाखण्ड रखा हो। किन्तु सामने से छप-छप की सी ध्वनि आ रही थी।

क्या कोई भयावह जल-जन्तु ?

तब क्यो न प्रमोद यो कूद कर जल-समाधि ही ले ले। उसके मानसिक उद्वेलन के सन्तोष का उससे सुगम मार्ग दूसरा नहीं।

नौका के अन्य व्यक्ति भी सामने की ओर आकर्षित हुए। सामने दिखा द्रुतगति से बढ़ता एक जलपोत। एक अनहोनी किन्तु सलोनी

आशा, एक आकुल निराशा...........कही वह दूसरी ओर न जा रहा हो।

"हेल्प, हेल्प......मस्ट बी रेस्क्यू मैरीन, मस्ट ...।" एक अंग्रेज साथी उत्साह से पुकार उठा। मृत्युकाल मे भी कैसी स्थिरता, कैसी उत्तेजना, अपने देश के प्रति, मानवता के प्रति कैसा विश्वास? वे—वह अंग्रेज—भी दृढ थे कि मृत्यु को ढकेल कर सहायता दौडेगी ही। मृत्यु का मोह त्याग कर जीवन-रक्षा के लिए, मानव मानव के लिए दौडेगा ही, दौडता ही है। तब मानव के अनेक, नही सब रूप सुन्दर हैं।

भीषण गति से वह पोत, देखते-देखते, प्रमोद की उस नौका के सामने आ गया। क्षण भर मे उसने उस नौका के यात्रियो को अपने मे ले लिया।

अदृश्य शक्ति, तेरे रूप विचित्र है। इस संसार-सागर की विचित्र-सी लीलाएँ है, इस जीवन-सागर की कौतुकपूर्ण अनुभूतिया है।

और इस क्षण प्रमोद सचमुच अन्तर्मन मे अत्यधिक प्रसन्न था। उसकी आशा उस क्षण जितनी सशक्त थी, उतनी कभी नही रही कि उसे प्रतिमा के दर्शन होगे ही।

बढते-बढते मैरीन के कैप्टेन ने यात्रियो से घटना का संक्षिप्त विवरण जाना और आगे अन्य नौकाओ की खोज मे बढ चला।

सामने ही, दूर-दूर छिटकी तीन नौकाएँ दिखी। किसी प्रकार दो नौकाओ के यात्रियो को बचाया जा सका किन्तु तीसरी उस सहायता के पहुँचते-पहुँचते घुमेड़े खाकर देखते-देखते डूब गई।

और सामने से एक अन्य 'डेस्ट्रायर' झपटता हुआ सहायता के लिए आया। 'मैरीन' के आपरेटर ने अपने वायरलेस से कुछ आदेश दिए और स्वयं लौट पडी। 'डेस्ट्रायर' अन्य नौकाओ की खोज मे गहरे सागर की ओर बढ़ चला।

मार्ग मे एक और टैंकर सहायता कार्य के लिए आता मिला जो

प्रमोद की सबमैरीन के कैप्टेन से वायरलेस पर कुछ वार्तालाप करता हुआ आगे बढ गया।

और प्रमोद को लिए हुए 'सबमैरीन' साउथैम्पटन की ओर बढ चला।

यह पहला 'सबमैरीन' था जो सहायता कार्य कर के लौटा था और बन्दरगाह पर टिक पाया था। वातावरण व वायुमण्डल अब भी डरावना बना हुआ था।

बन्दरगाह के प्लेटफार्म व इधर-उधर हजारों की भीड एकत्र थी। उन देखने वालों का औत्सुक्य व कोलाहल मरणासन्न यात्रियों को और भी कष्टकर प्रतीत हो रहा था। हर व्यक्ति चाहता था कि प्रत्येक से उस दुर्दान्त घटना का सारा विवरण विस्तार मे जान ले। मैरीन द्वारा बचाए एक-दो व्यक्तियों की तो सासे चल रही थीं। कोई भय से त्रस्त या तो इधर-उधर देखकर पागलों की भाति चीख उठता या सर्वत्र दृष्टि दौडाकर मौन खाड का खडा रह जाता। डर नस-नस मे समा चुका था। थकन, भूख, प्यास, मृत्यु से लडकर आए हुए मिट्टी के वे पुतले, उनमे शक्ति ही कितनी थी!

प्रमोद सहित चौसठ यात्री कैदियो की भाति घेर कर किनारे ले जाए गए।

साउथैम्पटन का बन्दरगाह स्वतः उस तूफान से क्षतिग्रस्त था। जल ने यत्र-तत्र छिद्र बना दिए थे। बचाव के लिए, असंख्य बालूभरे बोरे, ढेर थे। वालटियर्स टोलियो मे इधर-उधर घूम रहे थे। स्पष्ट दिख रहा था कि जलप्लावन ने वहा भी समेट की है।

पहले तो भीड-भाड का साथ प्रमोद ने दिया। चाय, काफी, व्हिस्की वितरण के समय उसने एक प्याला चाय कापते हाथो से थामा और किनारे पडी एक बेच पर जा बैठा।

धीरे-धीरे भीड के लोग अपने परिचितो को ले गए। कुछ निराश और शोक मे आकुल बने रहे। कुछ यात्री स्वय पता बता-बता कर निर्दिष्ट स्थानो मे जाने लगे।

प्रमोद ने चाय पीकर प्याला किनारे रख दिया और माथे पर हाथ टेक कर सोचने लगा, "वह कहा जाए?"

उसने जेब मे हाथ डाला। उसका सारा सामान सुरक्षित था। तब उसे कोई चिन्ता नही। उसके पास पर्याप्त धन था। आवश्यक कागज-पत्र उसके पास थे। और वह उठ कर चलने को उद्यत हुआ।

दुर्घटना से बचे सभी लोगो को गवर्नमेंट की ओर से कुछ न कुछ धनराशि भी दी जा रही थी। किन्तु प्रमोद ने वह सब कुछ स्वीकार नही किया।

जब धन लेकर एक पदाधिकारी प्रमोद के समक्ष आया तो उसने अपनी जेब से दो सौ पौड का एक ड्राफ्ट निकाल कर उसके सामने कर दिया। उसी ड्राफ्ट के कोने पर एक छोटा कागज का टुकडा पिन से टंका था।

"ईवेन देन यू मस्ट टेक दिस .. .एण्ड आयम अरेंजिंग टु सेण्ड यू टु योर डेस्टीनेशन.. .थैंक्स।" उस अधिकारी ने बड़े विनम्र भाव से प्रमोद से कहा।

"माई हर्टी थैंक्स.. थैंक यू। इट्स एनफ.. ...।" और प्रमोद ने उस राजकीय सहायता को अस्वीकार कर दिया।

अधिकारी चला गया और अपने कैंप मे जाकर अपने साथियो को हाथ के सकेत से प्रमोद को दिखलाता रहा। सम्भवतः वह बता रहा था कि उसने मिलते धन को लौटा दिया। सम्भवतः वह उसकी सराहना कर रहा था।

प्रमोद गर्वोन्नत अपने स्थान पर बैठा रहा।

प्रमोद को ध्यान आ रही थी पर्वत-प्रदेश की चित्रावली। जब बादल उमड-घुमड़ कर, झूम-झूम कर, पर्वतशृ गो को चूम-चूम कर,

लौटते, सारे वायुमण्डल को आत्मसात् कर लेते, फिर पर्वतमालाओं से चिपट-चिपट जाते और किलोल करते हुए वहीं बरस जाते।

आज वह विश्व के ऐसे कोने पर आ पहुँचा था, आज देशों के देश इग्लैण्ड की भूमि पर वह पग टेके स्मृतियों के विलोड़न मे अनिश्चित-सा उस बेंच पर बैठा था। तभी वह पूर्वपरिचित पदाधिकारी आया। उसके साथ एक अन्य सिविलियन अधिकारी था जो प्रमोद को गन्तव्य स्थान पर ले जाने के लिए आगे बढा।

उठते हुए प्रमोद ने उस अधिकारी से कहा, "सर, आई विश टु सेण्ड ए केबलग्राम टु माई होमलैंड .....।"

"ओ, यस, सर्टेनली, सर्टेनली.... वट वी हैव आलरेडी इन्टीमेटेड टु योर शिप सर्विस, बाम्बे। योर नम्बर इज वनहन्ड्रेड सेवन.. ...। और प्रमोद ने अपने हाथ का कार्ड, जो उसको जहाज पर चढ़ते समय बम्बई मे मिला था, देखा। उसका नम्बर १०७ था। वह कह उठा, "यस प्लीज।"

"एवरीबडी कनेक्टेड टु यू मस्ट हैव गाट द इन्फर्मेशन अपटिल नाऊ .. ..।"

प्रमोद सोच गया "एवरीबडी कनेक्टेड... .. . ."

प्रतिमा से भेट करने की बात उसने स्थगित ही रक्खी। स्ट्रैन्ड के निकट ही उसने एक होटल मे कमरा ठीक किया और तब अपने लिए कुछ आवश्यक सामग्री लाने की बात उसने सोची। किन्तु ड्राफ्ट के रुपये मिलने तक वह रुकेगा ही और तब वह चुपचाप अपने कमरे मे आकर लेट रहा।

वार्तालाप मे होटल मैनेजर ने यह ज्ञात कर पाया था कि प्रमोद उस डूबे जहाज से बच कर आया है। स्वभावतः मैनेजर को प्रमोद से विशेष सहानुभूति हुई और वह स्वय उसके कमरे मे आकर उससे वार्तालाप

करने लगा। उसने अनुरोध करके प्रमोद को कुछ पौंड दिए और अपने लिए आवश्यक सामग्री ले आने का आग्रह किया।

कुछ पेन्ट, कमीजे, एक सूट, ट्वायलेट्स, मजन, ब्रुश आदि लेकर वह शीघ्र ही होटल आया।

बडे यत्न से उसने नए सामान को कमरे मे यथास्थान सजाया। आज वह उस क्षण बडा मगन था। ड्रेसिंग-टेबिल को ठीक करते समय उसने अपनी अस्त-व्यस्त आकृति देखी। बाथरूम मे जाकर बेसिन मे हाथ-मुँह धोया। बालो मे शेम्पू छिडका, तौलिए से बालो को सुखाया और तब एक मोहक व्यक्तित्व सामने दिखा। कघा फेर कर उसने नई कमीज और पेन्ट पहनी। तथा 'ईवनिंग इन पेरिस' की दो-चार बूँदे कपडो और रूमाल पर लपेटी। उस मधुरिम सुवास से कमरा महक उठा, उसका मन डोल उठा।

बिना पुस्तको के उसका सब कुछ अधूरा था। उस समय उसके पास नाम लेने को भी एक पुस्तक न थी। वह कुछ पुस्तके लाने पुनः बाहर चल दिया।

पहले ही दिन से होटल का मैनेजर उसका निकटतम परिचित बन गया था। उसने उसके बिना कहे उसके ड्राफ्ट के सारे रुपए उसे दे दिए। "टेक दिस, आई शैल गेट द ड्रफ्ट कैशड् टुमारो।"

उसकी उस कृपा पर आभार-प्रदर्शन करता हुआ प्रमोद कुछ रुपये लेकर शेष उसी के पास छोड कर बाहर चला गया।

उस रात उसे ऐसी गहरी नीद आई, जैसे कई मास से वह सोया ही नही था।

नेवीगेशन सर्विस के तार, तत्पश्चात् प्रमोद के केबिलग्राम ने लखनऊ मे वकील साहब को हर्षातिरेक मे विह्वल कर दिया। प्रमोद के जन्म पर भी उन्हे इतनी प्रसन्नता न हुई थी, जितनी प्रमोद के पुनर्जन्म

के समाचार को जानकर हो रही थी।

कीर्ति भी केवलग्राम की अपनी कापी लिए उनके निकट चला आया।

जस्टिस मानसिंह प्रमोद के प्रति इधर कुछ विशेष आकर्षित थे। उसके प्रति सहज मोह, एक समवेदना और एक कौतूहल, उन्होने अपने मन मे पाया। और फिर वे स्वय ही तो उसे जहाज पर छोड आए थे। 'जलविहार' के डूब जाने का समाचार पा कर वे अत्यधिक शोकाकुल थे। प्रमोद की स्मृति रह-रह कर उनके मन को करोच रही थी। तभी आवेश मे उन्होने एक समाचार प्रतिमा को केवल द्वारा भेजा, जिसमे उन्होने लिखा कि प्रमोद भी 'जलविहार' मे था।

लन्दन मे जलप्लावन के समाचारो से त्राहि-त्राहि मची हुई थी। नगर मे सर्वत्र सहायता कार्य के लिए धन-जन जुटाए जा रहे थे। टेम्स स्वत. जलमग्न होकर इधर-उधर बह चली थी और हानि पहुँचा रही थी।

इग्लैण्ड का सारा पूर्वी किनारा त्राहि माम कर रहा था। असंख्य नर-नारी क्षतिग्रस्त होकर बिलबिला रहे थे। किनारे की रक्षापाँतो को तोडकर सागर का जल, भूमि को चीरता हुआ मीलो घुसा चला आया था। अन्धड, तूफान और बाढ से सारा इग्लैण्ड आच्छादित हो रहा था। नित नवीन समाचार आते थे।

यह भी ज्ञात हो चुका था कि अनेक जलपोत सागर मे फस चुके है अथवा डूब चुके है। जलमार्ग से आने वाले यात्रियो के स्वजन वहाँ अत्यधिक चिन्तातुर थे। किसी का लडका आ रहा था। किसी का पति विदेश-यात्रा से लौट रहा था। किसी की नव-यौवना कुमारी मना करने पर भी सैर को चली गई थी।

गवर्नमेन्ट के सारे कार्य रुक कर केवल सहायता की ओर झुके हुए थे। पुलिस, फौज, वालन्टियर्स, एयर, नैवी सभी विभाग सहायता कार्य मे सलग्न थे। सदियो से वैसा बवंडर उधर नही आया था। खाद्य-सामग्री, वस्त्र, औषधियो आदि के भडार के भडार सहायता के लिए खुल चुके थे। चिकित्सक, नर्सें, सहायक सभी समुद्र तट की ओर बढते प्रतीत होते थे।

प्रतिमा ने भी वे सारे समाचार पढ़े। एक साधारण सहानुभूति उसके मन मे आई और चली गई। कुछ भी उसे अपने स्थान से हिला न सका। अपने सहपाठियो से साधारण प्रश्न भी उस सम्बन्ध मे उसने एक-दो बार किए पर वे वहीं तक सीमित होकर रह गए। एक-दो बार चाह कर भी वह पीडितो को देखने न गई।

ओह, अनायास उसे चाय पीते-पीते अपने पिता का 'केबल' मिला। वह एकाएक कॉप उठी। अनजान मे ही वह उस काग़ज को थामे-थामे लड़खड़ा कर पलंग पर बैठ गई..।

उसने 'केबल' पुनः पढा। प्रमोद, लखनऊ वाले वकील साहब के पुत्र उस जहाज मे थे। और आज उस क्षण जीवन मे प्रथम बार किसी के प्रति अनायास वैसी सहानुभूति, वैसा आकर्षण एव वैसा-सा क्षोभ उसे हो रहा था। प्रतिमा सिहर उठी। तो क्या प्रमोद ने भी जलसमाधि ले ली? पर नही, ऐसा कदापि नही हो सकता। ओह, वह केवल मुझ से मिलने आ रहा था। वह अपने को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगी। ओह, एक व्यक्ति यो समाप्त हो गया और उसका बहुमूल्य जीवन, उसकी उत्कृष्ट साधना। अपने प्रति ऐसे आकर्षण का प्रथम मूल्याकन करके वह पश्चात्ताप से आर्द्र हो उठी। हाथ की पुस्तक एक ओर जा गिरी। वह पलग पर व्यथित होकर लेट गई।

अनेक बार प्रमोद की मुखाकृति के चित्र वह अपने मस्तिष्क मे बनाती और समाप्त कर देती। तब वह कई बार बुदबुदा उठी, "ओह, वह डूब गया, वह डूब गया। कभी कसकर वह अपने माथे को दाब लेती और कभी अपना हाथ ढीला करके पलग पर पटक देती।

और प्रतिमा के नेत्रो मे छिपे गोल-गोल मोती ढुलक कर कोमल गात को स्पर्श करते हुए गले की नीली नसो तक आ-आकर विलीन होने लगे।

तभी उसकी एक सहपाठिन ने उसे आकर झकझोर डाला। छिटक कर वह एक ओर खडी हो गई और बोली, "शि, वीपिग, बट व्हाई सो...तत्क्षण उस अग्रेज किशोरी ने पास पडे 'केबल' को देखा।

अनेक प्रकार से सहानुभूति भरे शब्दो मे वह प्रतिमा को सन्तोष देने की चेष्टा करने लगी। तुरन्त ही कौतूहल भरे शब्दो मे उसने कहा, "बट डार्लिंग, सम पर्सन्स हैव रीच्ड द कोस्ट। दे हैव बीन रेस्क्यूड। वी मस्ट सी एण्ड इन्क्वायर .।"

प्रतिमा झपट कर उठ बैठी। जैसे उसे नवजीवन मिला हो। एक बलवती आशा लेकर वह उठ खडी हुई और बोली, "रियली ओ .....।"

"यस, यस। आई हैव सीन द मार्निंग पेपर.. ।"

तब दोनो विचार करने लगी कि कैसे और कहासे ठीक पता लगाया जा सकता है। और अनायास अपने हाथ की दो उगलियाँ अपनी हथेली पर पटकते हुए प्रतिमा कह उठी, "ही इज सेव्ड. । बट व्हेयर टु इन्क्वायर.. । ब्राउनिग।"

तभी मिस ब्राउनिंग ने अपने कमरे से 'मार्निंग-पेपर' लाकर सामने रक्खा और कहा कि उनको साउथैम्पटन ही जाना चाहिए।

और प्रतिमा मिस ब्राउनिग को साथ लेकर प्रमोद की खोज मे चल दी। 'ट्यूब-ट्रेन' दौड रही थी। प्रतिमा का मन दौड रहा था। क्या अजीब बात हुई है आज, जीवन मे प्रथम बार। वह कभी किसी के लिए यो बेचैन नही हुई। उससे क्या मतलब ? होगा कोई। बेकार वह यो दौड़ी चली आई। एब्सर्ड। उसने अपनी स्टडीज का लास किया। वह कालेज जाने को थी। और चली आई यो साउथैम्पटन के लिए। पता नही वह 'डेड' है अथवा एलाइव। जहाज पर सैकडो मरे होगे। यहाँ इंग्लैड और आयरलैड मे सैकडो विध्वंस हो गए। यह तो क्रम है।

चलता ही रहता है। पर वह यो क्यो चली आई अपनी प्रकृति के विपरीत। और प्रतिमा ने एक बार साथ बैठी मिस ब्राउनिंग को देखा। उसी की ही भाति उसकी भी अवस्था थी। २०-२१ वर्ष होगी। स्वभाव से वह बडी मधुर और बडी सहानुभूति-युक्त थी। अपना सब कुछ देकर भी वह दूसरो की सहायक बनती। और बस पढना, जैसे एक बीमारी हो। सोते, खाते, चलते, उठने-बैठते, खडे-खडे, बस पढना। किताब, पत्रिका, अखबार, कागज जो सामने दिख जाए! सोने से पहले नियमित दो पेज पढ कर वह सोती थी। और उसकी यह बात सब ओर प्रसिद्ध हो चुकी थी। उस क्षण भी वह एक छोटी-सी किताब पढने मे सलग्न थी।

उसकी ओर देखकर प्रतिमा ने चाहा कि कह दे, "ब्राउनिग, लेट अस गो बैक।" किन्तु उसने सोचा, यो लौट जाना कितना अमानुषिक है। कोई क्यो न हो। एक व्यक्ति है। एक युवक है। स्वदेशवासी है। और पिताजी ने लिखा है। वह निश्चित ही उनसे मिलकर आया होगा। तो क्या डूब गया? और पिताजी का भेजा सन्देश भी उसके साथ ही डूब गया होगा। और वह कैसा होगा? स्वस्थ, सुडौल!

और जैसे मृत्यु का हन्टर उसके सामने चल रहा हो। वह सिहर उठी। कितना विषम है सोचना मात्र और जब किसी पर बीती होगी। और एक स्वस्थ युवक की आकृति अपने मन मे वह उतारने लगी। वह बुदबुदा उठी, 'उसे नही मरना चाहिए।'

तब वह पुनः मन ही मन बिगड उठी। व्यर्थ की उलझन। उसके नाम लेने मे ही अशान्ति। अजीब-सा आदमी है। व्यर्थ दौडती चली जा रही हूँ। नानसेन्स। अगेन्स्ट माई नेचर। पिताजी का तो सर फिर गया है। सूचना भेज दी, बेकार!

तभी मिस ब्राउनिग ने अपनी पुस्तक बन्द की। प्रतिमा विचारो से जगी। लगा साउथैम्पटन आ गया।

अन्तर्मन मे एक चेतना अवश्य थी। दोनो ने मिलकर बीसो

व्यक्तियो और अनेक आफिसो मे बातचीत की। पता लगाने की चेष्टा मे वह देर तक इधर-उधर घूमती फिरी और थक गई। किन्तु इस समय उसमे एक स्फूर्ति थी एक भावी आशा। प्रतिमा निरन्तर यह भी सोचती जाती उस महाप्रभु को उसने कभी देखा तो है नहीं। कहीं वह पास से ही निकल जाए और वह यो टक्कर ही मारती रहे। जो भी हो। ढूँढना ही है।

निकट से ही दो व्यक्ति वार्तालाप करते निकल गए जिससे लगा कि उस स्थान से कुछ हट कर पश्चिम दिशा की ओर भीड अधिक है।

प्रतिमा, मिस ब्राउनिग को लेकर उस ओर गई और ज्ञात कर पाई कि तीन घटे पूर्व यहाँ बचे हुए पैसेजर उतरे हैं।

सामने ही वह पदाधिकारी दिख गया जो सचमुच प्रमोद को वहाँ से भेज चुका था। पारस्परिक उचित सम्मान-प्रदर्शन के पश्चात् प्रतिमा के प्रश्न के उत्तर मे उसने बताया कि मि० प्रमोद नामक एक भारतीय, जिनका नम्बर १०७ था यहाँ आए है।

"एण्ड ही इज सेफ ..।" कहकर प्रतिमा ने अपने दोनो हाथो की मुट्ठी बाधकर अपने वक्ष पर टिका दी।

मिस ब्राउनिग व वे दोनो ही एक दूसरे से चिपट गई। वह कैसा आकर्षण था!

तभी उस अधिकारी ने अपनी स्मृति तीव्र करते हुए कहा, "ही हैड एन एड्रेस . ओ. .. आई रिमेम्बर . . मिस प्रोतिमो, यस यस, . . सम .सम .आक्सफोर्ड।"

एक क्षण ऐसा आता है जब अनजाने मे, भावी कानो मे कुछ गुनगुना जाती है। एक क्षण ऐसा आता है जब मिलन के मूक स्वर केवल अपने तक झनझनाहट उत्पन्न करके अचेत कर देते है। वह अपने सिवा कोई नही सुन पता। ऐसा लगता है, कही दूर आह्वान की ध्वनिया बज रही हैं, मिलन-बेला है, पुकार रही हैं। मधुऋतु, मधुमास

और मधुर क्षणों की पूर्व सूचना, वसन्त दे गया। और आज वसन्त था।

मनुआ डोले रे,
आम्र बौर फूले, कोयल कूके कूले .....
मन मतंग झूले .रे
केशर रग साज सजी, मन अनुराग रची, वन बसत नाचे रे।

प्रतिमा आज भारत का वसत मान पूर्व से ही बासन्ती साडी पहन कर कालेज जाने को उद्यत थी। तभी उसे पिताजी का 'केबल' मिला। और इस क्षण वह पलक मूंद कर सब कुछ सुन गई, जो सामने खडा अधिकारी व्यक्त कर रहा था।

तभी सचेत होकर उसने दूसरा प्रश्न किया "ओ.. ही . ही एम्बार्कड् हियर, .बट व्हेअर हैज ही गोन .।"

और मिस ब्राउनिंग ने अधिकारी को प्रतिमा का परिचय देते हुए कहा, "मिस प्रीति . ओ।"

एक मुस्कान की आभा मे अधिकारी ने कहना प्रारम्भ किया, "ओ, यस, ग्लैड टु मीट द मैडम। व्हाट ए नाइस जेन्टेलमेन ही इज। ए नाइस यूथ, ही डिडन्ट टच द मनी, आर एनी हेल्प ..व्हाटसोएवर! मस्ट हैव गान टु यु मैडम।"

सराहनाभरे वाक्यो को सुनकर प्रतिमा का मन हिलोरे लेने लगा। अब एक क्षण भी प्रमोद से बिना मिले रह सकना उसके लिए दुष्कर हो गया।

प्रतिमा उल्टे पैर ब्राउनिग के साथ लौट पडी।

: ४१ :

सुखद समाचार पाकर प्रतिमा इस हेतु शीघ्रता मे अपने होस्टल लौट आई कि कहीं प्रमोद उसे ढूंढता हुआ वहा न पहुँचे। उस दिन उसने दिन भर प्रतीक्षा की किन्तु आने वाला न आया।

वह सोच रही थी कि उस अधिकारी ने कहा था कि उसके पास मेरा पता है। पिताजी ने निश्चित ही पता दिया होगा। तब वह क्यो नहीं आया? उसे आना ही चाहिए था। कहीं कोई गडबडी तो नही। और वह तिलमिला उठी। अब उसके मन की स्थिति कुछ विचित्र रूप से परिवर्तित होती चली जा रही थी।

वह दो दिन कालेज नही गई। आने वाला तब भी नही आया। सौन्दर्य का प्रस्फुटन चिन्ता मे अनोखा-सा दिखता है। दोपहर के भोजन के पश्चात् अपनी लम्बी केश-राशि सुसज्जित शय्या पर पीछे की ओर बिखेरे अनमनी-सी, प्रतिमा अपने मन के तार उलझाए देर तक लेटी रही।

अनायास उसने सोचा, किसी भी परिचित अथवा अपरिचित से 'तू' या 'वह' का सम्बोधन सर्वथा अवाछनीय है। उसे परोक्ष मे भी 'उन' अथवा 'वे' का ही आश्रय लेना चाहिए।

और वे, ऐसे प्रेमी, मृदुल स्नेही, क्या, क्या सचमुच मृत्यु से यो लडकर मुझ तक आ पहुँचे है।

आत्मविस्मृति मे उसे नींद आ गई।

प्रमोद अपने निश्चयानुसार प्रतिमा से मिलने नही गया । यूनीवर्सिटी मे उसने लॉ-फेकल्टी मे स्थान प्राप्त कर लिया । तडपते रह कर भी वह अपने को रोक रखने की सामर्थ्य रखता था। उसके पास प्रतिमा का ठीक ठीक पता था किन्तु वह कैसे मिले ?

प्रथम भेट मे यदि प्रतिमा की ओर से, उस उपास्य की ओर से, जिसकी आराधना की आधार-शिला पर उसकी जीवन-राशि बधी रही है इस क्षण तक, यदि तनिक भी शुष्क-व्यवहार का बोध कर पाया वह, तो उसका हृदय बैठ जाएगा, उसका जीवन बैठ जाएगा । और प्रमोद नही गया । वह सब कुछ तब असह्य हो सकता है उसे ।

और प्रतिमा प्रथम भेट के लिए बावली हो उठी । अब उसे प्रतीत हो रहा था, उसका अन्तर्मन कह उठा था कि वे अपनी प्रकृति के अनुसार कदापि अपने आप नही आएगे ।

प्रमोद का स्वभाव बन चुका है वह सब । उसने अपने जीवन के मधुरिम दिवसो को किस यातना मे काटा है, यह वह जानता है। अपने पहाडी जीवन के कुछ मास उसे याद है। जलयात्रा के एकाकी क्षणो के पश्चात् उस प्रलयकारी जलपोत-विध्वंस की वीभत्स स्मृतिया अभी हरी है। लाइफबोट की यात्रा वह भूला नही है। वह तप चुका है। वह मज चुका है। किनारे आकर भी दूर रहने मे वह कोई अनोखापन नही पा रहा है। उस आदर्शवादी और स्वाभिमानी व्यक्ति की स्वेच्छा के वेष्टन मे लिपटी आगामी नैकट्य की सशक्त आशा का भार प्रतिमा को उठाना ही है, निश्चित। और वह नही गया।

प्रतिमा की गति मे जो चारित्रिक बल, जीवन-दर्शन की जो प्रतिष्ठा और अध्ययन की जो गरिमा परिलक्षित है, वह नारी का अनुपम चित्र है। उसकी एक स्वस्थ मार्ग-रेखा है, जिससे ससम्मानित, सुमधुर और पवित्र केन्द्रस्थल पर पहुँच कर उसे नवजीवन का अमरत्व मिलना ही है और वह चचल हो उठी है।

पिकाडेली मे प्रतिमा अपने वर्ष-दिन के उपलक्ष्य मे बालकों को वितरित करने के हेतु कुछ बिस्किट और टाफीज लेकर एक दुकान से निकली । उसी क्षण प्रमोद निकटवर्ती दुकान से ब्लेड का एक पैकेट लेकर बाहर आया ।

सहसा प्रमोद और प्रतिमा के नेत्र स्थिर हो कर रह गए ।

प्रमोद पहचान गया । वह विह्वल हो उठा । प्रतिमा अनजान थी, किन्तु उस नेत्रोन्मीलन मे न जाने क्या था ? वह कांप गई । वह घबराने-सी लगी । एक भारतीय उसके अपने देश का युवक, इतना आकर्षण प्रत्यक्ष था किन्तु वह भी दूषित मान, वह अपने बंडल की ओर दृष्टि घुमा कर आगे बढने को उद्यत हुई ।

प्रमोद उतावलेपन मे आगे बढ कर मिलना चाहता था । अच्छा अवसर था किन्तु उसकी दृष्टि मे वह भी असामयिक और अप्रासगिक था । बस वह वहीं स्थिर हो गया और वहा से दूसरी ओर आगे बढ गया ।

प्रमोद आज एक चित्र-सदृश बना हुआ था । उसने गैबर्डीन का सूट पहन रक्खा था । कोट के अन्दर से सफेद कमीज झाक रही थी। उस पर उसने रेशमी टाई बाध रक्खी थी । वैसे ही उसकी लम्बाई व शरीर के गठन ने उसके व्यक्तित्व मे उभार उत्पन्न कर रक्खा था और आज उसने क्रेपसोल पर ब्राउन रग का जो इग्लिश शू पहन रक्खा था, वह उसे एक दो इच और उठा रहा था । उसके पगचाप मे एक निराला-पन था, एक गहनता थी ।

उसकी उभरी-बडी आँखो ने जब पलको से पल भर मे प्रतिमा के रूप को पीना चाहा, तो प्रतिमा तिलमिला उठी । उस क्षण जैसे उसे एक बेचैनी-सी हो रही थी । और वह अपने फैले वक्ष मे दबती-उठती श्वासो को बिना दाबे ही आगे बढ गया । अपने चौडे माथे पर टिके फेल्ट-हैट को उसने एक हाथ से उतारना चाहा, किन्तु उसका वह दाहिना हाथ पेन्ट की जेब मे ही चुपचाप रुक गया ।

प्रमोद अपने होटल तो आ गया किन्तु आज उसकी अस्थिरता चरम सीमा पर थी। जीवन मे यह दूसरा दिन था, जब उसने प्रतिमा को देख पाया था। यो मस्तिष्क मे उसकी रूप-माधुरी के असंख्य चित्र खिंचे हुए थे किन्तु आज पिकाडेली से होटल तक आने मे उसे बस एक ही चित्र याद रह पाया .बस, उछट कर उस तक टिकी दो आँखें, और सिहर कर उनका लौट जाना ..।"

वह मुँह ढक कर तकिये मे समा गया। नस-नस मे चुभन ने उसे अचेत कर दिया।

रह-रह कर प्रतिमा को लग रहा था कि 'वे' ही थे। उस क्षण उसने अनुभव भी किया था कि वे आगे बढकर कुछ बाते करना चाह कर भी ठिठक गए थे। और गौरवर्ण, मोहक आकृति वाला एक स्वस्थ युवक उसकी गहरी काली पुतलियो के मार्ग से अन्तर्मन मे उतर कर उसे झकझोर रहा था।

आज उसका बर्थडे था। सदैव ही जस्टिस मानसिह ने उसके वर्ष-दिन पर बडी-बडी पार्टियाँ दी है। गत वर्ष भी लन्दन को प्रस्थान करने के पूर्व बम्बई मे आज के दिन एक सुन्दर उद्यान-गोष्ठी हुई थी। आज भी वह अनेक कार्यक्रम बनाए हुए थी। किन्तु आज मन मे एक विचित्र अभाव था। अपने कार्यक्रमो में वह किसी को निमन्त्रित करना चाहती थी, पर कैसे, क्यो और किसे ?

शाम की डाक मे प्रमोद को तीन पत्र मिले। एक कीर्ति का, दूसरा पिता जी का और तीसरा जस्टिस मानसिह का। पहले उसने जस्टिस महोदय का ही पत्र पढ़ा।

जलपोत के विनाश के पश्चात् यह पहली ही डाक थी जो प्रमोद को अपने देश से मिली थी।

जस्टिस महोदय ने लिखा था :

प्रिय बेटे प्रमोद,

खुश रहो। तुम्हारा पत्र मिला। 'केबल' भी मिल गया था। मैंने भी प्रतिमा को यहाँ से 'केबल' दिया था, लेकिन तब तक तुम्हारी कोई सूचना ऐसी नही मिल पाई थी, जिससे सन्तोष होता। अब इस पत्र के साथ ही प्रतिमा को भी पत्र लिख रहा हूँ।

भगवान् का लाख-लाख शुक्र है कि उसने तुम्हे ऐसी हालत मे बचा लिया। तुम बडे सिकन्दर हो। मै कैसे लिखूँ कि मैं बेहद खुश हूँ।

तुमने अपने पत्र मे लिखा, जिसे पढकर ताज्जुब हुआ कि तुम अब तक प्रतिमा से नहीं मिले। तुम्हे तो फौरन लन्दन पहुँच कर उससे मिलना ही चाहिए था। और जब ऐसी विपत्ति से बच कर वहाँ तक पहुँच पाए थे। बडी बुरी बात है। क्या शर्माते हो ? अच्छा, अब वह नटखट ही तुमसे मिल लेगी।

उम्मीद है खुश व तन्दुरुस्त होगे।

जवाब देना। प्रतिमा से मिलना। इतनी दूर अपने देश वालो का बडा सहारा रहता है।

तुम्हारा
मानसिह

प्रमोद क्या कहे कि वह मिल कर भी नहीं मिला। तब उसने कीर्ति और वकील साहब का पत्र पढा। कीर्ति ने तो उसी पुरानी चाल से हँसी की बाते लिखी थीं।

उसने लिखा था :

......तो तैर-तार कर पहुँच ही गए.. ...जीवट के हो, पहाड़ फोड़े, समुद्र सोखे और पहुँच ही गए .. ..यमराज भी दुआएँ दे रहा होगा ..... उसके ही वार खाली जा रहे है. ....तो दर्शन-मेला तो हो ही गया होगा......कुछ आगे भी......। दूर हूँ, थप्पड़ यहाँ तक नहीं आ पाएगा...... । वाह प्यारे, लन्दन और तुम। क्या बीत रही होगी ? एक हम ही शिंपाजी यहाँ कुलाचें मार रहे हैं...। पर दोस्त कुलांचे तुम

भी लगा रहे होगे...। अरे कम्बख्त लिख तो सही...कैसे क्या रहा...? न सही, जाएगा कहाँ......? आएगा तो यही ..। देख भई, इस बार पानी-वानी का खेल अच्छा नही...। हवा मे.. हवा मे...। पर लगा कर आनी और झक मारेगा आएगा...। वह पानी पर आने कहा देगी...

......जिओ। और न सही लन्दन की सडको के हाल तो लिखे यह स्ट्रन्ड है या अजायबघर। ओमनी बस पर बैठे.....। एक बार इधर से गए......तो क्या हुआ......? चेरिंगक्रास, पेडिंगटन और रीजेन्ट होते हुए आक्सफोर्ड स्ट्रीट मिल गई......खूब मिली .....। अरे वही आक्सफोर्ड......जहाँ तुम्हारा बुखार रहता है . ..। लेकिन तुम तो लिखते हो एक बार उधर से...। उधर से गए..। वल्लाह क्या गए? अरे हा...गए उससे मिले नही ..। तो तबियत ठीक है आजकल। और ट्राफलगर स्क्वायर, पालमाल और सेन्ट पाल......। ये सडके गिनाने से क्या मजा मिल रहा है हजरत, कुछ ठीक-ठाक हाल-चाल लिखो......। यहाँ तो हिन्दोस्तान भर मे एक ही माल है...। यह पालमाल क्या है...? ओ......लन्दन की चीज़ होगी, जियो। और पिकाडेली के नाम हमने भी सुने है...। हो सके तो बैडमिन्टन की एक चिडिया हमे भी भेज देना......पार्सल से।

और सब अभी नहीं, आगे भी। सलाम...। उनको भी। तुझे मेरी क़सम......कम-से-कम यह पत्र ज़रूर दिखा देना......उसे......और कह देना बडी मुश्किल से वहाँ तक पहुँच पाया है...अब वापस कर देना...नहीं...यार लोग झीकते ही रहेगे...लेकिन मुझे मालूम है, मुझे मालूम है, तू नही दिखाएगा।

इत्यादि.........

इस प्रकार कीर्ति का पत्र पढ़ते-पढते प्रमोद देर तक हँसता रहा। पिताजी के पत्र मे बडा सन्तोष और भगवान् को सहस्रो धन्यवाद व्यक्त थे।

यह अब कैसे चलेगा? अब तक प्रतिमा को उसके पिता का पत्र

मिल गया होगा और उसके द्वारा मेरे होटल का पता भी। तो आज नही तो कल तक प्रतिमा को अब निश्चित यहाँ आना है। और आज ही वह होस्टल मे कमरा ठीक कर पाया है। उसे आज होटल छोड़ना है। तब...वह रुक जाए। दो दिन। किन्तु तब होस्टल मे कमरा घिर सकता है। वह प्रयत्न करेगा। किन्तु वह अपने कार्यक्रम मे फेर-बदल क्यो करे। वह जाएगा।

वह तो केवल यह चाहता है कि प्रतिमा के अनजाने, दिन मे एक बार वह दूर से उसके दर्शन करके तब तक दिन बिताता रहे, जब तक प्रतिमा उसे स्वय कही दूर न ले जाए।

और आज प्रतिमा को पिताजी का पत्र मिल गया, जिसमे उन्होने उसे स्वयं जाकर प्रमोद से मिलने की बात लिखी थी और होटल का पता भी लिखा था। उन्होने यह भी पूछा था कि 'केबल' पा लेने के बाद भी जब वह प्रमोद को नही ढूँढ पाई तो उसने उन्हे सूचित क्यो नही किया। और प्रतिमा ने सोचा, सचमुच वह कितनी पागल है, उसने अब तक पिताजी को लिखा क्यो नही?

किन्तु इससे क्या? प्रतिमा आज खिल उठी। उसी क्षण उसने अपने को सज्जित किया। बड़े मन से उसने बिस्किट कलर की रेशमी साडी पहनी, उस पर उसी रंग का कसा हुआ ब्लाउज। गले के पास ब्लाउज की फैलावदार कटिंग को उसने उभरे मोतियो के लाकेट से भर दिया। चुने हुए सच्चे मोतियो की चमक से उसका खिला हुआ श्वेत गात और भी मोहक हो उठा। केशविन्यास और जूड़े की सजावट मे उसने आध घंटा लगा दिया और विभिन्न प्रकार से उसमे गोल छल्लो को पिरोया। कान के टाप्स बदल कर उसने पन्ने की कीले डाली और दाहिने हाथ की चार उंगलियों की अगूठियो को रूमाल से साफ़ करते हुए वह चलने को उठ खड़ी हुई। अदल-बदल कर दो-तीन

सेण्डल उसने पहनी किन्तु अन्त मे प्लास्टिक की लाल पट्टियों की ऊँची चप्पल पहन कर वह चल दी। कमरे को बन्द करते-करते उसने कुछ विचार करके उसे फिर खोला और अपना स्लेटी चेस्टर लेकर बाहर आ गई। ताला बन्द करके उसने कोट पहना। निकट के कमरे मे जाकर पढती हुई ब्राउनिग को छेडछाड करके उठाया और चल दी।

स्ट्रैण्ड के होटल डि लक्स के आफिस मे जाकर उसने ७२ नम्बर कमरे के सम्बन्ध मे जानना चाहा...।

अग्रेज मैनेजर ने बडे खेद-प्रकाश के पश्चात् बताया कि मि० प्रमोद दो घटे पूर्व कमरा खाली करके होस्टल चले गए है। उन्हे वहाँ स्थान मिल गया है।

और इस क्षण बढती हुई इस दूरी को समेटने की सामर्थ्य प्रतिमा मे कदापि नही थी। और आज उसने दृढ सकल्प कर ही लिया कि किसी प्रकार अब उनसे मिलना ही है।

इसी भाँति प्रेम के मौन दूत हृदय रूपी प्रागण मे अठखेलियाँ करते, दुलराते, झिझकोरते...हुए हास्य अथवा कौतुक क्रन्दन करते हैं और तब मन अधिकाधिक चचल हो उठता है। आशा-निराशा की लहरो मे डूबता-उतराता मन, मिलन की मूक बेला की सुखानुभूति मे तैरता, उद्वेलन के थैपेडो मे किनारे से दूर और दूर से किनारे पहुँच जाने को आतुर हो उठता है।

मैनेजर के स्पष्ट उत्तर देने के पश्चात् भी प्रतिमा ने चाहा कि वह उस कमरे को देखे। अन्तर्मन मे प्रतिमा चाह रही थी कि कम से कम उस क्षण वह उस स्थान को तो देख ले, वहाँ के तो दर्शन कर ले, जहाँ वे ठहरे थे। समर्पण की यो मूक ध्वनियाँ मन मे उठती ही है।

चौक कर भी मैनेजर ने बेयरर प्रतिमा के साथ कर दिया।

उस रिक्त स्थान को प्रतिमा ने बडे चाव से देखा। ड्रेसिंग-टेबल, राइटिग टेबल, कुर्सियाँ, कोच, पलंग सब रिक्त हास्य मे लीन थे। ऐसा लगा, वहाँ से कोई गया नही है, अभी लौट आने को है। पलग के एक

पाए के पास काग़ज का एक टुकड़ा मुड़ा मिला, जिसे प्रतिमा ने उठाया। देखा। प्र...ति...मा, और उसने उसे छाती से चिपका लिया।

प्रतिमा कमरे के बाहर हो गई। बेयरर को उसने चार पेनी दी और वह चल दी।

हताश प्रतिमा दूसरी बार प्रमोद की खोज करके निराशा लिए अपने होस्टल लौटी।

'रविवार को प्रतिमा के यहाँ वह स्वयं जाएगा'...यही उस पत्र का आशय था जो लौटकर उसे अपनी डाक मे मिला।

वह खिन्न ..किन्तु हँसते मन से पलक मूँदे कोच पर जा पड़ी।

: ४२ :

जयन्त एक विशेष कार्यवश देहली से लखनऊ आया था। वह ठहरा तो हजरतगज के निकट एक होटल मे था किन्तु कार्य-समाप्ति के पश्चात् पता लगाकर वह प्रमोद के यहाँ पहुँचा।

प्रमोद की मा उसे देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुई। क्षेम-कुशल के अनन्तर वे उसे ड्राइगरूम मे वकील साहब के निकट ले आई और स्वय कुछ जलपान लाने अन्दर चली गई ।

प्रमोद के पिताजी ने विस्तार मे प्रमोद के इग्लैण्ड जाने की बात और जहाज के डूबने की घटना का विवरण जयन्त को बताया। जलयान के डूबने की घटना को सुनकर जयन्त रोमाचित हो उठा।

उसने वकील साहब से बडे भरे हुए गले से कहा, "बाबूजी, मै तो प्रमोद भाई के साथ कई मास पहाड पर रहा हूँ। अनजान मे, अपरिचित होने पर भी, मेरी उनसे अत्यधिक घनिष्ठता हो गई। तब वे लखनऊ उतर आए और मुझे देहली जाना पडा। और उसके बाद एक दूसरे का कोई समाचार ही ज्ञात न हो पाया। मै तो उनसे मिलने की अत्यधिक उत्सुकता लेकर यहाँ आया था। ईश्वर की बडी कृपा थी कि इस प्रकार...ओफ...रोगटे खडे हो जाते है उस बात का याद करके... उनकी जीवन-रक्षा हुई।"

तभी प्रमोद की माँ अन्दर से जलपान की सामग्री ले आई। जयन्त व वकील साहब ने साथ ही जलपान किया।

जयन्त ने बताया कि वह आज रात मे ही देहली लौट जाएगा। हाँ, उसे अभी कीर्ति से और मिलना है।

कीर्ति का पता वकील साहब बता ही रहे थे कि कीर्ति वहाँ आ पहुँचा।

अनायास कीर्ति को सामने पाकर जयन्त उससे चिपट गया। वकील साहब उठते-उठते कहने लगे, "कीर्ति, प्रमोद की भाति तुम्हारी भी बड़ी उम्र है। अभी तुम्हारी चर्चा हो ही रही थी कि तुम आ गए। अच्छा हुआ, अब तुम अपने मेहमान को संभालो, मैं काम से चला।"

"और हाँ, प्रमोद का पत्र आया है, वह होटल छोड़कर होस्टल मे चला गया है, तुम्हें नमस्ते लिखा है .." वकील साहब ने बात पूरी करते हुए पुनः कहा।

"पत्र तो मेरे पास भी आया है ..अजीब सनकी आदमी है। लिखा है...अभी तक किसी से मिला नही हूँ .अब झूठ-सच परमात्मा जाने।"

यह सुनकर जैसे वकील साहब को एक ठेस-सी लगी। चलते-चलते उन्होने पुनः कहा, "कीर्ति, प्रमोद को झूठ बोलने की आदत नही है, यह तुम जानते हो...।" और वे खिन्न-मन बाहर चले गए।

बात की गभीरता को कीर्ति ने समझा। वह कुछ क्षण तक वकील साहब की पग-ध्वनि पर टिका रहा और तब मुडकर जयन्त से प्रश्न कर उठा, "कहिये, श्रीमान् जी, कहाँ से पधारना हुआ। और सब चैन-चान ..।"

"सब चैन ही है...।"

"ही है क्या, साफ कहो कुछ कसर है...क्या ?"

"जी . ।"

"जी क्या .? कहो, आसामी कहाँ है ? मौज की छन रही है न।"

कीर्ति के व्यग्यबाणो से जयन्त सुपरिचित था। हँसते हुए उसी प्रवाह मे वह भी उत्तर देने लगा, "कीर्ति, भई आसामी बड़ा खरा

निकला। और आसामी क्या, अब तो मेरी पत्नी...।"

"अच्छा जी, पत्नी भी, जिओ शेर! मानता हूँ तुम लोग आसमान फाड सकते हो। प्रेमी ठहरे न। एक वो देखो! हनुमान की तरह समुद्र लाघ गया, मेरा शेर! जिओ, भई जिओ! मानता हूँ! हाँ, तो कुछ हालचाल तो बताओ। और हाँ वह बुड्ढा ..पापा। वह भी है...।"

"है तो, लेकिन.. ऊपर है।" कहकर जयन्त ने छत दिखा दी।

"तब ठीक, ऊपर पहुँचा दिया। और हाँ, यह शादी-वादी कब कर डाली? यार, हमे खबर तक नही।"

"झूठ ..पर हाँ तुम क्या करो। यहाँ तो मामला ही कुछ दूसरा निकला। मैने तो प्रमोद भाई को पत्र भेजा था और उसी मे तुम्हे भी निमन्त्रित किया था।"

"अरे, क्या पूछते हो जयन्त, अपनी तो दुनिया ही सूनी हो जाती। हम तो कही के न रहते। सचमुच 'विडो' हो जाते। अरे वो जालिम, आए तो सही ..।"

इतने ही मे प्रमोद की माँ अन्दर से आ गई और निकट ही सोफे पर बैठते हुए कहने लगी, "देख बेटा, कैसा बचा है मेरा प्रमोद। उसके ऊपर तो जाने क्या.. ।"

"माताजी, यह आप ही का पुण्य-प्रताप है जो प्रमोद भाई का बाल बाँका नही हुआ।" जयन्त ने गभीर मुद्रा मे कहा।

"जी, और हमारा तो जैसे कुछ है ही नही...। शटअप।" कीर्ति ने मुँह बिचका कर आँखे तरेर दी।

सभी हँस पडे।

"अरे कह रे, तेरी माँ तो अच्छी हैं, और माधवी!"

"सब अच्छे हैं, माँ बनारस ही है। मै तो देहली रहने लगा हूँ। माधवी के लिए वर ढूँढ़ने आया था, यहाँ।"

"तू दिल्ली क्यो रहने लगा?"

"दिल्ली में एक बिल्ली मिल गई है।"

"बिल्ली नही माँ जी, पहाड़ से ही एक पहाड़िन पकड़ लाया है यह जयन्त। उसी को अपनी माँ से अलग दिल्ली मे रख छोड़ा है इसने।" कीर्ति ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्यो रे, माँ को छोड़ दिया।"

"नही माँ, कीर्ति भाई तो यो ही हँसी कर रहे हैं। देहली मे मेरी सुसराल हो गई है और वहाँ कोई है नही। लाखो रुपये की सम्पदा है।"

"हो गई है या बनाई गई है।" कीर्ति ने जयन्त के कान मे गुनगुनाया।

"तो घरजवाई बन गया है। माधवी को कोई लड़का ढूँढ़ा?" माँ ने पूछा।

"यहाँ लखनऊ मे भी एक-दो देखे है।"

"जातपात न माने तो ले मैं बताऊ...। और क्या जाने तेरी ही जात का हो।"

"अरे माँ, यह जात-पात बहुत मानता है। इसने ठेठ अपनी ही जात मे अपनी शादी की है।" कीर्ति ने उचक कर सोफे पर बैठते हुए कहा।

"चुप रे कीर्ति, बात करने दे।" माँ ने कीर्ति को डपटना चाहा।

"माँ, मै और जात-पात। और अब तो माँ को भी मैने राजी कर लिया है। बताओ तुम ही बताओ।" जयन्त ने उत्सुकता प्रदर्शित करते हुए पूछा।

"बताऊँ क्या? यह क्या ठूंठ-सा तेरे ही सामने बैठा है।"

मुड़कर जयन्त ने कीर्ति की ओर देखा। जैसे आज पहली बार वह कीर्ति को देख रहा हो।

"एहे......हूँ, ऐह......कहिए कुछ जच रहा हूँ। एम० ए० की सीढी लगी है। बाप के पास दस लाख नगद होगे और माँ के पास २५० तोले सोना! पचासो तोले जवाहरात। घर का अकेला हूँ। न

आगे न पीछे। न बहन। न भाई। बोलो, करो पक्का जल्दी।" और गर्दन घुमा कर कीर्ति अपनी क्लीनशेव मूंछों को दाहिने हाथ से तरेरने लगा।

और इस बार वह सोफे पर सीधा लेट कर बोला, "माँ, मँगाओ रोली, चावल, नारियल। अरे हाँ, तुम भी क्या कहोगी।"

"अरे हाँ, तुम भी क्या कहोगी माँ, मँगाओ जल्दी से रोली, चावल और नारियल। ये लाला भी क्या कहेंगे।" और कीर्ति की ओर मुड़ कर, "आओ, बढो आगे, दो हाथ.. ...।" जयन्त सुस्थिर हो कर कह रहा था।

प्रमोद की माँ व कीर्ति विस्मित-से जयन्त को देखने लगे। यह हुआ क्या ?

"माँ, देखती क्या हो, पक्का। सचमुच अन्दर से रोली, चावल और नारियल लाओ।" जयन्त ने बात दोहराई।

"अरे पागल हुआ है। यह भी कोई लड़कों का खेल है। बात करनी है तो इसके घर जा। इसके बाप से बात कर।" माँ ने बात की गम्भीरता को समझते हुए जयन्त से कहा .....।

"वह बात कर लूँगा बाद मे। नगद एक लाख और एक ब्यूक कार दूँगा। मना कौन करेगा।" जयन्त ने और स्पष्ट करते हुए कहा।

तब कीर्ति की ओर मुडकर जयन्त बोला, "कहिए, क्या सोच-विचार हैं ? सारी बोलती हिरन हो गई।"

"साडी और ब्लाउज तो मै जानता नहीं ! लेकिन यह मामला संगीन जरूर है ! अपनी हैसियत के बाहर। फिर भी बोलना तुम्हे है। बोले जाओ। मुझसे जब कहोगे, मै भी बोल निकलूँगा।" कीर्ति कब दबने वाला था।

"तो कहो, यस।" जयन्त ने हाथ बढाते हुए कहा।

'यस .....।" कीर्ति भी दोहरा गया।

"पक्का......।" जयन्त हर्षोन्माद मे कह गया।

और जयन्त के इस बार के आग्रह पर माँ अन्दर से सचमुच रोली-चावल ले आई ।

जयन्त ने कीर्ति के माथे पर रोचना लगा दिया और जेब से निकाल कर इक्यावन गिन्नी उसके हाथ पर रख दी ।

"ओ गाड, ठीक भेजा......।" कीर्ति पैरों की सम और थाप मिलाने लगा ।

तभी आगे बढकर जयन्त ने पाँच गिन्नी प्रमोद की माँ के हाथ पर रख दी ।

"और भेज दिया गाड......।" कीर्ति अपना काम कर रहा था ।

"यह भी खूब रही......।" माँ ने रोली की तश्तरी मेज पर टिकाते हुए कहा ।

"खूब क्या रही माँ, मै तो निकला ही इसीलिए था ।" जयन्त ने हँसते हुए कहा । "और माँ, अब जाता हूँ इनके पिता के पास । देखो, क्या आनन्द आएगा इस शादी मे ।" जयन्त ने आगे की बात जोड़ दी ।

"और हम भी आज घर से इसीलिए निकले थे.. .. ।" कीर्ति पुनः सोफे पर बैठ कर गिन्निया गिनने लगा । "एक,दो, दस. .बारह, पन्द्रह, इक्यावन ।"

इतने ही मे सामने से वकील साहब ने कमरे मे प्रवेश किया ।

वकील साहब को देखते ही कीर्ति बोला, "और भेजो गाड......।"

वकील साहब ने देखा, कीर्ति साहब ठाठदार रोली-चावल का टीका लगाए सोफे पर डटे है और कुछ-कुछ बुदबुदा जाते हैं ।

हाथ मे नारियल देख कर वे बोले, "यह क्या जनाब ?"

"शादी तय हो गई, जी हाँ अभी-अभी, देखते-देखते, बात करते-करते......बस चट-पट......और देखिए इक्यावन......।" कीर्ति ने जेब से गिन्निया निकाल कर वकील साहब के हाथ मे रख दी, "लीजिए गिनिए ।"

अलग हटकर वह कहने लगा, "वकील साहब के लिए भी भेजो, गाड। ये खाली नही रहने चाहिएं।"

"कुछ ठीक बताओ। यह हर वक्त हँसी......।" वकील साहब ने बैठते हुए कहा।

"बाबूजी, बिलकुल ठीक कह रहा हूँ। आगे का हाल पर्दे पर। माँ बताएँगी।" बड़े अदब से सीधे खड़े हो कर कीर्ति ने कहा।

"ठीक ही है। यह देखो, पाच गिन्नी मुझे भी मिली हैं।" मा ने वकील साहब से कहा।

"वकील साहब को और भेजो गाड।" कीर्ति किनारे से अब भी बुदबुदा रहा था।

"और देने वाले कहाँ छूमन्तर हो गए? लड़की कैसी है?" वकील साहब ने सहज भाव से प्रश्न किया।

"लड़की देखी हुई है और गिन्निया देने की धृष्टता मैने की है बाबू जी।" जयन्त ने विनम्र स्वर मे कहा।

"अभी-अभी तो मै तुम सब को अच्छा-भला छोड़ गया था।" वकील साहब ने अपनी पत्नी की ओर संकेत करते हुए कहा।

"और अब क्या हम लोग पागल दिख रहे है। ठीक है, अभी तो शुरुआत है...।" कीर्ति ने हँसते हुए कहा।

"जल्दी भेजो गाड।" कीर्ति जैसे माला जप रहा हो।

और आगे बढ कर पाच गिन्नी जयन्त ने वकील साहब के हाथ मे रख दी।

"भेज दिया गाड, भेज दिया। व्हेरी व्हेरी गुड।" और आगे बढ़ कर कीर्ति ने जयन्त की उस जेब को हिलाया, जिससे वह गिन्निया निकालता था। और पुनः बोला, "ओ गाड, अभी और है। समझा बाबू जी, और भाभी के लिए।"

कीर्ति के इस बाल-स्वभाव पर सभी हँस रहे थे। वकील साहब ने गिन्नियो को जयन्त के सामने बढाते हुए कहा, "अरे भाई, मै इस लड़के

का बाप नही हूँ। उस तक तुम्हे अभी जाना है।"

तब प्रमोद की मा ने वह सब कुछ बताया, जो वहा हुआ था।

"बड़ा अच्छा है। काश, शादिया इसी प्रकार तय हो जाया करे। लेकिन कीर्ति, तुम्हे तो अपने बाबू जी से कहना ही होगा। जाओ, इन्हे ले जाओ, लेकिन ऐसे नही, मै चलता हूँ। मै कह दूँगा, मैने तय किया है, सब कुछ और बात पूरी हो जाएगी।

"जब रोली-चावल लगा कर ही लाए है बडे भैया तो क्या मुझ मे यह भी हिम्मत है कि मै मना कर दूँ। और आप ने तो सब समझ कर ही किया होगा।" कीर्ति के पिता ने वकील साहब का सम्मान करते हुए कहा।

"समझा तो प्रमोद की मा ने है।" वकील साहब ने बात स्पष्ट करते हुए कहा।

"वह तो इससे भी बडी बात है।" कीर्ति के पिता ने संभल कर बैठते हुए कहा और पान का डब्बा वकील साहब के आगे बढ़ा दिया।

कीर्ति महाशय बलि के बकरे की भाति शान्त बैठे थे। तभी सब उस ओर देख कर हँस दिए।

सूखे-से मुँह से कीर्ति बोल पडे, "अब देखिए बाबू जी, यह भी अच्छी रही। मै आप से प्रमोद के यहा जाने को कह गया था न। और लीजिये शादी तय हो गई। और यह लीजिए इक्यावन गिन्निया और ये रहे आपके समधी साहब या मेरे साले साहब।"

"तुम ऐसे ही पकडे जाने चाहिए थे।" कीर्ति के पिता जी ने हँसते हुए कहा। और वकील साहब ने भी हँसी मे साथ दिया।

और बात की बात मे जयन्त ने भेट स्वरूप किसी को ग्यारह, किसी को पाच, किसी को दो, किसी को एक गिन्नी अथवा फुटकर रुपए आदि देकर सगाई की रस्म पूरी कर दी।

जब आतिथ्य-सत्कार की बात आई तो जयन्त ने कह दिया, "माधवी मुझ से छोटी है बाबूजी।"

आनन्द-समारोह के बाद जयन्त सबसे विदा लेकर चल दिया। वकील साहब अपने बंगले चले गए।

कीर्ति व जयन्त बाहर तक साथ आए।

जयन्त बोला, "कहिए।"

"यस. .।"

"यस...।" और दोनो ने हँसते हुए हाथ मिला लिए।

"लड़की तो वही है न तुम्हारी बहन...।" कीर्ति ने धीरे से कहा।

"क्या मतलब।" जयन्त तनिक गम्भीर होकर बोला।

"वह तो देखी हुई है।" कीर्ति ने बात समाप्त कर दी। दोनो ही हाथ मे हाथ डाल कर हँसते हुए बाजार चल दिए।

मकान के छज्जे पर से घर की स्त्रिया व बच्चे दोनो को देख कर खिलखिला कर हँस रहे थे।

"एक बात कहे देता हूँ मि० जयन्त, शादी प्रमोद भाई को इंग्लैण्ड से बुलाने के बाद ही होगी।" काफी हाउस मे 'टमाटोसैन्डविच' का टुकड़ा मुँह मे डालते हुए कीर्ति ने कहा।

"अब मुझे क्या चिन्ता है ? भले ही तुम भी इग्लैण्ड हो आओ और लौट कर शादी करो...।" जयन्त कोल्डकाफी का एक घूंट गले के नीचे उतारते हुए बोला।

"मै और इंग्लैण्ड ! ओ बाप रे ! मुझे वैसे ही आँधी-पानी से डर लगता है दूसरे इश्क भी मुझसे दूर ही रहता है।" कीर्ति ने अपने दोनों गालो पर अपने हाथो की उंगलिया थपथपाते हुए कहा। कुछ रुककर ..

"अच्छा छोड़ो, कम से कम यह तो बताओ, हम लोगो के चले आने के बाद गाडी कब जंकशन पर पहुँची...।" कीर्ति ने कुर्सी पर से उठते

हुए कहा और हाथ धोने चला गया।

तभी काफी हाउस मे, एक सज्जन अपने साथ यौवन की उठती अंगड़ाइयों को समेटे एक लडकी को लिए हुएकोने की मेज पर आ बैठे और उस मेज से बैरा कुछ आदेश लेकर चला गया।

इतने मे कीर्ति हाथ धो कर आ बैठा और सामने आ कर बैठे नवागन्तुक व नवयौवना को देखकर सकेत से जयन्त को उधर देखने के लिए कहता हुआ बोला, "उधर देखिए।"

जयन्त ने एक दृष्टि उधर दौडाई और लड़की के रूप के निखार, केशविन्यास और वेशभूषा को देखकर इतनी शीघ्रता से अपनी आखें लौटाल ली जैसे किसी कोठे के जीने पर जाते-जाते लौट आया हो। कौतूहलवश उसने इतना प्रश्न अवश्य किया, "कौन है?"

"एक प्रोफेसर साहब और उनकी एक शिष्या।" कीर्ति उधर ही देखता-देखता कह गया।

"तो किस्सा क्या है?" जयन्त ने बात दोहराई।

"तो किस्सा क्या है? वाह मि० जयन्त, आप भी खूब है। अरे वही प्रेम-रोग। ये हजरत हमेशा के नम्बरी थे। अब सब छोड-छाड़ कर कहते हैं एक का पल्ला पकडा है। पत्नी घर पर है। सब चौराहे झाक आए है, अब कहते है, बस इसी पर मरता हूँ। और उन रूपकुमारी जी को पढाते थे। अब काफी हाउस मे लिए घूमते है। यूनीवर्सिटी के लड़के तो हर समय प्रोफेसर साहब का स्वागत करने के लिए तैयार फिरते है, मुझे तो आश्चर्य है, ये यहा आ कैसे गए?"

और एक ओर से बैरा सामने की उस मेज पर काफी की ट्रे रख गया। तत्क्षण दूसरी ओर से एक युवक हाथ मे स्टिक लिए तनिक तीव्र स्वर मे आकर बोला, "प्रोफेसर साहब, आपको बाहर याद किया जा रहा है।"

तुरन्त कीर्ति ने जयन्त से कहा, "भैयाजी, प्रोफेसर साहब के उपासक भेंट-पूजा लेकर स्वागतार्थ पधारे हैं।"

कीर्ति और जयन्त दोनो ही अपनी काफी भूल कर सामने की मेज की ओर आकर्षित हो गए ।

कीर्ति बोला, "वह देखिए, प्रोफेसर साहब और उनकी ग्रीन परी की दशा तो देखिए । लड़को ने इसका नाम ग्रीन परी ही रख छोड़ा है मि० जयन्त ।"

उत्तर पाकर पुनः तीव्र स्वर मे उस युवक ने कहा, "कहिए, बाहर क्या कहदूँ । आप है कि मै इतनी देर से खडा हूँ, बोलते ही नही हैं ।"

प्रोफेसर साहब ने अपनी प्रियतमा को सामने बैठा देखकर अपने गर्व और अधिकार का स्पष्ट प्रयोग करते हुए कहा, "बाहर जाओ...।"

युवक चुपचाप बाहर चला गया ।

बाहर से एक साथ कई स्वर आए, "बाहर आने दो साले को ।"

जब प्रोफेसर साहब की दृष्टि कीर्ति से मिली तो बाहर दिखाई दिया कि पचीसो लडके प्रोफेसर साहब की प्रतीक्षा कर रहे हैं । बात की बात मे काफी हाउस का वातावरण काफी से भी अधिक गरम हो गया । वहाँ बैठे कई सम्भ्रान्त व्यक्तियो का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ । होटल मैनेजर, काउन्टर छोडकर बाहर झाकने लगा । रेस्ट्रा के बैरे सामान ला-लाकर मेजो पर रखते जाते किन्तु उनकी दृष्टि कभी बाहर जाती और कभी कोने मे बैठे मेहमान पर टिक जाती ।

और प्रोफेसर साहब तथा ग्रीन परी की दशा । किसकी 'काफी' किस की 'चाय' । ऊपर का घूट ऊपर और नीचे का नीचे । प्रोफेसर साहब के पेन्ट की क्रीज टेढी और मोहरी ढीली हुई जा रही थी । प्रोफेसर साहब सोच रहे थे, इज्जत तो गई ऐसी-तैसी मे, ऊपर से मार जो पड़ेगी तो...। कई अवसर बचा चुके थे । आज फँस गए ।

और वे ग्रीन परी ! उरोजो के निपिल्स से एक इन्च हटकर आगे और पीछे आधी कमर तक की कटिग का शानदार नया ब्लाउज और अधिक कसता चला जा रहा था । उसकी ऊपर उठी बाहे दबती चली जा रही थी । और वे कजरारी अँखियाँ सिमट कर बन्द हो जाना चाहती,

थी। और वे बावहेयर,फैल कर नागफॉस बने जा रहे थे। गुलाबी गाल, रंगीन ओठ और चंचल दृष्टि रंग मे प्याले की ब्राउन काफी बने जा रहे थे। लम्बे लाल नाखून, मेज का कोना करोदने का काम कर रहे थे। उस क्षण डैडी—पिता जी और पप्पी—माताजी—की यींद भी भली प्रकार सता रही थी। और वह कुढन—"इससे तो हजरतगंज न आई होती, और यह प्रोफेसर का बच्चा .अपने साथ मुझे भी घसीटेगा .हाय, क्या होगा ?"

और प्रोफेसर साहब के मन मे रोमान्स की नई-नवेली के सामने ही उनकी कुदशा अभी होने को थी। और ऐसा अपमान, स्टिके लिए सर धुनने को सामने खडे उन्ही के पढ़ाए लडके। तब आसपास मेज पर बैठे भले लोग, स्त्रियॉ, यह मैनेजर, बैरे क्या सोच रहे है ? अभी क्या है ? आगे क्या सोचेगे ? और यह सूट, यह घुँघराले बाल और यह चॉद, ओह जैसे बडा दर्द हो रहा है, पिलपिली पड गई है जैसे। और, और, और सामने बैठी नीलिमा, और—और नरही के चौराहे पर खड़े बीसो तागे वाले, और सामने चौराहे पर हाथ घुमाते हुए ट्रैफिक के कई सिपाही, और रास्ता चलते सैकडो लोग, दूर तक के दुकानदार और सामने से निकलती मोटरो मे बैठे व्यक्ति, उफ ..सभी देखेगे ..मुझे, मुझे कभी नहीं, ऐसा नही हो सकता, साले पाजी कही के। उनसे क्या ? लेकिन सेक्रेटेरियेट मे बैठे पन्तजी और गुप्ताजी तक बात जाएगी. काफी हाउस मे एक प्रोफेसर साहब .ऐसा कभी नही होने दूँगा। पर सेक्रेटेरियेट है ही कितनी दूर, और एजूकेशन का हैड क्लर्क मुझे सूरत से पहचानता है, लेकिन सूरत तो रो रही है, वह क्या कहेगा.. ? यही न कि प्रिय जी के सामने प्रेमी जी पीटे जा रहे है।

सब से अधिक आनन्द सामने बैठे कीर्ति महाशय को आ रहा था। वे मन-ही-मन खिलखिला कर दोहरे हुए जा रहे थे।

और हिस्ट्री के चन्द्रगुप्त, हुमायूँ, अकबर, बाबर, तानसेन, और सब से ज्यादा बीरबल याद आ रहे थे। कोल, भील, संथाल, अंगरेज

और अफगानी, ओ.. अफगानी तो गर्दन पकड लेता है, और गाधीजी, नेताजी, नेहरूजी...यानी मरे-जिन्दे सब सामने नाच रहे थे। प्रोफेसर साहब हिस्ट्री मे काबिल हैं न। काफी हाउस नाच रहा था। मेज-कुर्सियाँ घूम रही थी।

चलते समय मिले चुम्बन की सीत्कार का ध्यान कर नीलिमा के ओठ उस क्षण ठिठुर रहे थे। उफ.. वह उस समय स्वय कह रही थी, "ऐसे एकान्त को छोडकर कहाँ काफी हाउस की सूझ रही है।" किन्तु, यह भला आदमी न माना और न माना। क्या होने को है?

किसी तरह साहस बटोर कर, भ्रान्त अहमन्यता प्रदर्शित करते हुए बड़े ठसके से प्रोफेसर साहब अपनी कुर्सी से उठते हुए बोले, "घबराओ नही, मैं पुलिस को अभी फोन करता हूँ।"

तभी अटकते हुए वह बोली—"न न न, पिताजी खा जाएँगे, हाय-हाय, मै आई ही क्यो?" लेकिन देखो, उनमे रमेश जरूर होगा। वह हो तो उसे बुला लो। मैं बात करलूँ. ।"

"मै बुलाऊँ और तुम बात करोगी। तुम्हे पिताजी खा जाएँगे.. । और यहाँ मुझे लौडे जो खा जाएँगे।" कहते हुए प्रोफेसर साहब काउटर की ओर बढ़े। बड़ी भर्राई आवाज मे उन्होने मैनेजर से टेलीफोन निकट लाने को कहा।

ताली का गुच्छा घुमाते हुए मैनेजर बोला, "क्या बात है जी, मुझे बताइए मैं कुछ मदद करूँ।"

"कुछ नही, कुछ नही... ।"

और बाहर से एक आवाज़ आई, "घसीट लो बाहर।"

कीर्ति से न रहा गया। वह उछलकर प्रोफेसर साहब के पास पहुँचा, और जोर-जोर से उनसे हाथ मिलाता हुआ बोला, "हल्लो, हल्लो मि० खन्ना, क्या मामला है, क्या परेशानी है...?"

"कुछ नही, कुछ नही... ।" किन्तु प्रोफेसर साहब के हवास गुम थे।

"ओ, यस .मि० कीर्ति। कुछ परेशानी नही, जरा इधर सुनो।"

काउन्टर से किनारे हटकर प्रोफेसर साहब ने कीर्ति से कहा, "मि० कीर्ति, ये कुछ बदमाश लडके इकट्ठा हो गए है, जरा उन्हे पैसीफाई तो करो...।"

"लेकिन बात क्या है मि० खन्ना ?" कीर्ति ने मुस्कराते हुए पूछा।

"कुछ नही साले बदमाश है, एक-दो को 'कापी' करते पकड लिया था।" प्रोफेसर साहब उस क्षण नीलिमा की ओर असहाय दृष्टि से देखते हुए कह गए।

"ओ, यह बात है ।" और कीर्ति हँस दिया।

यो ही प्रोफेसर साहब कुछ सकपका गए। तभी कीर्ति ने नीलिमा की ओर दृष्टि फेंकते हुए तनिक ऊँची आवाज मे कहना प्रारम्भ किया, "बडी बदतमीजी की बात है। इतनी हिम्मत! कुछ तो लिहाज किया होता। आखिर आप प्रोफेसर है, उन्हे पढाते है। लेकिन कैसे सूँघ लिया उन्होने आप लोगो को. ।"

प्रोफेसर साहब चुप थे। कीर्ति ने पुनः कहा, "देखिए, देखता हूँ। किन्तु मि० खन्ना कम-से-कम मुझ से तो बात ठीक ही बतानी चाहिए थी।" कहकर कीर्ति बाहर जाने लगा।

जयन्त ने आगे बढते हुए कीर्ति को पुकार कर कहा, "क्या बात है ? मैं आऊँ ?"

"बात सब ठीक ही है। बैठे रहो, अभी आया...।" कहकर कीर्ति बाहर निकल आया।

बाहर एकत्र अधिकाश स्टूडेन्ट कीर्ति के परिचित थे और उससे जूनियर भी। कीर्ति को सारी यूनीवर्सिटी जानती थी। कीर्ति ने सब को एक ओर ले जाकर धीरे से कहा, "भई सुनो, जनाब की हालत तो इस वक्त बहुत खस्ता है, अब इस वक्त जाने दो। काम तुम्हारा हो ही गया। फिर जैसे कहो।"

"अरे भाई साहब, देखिए न, साले की यह हिम्मत, यहाँ तक ले आया।" कई स्वर एक साथ सामने आए।

"ठीक है। उस तितली का दम तो पहले ही घुट गया होगा। यह जगह ठीक नहीं है। फिर कभी।" कीर्ति ने सबको शान्त करते हुए कहा।

"हम मान लेंगे भाई साहब, किन्तु, कम से कम एक काम कर दीजिए। इस वक्त हम छोड़ देंगे। उस नीलिमा की बच्ची को यों ही अकेले हमारे सामने से जाना होगा। बस, हम वापस।" क्यों बे रमेश, ठीक है न।" एक लड़के ने कहा।

"इससे क्या होगा ?" कीर्ति ने प्रश्न किया।

"होना क्या है, बस, उन्हें मजा आ जाएगा। वह देखिए सामने उनके बापजान भी तो उनका इन्तजार कर रहे हैं...।" उनमें के एक लड़के—रमेश—ने कहा, जो नीलिमा के निकट कभी रह चुका था।

कीर्ति अन्दर गया और प्रोफेसर साहब के मित्रों का प्रपोजल उनसे कह सुनाया। साथ ही यह भी कि उन्हें कम-से-कम हरेक से एक-सी हरबेबाजी नहीं करनी चाहिए। कम से कम उससे उन्हें कारण छिपाते हुए शरम आनी चाहिए थी।

प्रोफेसर साहब आवश्यकता से अधिक डूबे जा रहे थे। किन्तु बात सुनकर बोले, "ये अकेली..."

"नहीं तो दुकेली ..। जाइए, आप भी जाइए।" कहकर कीर्ति अपनी सीट पर जाने लगा।

नीलिमा बिना कुछ कहे काफी हाउस के बाहर हो गई।

बाहर से दो प्रकार के स्वर देर तक हाउस के अन्दर गूँजते रहे। "खन्ना साला छोड़ भागा, खन्ना साला छोड़ भागा...।"

"नालायक, बेहया, बेशर्म. .कहाँ है वह प्रोफेसर का बच्चा. .।" "नीलिमा के पिता जी, बाहर प्रतीक्षा में खड़े हैं, यह उनकी आवाज है जयन्त भाई।" कीर्ति ने काफ़ी जोर से कहा।

प्रोफेसर देर तक कीर्ति की ओर घूरता रहा

कीर्ति ने जयन्त से कहा, "क्या मजा किरकिरा किया है शाम का, इस प्रोफेसर की दुम ने। यह आजकल के नये प्रेम का रूप देखा जनाब।"

कीर्ति व जयन्त देर तक कपूर होटल मे ऊपर के कमरे मे बैठे बातचीत करते रहे। जयन्त वही ठहरा था।

प्रसंग पिछली बातो पर रुका रहा। निवेदिता के विषय मे कीर्ति पहले से ही उत्सुक था। उसने प्रश्न कर दिया, "तो निवेदितादेवी के क्या समाचार है! वे ठीक तो है।"

"अरे कहॉ ठीक है, कही सर दर्द, कही हुच-हुच और कही ओ-आ।"

"ओ, ये मामले है, तो वन, टू, थ्री ।"

"कीर्ति, तुम भी खूब गाठे खोलते हो।"

"अच्छा यह तो बताओ, पहाड के बाद कैसी क्या बीती . ?"

"बाद मे, सब व्यवथित हो ही गया। आप लोग तो चले आए थे। मै कुछ दिन और पहाड पर रहा। यो ही एक दिन मैं व निवेदिता ड्राइंगरूम मे बैठे वार्तालाप कर रहे थे। पापा के देर तक आने की आशंका नही थी। किसी बात पर निवे बडी जोर से खिलखिला कर हँस रही थी कि सामने से मि० पापा आ गए। मुझे सामने देखते ही जैसे उनकी आँखो मे खून उतर आया। वे बिना बोले किन्तु कॉपते-कॉपते पास के छोटे कमरे मे चले गए। उनके पीछे उनका पाजी मैनेजर था।

"निवेदिता ने उसी समय उनकी देख-भाल की। उसके बाद उन्हे होश आया ही नहीं। कभी-कभी बेहोशी मे वे बडबडाते, 'नीतू . डाइंग...यू लव ..स्काउण्ड्रल ..लव।'

"दूसरे दिन संध्या को पापा सिधार गए।"

"पहले तो मै, मॉ व माधवी को बनारस छोड गया तब निवे के साथ देहली गया। वहॉ पहला काम किया गया मि० मैनेजर का गेट आउट।

"मैने देखा, देहली मे निवेदिता का कितना मान हुआ तब। पारसी समाज ने उसको पापा की एडाप्टेड-डाटर के रूप मे मान कर उसका बड़ा स्वागत किया। बडे से बडा आदमी उससे मिलने आता।

"एक सप्ताह बाद निवेदिता ने मेरे साथ विवाह की तिथि घोषित कर दी। इस पर तो पारसी-समाज ने बडा बवंडर उठाया। पर मैने वहा निवेदिता की दृढता देखी, उसकी चतुराई देखी और विवेकबुद्धि देखी। उसने तनिक चिन्ता नही की।"

"तकदीरी हो, दोस्त।" कीर्ति बीच मे बिना बोले न रह सका।

"तब निवेदिता ने वहाँ के लोगो को आडे हाथो लेते हुए कहा, 'पापा ने बिल मेरे नाम की है। वह दूसरी और कानूनी बात है। किन्तु मै पारसी नही, यह भ्रम और तूफान कैसा?' और निवेदिता पारसी नही है यह जानकर तो वे लोग और भी हैरान हुए। खैर, ठाठ से शादी हुई। बनारस के लगभग दो सौ लोग होगे। कामिनी के पिता भी थे। दंग रह गए देखकर।

"आश्चर्य की बात यह रही कि ठीक शादी के समय लग्न-मण्डप मे न जाने किधर से कामिनी आ गई और सामने ही रक्खे रोली-चावल को उठा कर मेरे माथे पर टीका लगा दिया। अधिकाश लोग बनारस के थे। सभी मुझे व उसे जानते थे। कामिनी के पिता सामने थे। सब लोग देखते ही रह गए। निवेदिता भी अनायास चकित हो गई। किन्तु उसके चेष्टा करने व बुलाने पर भी कामिनी वहाँ नही रुकी और तुरन्त बाहर हो गई।

"कामिनी के पिता का कहना था कि वह कई महीने से विदेश यात्रा को गई हुई है। सम्भव है कि वह तब आ गई हो। जो भी हो।

"इससे भी विचित्र प्रसंग एक दूसरा है, उसे भी विस्तृत रूप मे बताऊँगा किसी समय। अब गाडी का समय हो रहा है। चलने दो।"

कीर्ति उस क्षण अपनी प्रकृति के विपरीत बडे ही मौन भाव से वह

सब सुन रहा था। उसने तभी एक प्रश्न किया, "तो अब कामिनी कहाँ होगी ?"

"बनारस।"

"मेरी शादी मे तो भेट कराओगे।"

"यदि आई तो।"

"ठीक है। तो हाँ, सत्तेप मे ही सही वह दूसरी बात तो बताओ।" कीर्ति ने जयन्त से अत्यधिक अनुरोध किया।

"क्या सुनोगे। शादी के तीसरे दिन ही हम लोग 'हनीमून' के लिए चले गए पहाड पर। निवेदिता के उसी बंगले मे रहे। रात्रि मे पलंग पर लेटे-लेटे निवेदिता उठी और किसी काम से पापा के कमरे मे गई। इधर-उधर हाथ चलाने मे उसे पापा के बिस्तर के सरहाने एक डायरी मिल गई जिसे वह उत्सुकतावश मेरे पास ले आई। हम दोनो ने ही उसे सारी रात पढा और वैसे ही सबेरा हो गया।

"उसमे था क्या.. ?"

"मानव का एक रूप। सुनाऊँगा किसी समय।" कहकर जयन्त सामान ठीक करने लगा।

●

: ४३ :

आसपास यह चर्चा होने लगी कि प्रमोद एक विशेष व्यक्ति है जो उस भयंकर जल-प्लावन और जलपोत से बच कर आया है। अनेक बार उसने पृथक्-पृथक् व सामूहिक रूप से अपनी रोमाचकारी कहानी अपने परिचितो व नवागन्तुको को सुनाई। कभी-कभी वह ऊब भी जाता।

आकर्षण स्वाभाविक ही था और इतना बढा कि परिचितो ने इसी हेतु लन्दन यूनीवर्सिटी के सेनेट हाल मे एक समारोह केवल प्रमोद के भाषण को लेकर आयोजित कर डाला।

वही रविवार का दिन नियत किया गया। प्रमोद इस सब से बडा ही खिन्न हुआ। सब से अधिक क्षोभ की बात यह थी कि उसने वह दिन प्रथम साक्षात्कार के हेतु पूर्व से ही निश्चित किया था। वह प्रतिमा से मिलने कब जाएगा? अन्य एक-दो व्यक्तियो ने मना करने पर भी उसके यहाँ आने का कार्यक्रम उसी दिन के लिए बना दिया था। मिलनसार आदमी का परिचय बढते देर नही लगती। और अधिक परिचय भी कभी-कभी बडा कष्टप्रद प्रतीत होता है।

"आज सेनेट हाल के लेक्चर के बाद आप से भेंट करूँगा।"

—प्रमोद

स्लिप लेकर वह पढ तो गई किन्तु कैसा लेक्चर? कहाँ लेक्चर? इसमें उसका सर चकरा गया। स्लिप लाने वाला चपरासी बाहर खडा

ही रह गया । ध्यान आने पर प्रतिमा कमरे से बाहर आई और उस चपरासी से उसने प्रश्न किया, "व्हेयर इैज दिस जेन्टलमैन लाज्ड. ?"

"यस मैडाम, नम्बर टेवन्टीटू न्यूब्लाक, साउथ एलये।" ससम्मान बेयरर ने उत्तर दिया।

बेयरर के चले जाने के बाद कुछ वेग से मिस ब्राउनिग ने प्रतिमा के कमरे मे प्रवेश किया और बताया कि आज उस 'शिपडिजास्टर' पर एक भाषण, नहीं नहीं, आखो देखा हाल—मि० प्रमोद, बताएँगे।" और उस दिन प्रतिमा के साथ प्रमोद को ढू ढने ब्राउनिग भी गई थी। किन्तु आज वह सोच रही थी। उसके पश्चात् न वह व्यक्ति प्रतिमा से मिलने ही आया न प्रतिमा ने ही उसके सम्बन्ध मे कोई चर्चा की। वस्तुतः प्रतिमा और उसका सम्बन्ध क्या है ? किन्तु उसने इस सम्बन्ध में प्रतिमा से कोई भी प्रश्न नही किया। उसने उस समय केवल इतना ही कहा कि वह भी भाषण सुनने जाना चाहती है। और प्रतिमा भी चले। जाने की बात तय भी हो गई।

प्रतिमा आज बडी प्रसन्न थी। उसका मन हिलोरे ले रहा था। दर्शन और मिलन की सुखानुभूति का आनन्द वह मूक-उन्मादिनी की भाति ले रही थी। वह अपने पलग पर कभी लेटती, कभी बैठकर तकिये को अपनी सुगठित जंघाओ पर रखकर उस पर अपनी दोनो कोहनिया टेक देती और सेनेट हाल की भावी दृश्यावली का चित्र अपने मस्तिष्क मे उतारते-उतारते पलक मूँद लेती। कभी एक अगडाई मे ही वह एक संहारक पीडा को पी जाती।

हाल मे स्थान लगभग भर चुका था। प्रतिमा मिस ब्राउनिंग को भी आज भारतीय वेशभूषा मे—साड़ी और ब्लाउज पहनाकर—ले गई। अधिक भीड के कारण प्रतिमा बहुत आगे स्थान न प्राप्त कर सकी।

बडे धीमे स्वर मे इंग्लिश कन्सर्ट हाल मे लाउड-स्पीकर द्वारा बिखर रहा था।

मिस ब्राउनिग को प्रतिमा ने लाल रंग की साड़ी पहनाई थी। देशी वेश मे वह विदेशी युवती बडी मोहक और साथ ही सबके आकर्षण का कारण बनी हुई थी। उस नवीनता से हाल मे बैठे अधिकाश नागरिक, प्रोफेसर, स्कालर, रिसर्चर एव छात्र अनेक बार ब्राउनिग की ओर देख कर मुस्करा देते। आपस मे नाना प्रकार की टीका-टिप्पणी करते। ब्राउनिग के पीछे की सीट पर बैठी एक अग्रेज महिला ने तो अधिक प्रसन्न होकर उसे गुदगुदा दिया। हाल मे ऊपर छत व किनारे-किनारे दीवाल से झाकती बत्तियो की झलक और उससे उत्पन्न प्रकाश इतना तीव्र नही था कि ब्राउनिग वहा हाथ की पुस्तक के पृष्ठ पढ सकती।

प्रतिमा ने बडे सजाव से शरबती रग की मैसूर की साडी पहनी थी। उसके अन्दर से झाकता हुआ काले शनील का ब्लाउज, अपने मे बहुत कुछ बन्द रखने का, मौन कार्य कर रहा था। श्वास की गति के साथ कभी उसमे बन्द असहाय बन्दी बाहर को भागने की चेष्टा करते किन्तु ब्लाउज के कसाव मे उनकी कसन व कसक मन मार कर रह जाती। मिलन की आशा लिए उसके रक्ताभ कपोल आज और अधिक मुखरित हो रहे थे। सुललित मुखाकृति पर उन्नत ललाट के किनारे फैली, वार्तालाप मे ऊपर-नीचे उठती गिरती, चपल भ्रकुटियो के बीच मे महीन-सी लाल बिन्दी अपने मे सारा माधुर्य समेटे रह-रह कर चमक उठती थी। नेत्रो मे अन्तर्मन झाकता। दृष्टि अनेक बार दब-दब कर खिल-खिल कर इधर-उधर तब सामने तक भूम जाती किन्तु अनेक आशाएं लिए तत्क्षण निराश ही लौट पडती। वह अल्हड काला तिल ठोढी के बीच की मासल-रेखा को और भी स्पष्ट बना रहा था और कभी हिलते-डुलते प्यासे रतनारे ओठ उसे दबोचने की चेष्टा में, उसके अस्तित्व को मिटाने की चेष्टा करने का विफल प्रयास करते रहते। विभिन्न प्रकार के इंग्लिश सेन्ट, सिगरेट, सिगार पाइप आदि की उडती हुई कडवी-मीठी गन्ध,

प्रतिमा की उभरी नासिका मे चारो ओर से समा जाना चाहती थी और वह इस प्रकार कमनीयता के वेष्टन मे लिपटी मृदुल कामना को और बलिष्ठ बना रही थी।

और वह काला ब्लाउज, उसकी तह मे फीतो बधी बाडिस, उस पर बरबस उभरते शैतान, और उन सब के बीच बन्द वह धवल मन और उस बन्द सागर मे आशा और नवल उमंगो भरा अनुराग तथा प्रेम का गतिमान पोत इस क्षण तक की जीवन-यात्रा मे सशक्त एव किसी भी उद्दाम अधिकार, अटपट चाल से अछूता चलता चला आया है, किन्तु आज उस सागर मे तूफान है। आज उस पोत मे हलचल है। आज डगमग नाव किसी की प्रतीक्षा मे पार जा रही है। उसे किनारे छूना ही है। और तभी बारम्बार प्रतिमा की दृष्टि अपने से कुछ दूर, सामने के सज्जित डायस पर पहुँच कर किसी को खोजने लगती है। और अपने को लौटा कर अब उसने अपने सामने वाली कुर्सी के नीचे के पाए पर अपने आप को केन्द्रित कर लिया है। उसके विशाल नेत्र अपलक टिके है। मन और मस्तिष्क के केन्द्रित होने पर वे उनसे साम्य स्थापित कर पाए है। प्रतिमा न जाने क्या-क्या, सब कुछ उस क्षण सोच जाना चाहती है। आगन्तुक कैसा होगा? उसके बलिष्ठ और फैले हुए कन्धे उसके नही, उसकी महानता के द्योतक होगे। हृदय की गम्भीरता और स्थिरता उनकी स्निग्ध आकृति मे स्पष्ट परिलक्षित हो रही होगी। गोरे मुखडे पर शेविंग का निशान नही के बराबर दिखता होगा। सम्भव है शेविग की उन्हे नित्य आदत हो। और हॉ, उनकी बडी-बडी आखो पर चश्मा होगा। नो एब्सर्ड—चश्मा कभी नही होगा। चश्मा उसे भी पसन्द नही है। दिन मे कभी-कभी गागेल लगा लेते होगे। उनके नेत्र वैसे ही नोकीले, बडी तेज धार वाले होगे, पारदर्शी, क्षण भर मे मन को पढ लेने वाले। और बलिष्ठ बाहे जब...को फैल जाएँगी, धुत्...बावली, क्या-क्या ..क्यो सोच रही है, मस्ट बी इन सेन्सेज।

और उसे कुछ दिखाई नही दे रहा था। सामने डायस पर कई

व्यक्ति आ-आकर इधर-उधर कुर्सियो पर बैठ चुके थे, उसे कुछ पता नही। पीछे की सीटे सब भर चुकी है, भर चुकी होगी। वह ध्यान करेगी जब 'मुख्य' अतिथि सामने माइक पर आ खडा होगा, और उनकी ऊँचाई, असीम होगी। नैकट्य वह सब बताएगा किन्तु वैसे वे पाच फीट नौ या दस इच से अधिक न होगी, बस मुझसे दो इच अधिक। और रग, रग उनका मुझ से कुछ कम गोरा होगा, मेरा ऐसा कभी नही हो सकता। हो सकता है उनकी माँ साँवली हो, हाँ, चलो छोडो। और मन उनका बडा कठोर है, होगा। हाँ, यदि आँखे सरल होगी तो मेरा जीवन, मेरी साध, मेरे प्रेम की सजीवता सार्थक हो जाएगी...धुत् .. तो क्या तूने अपने लिए उन्हे चुन ही लिया . इतनी उतावली, इतनी जल्दी अब अनायास क्यो ? कहाँ गई तेरी वह मान्यता, दार्शनिकता, जीवन-दर्शन मे झाकने की चाह, क्या करूँ ? कोई क्या करे, कही एक जगह अवश होना पडता है, मुझे भी कुछ ऐसा ही हो गया, ऐसा ही लग रहा है। तो वे जीत गए...जीत जाने दो। विजयी, तुम्हे मेरा नमस्कार है, स्वीकार करो।

वह व्यग्रता, पता नही वे स्टेज पर आ चुके है, या कही इन श्रोताओ के बीच ही मौन बैठे है। क्या स्टेज पर कोई भारतीय है.. ?

इसी क्षण कार्यारम्भ हो गया।

सभापति का आसन लार्ड चेस्टरफील्ड ने ग्रहण किया। प्रारम्भ मे एक युवक ने शेली की एक सानेट सुनाई। इसके बाद लगभग पाँच मिनट तक पश्चिमीय संगीत की मधुर स्वर-लहरी से वातावरण गुजरित रहा। तदनन्तर एक मिनट तक हाल पूर्णतः अवसन्न बना रहा।

इसी समय सभापति ने जलयान की भीषण दुर्घटना तथा जलप्लावन से त्रस्त योरोपीय प्रदेशो की कष्टकर व्यथा का उल्लेख करते हुए उस भारतीय युवक की भूरि-भूरि प्रशसा की, जो इस प्रकार महान् साहसिक के रूप मे उनके सामने आ उपस्थित हुआ है। तदनन्तर लार्ड महोदय ने प्रमोद से वक्तृता प्रारम्भ करने का अनुरोध किया।

भारतीय पद्धति से हाथ जोडते हुए नमस्कार करके प्रमोद माइक के निकट आ खडा हुआ। उचटती दृष्टि से सर्वप्रथम उसने सामने के श्रोताओ मे प्रतिमा को पहचाना और अपना कथन आरम्भ कर दिया।

प्रमोद की ओजपूर्ण वक्तृत्वशक्ति से सभी प्रभावित हुए। उस भयावह घटना का चित्रण प्रमोद ने ऐसे कारुणिक रूप मे किया कि सभी द्रवित हो उठे। महिलाएँ तो विशेष रूप से दुःखित हुई। स्त्रियो और बच्चो को जहाज से लाइफ-बोट मे उतराते समय का ऐसी मार्मिक शब्दावली मे प्रमोद ने वर्णन किया कि मौन-मुद्रा मे सभी शोकाकुल हो गए। विशेषकर उस अग्रेज महिला का—जो अपने नन्हे बालक को चिपटाए हुए रस्से मे बाँध कर उतारी गई थी और बच्चा किलकारियाँ ही भरता रहा—ऐसा सजीव चित्रण प्रमोद ने किया कि हाल मे अनेक ओर सिसकियो का स्वर स्पष्ट सुनाई देने लगा।

प्रतिमा मौन बैठी अपने समक्ष सब कुछ देखती, सब कुछ सुनती रही। प्रमोद को जितना सम्मान उस समय मिल रहा था उससे प्रतिमा अपने अपरिचित स्नेही पर समर्पित होती चली गई। वह अपने मे ही लीन बनी रही। उसने सोचा, कुछ देर पहले वह जैसा चित्र अपने भावी देवता का खीच रही थी, वे उससे भी भले हैं। उसे उनको पा लेने पर सचमुच गर्व होगा।

तदुपरान्त वह कैसे 'लाइफ-जैकेट' पहन कर बोट मे बैठा, उस समय के उस के मनोभाव, समुद्र का प्रलयकारी दृश्य, वायु का प्रकोप, भूख, प्यास, कराल काल के सदृश शीत के थपेडो के मर्मस्पर्शी प्रसंग, देखते-देखते सामने 'लाइफ-बोट्स' का डूबना, बिलबिलाती मृत्यु, अनगिनत जलसमाधिया, कैप्टेन का अन्तिम दर्शन, अन्त मे उसे सहायता का मिलना मैगीन मे चढते-चढते भी एक बोट का डूबना, आदि अनेक दृश्यो का उसने शब्दो के चलचित्र की भाति सामने प्रदर्शित कर दिया। और अन्त मे उसने कहा, "एक प्रेरणा थी, एक जीवनी शक्ति थी, दर्शन की एक अमिट प्यास थी, अनुराग को सार्थक करने की एक अडिग साधना

आराध्या देवी, उसके स्वप्नलोक की रानी, उसकी मिनर्वा, उसकी वीनस, उसकी औरोरा, ऐरोस—सब कुछ उसके सामने है। सचमुच अनिद्य सुन्दरी प्रतिमा अपने पूर्ण विकसित रूप और यौवन मे अलसाई, एक खम्भे की ओट मे कुछ सोचती हुई-सी नीचे को दृष्टि गडाए खडी है। जैसे हृदय का स्पन्दन बन्द होने को है . . ।

और प्रमोद प्रतिमा के समक्ष आ खडा हुआ। प्रतिमा ने अपलक, निर्वाक् मुद्रा मे एक क्षण प्रमोद को देखा और नतमस्तक होकर उसने हाथ जोड दिए। प्रतिमा की लज्जा मिश्रित मधुर मुस्कान से प्रमोद उल्लसित होकर एक पल उसे यो ही निहारता रहा. .... । बडी पतली और लम्बी उगलियो पर पहनी हुई अगूठियो के हीरक कण व माणिक्य चमक कर रह गये। उस सुकोमल कलाई पर बधा घडी का काला फ़ीता हृत्कप की भाति अपने मे उस छोटी मशीन का कम्प समेटे हुए एक क्षण को हिल उठा।

तभी मौन भग करते हुए प्रतिमा ने कहा, "बडी प्रतीक्षा मे रक्खा आपने. . ।" और उसके कुंकुम-से ओठ हिलकर शान्त हो गए।

"आपसे भी अधिक.. .।" प्रमोद सिमट कर उसी क्षण जैसे चिपट जाने को आतुर हो उठा।

प्रतिमा की शिराओ का रक्त जैसे अपनी गति के आधिक्य मे सुन्न पड चला। उसके रक्तिम कपोल और गहरे हो गए। भीनी सुवास और झीने प्रकाश को वह लाघना चाहती थी, तभी उसने बडे धीमे स्वर मे कहा, "चलिये......यहा से चलें.. ...।"

प्रमोद यह कहकर आया था कि वह अभी आता है।

अनुराग मे वैसी सुधि किसे ?

"चलिये !" कहकर प्रमोद प्रतिमा के साथ हो लिया।

●

: ४४ :

सेनेट हाल की गैलरी की सीढियाँ उतर कर प्रमोद व प्रतिमा ने सामने का हरा-भरा लान पार किया। तत्पश्चात् बाहरी मार्ग से होकर वे अनिश्चित दिशा की ओर चल पडे। पारस्परिक अनुकरण के उन मौन क्षणो मे, कोई यह न जान पाया कि एक दूसरे को कहाँ लिए जा रहा है? प्रतिमा ने कहा चलिए, प्रमोद चल दिया। प्रमोद चल पडा, तब प्रतिमा साथ हो ली। किन्तु निर्दिष्ट स्थान कहाँ है, कौन-सा है, बैठना है, कहीं ठिकाना है या यो ही जीवन-गति की भाति चलते चले जाना है, कुछ ज्ञात नही।

अपरिचित व्यक्तियो के साक्षात्कार की वह सुरभित-बेला, भावावेश मे दो आकर्षित हृदयो को मिलाने की वे घडियाँ, निशाकाल की वे मूक और निर्जन सडके, उन पर प्रतिमा पथ-प्रदर्शक की भाति, विचार-मग्न-सी, अपनी लहराती साड़ी के छोर को दाँतो से दाबती, आगे बढ रही थी। उसका पथानुसरण करता हुआ प्रमोद उसको अपलक देखता, उसके लावण्य को नेत्रो से चूमता, उसकी गहन भावभंगिमा मे बहुत कुछ पढता, उसके मौन आमन्त्रण का रसास्वादन करता, आगे बढ़ रहा था।

तब प्रतिमा को ध्यान आया, ओह. यह क्या असभ्यता है। वह आगे ही बढी आ रही है, बिना कुछ बोले...। तब तक सडक के किनारे के अनेक लाइट पोल पीछे जा चुके थे। और वह सोच रही थी, क्या उन्हे यो बुला लाना ठीक था? क्या अब भी ठीक और बेठीक चलता

चलेगा ? तभी एक लाइट पोल के सामने आने पर वह एक पग रुकी और प्रमोद के बराबर आ गई। तभी स्तब्धता भंग करते हुए उसने मुस्कान भरे शब्दो मे कहा, "आपकी तो मैं निरन्तर प्रतीक्षा करती रही। आप मेरे यहाँ आए क्यो नही ?"

वाक्य मे वह उपालम्भ था, जैसे बडा परिचय, बडा अपनत्व रहा हो सामने वाले से उसका अब तक।

तभी प्रमोद मुक्त-मन व वाणी से कह उठा, "आपकी प्रतीक्षा मे ही मेरे पूर्व जन्म का सौभाग्य आ विराजा है देवी !"

"मेरे प्रति कुछ रोष भी इसका कारण हो सकता है।" प्रतिमा निरन्तर अपने पगचाप को सुस्थिर और धीमा करती जाती थी।

"रोष...मीठा शब्द है। मैंने अपने जीवन से करना चाहा किन्तु चल न पाया।"

"तब, इस प्रकार यहाँ आकर भी मुझ तक न आने का कारण ?" प्रतिमा चाह रही थी कि अब तक प्रमोद को लंदन मे ढूँढ निकालने में जितना परिश्रम उसने किया है, उसकी 'कम्प्लैट' वह एक साथ ही अवसर पाकर क्यो न कर दे ?

"आराध्य की उपासना मे सुदूर एकान्त ही स्वर्गिक सुख दे पाता है। अपरिचय की अवज्ञा से भी बचना ही चाहता था। दर्शन मुझे प्राप्त ही थे। बताइए मैं क्यो आता ?" अन्तर्मन की बात थी, जो उसने कह दी। अनुराग की देवी से क्या दुराव-छिपाव।

"अपरिचय की अवज्ञा...।" कृपया स्पष्ट तो कीजिए। क्या सम्बधों की डोर आप किसी, आप किसी..."सेन्सलेस, रूड अथवा, अथवा क्या कहूँ...ऐसे किसी से बाधने जा रहे थे...।" प्रतिमा की त्योरियो मे बल और अहंकार मे गम्भीरता थी।

"क्षमा कर दीजिए ! क्षमा कर दीजिए मुझे...।"

"यो ही मुझ अकिंचन के प्रति अनवरत तपस्या करके आपने मुझे न जाने किस गह्वर में स्थान देने की बात सोची है और उस पर यह...

यह सब कुछ आपने क्यो सोचा...? बताइए क्यो, क्यो ?"

और प्रमोद के इस क्षण टप-टप आँसू गिरकर भूमि को चूम रहे थे और उसके कपोलो को निर्झर आभा प्रदान कर रहे थे। उसकी वाक्-शक्ति अतिरेक से मौन हो चुकी थी।

तभी सामने एक और लाइट-पोल आया। प्रमोद को मौन देखकर प्रतिमा ने अनायास अपनी गर्दन ऊपर घुमाई। प्रमोद ..आँसू! उसका यह उस प्रकार का पहला अनुभव था। वह सहम गई। वह काँप गई! वह न जान पाई, यह कौन-सी परिस्थिति है ? वह सडक के किनारे रुक गई। नीची दृष्टि किए वह भूमि को देखती भर रह गई। प्रमोद भी चुप खडा रह गया। वार्तालाप वही...वही समाप्त हो गया।

अवरुद्ध कठ से प्रमोद ने कहा, "चलिए न, आप रुक क्यो गई...?"

"मुझे क्षमा कर दीजिए ..मै, मैं कितनी अपराधिनी हूँ ..।"

"तुम, प्रतिमा तुम...।"

"यो कब तक चलते चलिएगा, कही बैठिए ..।"

"यो चलते ही चले न, रुके क्यो ? चलते ही चलते अपना तुम्हारा सब कुछ पढ ले, चलते चले, थकें नही, बस आगे...आगे जीवन-गति भले ही रुक जाए, हम क्यो रुके, क्यो...।" वह कह गया। प्रमोद को यो चलते रहने मे ही अनन्त सुख मिल रहा था किन्तु प्रतिमा थक गई होगी। उसे विश्राम दो पथिक। और तुरन्त उसी प्रकार भर्राए स्वर से उसके मुँह से निकल गया, "आप थक गई होगी, चलिए।"

प्रतिमा ने पुनः ऊपर को देखा। प्रमोद पलक मूँदे मूक आगे पग बढाए बेसुध चल रहा था। सुधि कहाँ .प्रेरणा जब स्वयं पग मिलाए उसके साथ चल रही थी। प्रतिमा ने मन को पढने दिया। ओह, ऐसा समर्पण, ऐसा कृश और विवश प्राणी। प्रेम, यह तेरी कौन-सी सीढ़ी है ?

तभी प्रमोद को चेत आया। प्रतिमा अपलक उसके मुँदे पलको मे झाँक रही थी। वह सकुचा गया और शीघ्रता मे बोला, "चलिए, कही चलिए।"

"आप इतने अस्वस्थ है। आपको...।" प्रतिमा बडी घबराहट मे थी।

"लन्दन आप को रुचिकर लग रहा है।" रूमाल से गीली आँखो को सुखाकर गले तक आए अश्रु-विन्दुओ को पोछते हुए प्रमोद ने वार्तालाप व वातावरण मे आई विषाद की क्षीण रेखा को मिटाते हुए कह डाला। उसके अश्रु-विगलित नेत्र चमक उठे।

प्रतिमा कुछ खोई-खोई-सी लग रही थी। फिर भी तुरन्त सभलते हुए उसने उत्तर दिया, "अब अधिक भला लग रहा है .।"

"सम्भव है यहा दूर तक कोई सवारी न मिले, आप अधिक थक गई होगी आप।" प्रमोद अब तक स्थिर हो चुका था । आवेग आया और गया। उसकी-सी स्थिति मे यह सब कितना स्वाभाविक हो गया है। वह स्वय जानता है।

"आगे क्रासिग है। हमे टैक्सी मिल सकेगी।" प्रतिमा ने विचार की गम्भीर मुद्रा मे कहा। वह प्रमोद को इस भाति देख कर कुछ अधिक विचलित हो उठी थी, कुछ क्षण पूर्व।

"ठीक है। मै आपके यहाँ चलू ..।" इस क्षण प्रमोद मे भर आई मुस्कान प्रतिमा मे कुछ टटोल कर छिप जाना चाहती थी ।

"मे रे यहाँ सीमाए है। मुझ मे नही .होस्टल के नियमो मे।" प्रतिमा ने स्वीकार भरे शब्दो मे भी विवशता का द्वार खुला छोड दिया।

"तो...चल सके...तो .मेरे यहा. ।" प्रमोद की हृदयतन्त्री के तार झंकृत होने को मचल रहे थे।

"आपके यहाँ!" प्रतिमा की मुखाकृति पर लाली दौड़ गई। तुरन्त वाक्य पूरा करते हुए वह बोली, "कदापि नही ..आपको पहले मै अपने यहा आ लेने दूं, तब।" चतुराई से उसने अपने कुन्तल-केशो की एक

घूमी हुई लट को माथे से हटाते हुए छिटकती मुस्कान को सयत करके कह डाला ।

पुनः प्रमोद कुछ कह सके उसके पूर्व ही प्रतिमा ने प्रारम्भ किया, "ठीक है, चलिए आपके यहाँ चलू । देवस्थान मे ध्यानस्थ होने का सुअवसर प्राप्त होगा। किन्तु आप अब स्ट्रैण्ड मे तो है नही। आप तो होस्टल मे शिफ्ट हो आए है। तब कैसे ? यहाँ तो चलता है, किन्तु मैं इस समय नही जाना चाहूँगी।"

"चलिए .देवस्थान मे ध्यानस्थ होने का सुअवसर प्राप्त होगा।" अतिरेक मे यह पूर्व वाक्य ही प्रमोद गुनगुना गया। उसने सोचा, ओह, यह वही जस्टिस मानसिह की एकमात्र पुत्री प्रतिमा है, जिसके लिए उसने कभी सोचा...यह कैसा असम्भव स्वप्न देख रहा है बावले। वह हिमालय की चोटी-सी है। किन्तु तब दूसरी ओर मन ने यह भी कहा था, विवश कर दिया था यह सोचने के लिए, मूर्ख, यह आग-सा खेल है, खेल या या यो अपाहिजो की तरह घसिट, जा छोड इस हरे-भरे जीवन-उपवन को, यह तेरे लिए उपयुक्त नही। क्षय की ही सार्थकता तेरे लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन है। निराशा की ज्वाला शान्त करने का अमोघ अस्त्र। तब हुआ क्या ? वह वार भी व्यर्थ गया। तब समय ने कहा, अभी तेरी परीक्षा शेष है। तो तू मिलना चाहता है, दर्शन करना चाहता है। चल, कर दर्शन, जा मिल। किन्तु तुझे अथाह सागर के गहनतम जल व चचल लहरो की बूदे ही ले जाकर चढानी है अपनी प्रतिमा के अर्चन मे । यदि बचा तो वही विजय चूम कर अलक्ष्य-लक्ष्य को पाकर अर्पण कर देना अपनी आराधना के लहलहाते पुष्प । और तब आज आ ही गई अर्पण की बेला, विजय की वह उन्मादिनी घडी, दर्शन की अमिट लाली लिए,·समक्ष, अभ्यर्थना मे उसकी आराध्य देवी स्वयं चल आई, वह झूम उठा है, वह प्रफुल्लित है, वह विजयी है, उन्माद उसे आ जाए तो स्वाभाविक है । 'देवस्थान' बस केवल यह शब्द ही मंगलसूत्र की भाति उसके रोम-रोम को पुलकित किए डाल रहा था।

समर्पण के क्षणो में, मिलन, विरह, स्मृति, साक्षात्कार किसी भी अवस्था मे मन-प्राण स्वतः कार्य करते है अथवा कोई अदृश्य शक्ति-प्रत्येक को आगे के समय का संकेत देती है, किसे ज्ञात है ?

उस क्षण प्रतिमा की मनःस्थिति प्रमोद से कम उद्वेलित न थी। एक ओर वह सहज नारी-स्वभाववश, रह-रह कर अपने को रोकना चाहती, दूसरी ओर अतिरेक के भावावेश मे वह बहुत कुछ कह डालना चाहती। वार्तालाप के चक्र मे वह अब तक भी न जाने क्या-क्या कह गई, इसका उसे खेद हो रहा था। किन्तु वह क्या करे ? वह प्रथम बार उस व्यक्ति को किन पैने तत्वो से पढे। उसके समक्ष एक ऐसा प्राणी, एक ऐसा मूक प्रेमी वातावरण को अनुरागमय बना रहा था कि जिस ने कभी उपास्य को निराशा मान कर ही उपासना मे उत्सर्ग की ठानी थी। तब उसमे वह बल था ही कि अपने अनुसार वातावरण का संचालन करे।

"क्या सोचने लगे, अनायास.. ।" प्रतिमा ने प्रमोद के गतिमान पगो की स्थिरता पर दृष्टि गडाते हुए कहा।

एक दृश्य था : जैसे प्रमोद उन विस्मृति के क्षणो मे, काप उठा हो, लड़खडा कर उसके पग काप रहे हो, और साथ की रूपसी ने अपने कोमल करो की जकडन मे उसे सभाल लिया हो। तब प्रमोद एकाएक सोच गया, कीर्ति कहता है, यह सब कुछ भी वासना है। क्या है ? तभी प्रतिमा के प्रश्न से वह व्यवस्थित होता हुआ बोला, "कुछ भी तो नहीं।"

"इस समय तो हम अपने-अपने स्थानो से सम्भवतः बहुत दूर हैं, सवारी मिल जाए तभी आप भी शीघ्र जा सके और मै भी।"

"अब निश्चित जानिए, भेंट होगी ही .।" प्रमोद हँसता हुआ कहता रहा। प्रतिमा ने क्या कहा वह उसने सुना ही नही।

निर्जन स्थान मे निर्द्वन्द्व युवक की वासना के परे थे प्रतिमा के 'वे' यही वह रह-रह कर सोच लेती थी। तापस जीवन की प्रेम-साधना मे मन और मस्तिष्क की उदात्त प्रेरणा वह सब कुछ नही सोच पाती जो वासना

की अंगडाइयो मे लिपटा उद्दण्ड यौवन किसी भी क्षण, प्रतिक्षण सोचता रहता, करता रहता है।

"वह कैसे ..।" प्रतिमा ने रंग की गहराई को जैसे टटोलते हुए आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"क्या अब आप प्रतिदिन मिलने की अनुमति न देगी...।"

प्रतिमा को सुख मिल रहा था। उसने मीठा व्यंग्य करते हुए प्रमोद से कहा, "और अब तक ..।"

"पहाड़ पर था.. ।"

"फिर...।"

"सागर की लहरो मे..."

"तब...।"

"टेम्स की विशाल नगरी मे ..।"

"और अब...।"

"साहचर्य की धारा मे, अब आप सच जानिए आऊँगा।"

"आप...नही मैं...तो बताइए कल किस समय ठीक रहेगा, मैं आऊँगी।"

"किसी भी समय; मैं निरन्तर अपने स्थान मे ही रहूँगा।"

सामने ही एक टैक्सी को प्रतिमा ने, "टैक्सी" कह कर पुकार लिया।

प्रतिमा और प्रमोद : प्रमोद व प्रतिमा, साथ थे। टैक्सी वेग से दौड रही थी .। निस्तब्धता को तोडते हुए प्रतिमा ने प्रश्न किया, "हैव यू सीन...दिस बिग सिटी. ।"

"नाट यट ..।" प्रमोद सामने से दौडती भव्य इमारतो को देखता जा रहा था।

प्रतिमा का मन अटका हुआ था। साहचर्य की धारा...।

तभी ड्राइवर ने प्रतिमा के द्वारा बताए गए निर्दिष्ट स्थान पर टैक्सी रोक दी। प्रतिमा की कंचन-काया टैक्सी से उतर कर तनते हुए

सीधी खडी हो गई। सडक की चमकती ज्योति मे प्रतिमा के सौन्दर्य को कोई पढ़े। प्रमोद असमर्थ था। वह तो उद्वेग मे बावला हो रहा था।

तभी प्रतिमा ने हाथ जोड दिए। प्रमोद ने उसी भाति अभिवादन किया और "चलो" के स्वर के साथ टैक्सी स्टार्ट हो गई।

प्रथम साक्षात्कार मे ही प्रतिमा का प्रमोद के प्रति आकर्षण, सहज अनुराग, मन की उस गहराई तक पैठ रहा था, जहाँ पहुँच कर अपनापन स्वय तो विलीन हो ही जाता है किन्तु उससे ऊपर उठी लहरे, उसकी चुभन, अनन्त हर्ष.. जीवन पर्यन्त अनेक रसो मे पीडित आनन्द प्रदान करता है।

प्रमोद को विदा हुए एक घंटा भी व्यतीत नही हुआ होगा। वह अपने स्वच्छ व स्वच्छन्द पर्यक पर उलटी लेटी हुई सर उठाए पैर पीछे को उठाते-पटकते हुए सोच रही थी। उसका मन डूबा हुआ था। उस युवक व्यक्तित्व पर, उसकी अनुपम छटा पर, वह प्रमोद के मोहक व्यक्तित्व से अपने जीवन की लडी पिरो रही थी। प्रतिमा का सुसज्जित कमरा अपनी गोद मे थपथपा कर उस अनुपम लावण्यमयी किशोरी को सुलाने का निरर्थक प्रयास कर रहा था। रह-रह कर, कराह के धीमे स्वर के साथ उसके सुन्दर मुख पर दो-चार धारियाँ पड जाती। और वह अपनी मासलता की दबन को करवट लेकर आराम देने के बाद पुनः उसी भाति उलट जाती। रेशमी 'नाइटगाउन' मे उभरे स्थल बिस्तर पर स्थान बना कर उसी भाति दबे पडे रहे। अप्सरा-सा नवल धवल निर्मल गात समेटे, कभी फैलाए हुए प्रतिमा लोल-लोरिया ले-ले कर अपने साथ अपने अमरस्नेही की मृदुलस्मृतियो को आलिगन मे बाधे, मीठी नीद सोना चाहती थी। किन्तु स्मृति, मधुर या तिक्त; यो चैन ले लेने दे, अपनी प्रकृति के विपरीत, असम्भव।

वह सोच रही थी, उन्ही से तो मिल कर आ रही है वह, अभी-अभी

जिनका आभास, जिनकी प्रतीक्षा, इससे पूर्व अनेक रूपो मे उस तक आ चुकी थी। इधर उसने भी कसक के हिचकोलो का अनुभव कर पाया था। उसका आज तक का जीवन इन अनुभवो से सर्वथा शून्य था। उसने इस ओर दृष्टि ही कब की थी? वातावरण का अनुभव और अवसर आने पर भी वह पर झाड कर सर्वथा उदासीन होती चली आई थी, अब तक।

और आज प्रतिमा अनेक बार अपने मस्तक को तकिए मे भीचती, कभी अपने दाहिने-बाएँ कपोल उस पर कस कर दाब लेती। वह विचारो मे डूबती चली जा रही थी। सामने विद्युत का मन्द प्रकाश, बाथरूम की लाइट से छन-छन कर उस तक आ रहा था। बाथरूम का द्वार खुला था। वह एक बार उठी। बाहर से उसका कमरा बन्द था। फिर भी उसने बाथरूम का द्वार भी बन्द किया। निवृत्त होकर वह लौटी और पुनः पलग पर वैसे ही लेट रही। आज उसे वैसे लेटे रहने मे न जाने क्यो एक विचित्र आनन्द मिल रहा था। आज उसने अपने अवयवो के अस्तित्व को कुछ-कुछ दूसरे रूप मे जानना प्रारम्भ कर पाया है।

और वह फिर सोचने लगी। कितना सताया गया वह मधुर-स्नेही, उत्कट-प्रेमी, अनजान मे उसके ही द्वारा। और यह अलसित रूप, मादकता और उभार, यही सब तो कारण है . क्यो प्यार कर बैठे वे इससे इतना, और उसने, आह . के स्वर के साथ करवट ले ली। अपने हाथ की पतली उगलियो से स्वच्छ चादर पर कुछ चित्र और रेखाएँ खीचते हुए अपने आप को और अधिक दाबकर वह अपने सर को तकिए में लिपटाते हुए उलट कर एक क्षण शान्त हो ली और फिर सोचने लगी... क्या लाल लगे हैं इस' .सब मे।

पर नही रूप और उभार उनसे दूर हैं। दूर न भी सही, गौण हैं। मेरा दृढ विश्वास है। यह मन की बात है, यह हृदय के चुनाव की बात है। यह प्रकृति की देन है। देखो न, एक बार मुझे कही देखा भर था। क्या

तब यही सोचना सम्भव हो सकता था कि मेरी मासलता उनके उपभोग मे आ ही जाएगी ? क्या कोई शक्ति थी ? कभी नहीं। कदापि नही। पर, पर ..यो अनजान मे, इतना आगे बढ जाना, उत्सर्ग की वह भावना, किन सिद्धान्तो पर कसे जाने पर सही उतरेगी ? वह निरुत्तर है किन्तु वह कह सकती है, वह सब कुछ महान् है। और वह सिहर उठी। ओ मेरे स्नेही, क्या ऐसा भी सम्भव था कि, कि जीवन के एक पल को भी साक्षात् प्राप्त हुए बिना, मेरे देव, तुम्हारी इति हो जाती। नहीं, नही, नहीं। ऐसा कभी नहीं होता। किन्तु रोक भी कौन लेता ? मुझे क्या ज्ञात था ? कैसी विचित्र बात होती ? किन्तु, बडे शक्तिशाली हो देव। मुझे बरबस खींच ही तो लिया, पा ही तो गए। उन एकान्त-कन्दराओ की नोकीली चुभन मे भी झूमता मन, लहरो से खेलता-खेलता बच आया। पर क्या. मैं इतनी खरी उतर पाऊँगी ? किन्तु नही, साथी सन्देह मत करो, मै उन सिद्धान्तो से सहमत हूँ, जिनके तुम पुजारी हो। तो मान लूँ तुम आज से मेरे जीवन-साथी हो, मेरे अनन्य-प्रेमी, और मै तुम्हारी वैसी ही गर्विता प्रेयसी। तब इस प्रणय का बन्धन। मेरा नमस्कार स्वीकार करो मेरे देवता .। प्रतिमा सहसा उठ बैठी। उसकी श्वास-गति तीव्र हो उठी। उसने तकिए को उठाया, अपने वक्ष से उसे दो बार कस-कस कर दाबा और झटक कर उसे दूर कर दिया। तब फिर उसी मे अपना खुला एकान्त रूप उसने छिपा लिया।

पैरो को सामने फेकते हुए उसने कम्बल एक ओर रख दिया और उठ खडी हुई। सामने की लाइट जलाई। बुकसेल्फ के सामने खडे हो कर सजी किताबो पर अपनी पतली दो-तीन उगलियो को उन पर फेरा। तब उसने सामने देखा। उन पुस्तको के ऊपर एक पुस्तक उलटी हुई खुली पडी है पढने को . जिस प्रकार वह स्वय अपने बिस्तर पर थी... कुछ क्षणो पूर्व .। ओह, उसे ध्यान आया उस दिन ब्राउनिग के साथ पढते-पढते छोडकर वह साउथेम्पटन चली गई थी। वह इतनी मदहोश हो गई है। और इस सप्ताह उसने एक लेक्चर ही अटेन्ड किया है,

सोशियोलाजी के प्रोफेसर टॉस बडे सरल हैं न, इसी लिए। सब ठीक है, ऐसे ही चलेगा...।

वह किताबो को ऐसे ही छोडकर आगे बढी। सामने ड्रेसिग टेबल मे पूरे साइज का शीशा लगा था। अपने को उसने सामने खडा किया। दृष्टि वक्ष तक लाकर वह मुस्करा दी। तब अपने बालो पर उगलियाँ फेरते-फेरते वह बुदबुदा उठी, तो तुम नही सोने दोगे, आज रात...तो क्या मै कह देती, चलो मेरे साथ, पहले दिन...परिणय ..तुम कितने शुभ हो, कितने मीठे. .अब मै तुम्हारी आरती उतारने वाली हूँ, जल्द।

और प्रतिमा ने सोचा, वह उस अकेले कमरे मे उच्छृखल होती जा रही है। प्रत्येक से वह सम्भव है।

तो तुम से प्रातःकाल मिलूँगी, अब तो सोने दो। किन्तु तुम खूब हो। दूर शिलाखण्ड पर बैठ कर मन की चाह से खीचने वाले मोही, तुमने विवश कर दिया मेरी सारी सैद्धान्तिकता व दार्शनिकता को।

अच्छा अब सोने दो। स्वप्नो मे आना, और मीठे बनकर।

कल आने वाला प्रभात नव-जीवन, नव-चेतना, नव-संदेश, नव-स्फूर्ति और नव-संदेशवाहक होगा। नूतन वायुमण्डल मे, श्वासोच्छ्वास के उस गहन विलोडन मे, कल, जीवन की उलझी डोर सुलझेगी। स्वागत-प्रागण मे खडे होकर प्रमोद विजयोन्माद मे मत्त गयद की भाँति अपने विजित को ससम्मान अपने उच्चासन पर विराजमान करेगा। यही उसकी निष्ठा है। यही उसने प्रणयी-मानस का लक्ष्य बनाया है। उस दिन जब उसने अपनी इसी देवी की प्रथम झलक देखी थी, तब से आज तक वह इसी पवित्र सन्तोप के स्वप्न देखता चला आया है। उसके अनन्तर मन को दाब-दाबकर रखने पर, आने वाले हहरते प्लावन आए और चले गए। पर यो एकाकी समर्पण के ताप मे भी उसे उतना ही सुख मिला था, जितना

आज कुछ समय पूर्व अपने को प्रतिमा के निकट पाकर, उसकी गति से गति मिला कर सेनेट हाल से बाहर आकर टैक्सी मे विदा होने तक मिला था। सेनेट हाल की सीढियो से उतरते समय वह उतना ही आनन्दित था, जितना उत्सर्ग की सीढी पर चढकर वह अनन्त सुख पाने को लालायित हो उठा था। और आज भी उसमे उतना ही आत्मविश्वास है। उस समय उसका लक्ष्य अलक्ष्य था, सर्वथा विषम, अन्धकारमय और आज वह विकसित पुष्प की भाँति कोमलता लिए भी हँस लेना चाहता है। आज माझी ने नौका किनारे बाँध ही दी है। आज वह हर्षोल्लसित है, उसका लक्ष्य उसके निकटतम है, प्राप्ति। परन्तु अतिरेक मे भी संयत रह कर वह एकत्व की मर्यादा मे अपनी निष्ठा और विवेक की कूंची से और गहरे रंग फेरेगा, उसे और आकर्षक बनाएगा। तभी उसे परम सुख, परम उल्लास और परम तृप्ति का निरालापन मिलेगा।

प्रमोद सोच रहा था, प्रेयसी का निर्मल मन, उसका हृदयासन जब उसका अपना है तो, तो, नवल-धवल-निर्मल-गात, वह रूपसी के मनःकोष की ऐसी ऊपरी तिजोरी है जिसकी सारी कुंजिया उसके सरक्षण मे होगी। वह उसे चाहे जब खोले, चाहे जब मूँदे।

वह देर तक गद्देदार कोच पर बैठा यो ही बिना कपडे उतारे मुग्धमन लिए बैठा रहा। और एक प्रश्न उठा, ''कल क्या प्रीतिमय अनुराग होगा।" नही, हाँ, किन्तु वह अपनी ओर से...किन्तु नारी-चेतना अपनी ओर से कब अवसर देगी। बावले। समय तो आने दे. .। किन्तु कीर्ति कहा करता है, ''यह सब कुछ वासना है। और विरह मे भी स्वान्तःसुखाय एक मोह है और स्मृति की वह अवस्था जब मन प्रतीक मे लीन होता है वासना है। एकान्तवास मे प्रेयसी के ही प्रभाव, रूप कल्पना मे गूढालिंगन, चुम्बन का सीत्कार ..। उसकी दृष्टि मे वासना है।" किन्तु मेरे मित्र, तापस जीवन की समाप्ति के बाद उसके फलस्वरूप मिला वरदान, यह उल्लास, यह अनुराग, बावले। वासना भी तो प्राणी की श्वास मे है, प्रकृति, स्थिर सत्य...बोलो क्या

आने वाले दिनो मे, वासनामय हो जाऊँगा? नही-नही...पूर्णासक्ति की उस बेला मे ..प्रकृति को ही तो छूट होगी कि वह...आगे कार्य करे, मन, वह प्यार का है, प्रारम्भ से ही, वह उसी का रहेगा, अनधिकार को तुम कुछ भी कहो, मान जाऊँगा, किन्तु सजग सम्मति, प्यार की चरम प्रेरणा को वासना कह कर मत विभ्रम मानो, कीर्ति। समझो तो, और 'रज की देह सदा से कलुषित .'

निशानिमन्त्रण के पश्चात्, स्वागत के सरंजाम सोचने और बनाने मे उसकी पूरी रात प्रतिमा के चतुर्दिक लीन होकर जागरण मे ही पूर्ण हो गई। कल सुबह होते-होते, लन्दन की सुबह क्या और रात क्या, दो घटे का दिन, प्रकाश उसकी ओह, बस उसकी प्रतिमा आने को है।

सेनेट हाल मे स्लिप पाने के बाद के अभिनव-प्रसग के पलो मे अब वह अपने को गर्वीला मान बैठा है। और जीवन मे, प्यार का वरदान पा लेने पर, व्यक्ति साधारण से दूर, कही ऊँचा हो उठता है। उसका जीवन-क्रम, जीवन-दर्शन, शील, विवेक, सब कुछ असाधारण हो जाता है। तब वह आत्मविभोर-सा सूक्ष्म दृष्टि होकर अपने विशाल हृदय से आकता है वातावरण को, समाज को, अपने को और प्रिय को। उसका मापदंड उच्चतर बन जाता है। न्यूनता, कलुष, सकोच और प्रलोभन को धो-धोकर अपने मे जो निखार ला पाता है, वह कुछ निराला-सा ही होता चला जाता है।

और प्रमोद . उस पौराणिक व साहित्य के अत्यधिक प्रचलित राधा-कृष्ण के प्रेम की मान्यता को उसी रूप मे सोचता है, मानता है। दाम्पत्य रूप मे मान्य, राधा और कृष्ण की प्रेमभक्ति, वासना के अन्तर्गत मान लेना कितना कलुषित होगा। क्या वह उसी भक्ति की परम गति को नही प्राप्त है? अन्तर केवल भगवान् और भक्त का है। प्रेम वही है। वही रहेगा। वह तो जन्म-जन्म से चलता चला आया है। भले ही वह पुराणो का अथवा धर्मान्धता का वैसा उपासक नही। किन्तु आज

समाज का प्रासाद इन्ही प्रसगो और मान्यताओ पर ही तो टिका है। प्रेम-कथा के उस पूर्ण विकसित व पवित्र रूप को उसे मानना ही है, वह मानत है।

ममोद इस सबके साथ विचार कर रहा था, प्रतिमा के अनन्य-सौन्दर्य, खिले यौवन और विकसित हृदय का। तनिक-सी बात पर कितनी उत्तेजित हो उठी वह, उस क्षण। नारी के स्वाभिमान के साथ शिक्षा का वैभव उसे उत्तु ग बनाए है। वह हलकी बात कभी सहन नही कर सकती। और वह, कितनी रूपवती है। उसका प्रत्येक अग...आज ही तो उसने इतने निकट से देख पाया है, चिरकाल की साधना के अनन्तर। किन्तु वह कितना प्रसन्न है आज।

किन्तु कल प्रातः इस ऊटपटाग स्थान पर क्या मिला होगा, यह दो प्रेमियो का मिलन है।

अनुराग भरे क्षण हो, निर्जन सदन हो, समीर मन्द-मन्द हो, सुवासित स्निग्ध सास आती हो, अनेक बार जाती हो, रुक-रुक कर प्यार हो, बढ-बढ कर प्यार हो, नेत्रो मे जीवन हो, हृदय टुक डोल सके, मन कुछ बोल सके, बोल किन्तु बन्द हो, कपोल रक्त वर्ण हो, ओष्ठ खिला-खिला सके...ऐसे, बस ऐसे ही अनुराग भरे क्षण हो, प्यार भरे क्षण हो...दो जन, दो प्राण मिल सके ऐसी बस सीमा हो, ऐसे प्रेम पल हो...

तब...वह अपने चिर परिचित 'होटल डिल्क्स' ही क्यो न शिफट हो जाए। पर कल ..कल वह प्रतिमा के साथ वही...रहेगा।

●

: ४५ :

पश्चिम के उस भयावह शीत मे भी प्रमोद अन्धकार से आच्छादित उस सुबह को ८ बजे ही उठा। अपने को संवारा। नया सूट पहना...मन मुकुलित हो रहा था। तन निखर रहा था। आकृति दीप्ति थी, स्वस्थ थी, आकर्षक थी...। उसने उस कटकटाते शीत के बचाव के लिए ओवर कोट धारण किया और होस्टल के आफिस से स्ट्रैण्ड होटल-डिलक्स के मैनेजर मि० जैन्किन्स को फोन कर आया कि उसके लिए उसका ७२ नम्बर का कमरा व्यवस्थित कर दे। वह अभी ६ बजे के आस-पास वहाँ पहुँच जाएगा।

लौटकर उसने अपनी अटैची सभाली जिसमे मोहक प्रसाधान सामग्री दो दिन पूर्व ही उसने लाकर रक्खी थी .। अन्य सामान बाद में चला जाएगा। किन्तु अपना बेडिग उसने होस्टल के 'काल-ब्वाय' को बुलाकर ठीक करवा लिया।

और देखते-देखते उसकी रिस्टवाच की चमकती सुई ८.५६ पर पहुँच गई। तो प्रतिमा आने को है।

वह उठा। चेस्ट से एक पुस्तक निकाल लाया। जैसे ही उसका पहला पृष्ठ उसने खोला, सामने से एक आभा कमरे मे आ समाई। होस्टल का गेटकीपर प्रतिमा को वहाँ तक पहुँचा गया था। जैसे कमरे मे बिजली कौंध गई हो, जैसे प्रमोद के मन पर विद्युत के तार बरबस छुआ दिए गए हो। मुस्कान भरी आभा मे, आते ही, प्रतिमा ने दोनों हाथ जोड़ कर अभिवादन किया।

प्रमोद, यो ही मूक, दो क्षण प्रतिमा को निहारा किया, प्रतिमा मुस्कराती रही। तब जैसे प्रमोद को चेत आया हो। उसने हँसते हुए आगे बढकर स्वय भी नमस्कार कर ही लिया।

और अनायास प्रतिमा की दृष्टि सर्वप्रथम सामने की टेबिल पर रक्खे एक चित्र पर गई। चित्र देख कर वह चकित रह गई। वह 'पोज' बम्बई के स्वस्तिक स्टूडियो का था...किन्तु वह इनके पास कैसे आया। यही उलझन उन दो-तीन मिनटो मे उसके मन मे अनेक बार आ गई।

और उसने बिना किसी अटकाव के प्रश्न कर ही तो दिया, "तो आप इसको कहाँ से ले आए ?"

पहले तो प्रमोद चौका, "क्या बात है।" तब प्रतिमा को चित्र के सामने खडा देख समझ कर हँसते हुए बोला, "ओ, फोटोग्रैफ...जी हाँ, जस्टिस साहब से माग लाया हूँ।"

प्रतिमा जैसे सन्न रह गई। जस्टिस साहब से, पिता जी से मेरा फोटोग्रैफ कैसे मागा इन्होने ?

"किन्तु यह फोटोग्रैफ देने का उनको क्या अधिकार था ?"

"मै आज ही पत्र डालकर उनसे इसका उत्तर ज्ञात किए लेता हूँ।" प्रमोद ने हँसते हुए कहा। कुछ रुक कर वह पुनः बोला, "किन्तु वैसे तो साधारण-सी बात है, मैने मागा, उन्होने दे दिया।"

"ऐसे कोई भी, कोई चीज मागे और वे मेरी चीज उसे दे दे। ऐसा नही हो सकता। वे मेरी प्रकृति जानते हैं।" प्रतिमा ने पास के कोच पर बैठते-बैठते कहा।

"आप उनकी पुत्री है। किन्तु इतना मै कह सकता हूँ कि मै अब जो विशेष वस्तु उनसे मागने जाऊँगा, उसको देने मे वे मुझे मना नही करेगे।" प्रमोद के कथन मे सत्यता के साथ-साथ गम्भीरता थी।

"तो आप, घेर कर, वार करना भली प्रकार जानते हैं। मुझ तक बरबस पहुँचने के साथ-साथ आपने पिता जी से भी पूर्व ही भला सम्बन्ध स्थापित कर रक्खा मालूम होता है...पर बताइए, पिता जी से आप की

कब भेंट हुई ? वे मेरे लिए क्या कह रहे थे ?''

तभी प्रमोद ने अपने सूटकेस में सुरक्षित रक्खे उस पैकेट को प्रतिमा के समक्ष ला कर रख दिया, जिसे वह अपने जीवन के साथ की ही बहु-मूल्य वस्तु सोच कर उस 'लाइफ-बोट' में भी साथ लेता आया था। प्रतिमा खिल उठी। उसके मुंह से खिलखिलाते हुए निकल गया, "पिता जी ने भेजा है, कब, कब...?''

"चलिए... सब कुछ, बहुत कुछ बताऊंगा...।" प्रमोद ने बाहर जाने को तत्पर होते हुए कहा।

"पर कहाँ...?'' प्रतिमा ने शंका-मिश्रित प्रश्न कर दिया।

"चलिए, कहीं निश्चिन्तता से बैठेंगे। मीठी-मीठी बातें करेंगे। आप देखती नहीं, यह होस्टल है, एक जिन्दा अजायबघर, जिसमें...एवरी सार्ट आफ़ इण्डविजुअल एनीमल्स, बट लिटरेट, लिव...।" प्रमोद ने प्रतिमा को उठने के लिए हाथ का संकेत करते हुए कहा।

प्रतिमा व प्रमोद की टैक्सी ऐजवरा-रोड छोड कर आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर दौड़ने लगी। प्रतिमा व प्रमोद दोनो ही उस क्षण मौन थे व लन्दन की सड़को की धूमिल रेखा पर दृष्टि गडाए थे। उस क्षण शीत व कोहरे के कारण सडक सूनी पड़ी थी। अभी लोगो ने चलना-फिरना पूरी तरह से प्रारम्भ नही किया था। बस, केवल वे दो मूक व उल्लसित प्रेमी टैक्सी के हार्न मे उड़े चले जा रहे थे। तभी रीजेन्ट व पेडिंग्टन होती हुई टैक्सी चेरिंग क्रास से मुड़ गई व अतिशीघ्र पूर्व निर्देशित स्ट्रैण्ड के होटल डिलक्स पर आ रुकी।

"यहा तो मैं आपको ढूँढ़ती हुई एक बार आ चुकी हूँ। बट यू लेफ्ट् देन।"

"बट आई हैव नाट कम टु लीव दिस टाइम...।" प्रमोद के वाक्य में आकृति की मुस्कराहट झलक रही थी।

प्रतिमा प्रमोद के वार्तालाप को, लजाती हुई, सराहती रही।

टैक्सी-ड्राइवर पैसे लेकर चला गया। प्रतिमा व प्रमोद ने साथ-साथ पग बढ़ाते हुए, इठलाते हुए, मन में उल्लास लिए होटल के विशाल भवन की सीढ़ी पर पैर रक्खा। वे ही उसके प्रणय की प्रारम्भक सीढ़ियाँ थीं। दो प्राण एक होने को थे। तभी गैलरी आने पर सामने ही प्रमोद के परिचित मि० जेन्किन्स ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। मि० जेन्किन्स प्रमोद से अत्यधिक प्रभावित हुए थे व उनके निकट परिचित बन गए थे।

मि० जैन्किन्स के सम्मान का उचित प्रत्युत्तर देकर प्रमोद सेकन्ड स्टोरी मे स्थित अपने पूर्व निवास ७२ नम्बर कमरे की ओर चल दिया। किन्तु आज परिस्थिति भिन्न थी। आज प्रमोद के पगचाप मे वैभव था, उत्साह था और भविष्य के प्रति विश्वास था। आज उस होटल की पतली-मोटी गैलरिया, छोटे-बड़े मार्ग उसके स्वागत में स्वतः मुड़ते जाते थे।

'मैं चला जिधर, मुड़ गईं उधर ही संग-संग मेरे राहे।'

प्रतिमा सकुचाई-सी किन्तु मन मे असीम सुख व आनन्द लिए प्रमोद के साथ चल रही थी। आज प्रतिमा ने हल्के आसमानी रंग की मैसूर-सिल्क की बहुमूल्य साड़ी चुन कर, बड़े आकर्षक रूप में पहन रक्खी थी। शीत अधिक होने के कारण उस पर उसने चेस्टर पहन रक्खा था। भूमि को छूती हुई साडी के अन्तर भाग मे हिलते-डुलते स्वर्णिम पगों के बहाव में पृथक् होती साड़ी के अन्दर से कभी-कभी सुनहली सेन्डल के फीते चमक जाते। रूमाल हाथ में लिये प्रतिमा रह रह कर अपनी कोमल नासिका को उससे दाब लेती। चलते-चलते उसका नेकलस की प्रकार का सुन्दर लाकेट किसी कोने में चुभा, जिसे उसने हाथ से ठीक कर दिया। चेस्टर में, मयूर-सी उठती गर्दन का खुला भाग, ब्लाउज की कोरें, द्रुतगति से स्पन्दन करता हृदय, सभी कुछ छिपा हुआ था।

पहली मंजिल चढ़कर प्रतिमा प्रमोद के साथ कुछ पग ऊपर की गैलरी

में चली, तभी उसे ७२ नम्बर कमरे के सामने सैल्यूट करके द्वार खोलता हुआ बैरा दिखाई दिया ।

प्रतिमा व् प्रमोद ने उस नीरव कमरे मे प्रवेश किया । प्रमोद उद्रेक मे बावला हो रहा था । प्रतिमा अलसाई-सी, लजाई-सी आगे बढ़ कर सामने पडे सोफे पर जा बैठी । जैसे बड़ी थकन का अनुभव कर रही हो । किन्तु सामने ही के कमरे मे पड़ा मसहरी दार पलंग उसको झाँकता हुआ दिखाई दिया । साथ का कमरा बेडरूम था । और फिर प्रतिमा ने बरबस अपने नेत्र उधर टिका दिए ।

तभी एक पोर्टर प्रमोद की अटैची और होल्डाल कमरे मे ले आया ।

बैरा, जो अभी तक द्वार पर ही खडा था, आगे आया, उसने बेड रूम मे पडे पलंग पर खोल कर बिस्तर संभाल दिया ।

तभी प्रमोद ने प्रतिमा से प्रश्न किया, "व्हाट विल यू लाइक ? काफी आर टी । आर एनी अदर ड्रिंक ।"

"आई थिंक, आई डोन्ट टेक एनी ड्रिंक्स्...बट आई उड लाइक टु हैव ऐ कप हाटेस्ट काफी,...ओ...दिस कोल्ड...डोन्ट टेक आफ योर चेस्टर प्लीज..." प्रतिमा ने ड्रिंक्स के निमन्त्रण का समुचित उत्तर देकर उस सम्बन्ध मे अपनी मान्यताएँ व्यक्त कर दीं ।

विवश होकर प्रमोद को भी उत्तर देना पड़ा, "यू शैल बी ग्लैड टु नो दैट आई आल्सो डोन्च टेकसनी ड्रिंक्स...।"

तुरन्त ही प्रमोद ने बैरा को पुकारा और काफी का आदेश दे दिया ।

बैरा के चले जाने पर प्रतिमा ने अपने चारों ओर के कमरे को देखते हुए कहा, "कितनी शान्ति है यहा...।"

प्रमोद मन्त्र-मुग्ध-सा अपलक प्रतिमा को देख ही रहा था । अब तक वह प्रतिमा के निकट ही सोफे पर आकर बैठ गया था ।

उसी क्षण दो और दो...चार...मिलकर नेत्र एक हो गए । किन्तु वे मतवाले हड़बड़ा कर पुनः भाग खड़े हुए और अन्य वस्तुओं को

देखने का विफल प्रयास करते रहे।

तब तक काफी के प्याले आए। भरे गए और खाली होकर लौट भी गए।

दस-बीस मिनट वहा यो ही निस्तब्धता बनी रही। मिलन से आकुल दोनो ही प्राणी कुछ कहने के लिए बढ़े पर बात आकर उलटी लौट जाए। क्या बात करें ? कैसे प्रारम्भ करे ? विद्वत्ता व तर्क-वितर्क... तब...उस समय ?

और प्रमोद ने प्रारम्भ किया, "हाऊ डू यू लाइक दिस प्लेस। आम शिफ्टिग हियर, अगेन, टुडे।"

"वेरी गुड बट व्हाई...व्हाई यू आर लीविग द होस्टल ? बट व्हाई यू, यू एटआल वेन्ट देयर।" प्रतिमा ने अपने जूड़े के बालो को संवारते हुए कहा। उसके कुन्तल केशो से मधुरिम सुगन्धि प्रस्फुटित हो रही थी।

सामने के द्वार से शीतल वायु का झकोरा आता और कंपा देता। अतः प्रमोद ने उठकर उसे उढ़का दिया।

द्वार बन्द होते ही बन्द मन खुलने को अधिक अकुलाने लगे।

प्रमोद सोच रहा था...कुछ बाते हो। न जाने किन-किन युगों की प्रतीक्षा के बाद प्रतिमा सामने थी। प्रतिमा चाह रही थी...सोच रही थी, इस निर्जन मे यो मौन.. सच...सच, एकान्त बड़ा बैरी होता है, ...खतरनाक। तो कुछ बात होनी ही चाहिए। किन्तु क्या.. कौन-सी बात ? और प्रतिमा का हृदय स्पन्दन रह-रह कर द्रुतगति पकड़ लेता।

धीरे से प्रमोद ने पुकारा, "प्रतिमा...।" और मौन।

"कहिए।" जैसे प्रतिमा ने साहस उड़ेलना चाहा हो।

"बोलो...तुम्हारी आराधना में...।" और मौन।

प्रतिमा प्रमोद मे डूब गई। क्षितिज के पार...मिलन की पुकार। सर्वांगीण स्नेह और सम्मान के आदान-प्रदान का मधुमय आमन्त्रण...

और...और प्रतिमा तड़प कर वहीं भूमि पर बिछे भारी कालीन पर बैठ गई...अचानक उसने प्रमोद के पैर थाम लिए।

छिटक कर प्रमोद खड़ा हो गया। प्रतिमा उसके समक्ष नीची दृष्टि किए यो ही बैठी रही। मु दे पलको मे प्रमोद बोला, "देवी, तुम्हारा स्थान ..तुम्हारी मूर्ति मेरे इस हृदयासन मे···है।"

और आवेश मे, आवेग मे, उद्रेक मे, मन के मृदुल कंपन में प्रमोद ने प्रतिमा को उठाया और नेत्रोन्मीलन के अविचल प्रवाह में उसे आलिंगन मे कसते हुए चुम्बन की थिरकती गतियो से विभोर कर दिया। प्रतिमा समर्पण की उस बेला मे प्रेमी के उद्‌गारो का स्वागत करके मोन सम्मति प्रदान करती रही।

अमर-मिलन।

और प्रमोद आवेश मे कह उठा, "न जाने क्यो . मुझे सदैव यह विश्वास बना ही रहा कि मेरी तपस्या विफल न होगी, न होगी.. ।"

और प्रतिमा ने अतिरेक के प्रवाह मे अपने कोमल गात को ऊपर उठा दिया। प्रमोद पुनः मिलन-चिह्न बनाता-बनाता प्रतिमा के साथ सोफे पर उढ़क गया।

वे अमिट क्षण, जब दो प्रेमी, जीवनसुरभि बटोर कर, बिखेर कर, सान्निध्य की सीमा पाकर, अपने अमूल्य नैसर्गिक जीवन की लड़ी पिरोते है, बस कुछ-कुछ सोचते हैं, बहुत कुछ सोचते हैं। विस्मृति में स्मृति पाकर एक मन, एक तन, बस एक प्राण...पुकार उठते हैं। चीख उठते हैं। धीरे-धीरे बुदबुदा उठते हैं, वे क्षण बोलने की सामर्थ्य को निर्बल बना देते हैं।

प्रमोद ने प्रतिमा के कुंकुम होठो से अपने होठ मूंद लिए...।

वह अलग होकर बहुत धीमे से कह गया...

"कितना हसीं गुनाह किए जा रहा हूँ मैं...।"

और प्रतिमा सचेष्ट होकर निर्भीकता से प्रत्युत्तर मे कह उठी, "यह क्या...,कदापि नही...बल्कि यो...

नेकबन्दों से खुदा पूछेगा ये क़हर के रोज़...
गुनाह क्यो न किया, क्या खुदा करीम न था।
और प्रमोद ने प्रतिमा की उस अमित मुस्कराहट मैं उसे......

उस क्षण से जीवन ही बदल गया। मान्यताएँ और निखरीं और गहरी होती चली गई।

प्रतिमा सोसियोलाजी के साथ-साथ जर्नलिज़्म व साइकोलाजी की उच्च शिक्षा का लाभ उस सुदूर देश मे पाती रही।

प्रमोद लॉ के गूढ तत्वो मे लीन हो गया।

प्रतिमा ने होस्टल छोड़ दिया। वह प्रमोद के साथ ही उस कमरे मे चली आई। प्रतिमा ने जस्टिस महोदय को व प्रमोद ने वकील साहब को पृथक्-पृथक् रूप से वे अनेक शुभ समाचार प्रेषित कर दिए, जिनको वे इन कुछ दिनो में बटोर पाए थे।

प्रतिमा ने जस्टिस महोदय को लिख भेजा :

"बाबूजी, आप जीते और मैं हार गई। उसी प्रकार जैसे जस्टिस की लड़की वकील के लड़के से हार मान बैठी। अब मैं इसे हार क्यों कहूँ ? वह तो जीवन का सत्य बनकर रह गई। प्रमोद के साथ ही रह रही हूँ। बुरा न मानिएगा। शादी के लिए हम शीघ्र ही स्वदेश लौट रहे हैं। उनकी भी यही 'ओपीनियन' है।

पिकाडेली की शाम प्रतिमा व प्रमोद के लिए नित नूतन कार्यक्रम लेकर आती। ओडियन सिनमा में बैठकर वे आगे के दिन का कार्यक्रम बनाते। कभी हाइड पार्क में घूमते-घूमते किसी कम्यूनिस्ट के ओजपूर्ण भाषण सुनकर चौंकते और सोचते इस विचार-स्वातन्त्र्य की अंगरेज़ी-पद्धति को यदि सभी अपना ले तो 'वर्ल्ड-वार' छिड़ते कुछ अधिक देर न लगे। किसी दिन इंग्लैंड की धार्मिक अवनति पर, किसी

अर्ध-विक्षिप्त वृद्ध के निकट एक-दो मिनट रुक कर नए अनुभव प्राप्त करने की लालसा से वे वहा अटक जाते।

इसी प्रकार का एक नया अनुभव प्रमोद को होते-होते रह गया। एक स्थान पर एक पादरी साहब बाइबिल पर कुछ विचार व्यक्त कर रहे थे। प्रतिमा उसको सुनने लगी। प्रमोद टहलता हुआ आगे बढ़ गया। और अकेले युवक को देखकर जैसे पक्षी पर बाज झपटता है, वैसे ही लन्दन मे रंगराती-रंगीलियों का हाल है। बस, प्रमोद के निकट आ कर एक सुन्दर कोमलागी ने प्रश्न कर ही तो दिया, "हैव यू सिगरेट लाइटर......?" और प्रमोद चुप। क्या उत्तर दे, यह सोचने के पूर्व ही प्रतिमा ने निकट आकर उसके हाथों मे अपना हाथ डालते हुए प्रश्न किया, "व्हाट्स द मैटर...?" प्रमोद चुप। एक ओर तो वे मेम साहब बिना प्रमोद के 'लाइटर' के चुपचाप आगे बढ़ गई दूसरी ओर परिस्थिति देख कर प्रतिमा सब कुछ समझ गई और हँसते-हँसते दोहरी हो गई। उसको हाइड पार्क के वे रीति-रिवाज ब्राउनिंग से ज्ञात हो चुके थे। तभी मुस्कराते हुए प्रतिमा बोली, "कहती हूँ, अपने पास से कभी स्त्री का साथ मत छोड़िए। चलिए आज बच गए।"

प्रमोद हँसते हुए कहने लगा, "अच्छी रही। और तुम भी इतना डरा रही हो। आखिर ऐसी बात क्या थी...?"

"अकेले में बताऊँगी..." प्रतिमा आगे बढ़ते हुए कह गई।

"तो इस हाइड पार्क मे यहा कौन दुकेला बैठा है...?"

"चलो देखोगे, यहा सभी दुकेले मिलेंगे, लेकिन जरा देर मे।"

"समझा...।" कह कर प्रमोद प्रतिमा के और निकट आ गया। और "घर चलो" कहकर लौटने को उद्यत हुआ।

किन्तु हाइड पार्क मे लेक उनके विशेष आकर्षण की वस्तु थी। नौका-विहार मे आनन्द दोनो को आता किन्तु पानी से दोनों डरते थे। हाँ, लेक के किनारे-किनारे पड़ी कुर्सियों पर बैठ कर वे 'बोटिंग' और

'स्विमिग' का आनन्द लेते और निकट से आने-जाने वाले 'पेयर' देख-देख कर मुस्कराते रहते ।

वे सीमाएँ, अध्ययन मात्र मे लीन रहने की अब तक की सारी मान्यताएँ, वैसे सारे कार्यक्रम, प्रतिमा के हुर्र हो गए। आज सुरभित-जीवन की अठखेलियो मे क्रम परिवर्तित होते चले गए। अब पुष्प परागमय जो हो गया। अब कलिका...कलिका मात्र कब थी. .उसमें सुरभि, सुवास, पराग, और प्रस्फुटन जो आ गया था।

फोलियोवर्जर ओपेरा मे वह प्रमोद के साथ बहुधा समय व्यतीत करती। तीन मास का पाश्चात्यनृत्य-सम्बन्धी एक 'कोचिग-क्लास' प्रतिमा व प्रमोद दोनों ने ही ले लिया और गति चल निकली। सप्ताह मे तीन दिन वे अपने-अपने पैरो की थिरकन मे सामजस्य स्थापित करने का प्रयास करते। जस्टिस महोदय को भी प्रतिमा ने लिख दिया, "पिता जी, उनके साथ इस समय डासिग-क्लास जा रही हूँ। शेष पत्र कल पूरा करके भेजूँगी।"

लन्दन की 'ट्यूबट्रेन' के बन्द शीशो के अन्दर बैठ कर घूमने में प्रतिमा को विशेष आनन्द मिलता।

गेरार्ड स्ट्रीट, पिकाडेली और लेसिस्टेन-स्क्वायर उनके मनोरंजन एवं घूमने-फिरने के विशेष स्थान बन गए। कभी वे अपने होटल से आगे जाकर चेरिंग-क्रास की ओर बढ़ जाते। लन्दन के यह अत्यधिक व्यस्त चौराहे का दिग्दर्शन कराता। यहाँ चार्ल्स प्रथम की मूर्ति को लगा देख कर प्रमोद को तत्सम्बन्धी इतिहास का स्मरण हो आता।

'डबलडेकर—बस' प्रतिमा की प्रिय सवारी बनी हुई थी। प्रतिमा के साथ प्रमोद ने भी लन्दन के सभी दर्शनीय व प्रमुख स्थानो को देख डाला। चेरिंग-क्रास के आगे ट्राफल्गर-स्क्वायर और इन दोनो के बीच के भव्य-भवनों को देख-देख कर प्रमोद मोहित हो जाता। यों पैदल घूम

कर कई-कई बार उसने उन अट्टालिकाओ की भव्यता एवं विशालता को अपने मन मे संजोया । यही 'नेशनल-गैलरी' मे उसने उन प्रसिद्ध चित्रो की झाकी देखी, जिनके सम्बन्ध मे उसने भारत मे अनेक प्रकार से चर्चा सुनी थी । एक दिन मगलवार को प्रतिमा के साथ वह नेशनल गैलरी देखने गया । सोमवार, मंगलवार, बुधवार व शनिवार को ही गैलरी खुली रहती है। यह उसे तब ज्ञात हुआ, जब एक दिन वह शुक्रवार को बडे मन से गया और हताश लौट आया । प्रतिमा ने 'नेशनल-गैलरी' देख रक्खी थी। उसे वहाँ कुछ रुचिकर लगा भी नही अतः वह दुबारा नहीं गई।

कुछ दिनो तक प्रतिमा व प्रमोद को केवल "क्रिस्टल-पैलेस" ही रुचिकर लगता रहा । अन्य स्थानो का आकर्षण उसके सामने कम हो गया। कीर्ति को प्रमोद ने एक पत्र मे इस "क्रिस्टल-पैलेस" की अत्यधिक बडाई लिखी । काच और लोहे से बने इस दर्शनीय राज-प्रासाद का वर्णन लिखते हुए लन्दन से प्रमोद ने कीर्ति को लिखा, "मित्रवर, मूर्खवर, क्या लिखूं...कहा था लन्दन साथ चलो, न माने। ऐसी-ऐसी वस्तुएँ देखना तेरे भाग्य मे कब है ? यहाँ लन्दन से ७ मील दूर एक काँच का महल बना हुआ है। इसकी दीप्ति बस देख कर ही अनुभव की जा सकती है। इस प्रासाद मे एक हाल है। इसकी लागत लगभग १५ लाख पौड है । इसमे एक सुन्दर चित्र प्रदर्शनी है, पुस्तकालय है, वाचनालय है, साहित्य, विज्ञान एवं कला की शिक्षा के लिए कलाकृति मे एक विशेष विद्यालय बना हुआ है । आसपास की हरीतिमा के वातावरण से आच्छादित यह महल सचमुच कीर्ति, लन्दन की एक दर्शनीय वस्तु है। अवकाश के दिनो मे यहाँ लन्दनर्स आनन्द, उत्सव व रंगरेलिया मनाते हैं। मैं भी ऐसी ही एक छुट्टी के दिन प्रतिमा जी के साथ गया था। विभिन्न प्रकार के खेल चल रहे थे...। आतिशबाजी तो यहाँ की इतनी आकर्षक थी कि अपने देश से उसकी कोई तुलना ही नही। सर्कस, संगीत-समारोह व अन्य इसी प्रकार के समारोह यहाँ होते

रहते हैं। जिनके सम्बन्ध मे सूचनाएँ पत्रो में प्रकाशित होती रहती हैं एवं तदनुसार नागरिक उसमे भाग लेते रहते हैं । मैं व प्रतिमा तो अनेकों बार इस स्थान को देख चुके हैं। उस दिन वहाँ फूलो का प्रदर्शन था। कीर्ति, देखने की वस्तु थी वह।"...इत्यादि।

इसी प्रकार दिन बीतते गए । जीवन के परम-सुख में भीगे-भीगे वे दोनो युवा प्रेमी लन्दन ऐसे विश्व के वैभव-स्थान में क्रीड़ारत होकर पठन-पाठन मे लगे रहे।

प्रमोद को लन्दन के नागरिक जीवन ने अत्यधिक प्रभावित किया। रीजेन्ट-स्ट्रीट, सेन्ट पालस् , पाल माल, ट्राफल्गार स्क्वायर आदि में घूसते-घूमते कभी वह उच्च अट्टालिकाओ को देखता रहता तो कभी वह अनुभव करता कि कितना व्यस्त हो सकता है मानव-जीवन, इन विश्व के प्रख्यात नगरों में। कही कोई व्यक्ति बेकार नहीं दिखता। कही कोई गन्दगी नहीं देखता। व्यक्तित्व कितने प्रखर व सभ्य हैं। कही उसने उद्दण्डता नहीं पाई, लोग चुपचाप मशीन की तरह कामो में लगे हैं। सर्वत्र युवतियां ही अधिक काम करती हुई दिखाई देती हैं। और आफिस टाइम में तो लन्दन की चतुर्दिक विस्तृत स्वच्छ सड़कों को देखकर वह हैरान हो जाता। किसी क्रासिंग पर जब दूर बैठा 'आपरेटर' सिगनल देकर एक ओर का मार्ग रोक देता है तो पलक मारते दूर तक बहुसंख्य मोटरें, बसें, लैंण्डो, टैक्सी लाइन की लाइन खड़े के खड़े रह जाते हैं । जब दूसरी ओर का मार्ग इस प्रकार अवरुद्ध हो जाता है तो उधर की भी वही दशा होती है। तभी मोटरों की लाइन के बाईं ओर साइकिलो पर दौड़ती सुन्दर युवतियों की एक कतार लग जाती। तब वे अपना ब्रेक दाबे उतर कर किनारे खड़ी हो जाती हैं, लाइन की लाइन; आफिस जाते हुए या आते हुए;और तब वे सब मोटरो व सवारियो पर बैठे स्त्री-पुरुषों को देखतीं और वे इन्हें देखते।

और वही वार्तालाप में यदि दो-चार आपस में हँस देतीं तो दूर तक वह 'क्यू' हँसी का सर्किल बन जाती।

यो ही एक दिन प्रतिमा व प्रमोद मिल कर अपने लिए एक ज्वाइंट-पालिसी लेने के लिए एक इंश्योरेंस कम्पनी के आफिस मे गए। लिफ्ट से चढकर सात तल्ले में वह आफिस था। कई कमरो के मध्य एक बड़ा हाल था जिसमें छोटी-बड़ी मिलाकर पचासो मेजो मे टाइपराइटर्स पर टिकी युवतियो की थिरकती उंगलियो को वह देखता ही रहा। प्रतिमा भी साथ थी। वह सोचने लगा, इस प्रकार हजारो की सख्या में कार्यरत महिलाएँ, विवाहिता, अविवाहिता, तरुण अथवा प्रौढ़ अपने जीवन में कितने स्वान्तः सुख व स्वतन्त्रता का अनुभव करती हैं और दूसरी ओर भारतीय नारी की करुण झाकी, या तो अधकच्चरे फैशन मे अत्यधिक लिप्त या घूंघटों में ढँकीं, दोनों अवस्थाओ मे अशिक्षिता और बस बच्चा पैदा करने की मशीन भर। हा, उसे भारतीय दाम्पत्य-जीवन से मोह है...उससे वह समझौता कर सकता है। कुछ देर वहा व्यस्त रह कर प्रतिमा व प्रमोद ने एक पालिसी ली और लौट आए।

प्रतिमा को सर्वाधिक आनन्द पिकाडेली घूमने में आता था। छः दिशाओ में फैली पिकाडेली की एक-सी दुकानें, एक-से मकानो और एक-से मार्गों को देखकर वह अनेक बार घूम आने पर भी अपरिचित ही बनी रहती। विश्व के बाजारो से चुन कर आई हुई सामग्रियो से सजी हुई दुकाने, उन पर बैठे अत्यन्त सुलझे हुए सेल्स-मैन...और लन्दन जैसे पठन-सामग्री...पुस्तको, मैगजीनो, पीरियाडिकल्स, पम्फलेट्स आदि का जंगल हो। मानव से सम्बन्धित बड़े-से-बड़े, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विषय पर वहाँ असंख्य पुस्तके प्रस्तुत है। हमारे भारत मे प्रचलित विभिन्न बड़े नगरों का "यूनिवर्सल-बुक-स्टाल" जैसे उन पुस्तको की दुकानो का बड़ा नन्हा रूप है।

और उस पिकाडेली के नीचे-नीचे 'ट्यूब-ट्रेन्स' का जाल, दौड़ती हुई ट्रेने, प्रतिमा अनेक बार देख-देख कर उन पर घूम-घूम कर भी न

ऊबती। पिकाडेली की हर राह पर किनारे बने हुए अण्डर-ग्राउण्ड जाने के लिए फाटक और उनसे उतर कर अन्डर-ग्राउण्ड स्टेशन तक जाने के लिए बनी सीढिया प्रतिमा सैकडो बार चढ गई और उतर आई।

पिकाडेली के लायन्स होटल मे प्रतिमा के पिताजी के परिचित उनके समकालीन एक रिटायर्ड जज आकर ठहरे हुए थे। जस्टिस महोदय ने प्रतिमा को लिखा था कि उनसे अवश्य मिल लेना और उनका पता लिख भेजा था। उसी के अनुसार प्रतिमा उनसे मिलने 'लायन्स होटल' गई। होटल के चौबीस नम्बर कमरे मे रहने का पता था। प्रतिमा प्रमोद के साथ उनके कमरे के सामने जा खड़ी हुई। प्रमोद बाहर रुक गया और प्रतिमा ने अन्दर प्रवेश किया। तत्क्षण प्रतिमा उलटे पैरो लौट पडी। वहाँ उसने देखा, उसके परिचित जज महोदय थे तो किन्तु वे एक सत्रह-अठारह वर्ष की अगरेज़ लड़की को साफे पर समेटे पडे थे।

उसको स्वप्न मे भी उस चित्र-दर्शन की आशा नही थी। प्रमोद ने प्रश्न किया, "क्यो?"

प्रतिमा के मुख पर एक अनचाही मुस्कान प्रस्फुटित हो गई।

प्रमोद पुनः बोला, "मैं देखूँ ..क्या वे हैं नही?"

"बिजी...।"

"तुम से बात नही हुई।"

"टू मच बिजी...।" कहकर प्रतिमा हँस दी। "लेट अस बी बैक...।" कह कर प्रतिमा लौटने को उद्यत हुई। तभी सामने से होटल का बैरा आया और उसने प्रश्न किया, "हूम यू वान्ट सर...।"

"मि० पौराणिक, एन इण्डियन...।" प्रमोद इतना कह ही पाया था कि अपना नाम सुनकर तुरन्त जज महोदय ने बाहर आकर प्रमोद के निकट प्रतिमा को देखा और पहचानते हुए बोले, "ओ...हल्लो, यू बेबी...आई वाज वेटिंग यू फार सच ए लाग टाइम, कम आन, कम आन...।"

"यू आर बिजी सर, दिस टाइम, वी शैल कम अगेन...।" प्रमोद ने तपाक से कह दिया।

सकपकाते हुए निरुत्तर जज महोदय एक क्षण प्रतिमा की ओर देखते ही खडे रह गए। प्रतिमा ने जज महोदय की परिस्थिति को उस क्षण सभालते हुए प्रमोद की ओर सकेत करके कहा, "लेट अस सिट सम टाइम...।"

तभी जज महोदय ने स्वागत-सत्कार के निमित्त प्रश्नावली प्रारम्भ कर दी।

"नो...नथिग।" प्रतिमा ने उत्तर दिया।

"नो सर, थैंक यू ..।" के पश्चात् प्रतिमा व प्रमोद ने देखा कि साथ के कमरे मे खिल-खिल-खिल, ही-ही-हूँ, के स्वर निरन्तर अन्दर आ रहे थे। स्वर एक से अधिक स्त्रियो के ही सम्भव थे। प्रतिमा का दम घुट रहा था। और जज महोदय के प्रश्नो की बन्दूके दनादन छूट रही थी। प्रमोद, प्रतिमा की भाव-भंगिमा को समझता हुआ किनारे से हँस रहा था। प्रतिमा भी प्रमोद को देखकर जज साहब की ओट मे मुस्करा देती। जज महोदय कुछ-कुछ समझ रहे थे कि ये छोकरे बना रहे हैं। तभी उन्होने प्रारम्भ किया।

"आयम द फास्ट फ्रेन्ड आफ द फादर आफ दिस नाटी, चैप। मानसिंह हैज आस्कड मी टु लुक आफ्टर हर अपटु द टाइम आएम इन लन्दन...एण्ड हू यू आर?"

प्रतिमा मन ही मन जज से अत्यधिक कुढ़ रही थी। फिर भी अपने को संयत करती हुई वह बोली, "ए फ्रेन्ड आफ माइन...।"

"बट, बट हाउ यू हैव डेवलेप्ड दिस फ्रेण्ड-शिप हियर?"

प्रतिमा से न रहा गया, उसने आवेश मे आकर उत्तर दिया, "लाइक द ओल्ड चैप्स हू गेट फ्लर्टेड विद द ऊमेन आफ देयर डाटर्स एज।"

प्रमोद चौक उठा। जज महोदय पर जैसे आसमान फट पड़ा हो।

कुछ क्षण पूर्व की रसज्ञ-रंजना आखों में नाच गई। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे।' उनकी त्योरिया तन गई। प्रतिमा निश्चिन्त भाव से कुछ क्षण मौन बैठी रही। तब एकाएक उठकर तनते हुए कहा, "आल राइट अन्कल, एक्स्क्यूज मी एण्ड लेट मी गो। आई शैल बी ग्लैड टु टेल माई पापा दैट आई मेट यू।"

प्रमोद उठकर साथ हो लिया। तभी लड़खड़ाते स्वर मे जज महोदय ने कहा, "योर पापा हैज सेन्ड वर्डस् दैट ही उड बी कमिंग टू यू नेक्स्ट मन्थ।"

"ओ थैंक यू...।" कहकर प्रतिमा चल दी।

प्रमोद ने आश्चर्यान्वित होते हुए प्रतिमा से कहा, "इतनी कड़वी बात...।"

और प्रतिमा ने उत्तर मे कमरे का दृश्य प्रमोद से व्यक्त कर दिया। कहते हुए उसने आगे शब्द जोड़ दिए, "यस दिस बुढ़ऊ, एब्सर्ड।"

प्रमोद खिलखिला कर हँस दिया।

"मैं आज ही पापा को लिखूँगी...उनके ऐसे बेहूदे भी दोस्त हैं। एण्ड बीग ए रिटायर्ड जज आन हूज बैक जस्टिस एण्ड मोरेलिटी स्टुड, वन डे। हारिबल।"

अपने होटल पहुँच कर प्रमोद को दो पत्र मिले; एक पत्र कीर्ति का जिसमें अगले मास की २८ तारीख को उसका विवाह होने को था। दूसरा पत्र किशोर मजूमदार की स्टेट के मैनेजर मि० जीवन ने भेजा था। इस पत्र मे जीवन ने प्रमोद को भारत बुलाया था। उसने लिखा था, "आपको किशोर महोदय की स्टेट के एक अत्यावश्यक कार्य से आना है। यहाँ गवर्नमेन्ट से स्टेट सम्बन्धी बहुत ही गम्भीर प्रश्न को हल करना है। सभी ट्रस्टीज का होना परम अनिवार्य है। आपकी उपस्थिति भी उसी प्रकार अनिवार्य हो गई है। माँ जी से भी परामर्श हो

चुका है। आपको स्टेट की ओर से आने-जाने का व्यय मिलेगा ही। आप प्रबन्ध करके अगले माह की शीघ्र से शीघ्र किसी तिथि को आइए। कार्य की महत्ता को व्यक्त करना आपके प्रति अविश्वास होगा।

शेष कृपा। आप तो लन्दन जा बैठे। इतनी दूर जाने के पूर्व हम लोगो से आप बिना मिले चले गए। आप सूचना देते तो मैं अवश्य ही आता।

"उर्मि इन दिनो अपनी माताजी के पास है। उसके पति से उसकी अनबन हो गई है।

प्रमोद दोनो ही पत्र पढ़ कर मुस्करा दिया। एक मे उसके अभिन्न मित्र का परिणय, दूसरे मे उसको स्वदेश बुलाने का आमन्त्रण। उसका मन खिल उठा। तो क्या वह स्वदेश जाएगा, शीघ्र ? और वही सामने बैरा ने उच्च स्वर मे 'आक् छी' करके नाक साफ करते हुए कमरे मे प्रवेश किया। वह प्रातःकाल की डाक लेकर आया था।

बैरा के दिए पत्र मे प्रतिमा के लिए ही केवल एक पत्र था, जिसमें उसके पिता ने लिखा था कि वे अगले माह लन्दन आने की सोच रहे हैं।

तभी प्रमोद ने अपने दोनो पत्रो का सार बताते हुए पत्र प्रतिमा की ओर बढ़ा दिए।

मानव-विरचित मनस्पूत भावों का भव्य प्रासाद, उसके चिरन्तन विश्वास व आशा की नीवो पर टिका आस्था की उच्च अट्टालिका... नियति रूपी गाम्भीर्य और औत्सुक्य के बवंडर मे अन्तर्चेतना की लहरों की भाति देखते-देखते, सोचते-सोचते बनती भी है बिगडती भी है। एक हलचल आई। सुस्थिर गति से बह निकलने वाला अनुरागमय वह संगीत, चंचल गति से डोल उठने वाला प्रेम का वह लोल-नर्तन, एक संकेत पा कर रुका। उसकी गति बढ़ चलने के पूर्व एक क्षण को मन्द

पड़ गई। प्रमोद व प्रतिमा ने सोचा, कौन कब लन्दन से जा रहा है!

प्रमोद एकाएक बोल उठा, "अच्छा सुअवसर है। कुछ दिनों को अपना देश बुला रहा है। चलें, प्रतिमा, तुम भी चलोगी ही। जल्दी लौट आएँगे...।"

"चलूँ, तो और प्रतीक्षा न करोगे। यहाँ से पूर्णतः निवृत्ति पाकर ही चलते...पर...नही, चलो। मैं भी चलूँगी। ठीक से बताना तो मैं पिताजी को लिख दूँगी वे न आएँ...। हम लोग स्वयं ही आ रहे हैं...। और पंडित से...।" कहते-कहते प्रतिमा के कुसुमित होठो पर आमन्त्रण भरी मुस्कान दौड़ गई।

"क्या...?" प्रमोद प्रतिमा के निकट बढ़ते हुए बोला।

"मुहूर्त्त...।"

और प्रमोद ने प्रतिमा को जकड़ लिया।

किन्तु...।

प्रमोद एकाएक सोच गया। स्वदेश बुलाने का आमन्त्रण और... तत्क्षण उस बैरे की आकृति। कुछ नही, वह सब भ्रम है। कुछ नहीं। बात को मन से हटाने के लिए...।

चलो चले उस देश जहाँ छिटका हो मंजुल प्यार सखे...।

शकुन नए अपशकुन नए......।

और अपने सौन्दर्य मे थिरकती बाहो को...पसारते हुए, नेत्रो को कुछ गहराई तक उंडेलते हुए, वक्षस्थल की गति में छिटकती उड़ान भरते हुए...आगे बढ़कर प्रतिमा ने प्रमोद के उच्चस्थ कन्धों और ग्रीवा में एक पाश डाल दिया।

प्रमोद...बस अपनी आँखों को...डुलाते हुए प्रतिमा के केशों पर उंगली नचा कर...रह गया।

और कार्यक्रमों मे नई गति, नई चेतना और...अधिक उल्लास भर

गया। थोडे दिनो में, थोडे दिनो को घर जाना है। लन्दन की सारी वस्तुएँ देख डालनी हैं.. और नित्य नए स्थान देखने प्रारम्भ हो गए।

प्रमोद को, पिकाडेली के बीचोबीच, ठीक नीचे...अण्डरग्राउन्ड बने ट्यूब ट्रेन के स्टेशन वाला वह विश्व का विशाल मानचित्र बड़ा प्रिय लगता था। और उस पर घूमती घडी की वे सुइयाँ, जो प्रतिपल विश्व के विभिन्न कोणो का समय व्यक्त करती हुई थिरकती रहती थी...एक विशेष आकर्षण की वस्तु थी। किसी दिन वह जाता और कहता "प्रतिमा, वह देखो, तुम्हारी बम्बई मे इस समय रात्रि के दो बजे हैं और हम लोग यहाँ यो घूम रहे है...और विज्ञान का वह आविष्कार। और विश्व के हर भाग मे सूर्य और पृथ्वी के चक्र से समय की भिन्नता, देहली इस समय क्या बजा रही है? पडी सो रही होगी, मास्को की घडियो मे...वह देखो सामने ग्यारह बजा है, और प्रतिमा...वह देखो रंगून .., वह पेकिग...., वे वहाँ कितने घण्टे दे रही है, और न्यूयार्क, वाशिगटन, पेरिस, रोम, वह कैरो, मक्का, बेलजियम, अफ्रीका, जर्मनी के विभिन्न नगर, विभिन्न समय दे रहे है। विश्व की जितनी घड़ियाँ हैं, कोई समान नही, कोई एक नहीं, बस, वैसे ही मन की घडी...कभी नही मिलती। वह सौभाग्य है, वह आश्चर्य है, वह विशेषता है. .जब वह मिल जाती है। मिलती भी है. .किन्तु तब घड़ी घडी नहीं रह जाती,. तब...वह दो... नही...एक सूई से चलती है।

और उससे भी विशेष लन्दन के आकाश की वह लाली, दूर क्षितिज मे सूर्यास्त के समय की भाँति कभी कही गहरी, कभी हल्की...सदैव आकाश मे आच्छादित...वह लाल-सा अंगारा...कभी चार घण्टो का दिन, कभी तीन घण्टो मे ही प्रकाश का लोप और लन्दन की सडको पर अन्धकार।

तब वे दोनो, मन से एक, वे प्रेमी जन लौट पडते अपने निवास की ओर...तब अनुराग भरी रात, मनुहार भरी बात...और समय क्षणिक होता चला गया।

और...रह रह कर...बुलावा आया है, जाना है। सोच बना रहता।

और टेम्स के मनहर पुल से दिखाई देने वाली लन्दन की वे भव्य अट्टालिकाएँ ..दूर से दिखाई देने वाला सेन्ट पाल्स...वेस्टमिन्स्टर, और क्लेपेट्राज-नीडल, ब्लेकफ्रेयर्स ब्रिज, वेस्टमिन्स्टर चेरिंग-क्रास-ब्रिज, लेम्बैथ ब्रिज, वाक्सहाल ब्रिज से दिखाई देने वाले दृश्यों का चमत्कार और रात्रि मे भवनो के प्रकाश से प्रज्वलित हो उठने वाली वह टेम्स, रात्रि-नर्तन करती हुई वह शान्त मौन अप्सरा-सी मूक लहरो मे दबी प्रवहमान जलधारा...।

प्रतिमा मीलों से दिखाई देने वाले सेन्ट पाल गिर्जे को अनेक ओर से घूम-घूमकर देखती और तब अपने नेत्र सडकों पर चलने वाले व्यवस्थित व सभ्य नागरिकों पर टिका देती। प्रमोद उसके साथ होता। मार्ग पर चलते-चलते दुकानो के शो-केसो मे लगे सामान को उत्सुकता से देखते-देखते वे किसी दुकान मे घुस जाते और कुछ न कुछ क्रय करते।

और 'लन्दन टावर'...वह ऐतिहासिक भव्य स्तूप जिसकी दीवारे १५-१५ फीट मोटी और ६० फीट ऊँची है, विजेता विलियम की स्मृति मे आज भी नवीन है। टेम्स के किनारे रोमन किले के समक्ष बना यह टावर, लन्दन की एक विशेषता है। लन्दनर्स से इस सम्बन्ध में बात करने पर वे इसकी विभिन्न गाथाएँ सुनाते हैं। वे बताते, "किसी समय यह राज-प्रासाद था...शक्ति का चिह्न था, वैभव का स्तम्भ था, विलासिता का कक्ष था.. कभी इसके नाम से लोग कॉप जाते थे...यह अत्याचार का गढ था...मानव पर अनेक प्रकार के अत्याचार व अनाचार करने के हेतु यह एक बड़ा बन्दीगृह भी रहा। वैषम्य की इसकी विचित्र कहानियाँ हैं। महारानी विक्टोरिया के समय से यह इंग्लैण्ड का एक आकर्षक मुक्तामणि सदृश बना हुआ है और अंग्रेज़ी इतिहास के तत्वो को अपने में समेटे एक दर्शनीय स्थान भी।

और उस दिन एल्बर्ट रोड वाले भाग से होकर टैक्सी ने प्रमोद व प्रतिमा को जूलाजिकल-गार्डेन मे छोड़ दिया। दोनो घंटो वहाँ पर एकत्र पशु-पक्षियों को देखते रहे।

एकाएक लन्दन का वायुमण्डल अत्यन्त नम हो गया। शीत के भयावह प्रकोप से सर्वत्र अस्तव्यस्तता आ गई। और वह पश्चिम का शीत, इग्लैंड का ठिठुरता जाडा, घना कोहरा, असह्य ठिरन, हिमाच्छादन और तब सर्वत्र चहल-पहल की शून्यता, आवागमन कठोर, समारोह व उत्सव दीर्घकाल के लिए स्थगित हो जाने के उपरान्त प्रमोद व अलसाई प्रतिमा के कार्यक्रमो मे भी अवरोध आ ही गया।

और ..

म्हारो जनम-मरण को साथी ..

गुनगुनाते हुए प्रतिमा अपने रेशमी 'नाइट-गाउन' मे बिस्तर मे समा गई।

प्रमोद साथ के दूसरे कमरे मे सोता था। इस अमर-ध्वनि के सगीत के गुंजन मे वह प्रतिमा के पलंग के निकट आ कर यो ही कम्बल के कोने को उघाडते हुए बोला, "क्या गुनगुना उठी...यह तो एक नई बात है।"

"बस...।" प्रतिमा ने अपने रसभरे नयनो मे प्रमोद को उतारते हुए कहा।

"तो सुनाओ।"

और उस अमर गायिका, अमर प्रेयसी, अमर विरहिणी मीरा का यह पद धीमे-धीमे.. संगीत के मधुमय-शृंगार के साथ प्रतिमा सुना गई।

म्हारो जनम-मरण को साथी...।

प्रमोद झूम गया। प्रतिमा के इस आकस्मिक गुण को तो वह जान ही नही पाया था। वह मन्त्रमुग्ध-सा सुनता रहा और अन्त मे एक दीर्घ

निश्वास छोड कर कह उठा, "ओ. .प्रतिमा ।"

प्रतिमा ने मुस्कराते हुए और तब तनिक गम्भीर स्वर में कहा, "देखिए श्रीमान् जी, एक बात का उत्तर दीजिए ।" सामने अपनी उंगली का संकेत करते हुए "आप. ." और तब अपनी ओर संकेत करते हुए, "मै, यहा लन्दन किस लिए पधारे है। दिन-दिनभर घूमना, घूमना... और. .क्या तब अपनी-अपनी परीक्षाओं मे वही पिकाडेली की दुकानो की तस्वीरें बनेगी । अपनी-अपनी कापीज मे ।"

"तस्वीर तो जीवन मे एक ही उतरती है और वही उतरी है। रही 'इग्जैम्स' की बात, सो हम लोग भारत देश के होनहार हैं, कही अटकेंगे नहीं ।"

"क्यों, क्या नींद नहीं आ रही है...?" प्रतिमा ने उठकर बैठते हुए कहा। तब तक प्रतिमा के पलग पर प्रमोद एक ओर से कम्बल में पैर पसार चुका था और बोल उठा, "उहुँ. .

"अच्छा है, चलो, बाते ही होगी...।" कहकर प्रतिमा अपने को सब ओर से संभालते हुए सीधी होकर बैठ गई ।

"क्या खाक बाते करोगी .देखती नही, कितनी सर्दी है ।"

"वह तो देख रही हूँ . ।"

"तो...तो...।"

"तो क्या...अच्छा सुनो, जाओ सो जाओ ।"

और प्रमोद......अपने पाश को ढीला करता हुआ छिटक कर अलग हो गया ।"

"सुनिए, जाइए ..तग न कीजिए ।" प्रतिमा ने अलकों को संभालते हुए दूसरी ओर दृष्टि गडाकर कह डाला ।

"अच्छा, अब नही . हॉ तो तुम बाते करने को कह रही थीं ।"

"यह बातें करने का मूड है...शैतान कही के ।"

"अच्छा सुनो, उठो चलो तनिक बाहर झाक आएँ । चलो ।"

प्रमोद घसीट कर प्रतिमा को खींच लाया और उस प्रारम्भिक रात्रि

के नीरव गुंजन मे खिड़की से बाहर झाकते हुए देखा...शीत से सारा वातावरण मौन पडा हुआ है। सामने का फैला हुआ मार्ग शून्य हो रहा है...और शीत की ठिठुरती वायु का एक तेज झोका खिडकी से प्रवेश करके उनके कानो और शरीर के खुले भाग को सुन्न कर• गया। टुन्ड्रा प्रदेश से भी भयकर शीत लिए वायु किसी भी वस्तु को दाब देना चाहती थी। शरीर के किसी भाग मे छू जाने से ऐसा लगता, मानो कई वार हो गए हो। रगे कटी जा रही हो। तुषार से आच्छादित वह मार्ग ऐसा दिख रहा था जैसे अभी कुछ देर पूर्व कर्फ्यू का 'सायरन' बजने से चतुर्दिक सडके जानबूझ कर खाली कर दी गई हैं। निकटतम मकानो से वार्तालाप की ध्वनिया उतनी ही दूर हो गई थी, जितनी दूर वह सामने अविचल खडा लाइट-पोल। उसको भी नमी ने धुंधला कर दिया थी। उसके क्रीम कलर का शेड और गहरा हो गया था।

प्रमोद के कमरे के एक ओर होटल के कमरो की कतार थी और दूसरी ओर होटल की भव्य इमारत का छोर। प्रमोद का कमरा कोने वाला था। उसके बाद दूसरी ओर से अन्य अट्टालिकाओ की पंक्ति चलती चली जा रही थी। वहा दूर तक शून्यता का विस्तार था।

उस क्षण भी रगरेलियो में डूबा लन्दन व्यस्त था। कभी-कभी कोई टैक्सी सामने से आती दिख जाती। प्रमोद सोचता, संभव है इसमे कोई तरुणी लन्दन की विलासिता का अलख जागने जा रही हो। तब वह सोच गया प्रतिमा और वह...वह और प्रतिमा. इस प्रकार इस नीरव बेला में, निर्जन वातावरण के एकान्त कक्ष में एकत्व के निशा-कौतुक में लीन .....।

प्रतिमा देर तक उस शात वातावरण को देखती रही। शीत के आधिक्य से रह-रह कर उसके शरीर मे एक सिहरन दौड़ जाती। लगता, शीत प्रत्येक ओर से उस पर आक्रमण करने पर तुला हुआ है। और··· उसका उपाय। मुंदी पलको मे निद्रा। और वह प्रमोद से बोली,

"चलिये" प्रकृति-दर्शन मे अपना कल्याण हुआ जा रहा है। सोइए चलकर।

भोर होते ही समय आने पर प्रतिमा अपनी फाइल लेकर "नमस्ते .." कहकर चल देती। लेक्चर्स मे कान बन्द से और मन खुला-सा.. बस बीते क्षणों की मधुरस्मृतियो मे डूबा किलोले करता रहता।

प्रमोद तनिक देर से जाता था। अपने को सजा-संवार कर वह भी क्लास रूम मे बैठा बैरिस्टर होने के स्वप्न देखता ..कान गूंजा करते, मन नाचा करता और नेत्र प्रतिक्षण अलसाए से, भरे-भरे बने रहते। अनुराग के उल्लास मे चूर प्रमोद बस, वहा से निकल भागने की सोचा करता। किसी प्रकार जल्दी छूटे और प्रतिमा के सामने हो रहे।

"सुनिए, यह देखिए, आज ओडियन मे उदयशकर और आमला का कार्यक्रम है।" प्रतिमा ने बिखरते हास से हाथ का पैम्फलेट प्रमोद की ओर बढा दिया।

"सच...।" कह कर प्रमोद उछल पडा।

प्रतिमा व प्रमोद आगे की पन्कि मे एक ओर आ बैठे। दोनों देखते रहे, लन्दन की जेन्ट्री। हाल मे एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक पूर्णतः शान्ति, उतनी कि यदि प्रेमालाप के स्वर भी चाहें तो कान मे छिप न सकें। आस-पास अवश्य बिखर पडे और बड़ी प्रसन्न मुद्राओ मे लन्दन के नर-नारी उस सुदूरपूर्व के कलाकार की दर्शनीय कला-कृतियों को देखने जैसे उमड़े पड़ रहे हो। मुख्य द्वार से साम्हने, पीछे, इधर-उधर सब ओर से जन-समुदाय बिखर-बिखर कर सिमटता हुआ बैठता जाता था। तनिक देर में सारा हाल पश्चिमीय वेश में लिपटे नर-नारियो से

भर गया । इक्का-दुक्का भारतीय वहा वैसे ही बैठे थे, जैसे चिबुक पर उभरा काला तिल । प्रतिमा के निकट की सीट पर बैठी एक महिला उदयशंकर और प्रतिमा मे भारतीयता का साम्य जान तनिक-तनिक देर मे उससे उदयशंकर के प्रति सराहना के शब्दो मे स्फुट वार्ता करती जाती।

उस जन-समुदाय मे किसी ओर से उभरती नारियो के विचित्र केश-विन्यास झलक उठते । किसी ओर से हैट अपने विभिन्न रूपो मे हिल उठते। हाल मे पान-बीडी, चना जोर गरम, उतना ही दूर था जितना लन्दन से भारत। एडवास बुकिग व समय के अस्तित्व की महत्ता समझने की क्षमता रखने वाले अग्रेज नागरिको के स्वाभाविक गुण के फल-स्वरूप सारा हाल अधिक से अधिक दस मिनट मे भर गया और तत्क्षण सगीत की मधुर ध्वनियो को फैलाता हुआ 'स्क्रीन' दो ओर से हट कर अलग हो गया ।

सामने उदयशंकर को देख कर प्रतिमा अत्यधिक प्रफुल्लित थी। उसने अनेक बार उसके कार्यक्रम देखे थे। वह उसकी बडी उपासक थी। प्रमोद भी प्रतिमा की प्रसन्नता का भागीदार बना मौन बैठा रहा।

और तब उदयशकर ने आमला के साथ लन्दन के उस जन-समुदाय को विभोर कर दिया। झुमा-झुमा दिया। तालियो की व्यवस्थित पुकार से उस कलाकार को एक से अधिक बार अपने एक दृश्य को दोहराना पडता । उदयशंकर के कथाकाली और राजस्थानी नृत्यो पर समुदाय हिल उठता । उदयशंकर के सपेरा नृत्य पर वे अगरेज महिलाएँ अपने मुग्ध मन लिए नेत्रो से सराहना की मुद्रा प्रदर्शित करता, विस्मृत-सी बैठी रही। तब उदयशकर के शिवताण्डव की 'बैकग्राउण्ड' जब माइक द्वारा हाल मे गुजारित की गई और तदनन्तर उदयशकर और आमला के सम्मिलित नृत्यो की लहर मे जब उदयशकर का वह अमर शिवताण्डव सामने प्रदर्शित हुआ तो भारत नाच उठा, उसकी संस्कृति नाच उठी, उसका सम्मान नाच उठा, उसके आध्यात्म का वह स्वरूप नाच उठा जो शिवताण्डव का स्रोत है और तब वह कलाकार नाच उठा जो उस

नृत्य नाच रहा था, जो स्टेज को प्रकंपित कर रहा था, जो उनके मनो को मुखरित कर रहा था, जिनसे कला का वह स्वरूप कभी सीमा के पार था।

और प्रतिमा व प्रमोद कार्यक्रम समाप्त करके होटल लौटे।

"अब कल...।" प्रतिमा ने अपने चेस्टर के बटन खोलते हुए प्रमोद के नेत्रों से अपने नेत्र उलझाते हुए कहा।

"कल...भी देखा जाएगा।" कहकर प्रमोद, प्रतिमा के कपोलो को अपनी उंगलियों से थपथपाते हुए कमरे मे छिटकी रूप की चादनी में डूब गया।

"मैं कहती हूँ समस्या प्राणों और जीवन की स्वाभाविक गति है। किन्तु आत्म-हनन कम से कम समस्या का समाधान नही। मैं अनेक बार आपके उस रूप की ओर दृष्टि दौड़ाती हूँ, जो चट्टानो मे बंधा था। और आज भी वही बात है। उलझन क्या है? जब आप पर एक भार है, आप उस स्टेट के ट्रस्टी बनाए गए हैं, तो जाइए। जाना चाहिए। जैसा आपने मुझसे बताया था, उन स्वर्गीय किशोर महोदय के प्रति आप के कुछ कर्तव्य स्वाभाविक हो जाने चाहिएँ...। मैं आपके साथ चलूँगी..। उसमे अनेक बार विचार-विमर्ष का प्रश्न ही नही उठता।" प्रतिमा ने सोफे पर बैठे-बैठे 'इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज' के पृष्ठ उलटते हुए प्रमोद से कहा।

"किन्तु...वह समस्या थी अथवा जीवन का सत्य...। इसका निर्णय, प्रतिमा तुम स्वयं करो...। मैं उस बात को दोहराते अच्छा नहीं लगता ...और जिसको तुम आत्म-हनन कहना चाहती हो, वह है मन का निखार, जिससे मानव चमक उठता है। उसकी दृष्टि पैनी हो उठती है। वह जीवन को जीवन मान कर देख सकता है। वह भौतिकवाद नहीं... वह है निर्बन्धता और वैराग्य, उस मन के विरोध से, जिसे वह नही

चाहता, नही मानता ।" प्रमोद ने आज प्रतिमा के अनायास वार्तालाप के इस रूप मे उसकी विद्वत्ता के दर्शन करते हुए उत्तर दिया ।

"यह ठीक है कि संकल्प और कामना का एकान्त प्रभाव और उन्मुक्त आत्म का परमात्म समर्पण नैसर्गिक है, परम तुष्टि.. किन्तु... आल प्राबलम्स बिकम स्मालर इफ यू डोन्ट डाज देम । बट कन्फ्रन्ट देम। टच ए थ्रिसिल टिमिडली एण्ड इट प्रिक्स यू। ग्रैस्प इट बोल्डली एण्ड इट्स स्पाइन्स क्रम्बल । हैव यू एवर रेड दिस आफ विलियम एस हेसले " प्रतिमा ने साप्ताहिक को एक ओर रखते हुए कह डाला ।

"रियली, रियली, आई एप्रीसयेट द आइडिया । एण्ड देयर इज द बोल्डनेस व्हिच ए मैन एक्वायर्स, कन्सैन्ट्रैटिंग एण्ड नाट रनिंग एज टु व्हाट प्रिक्ड, बट वन्स.. ।"

"ठीक है, निष्ठा का अपना महत्व है, वह अनिवार्य-नैतिक साधना है, और सचमुच जो उसको मान ले...किन्तु, स्थिरता का अर्थ जड़ता तो नही, जो गति नाश करदे ।"

"किन्तु वैसा परिवर्तन भी नही । जो 'पालीगैमी' का भक्त बना दे । जो नितनूतन को अधिकार मान ले ।"

"बात कही और बढ गई । एक बात निर्धारित हो चुकी कि हम लोग चलेंगे । तब चलिए, उसमे उलट-पलट क्या ।" प्रतिमा ने निर्णय की स्थिरता का पल्ला थाम लिया ।

"चलना तो है ही.. ।"

प्रमोद पासपोर्ट इत्यादि के लिए आवेदन-पत्र दे आया । उसमे समय लगता ही । प्रतिमा ने जस्टिस महोदय को लिख दिया कि 'पैसेज' मिलते ही वह व प्रमोद बम्बई के लिए प्रस्थान कर देगे ।

हैम्पटन-कोर्ट-पैलेस देखने की बात अनेक बार उठी और समाप्त हो गई । बात यह थी कि वह लन्दन से अधिक दूर, १३-१४ मील पड़ता

था। वाटरलू स्टेशन से वह इतनी ही दूर था। प्रमोद तथा प्रतिमा 'ट्यूब ट्रेन' द्वारा इस दर्शनीय व भव्य राजमहल को देखने गए। इस विस्तृत प्रासाद में दर्शनीय चित्रों की एक बहुत बड़ी प्रदर्शनी है, जिनमे अधिकतर ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएँ है। इसके आगे के हरे-भरे लान, फूलो से लदी क्यारियां, अप्सराओं सदृश प्रतीत होती है। और इसके बागो मे फैले वे अखरोट के वृक्ष, जो अपने लिए विश्व मे प्रसिद्ध है, प्रतिमा को एक क्षण उनकी छाह मे बैठने के लिए विवश कर उठे। वे वृक्ष बड़े भारी-भारी है और उन पर लदे अखरोट...उनमे कौमार्य का-सा आकर्षण था। और इस राज प्रासाद के चमन की विशेषता, वहा की एक वृहत् अगूर की लहलहाती बेल है जो अपनी विशदता के साथ-साथ ऐतिहासिकता को भी लिए हुए है। गाइड ने बताया कि वह बेल सन् १७५६ मे लगाई गई थी। जैसे उसने गिन रक्खा हो और तौल रक्खा हो। गाइड बोला, इसमे २५०० से ऊपर लहलहाते गुच्छे है, जिनमे पके अंगूर लटक कर भूमि छूने को इठला रहे हैं। इसका तना लगभग ३० इंच चौड़ा होगा और उस गाइड ने बताया कि १३०० वर्ग फीट स्थान को आच्छादित किए हुए है। इसके रसभरे सुमधुर अगूर, राजपरिवार के लिए सुरक्षित है। प्रतिमा उस अंगूर की बेल को देख कर थिरक उठी। उसकी विशदता के साथ-साथ उसकी कहानी सुनकर तो वह और भी चकित हुई। और उसके लहलहाते गुच्छे जैसे बरबस उस पर टूट पड़ना चाहते हो, जैसे उनमे रससाम्य हो, वे एक परिवार के हो...और प्रतिमा बच्चो की भाति इठलाती हुई बोली, "कम-से-कम एक गुच्छा तो तुड़वाइए।"

"एक...नहीं...दो।" कहकर प्रमोद हँस दिया।

प्रतिमा लजाकर घूम गई। तभी प्रमोद ने गाइड से कहा कि माली से मिलकर उसे कुछ पुरस्कार रूप मे देने को कहो तो वह कुछ अंगूर दे। वैसे इस बात में वहा अधिक सतर्कता रक्खी जाती थी किन्तु इस प्रकार का व्यापार भी चलता ही है। थोडी ही देर मे गाइड ने कुछ

व्यवस्था करके एक कागज के बैग मे वे मीठे अगूर, वे रसभरे दाने लाकर दिये। प्रतिमा व प्रमोद ने उत्फुल्ल हृदय से उनको तोड-तोड कर खाया और उस हरीतिमा से आच्छादित भूमि को ललचाए मन से निहारते हुए घूमते रहे।

इस प्रकार प्रतिमा के साथ प्रमोद ने लन्दन के अनेक आकर्षक व दर्शनीय स्थानो को देख डाला।

और उस दिन मध्याह्न के भोजन के उपरान्त डाक से उसका पासपोर्ट जिसमें प्रतिमा का नाम भी सम्मिलित था, आ गया। न जाने क्यो जाने का विचार आते ही उसे विचित्र-सा लगता! घर जाने के लिए जो प्रसन्नता हृदय सोचना चाहता उससे विपरीत कुछ उदासी-सी प्रतीत होती। पासपोर्ट को कई बार उसने उलट-पलट कर देखा और उठाकर मेज पर रख आया। वह सोचने लगा, इस बार वायु के भी आनन्द लिए जाएँ। एक नया अनुभव ही सही।

तभी प्रतिमा यूनीवर्सिटी से लौट आई। वह कुछ खिन्न-सी प्रतीत हो रही थी। प्रमोद के प्रश्न के उत्तर मे प्रतिमा ने कुछ आवेश मे बताया कि आज उसने एक आयरिश युवक को कस कर झाड दिया। कभी-कभी वह प्रतिमा से वार्तालाप मे सीमा के परे-सा हो जाता। आज वैसे ही उसकी भारतीय वेशभूषा पर जब उसने उसकी टीका-टिप्पणी सुनी तो उसने उसे बुरी तरह अपमानित कर दिया।

प्रमोद तत्क्षण विचार मे पड गया, किन्तु, "छोडो भी···" कहकर उसने प्रतिमा मे हास्य का सचार करने के विभिन्न उपाय प्रयोग मे लाना प्रारम्भ कर दिए।

●

: ४६ :

२४ मार्च

......तू जाने को ही थी। टायफायड, ओ .., वीभत्स रात्रि.. , ओ..., सब कुछ असफल, और, और...वह तेरी ही-सी नन्ही बच्ची... तेरी छाया की तरह साथ रहने वाली। नीतू...उसको क्या हो गया आज...रात, जैसे वह इतनी थोड़ी-सी देर मे ही पागल हो गई हो...।

ओ...बारम्बार उसका एक ही प्रश्न...''पापा, बोलो। कौन ले गया...को।

और जब मैंने कहा, ''नीतू , भगवान् ले गया भगवान्, वह देखो, ऊपर...।'' और मेरे गाल थपथपा देने पर वह सदैव की भाति मुस्कराई नही...अपितु बिलख कर रो पड़ी।

और नीतू...जैसे.. की सगी बहन हो। रात-दिन छोटी-छोटी-सी, फुदकती फिरती दोनो, एक साथ...एक-दूसरे के बिना चैन नहीं। और जब से नीतू की मा मरी, ...ने अपने पास ही रख लिया उसे सदैव के लिए...और बेचारी अनाथ, पिता पहले ही संसार छोड़ गया...अब नीतू ही सब कुछ है मेरे लिए, मैं उसको...की जगह रक्खूँगा।

१० अप्रैल

नीतू मेरे पास है...वहे पहले की ही भाति घर भर मे चहल-पहल बनाए हुए है...और...के सारे कपडे, खिलौने, गाडी, झूले, तस्वीरें... वह घोड़ा, सोफे का छोटा सेट, छोटा रेडियो...सब कुछ...सब कुछ नीतू

का है और जैसे लू लग कर ताजा फूल कुम्हला जाता है, वैसे ही...की याद करते ही नीतू अनायास मुरझा जाती है। फिर भी, नीतू बालक, वह खेल-खिलौनो मे मगन है ..जब भूलती है तो ऐसा कि...जैसे कभी थी ही नहीं।

१२ अप्रैल

नीतू आज काठ के घोडे से गिरते-गिरते बची...और लान से आकर अपने नन्हे-नन्हे हाथो मे हन्टर लिए, बिरजिस और सफेद कमीज पहने, कालर हिलाती, मेरे गले मे हाथ डाल कर बोली..., "पापा..., घोडे को गोली मार दो, उसने मुझे गिरा दिया...मै हँस कर रह गया।

१ जुलाई

नीतू को पढने के लिए कानवेन्ट भेज दिया है।

२५ मार्च

...की आज वर्षी है। उसकी आज बड़ी याद आ रही है। नीतू मे जैसे मैं उसको भुला रहा हूँ।

३ जुलाई

नीतू ..कानवेन्ट के सेकन्ड स्टेन्डर्ड मे आ गई है...घर पर एक डान्स शिक्षक उसे सिखा रहा है...

३ सितम्बर

पहाड़ से लौटा हूँ...वहा...एक काटेज इस वर्ष खरीद लिया है।

आज यो ही नीतू के डान्स-मास्टर के सामने बैठ गया, सोफे पर... और नीतू के नन्हे-नन्हे पैर जब थिरक उठते है...मुझे भारतीय-नृत्य अत्यधिक पसन्द है।

१८ दिसम्बर

..को सात वर्ष से ऊपर हो गए। नीतू अब १२ वर्ष की है। उसको लेकर मैं लखमऊ जा रहा हूँ। एक मित्र ने बुलाया है। बडे दिन मे वहा रहना है।

मेरे परिचित कहते है...मै नीतू को अत्यधिक प्यार करता हूॅ। छाया की भाति साथ रखता हूॅ।

११ जुलाई

नीतू को इस वर्ष जूनियर केम्ब्रिज की परीक्षा देनी है। वह बड़ी साफ़ अंग्रेजी बोलती है...बहुत तेज। लिख भी सुन्दर लेती है ..उस गधे मोदी से कही अच्छा।

नीतू दिन मे अनेक बार नेकर, फ्राक व कपड़े बदलती है। अपनी दोनो चोटियो मे फूल बहुत सजाती है। क्यारियो मे दिन भर घूमा करती है। वह प्रतिदिन सुन्दर लडकी बनती जा रही है।

वह हर काम बडी तेजी से करती है। डिनर के समय मेरे साथ... कभी-कभी बहुत-से मेहमानो के साथ...मेज पर बैठती है। अपने से अनेक प्रश्न करती रहती है. .मेरे मित्रो के प्रश्नो के उत्तर मे अपनी बालसुलभ हास्य-मुद्रा मे बड़ा मीठा उत्तर देती है। सभी उससे प्रसन्न रहते हैं। उसके साथ खेलते हैं। वह अपने आप औरो से कम बोलती है। अधिकतर मौन रह कर केवल हाथ-पैर चलाकर हर समय किसी न किसी काम मे उलझी रहती है।

वह बडी भाग्यवान् है। कम से कम मेरे लिए। लाखो रुपया आता जाता है।

७ नवम्बर

नीतू का नया चेस्टर सिलकर आया है। मैंने अपने सामने उसको पहनाया। चेस्टर मे कई दोष नीतू ने निकाल डाले। सामने के झोल को उसने टेलर को कई-कई बार दिखाकर कहा, "वेरी बैड, यू नो नथिंग. फ़ुलिस टेलर। पापा यू मस्ट चेन्ज दिस टेलर, एटवन्स...।"

१४ फरवरी

आज रविवार है। काम से छुट्टी पाकर कमरे मे चुपचाप पलग पर लेटा था। नीतू दबे पॉव मेरे पास आई। मुझे सोया जान लौट गई...उसका 'यौवन' अधिक उभर आया है।

तो नीतू बडी होती चली जा रही है...लेकिन मै उसकी शादी नही करूँगा...हमेशा अपने पास रक्खूँगा...अपनी सारी स्टेट उसे दूँगा।

२ अप्रैल

नीतू को लेकर पहाड़ आया हूँ। नीतू अब बडी-बडी लगने लगी है। मेरे साथ रहने पर अन्य लोग उसे अनेक बार देखते हैं। वह अनजान अपने मे ही मस्त रहती है।

देहली मे "टेम्पल" में महिलाएँ उसे देखकर बडी प्रसन्न हुआ करती थी। वह सबसे हिल-मिल गई है। वह जैसे पारसी हो। सब रीति-रिवाज जान गई है।

मेरा वह बडा ध्यान रखती है। "पापा, समय से खाते नही हो, समय से सोते नहीं हो। शराब बहुत पीते हो।"

कई बार, मेरी लेडी फ्रेन्ड्स को उसने अनुचित मानकर बुरा-भला कहकर लौटा दिया है। अच्छा-बुरा वह क्या जानती है...नहीं, वह समझने लगी होगी।

और मैंने उससे पूछा, "हाऊ यू नो, आई ड्रिंक...एण्ड टेल मी व्हाट इज वाइन।"

"ओ, यू स्टिल काल मी ए चाइल्ड...।"

कैसी भोली लड़की है। लेकिन हाँ, वह सीनियर केम्ब्रिज भी तो पास हो गई...शी स्टुड सेकन्ड।

३० जुलाई

पहाड़ से लौट आया हूँ।

नीतू के सुनहली गाल...लाल...और अब आँखें लजीली होती जा रही है। उसे किसी 'गर्ल्स-कालेज' मे भेजना है।

कार वह स्वय ड्राइव कर लेती है।

वह बडी होती चली जा रही है।

वह...साड़ी ही तो पहनती है। फ्राक जैसे, उन कपड़ो को देख कर

वह स्वयं लजा जाती है। उसे वे पसन्द नहीं।

६ *सितम्बर*

नीतू थर्डईयर मे पढ रही है।

शाम को कैनाट प्लेस से बहुत-सा सामान लेकर वह लौटी।

कार को पोर्क मे खड़ा करके धड़धड़ाती वह बडलो से लदी मेरे निकट आई। मै पहले उसे देखता रहा, तब उसके सामान को। कघे थे, क्रीम थी, कुछ कापियाँ, राइटिंग पैड, कई ब्लाउज-पीसेज, और एक बडल —'सैनेटरी-टावल्स' और झट उसने वह बडल मेरे हाथ से अलग कर दिया। मै यो ही देर तक कुछ सोचता रहा। पर क्यो ?

नीतू तभी सामने कोच पर बैठ कर अपनी लाई हुई ऊन के गोले संभालने लगी।

मैने सामने देखा, नीतू...इतनी बड़ी हो गई...। इतनी सुन्दर! तब मुझे ..की साथ वाली नीतू का ध्यान हो आया।

५ अक्टूबर

कालेज टाइम के अलावा दिन भर नीतू मेरी व्यवस्था स्वयं करती है। मैं थकता चला जा रहा हूँ।

किन्तु नीतू मुझ से स्वभावतः झिझक-सी उठती है। वह अब पहले की तरह उछलते हुए मेरी गोद मे आकर नही बैठती। मै चाहता हूँ वह आए। वह दूर बैठे, सोफे पर से ही नौकरो को आदेश देती है। मुझ से बातें करती है। अपने मे उलझी रहती है। और मुझे क्या हो गया है? नीतू के गालो पर हाथ फेरने का मेरा साहस हो गया है। हाथ की उंगलियो को आपस मे ही घुमाता मै उनमे अनायास वह स्वतन्त्रता नही पाता जो सदैव रही। रुक जाता हूँ।

सामाजिक स्वातन्त्र्य व उदारता, पारसी होकर भी स्त्री—स्वतन्त्रता का मैं क्यों विरोधी हूँ? मैं अभी से ही नहीं चाहता कि नीतू बाहर घूमे-फिरे।

नीतू अलसाई-सी...अब तो हर समय लजाई-सी...वक्ष ऊँचाई-

उभरी व तनी रहने पर भी ग्रीवा झुकी-झुकी-सी बनी रहती है...ओ...
वह इतनी सुडौल...इतनी सुन्दर, ऐसा नवल उसका यौवन...और धवल
रूप।

इधर वह कुछ हल्के-हल्के बीमार रहती है...कभी सर मे दर्द, कभी...
कमर मे दर्द...

लेडी डाक्टर मर्चेन्ट से उसने नाता जोड रक्खा है...या तो वह
वहाँ या डाक्टर यहाँ. .न जाने क्या है?

११ अक्टूबर

मुझ से वह न जाने क्यो दूर रहने लगी है? बस काम की बात
करती है। और अपने कमरे मे...बैडमिन्टन मे उसकी उछाल...केनी,
वाडिया...मालती, बीना, नीना सबसे हिलती-मिलती है...खुश भी
रहती है ..। मै पसन्द नही करता। किन्तु कह भी नहीं पाता ..।

सिनेमा...ओ...वह रोमेन्टिक...और लव-सीन भी उसके सामने
आते हैं ..कभी मेरे साथ भी रहती है. .अकेले अधिक जाती है। कितनी
बुरी बात है...।

१२ अक्टूबर

नीतू स्नान करते समय 'बाथरूम' बोल्ट कर लेती है...वह बड़ी
क्यो हो रही है...पहले तो वह कितनी खिली, कितनी खुली रहती थी।

२८ अक्टूबर

मैं अनेक बार इधर-उधर जान-बूझ कर घूमता हूँ .अनेक रूपों में
उसके माधुर्य को पीना चाहता हूँ ..ओ...नीतू ..फुल ऊमेन.. फुल
यूथ .एक्स्ट्रा ब्यूटी...

मुझे यह सब नहीं सोचना है...मैं ऐसा सोचता हूँ...कैसा मन है!

२९ अक्टूबर

मैं सोकर उठा। नीतू बाथरूम से निकल रही थी। अपना बडा
तौलिया लपेटे...उसके बिखरे केश...ओस की-सी बूँदे टपकाते नीचे को
झूल रहे थे...

बाथरूम का द्वार खुला का खुला रह गया ..मुझे सामने देख . न जाने कैसे.. लज्जा थी...अथवा भय. उसका तौलिया हाथ से छूट गया...ओ ।

मैंने आखे घुमा ली ..

३१ अक्टूबर

आज दो दिन से नीतू मेरे सामने नही आई ..बाथरूम वाला दृश्य मेरे सामने बरबस नाच जाता है...उसके वे केश...फेनिल-से स्वच्छ व श्वेत...गोले...उसके अंग-प्रत्यंगो के सुडौल ..घेरे...

१ नवम्बर

उस दिन से जी बडा खराब हो रहा है। जैसे मितली आने को हो...और अब मैं स्वय घबडाने लग रहा हूँ—क्या, कभी नहीं . मैं उसे अपने पास से अलग नही कर सकता...मै उसकी शादी. .कभी नहीं...वह मेरे पास...मेरे साथ ही.. रहेगी...यों ही ..मै उसे देखा करूँगा...यों ही ।

२ दिसम्बर

कभी-कभी वह डास मे अकेली चली जाती है...अब मैं उसे अकेले नहीं जाने दू गा ।

ये शैतान लडकिया उसे घसीट ले जाती हैं...सिनमा उसे नहीं जाने दूँगा ।

कल फ्राम जी की वाइफ आई थी...नीतू को देखते ही वह कह उठी...“ओह, नीतू...नाऊ यू आर क्वाइट यंग...सो मच ब्यूटी. .

६ दिसम्बर

नीतू के कालेज मे...को-एजूकेशन है...आज मैं यह सब क्या सोच रहा हूँ...उसे गर्ल-कालेज में रहना चाहिए। आई डिसलाइक द एब्सर्ड आइडिया...

और नीतू के साथ की कई लड़कियों की शादी हो गई है। वे

उससे मिल कर. .सेक्स. .की बाते करती होगी...नीतू उनसे क्यो बाते करती है ?

१३ दिसम्बर

नीतू की मासलता.. मुझे . मुझे परेशान कर रही है । मैं ७३ साल का बुड्ढा. .मैंने ..उसे...की जगह रक्खा था...मेरी आँखे मुझे धोखा दे रही हैं । मेरा मन ..कितना बुरा हो गया है...ऐसा क्यो.. ऐसा नहीं होना चाहिए.. कभी नही ।

उस दिन वह ड्राइग रूम मे शीशे के सामने खडी अगडाई ले रही थी, मैं आफिस से आया था.. किन्तु मै चुपचाप घूम कर अपने कमरे मे चला गया ।

मैं ठीक हूँ मुझ मे कोई बात नही. .मैं क्या पागल हूँ ? लेकिन ब्लाउज से बाहर भागते उसके..., किन्तु न नीतू बुरी है...न शीशा...न मैं ।

कई बार मैं सोचता हूँ, उसे चिपका कर प्यार करूँ...और उस दिन बाथरूम वाली घटना...वह बिलकुल नग्न दिखी...ओ...नारी बुरी है...यौवन बुरा है...नही, मैं बहुत बुरा हूँ ..बहुत बुरा ।

३ जनवरी

मैं एक नौकरानी रख रहा हूँ । वह हर समय नीतू के पास रहेगी। वह अच्छा रहेगा ।

मैं...क्या नही किया . मैंने ..मेरा युवक कितना दूषित रहा है... अठखेलियो की रुनझुन अब भी मेरे बंगले की इन दीवारो से गूँज उठती है...की मा क्यो मरी...मेरे बूढ़ेपन को दाब कर चली गई। नीतू . मेरा मन कितना . सिनफुल . बना है ।

वह मोदी का बच्चा आज भी मेरे लिए...ढूँढ लाता है । तभी नीतू ..के हठ करने पर भी मै उसे नही निकाल पाता । शराब के सागर खाली कर चुका हूँ , मैं ।

अब बूढे शेर की भाति अपनी माद मे पड़ा रहता हूँ...पडा रहना

भी चाहता था, हूँ...शिकार मुझ से दूर रहे, बहुत दूर। जब नसें काम नहीं देती तो भूख भी बेकार हो जाती है, लगती ही नहीं...और किसी दिन यह भूख भी मिटने को है...

क्या तमाशा है...मै...'गर्लस्-कालेज' का सभापति बनाया गया हूँ ..एक सप्ताह हुए...मेरा नैतिक-पतन, इससे भी अधिक क्या...और मै ..पद लिए। संसार का बाहरी तमाशा...

२० मार्च

मैं पहाड जा रहा हूँ।

मै नीतू से डरने लगा हूँ...सोचता हूँ, उसे पहाड़ साथ न ले जाऊँ। न जाने मन का शैतान...

यौवन के प्रारम्भिक वसन्त मे लड़कियो का शील व सकोच कितना स्वाभाविक है, कितना प्राकृतिक...शील, नीतू का स्वभाव जो ठहरा.. वह स्वय नर की छाह से भागती है। वह कितनी भली है... नारी कितनी भली है! पुरुष उसको संसर्ग मे लाकर अपने सदृश पापमय बना डालता है...

नीतू 'सेक्स' समझती है...नही समझती. .

२ अप्रैल

यौवन की विलासिता ने मुझे...कितना गिराया है। नीतू को मैं पहाड क्यो लाया...मैं पहले ही सोचता था न। ओ...नीतू की सुरभित-लालिमा...उसके गुलाबी और तीखे ओठ...जी चाहता है...उसके पैर की पिंडलियाँ इधर कितनी भरी-भरी लगती हैं...कमर के ऊपर...नीचे सभी कितने गोल, कितने सुडौल. .कितने भारी होते जाते हैं। नीतू...' इतनी...ऐसी क्यो बन गई।

सौन्दर्य का ऐसा निखरा रूप मेरे ससर्ग मे आई अनगिन स्त्रियों मे भी मैंने नही देखा...

नीतू के कमरे में जाते मै डरता हूँ...इसी डर से दिन-रात बोतलो में डूबा रहता हूँ...नीतू की आवाज़ से भी डर रहा हूँ...केवल पुकार में

हाँ...हाँ कह कर अपने मे ही सिमटा रहता हूँ।

नीतू के कहने पर कभी-कभी उसके साथ घूमने जाता हूँ. .वह समझती है...पापा का बुड्ढा, जर्जर, शिथिल, विकृत...भोली कुछ नही जानती...तभी हाथ का सहारा देकर मुझे घुमा लाती है।

और ठीक ही तो है. .इससे अधिक विकृत मनुष्य...और क्या होगा...?

२० जून

नीतू परम सुन्दरी है।

मैं छाया की तरह उसे अपने पास रखूँगा, जीवन भर। उसे किसी और की छाया नहीं लगने दूँगा...मैं उसे विवश नही करूँगा मनाऊँगा...ओ...

मैं नशे मे हूँ...बराबर नशे मे डायरी भरता जाता हूँ। किन्तु नशे में मनुष्य का ठीक...सीधा सच्चा रूप सामने होता है. .बनावट नही आती। बनावट चल नही पाती। उसका अपनापन तभी खुलकर बाहर आता है। वही उसका सत्य-स्वरूप है. .और मेरा भी...।

हर नवजवान नीतू को किस प्रकार देखता है। वह झुकी ही रहती है...उसे पापा की शरम है ..पापा को उसकी शरम है मैं...मैं कितना पापी हूँ...मैं...उसके पवित्र सौन्दर्य को न देखकर उसका विकृत रूप, पापमय रूप...वासनामय रूप देख रहा हूँ .. रज की कलुषित देह. .मेरे लिए पागलपन का कारण बनकर उसकी नग्नता प्रदर्शित करना चाहती है। परन्तु मै...अपने को अन्तिम श्वास तक संभालूँगा...।

३ सितम्बर

कल मैने नीतू का नाम उसकी अनिच्छा क्या पूर्ण असन्तोष होते भी कालेज से कटवा दिया...मैं प्रति क्षण उसे सामने देखना चाहता हूँ। नीतू इधर आवश्यकता से अधिक चुप रहती है...क्या वह मेरे कलुष को जान रही है...

मैं कितना नीच हूँ...मैंने उसे...की जगह पाला है। सबसे बुरा

है...यह एकान्त . इतने बड़े बगले में...बीसों कमरो व दीवारों के बीच...विलासिता मे चूर बहुमूल्य फर्नीचर...उद्दण्डता का शोर जिसकी दीवारें कर रही हैं। उन सबके अन्तरंग मे लिपटा मै...और वह सौन्दर्य और नव यौवन मे चूर...अल्हड़...अनजान लड़की।

और मै...बुड्ढा...और उसका वह नवीनतम रूप...उसका तो प्रत्येक रूप १५ वर्ष से मेरे सामने है।

२० नवम्बर

मोदी का बच्चा...नीतू उसकी शिकायत करती है...मैं उसे भी बगले से दूर रक्खूँगा. .मै नीतू को किसी की हवा नही लगने दूँगा।

७ दिसम्बर

आज नीतू ने अपनी अनेक परिचित लड़कियो को बुलाया था। दिन भर हाल मे चहल-पहल और खिलखिलाहट बनी रही। मै अपने कमरे में चुपचाप पड़ा सुनता रहा।

सोचता हूँ अपनी स्टेट नीतू के नाम कर दूँ। सभी यही कहते हैं कि मैं ऐसा ही करूँगा और मर जाऊँगा...

मेरे समाज के कई लड़के नीतू पर निगाह किए है। मैं कइयों को डाट चुका हूँ...बोलचाल बन्द कर दी है...

नीतू को मै हवा नही लगने दूँगा।

३ फरवरी

कई दिन से बीमार था। अब ठीक हूँ। नीतू मेरे सर पर बर्फ़ रखती ..तेल मलती...सर पर उसकी गुलाबी उगलियाँ चलती रहतीं, किनारे स्टूल पर बैठकर वह तेल मलते समय मेरे निकटतम आ जाती...उसकी गुदगुदी...छाती मेरे सर से टकराती, दबती मुझ में कलुषित रोमाच उत्पन्न करती.. दिन प्रतिदिन मेरी मनःस्थिति बिगड़ती जा रही है।

मैने नीतू से मना कर दिया है। ठीक हूँ। सर मत दबाओ.। मैंने एक स्थान पर पढ़ा है...

५ फरवरी

मेन्टेन्ड विद पिक्यूलियर सैटिस्फैक्शन, इट सीम्ड...दैट. .मेडन माडेस्टी इज ऐ मियर रेलिक आफ बारबेरिज्म ..एण्ड दैट नथिंग कुड बी मोर नेचुरल देन फार ऐ मैन.. टु हैण्डल ए यग गर्ल, नेकड. ,थाट इट नेचुरल बिकाज...डिड इट ऐवरी डे...एण्ड फेल्ट एण्ड थाट, एज इट सीम्ड टु...नो हार्म एज...डिड इट . कान्सीक्योन्टेली ..कन्सीडर्ड माडेस्टी इन द गर्ल नाट मियरली एज ए रेलिक आफ बरबारिज्म, बट आल्सो एज एन इन्सल्ट एण्ड चैलेज टु. कितना बडा व्यंग्य है.. नारी का शील .. उसका यौवन, उसका कौमार्य . पुरुषवर्ग के लिए...बरबरता का चिह्न, एक चुनौती, अपमान. बहुत सुन्दर...यह अहमन्यता, अधिकार और दु:साहस...वाह !

किन्तु मेरा यह बूढा मन, मेरे अपने पुराने पाप, हर समय मादक कृत्यो की सुनहली किन्तु कलुषित झाॅकी, मुझे कहाॅ ढकेल रही है ।

यह सब सोचना क्या बरबरता, असभ्यता, नीचता, पामरता, पाप, महापाप नही है ।

कही कुछ पाप नहीं है...।

है . मैं नीतू को छोडकर बाहर चला जाऊँगा, पहाड, बम्बई, लन्दन.. लन्दन जाने की मेरी दुबारा इच्छा अत्यधिक हो रही है...

मै नीतू से साफ कह दूँगा...वह कंचुकी-बाॅध कर महीन ब्लाउज कभी न पहना करे।

२४ फरवरी

नीतू फ्रेंच व बंगला पढना चाहती है। मुझे विवश होकर टीचर लगाने होगे ..

कालेज छूटने के बाद वह प्रतिदिन चाय के समय मुझसे आगे पढने के लिए झगडती है ।

१६ मार्च

मै नीतू को लेकर पहाड आया हूॅ। स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता

जा रहा है। नीतू घर से बाहर नहीं जाती। चुपचाप अपने कमरे मे पड़ी अंगड़ाइयाॅ लेती रहती है। या कुछ सोचती रहती है।

१८ मार्च

कैसे मै नीतू के कमरे मे जाते-जाते लौट आया आज ओ.

मेरा व्यवहार दिन प्रतिदिन कटु होता जाता है। परसों से मैं जैसे बौखला उठा हूॅ। हर समय हरेक को डाट देता हूॅ। किन्तु नीतू के सामने गर्दन डालकर पलंग पर ऑख मूॅद कर लेट रहता हूॅ।

नीतू इधर प्रतिक्षण बाहर घूमना चाहती है। वह मुझसे दूर होती जा रही है। मेरे काम पड़े रहते हैं, वह अब चिन्ता नहीं करती।

२४ मार्च

मोदी, नीतू की अनेक शिकायते कर चुका है...मैं जीवन से पक चुका हूॅ। सोचने लगा हूॅ, दिन निकट आ गए हैं। मन मे इस प्रकार के कुवचार लेकर मै मरना नही चाहता.. जिन्दा भी नहीं रहना चाहता . नीतू को पास नही रखना चाहता। नीतू से विलग नहीं रह सकता। नीतू ठीक सोच चुकी है। मै पागल हो रहा हूॅ. .।

हुश्न इक खाबे नाज़ है
जिसके चौक पड़ने को इश्क कहते है।

१६ अप्रैल

मोदी, नीतू की बडी-से-बड़ी शिकायत ला रहा है। कहता है, 'लव अफेयर' हैज स्टार्टेड...मैंने उसे डॉट दिया है। क्या यह सच है। सच नही हो सकता। सच हुआ तो कितनी बुरी बात है। नीतू ऐसा नही कर सकती। असम्भव ! मैं कितना परेशान हो उठा हूॅ। किन्तु नीतू किसी से नही मिलती। किन्तु, हॉ...नीतू ऐसा क्यो नहीं कर सकती ? उसमे क्या नहीं है.. विलम्ब कैसा ? वह परम सुन्दरी है ..पूर्ण यौवना है। यौवन उसके रग-रग से फूट पडने को आतुर है। वह चतुर है, शिक्षिता व वैभव-शालिनी है...तो क्या...लव...

कौन हो सकता है वह पाजी...कितना भयंकर ! मैं किसी की हवा नहीं लगने दूँगा।

६ जून

मैं देहली से स्टेट की विल लेकर लौटा हूँ।

देहली मे हलचल मच गई है। इतनी बड़ी संपत्ति एक अनाथ लड़की के नाम। सार्वजनिक संस्थाएँ व व्यक्ति दौड़े कि मैं इस सब को सार्वजनिक कार्य मे लगा दूं।

किन्तु मुझे नीतू को सौपना है। वह सब असंभव !

विल नीतू को सौपते समय उसके मदभरे नयनों को देखते हुए कह दूँगा...कह दूँगा...

ओ...जैसे मेरा हृदय सुन्न हुआ जा रहा है। सभ्यता के जामे में मैं निश्चित नारकीय कीट हूँ, महापापी ! ऐसा भयकर मनोविकार।

६ जून सायंकाल

काँपते हाथों, काँपते मन, और काँपता मस्तिष्क लिए मैंने 'विल' नीतू को सौंप दी। नीतू उस ओर से कितनी उदासीन थी।

क्या नारकीय शरीर और पापिष्ठ मन की तृप्ति के लिए मैं कुछ कह पाता...३० लाख की स्टेट का प्रलोभन...आज से १५ वर्ष पूर्व की वह नन्ही बच्ची...और आज वह नही जानती कि किस राक्षस के चगुल में है। न जाने कब क्या अनाचार हो जाए...मैं मर जाऊँगा।

डायरी क्यो लिख रहा हूँ...अब नही लिखूँगा...मन बोल रहा है...मेरा समय निकट आ गया है।

कीर्ति ने वह सब पढ़ा। वह जैसे तिलमिला उठा हो। उसने उस डायरी के इस भाग को भी पढ़ा..।

"ओ...पापा तुम...अस्थिचर्माविष्ठ देह में लिपटे अन्तर्मन की यह दशा। तुम मर गए...अच्छा हुआ। ओ...मैं कितना बची...इस

संसार में...और मेरे इर्द-गिर्द तुम जीवित रहे...मुझे यों पालते रहे... तुम्हारा कलुष यों पलता रहा.. ओ . ।

"और नारी का रूप और यौवन.. और मेरा वही सब कुछ...क्या कहूँ... ।

"पापा...जीवन मे तुम्हारे दर्शन करने का दुर्भाग्य ही नहीं मैंने तो तुम्हारी छत्रछाया मे अपना युग बदलते और अपना जीवन करवटें लेते देखा है .. । नीतू—

जैसे कीर्ति को किसी ने आकाश से भूमि पर ला पटका हो। वह संसार से कितना अनभिज्ञ है...वह स्वयं नही जानता । अभी वह निरा बच्चा है ।

कार्लटन होटल मे ठहरे जयन्त को कीर्ति ने डायरी चुपचाप ले जाकर दे दी । जयन्त ने एक खोजपूर्ण दृष्टि कीर्ति पर डालते हुए उसकी प्रतिक्रिया को अपने मन मे उतारना चाहा । किन्तु कीर्ति कुछ भी कह सकने मे असमर्थ था ।'

तब जयन्त बोला, "उस प्रथम रात्रि ..इसको पढ लेने के पश्चात् निवेदिता सिहर कर, तिलमिला कर और घबरा कर उठ बैठी । बस उसका एक ही वाक्य था..."चलिए उठिए, इस बगले में, इस वायु-मण्डल में, इन दीवारो के चतुर्दिक पापा का मन चीख रहा है और मैं, इस क्षण भी 'पापा' ही कह रही हूँ । उन्हे क्या सज्ञा दूँ ? किन्तु मै अब एक पल यहाँ नहीं रुकूँगी । पापा की संपत्ति...आप ले जाकर कहीं झोंक आइए । उसकी एक पाई भी...और वह काँपने लगी । कीर्ति तुम सोचो, मैंने किस प्रकार निवेदिता को शात कर पाया होगा...।

: ४७ :

"प्रतिमा, चलो हम यो ही तैरते, उडे-उडे चले चलें अनन्त की ओर, ससार से दूर, बहुत दूर, जहाँ केवल हम हो, केवल हम...।"

"देखिए, सामने अनन्त ही तो है। वह नील-गगन, अवनि, अम्बर, वह क्षितिज वह सभी तो दूर है हमसे और निराकार वायु ही तो गति है हमारी इस क्षण।"

"तो 'पायलेट' से कह दो न कि हम बम्बई नही जा रहे...हमे वह ले चले और ऊपर.. अनन्त की ओर।"

"अच्छा, अच्छा वह देखिए सामने बैठे श्रीमान् जी हँस रहे हैं हमारी वार्ता सुनकर," प्रतिमा ने अगुलि से सकेत करते हुए कहा। निकट से 'वेट्रेस' अपने सौदर्य की छिटकती आभा बिखेरती मेवा की पुडिया देती हुई निकल गई।"

"ओ, तुम तो जैसे सचमुच 'पायलेट' से कहने ही चल दी," प्रमोद ने किलकारी भरते हुए कहा।

"जी, सोचा कह आऊँ। हमारे अतिरिक्त इन सवारियो को तो कम से कम 'पैराशूट' से उतारने का प्रबन्ध हो जाए तब फिर बढ़े हमारा यह 'वायुगामी' अनन्त की ओर, है न।"

प्रमोद चुप जैसे मूक प्रणेता-सा अतिरेक मे डूबा रहा।

निकिल-पाइप की बनी गद्देदार कुर्सियो पर निकटवर्ती यात्री वातावरण की सुषमा मे मुस्करा रहे थे। सभी देर से इन युगल-प्रेमियो की

वार्ता और भाव-भगिमाओं मे जैसे तैर रहे थे। अत्यन्त निकट, पीछे की सीट पर बैठे दो नवोदित युवक प्रणय की इस चुप-चुप, कान में गूँजती वार्ता के अनुमान मे, अनन्तर के उभरे हास से रूप की सराहना करते हुए ज्योतिर्मय स्निग्धता के दर्शन मात्र से अतिरेक का अनुभव कर रहे थे।

वायुयान...वेग से पूर्व दिशा की ओर दौड़ता चला जा रहा था।

प्रतिमा पास की शीशेदार छोटी खिड़की से नीचे झॉक लेती। लगता, मानो कुछ विन्दु-विन्दु-सा सर्वत्र छितरा पड़ा है।

प्लेन से उतरते ही प्रतिमा अपने पिता से चिपट गई। प्रेम-विह्वल जस्टिस महोदय ने अपने चश्मे को उतार कर आँखों से ढलकती बूँदो को रूमाल मे समेट लिया और वे प्रमोद की ओर बढकर उसकी पीठ थपथपाने लगे।

जस्टिस महोदय से अलग होकर प्रतिमा ने ज्यों ही दृष्टि बिखेरी कि वह उस आर्यारिश युवक को...जिसे उसने कुछ दिवस पूर्व ही उसकी उद्दण्डता पर लंदन में प्रताड़ित किया था...पूर्व से ही बम्बई एयरोड्रम पर टहलते देख—हतप्रभ रह गई।

प्रतिमा सोच गई—"यह यहाँ ?"

तुरन्त सारा सामान 'पिकअप' मे रक्खा जाने लगा। पहले जस्टिस महोदय, तदनन्तर प्रमोद अन्दर जाकर बैठ गए और प्रतिमा ने ज्यो ही अपना बायां पैर 'पिकअप' के पायदान पर रक्खा कि सनसनाहट के साथ एक गोली उसके कान के पास से निकल गई। अन्दर बैठा प्रमोद भी बाल-बाल बच गया। तुरन्त प्रतिमा ने अपना सर नीचा कर लिया और वह 'पिकअप' के दरवाजे के पीछे दब गई। किन्तु एक, दो, तीन...कई गोलिया आ-आ कर तड़तड़ा 'पिकअप' पर पड़ने लगी।

तभी चारो ओर सन्नाटा छा गया। धीरे से पहले प्रमोद तब

जस्टिस महोदय ने सर उठाकर बाहर झाँका। कई ओर से पुलिस व मिलिट्री के सिपाही 'पिकअप' की ओर दौड पडे। प्रहारक, चाह कर भी न भाग सका और सिपाहियो ने उसे दबोच लिया। क्षण भर मे सारे एयरोड्रम पर तहलका मच गया और घटनास्थल पर भीड एकत्र हो गई।

प्रतिमा हैरान, काँपती-सी 'पिकअप' को छोडकर एक ओर खडी हो गई। सामने वह आयरिश युवक विक्षिप्त-सा पुलिस के घेरे में पकड़ा खडा था। उलट कर प्रतिमा प्रमोद से चिपट गई। वह थर-थर काँप रही थी किन्तु उसकी आकृति मे आवेश व क्रोध के चिह्न स्पष्ट परिलक्षित हो रहे थे। जस्टिस महोदय प्रतिमा के निकट आकर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहते रहे—"बेटी, बाल-बाल बची तुम...पर यह है कौन ?"

वह कौन है ? इस घटना मे अन्तर्निहित कारण क्या है ? इसमें प्रमोद भी उलझा हुआ था। तभी पुलिस सहित भीड़ एक ओर को बढ़ गई।

तदनन्तर प्रतिमा को भी "एयरोड्रम आफिसर" आग्रह-पूर्वक ले गया। प्रमोद व जस्टिस महोदय अन्तरंग प्रश्नावलियो मे उलझे साथ गए।

वहीं, आफिसर के सामने प्रतिमा ने बताया कि कैसे उस युवक की उद्दण्डता पर उसने उस को लंदन मे अपनी यूनिवर्सिटी मे बुरी तरह डाटा था। इसका कारण उसकी अभद्रता व भारतीय वेश-भूषा के प्रति 'टान्ट' था। वह उसका सहपाठी था व उसकी इस प्रकार की उच्छृखलता उसने कई बार देखी थी।

"एवेन्ज...आई मस्ट..." कहते हुए सामने खडा वह आयरिश अपने दात किटकिटा रहा था। उसकी आकृति मे एक भोलापन अवश्य था, जिसे देखकर लग रहा था कि वह प्रतिमा-सी कोमलागी पर प्रहार करने की बात सोच कैसे गया ..और तब प्रतिमा ने जस्टिस महोदय से

कहा—"पर बाबूजी,उसके बाद तो यह मुझे अनेक बार मिला। तब यह यहाँ क्यों आया और आश्चर्य की बात है कि यह यहाँ मुझ से पहले आ पहुँचा और...और इसे मेर कार्यक्रम आदि की सूचना कैसे मिली?"

प्रमोद मौन, अपने समक्ष हुई उस घटना को चलचित्र की भाँति खड़ा-खड़ा देख रहा था। उस क्षण वह सोच रहा था—"ओफ, उसका सर्वस्व, उसका श्वास, उसकी प्रतिमा उस क्षण जैसे-कैसे बची . उसका हृदय उस पल धक्-धक् करके काँप रहा था। जैसे जलप्लावन से भी गहन निराशा की भावना मे वह डूब-उतरा गया। तभी आवेश में निकट खड़ी प्रतिमा की ओर वह बढ़ा और अचानक उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर उसको थपथपाते हुए वह कहने लगा—"अपमानित होने के पश्चात् वह तुम्हारी गतिविधियों के सम्बन्ध मे किसी प्रकार पता लगाता रहा होगा...उसने यह काम लन्दन मे न करके यहाँ आकर किया, पर क्यों? यह वही जाने, और तब प्रमोद पुनः मस्तिष्क में आई विचार-शृंखलाओं मे डूब गया ..भारत आने की बात आते ही तथा पासपोर्ट लाने के सम्बन्ध मे ....होते समय उस दिन अचानक सामने से आकर होटल के बैरा ने आक ..छी से जो क्षणिक विराम उपस्थित किया था ..पर चलो अच्छा हुआ...इस प्रकार अपशकुन के प्रभाव की इति भी हुई।

तभी हस्ताक्षर आदि की खानापूरी करके 'एयरोड्रम आफिसर' ने सब को जाने की अनुमति दे दी। आयरलैंड के वे प्रलयकर बाँधकर भेज दिए गए।

जस्टिस मानसिह की विशाल कोठी मे जैसे दीवाली और बसन्त एक साथ नाच उठे। प्रतिमा और प्रमोद जैसे झूम उठे।

दोपहर के लंच पर जस्टिस मानसिंह ने अपने मित्रों, परिचितो और सम्बन्धियों के समक्ष प्रमोद का परिचय देते हुए प्रतिमा व प्रमोद के परिणय की घोषणा की।